आज़ादी का अमृत महोत्सव

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका

खंड–34, अंक–2 आईएसएसएन : 2321–2608 जुलाई – दिसम्बर 2022

भारतीय जन संचार संस्थान
नई दिल्ली

खंड–34, अंक–2 संचार माध्यम जुलाई–दिसम्बर 2022

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका
खंड–34, अंक–2 जुलाई–दिसम्बर 2022 आईएसएसएनः 2321–2608

संचार माध्यम के बारे में:

'संचार माध्यम' (ISSN 2321–2608) भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली की संचार, मीडिया, पत्रकारिता और उससे संबंधित मुद्दों पर केंद्रित हिंदी में प्रकाशित सामग्री चयन में उच्च मानदंडों का पालन करने वाली अग्रणी और यूजीसी–केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में प्रारंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध–पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक शोध के उच्चतर मूल्यों का पालन करते हुए 'संचार माध्यम' में प्रकाशन से पूर्व सभी शोध पत्रों/आलेखों के लिए निष्पक्ष समीक्षा की एक कठोर प्रक्रिया का पालन किया जाता है। भारतीय जन संचार संस्थान के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है।

प्रधान संपादक
प्रो. (डॉ.) संजय द्विवेदी
महानिदेशक,
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

संपादक
प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार
प्रोफेसर, अंग्रेजी पत्रकारिता
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

संपादक मंडल

श्री अच्युतानन्द मिश्र
वरिष्ठ पत्रकार एवं पूर्व कुलपति, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. सच्चिदानंद जोशी
पूर्व कुलपति, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जन संचार विश्वविद्यालय, रायपुर एवं सदस्य सचिव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली

प्रो. ओम प्रकाश सिंह
प्रोफेसर एवं निदेशक, महामना मदनमोहन मालवीय हिन्दी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्रो. पवित्र श्रीवास्तव
डीन अकादमिक, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. गोविंद सिंह
डीन अकादमिक, और पाठ्यक्रम निदेशक, रेडियो एवं टीवी पत्रकारिता, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. आनंद प्रधान
पाठ्यक्रम निदेशक, भारतीय भाषा विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. अनिल कुमार सौमित्र
प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक भारतीय जन संचार संस्थान, अमरावती, महाराष्ट्र

प्रो. संगीता प्रणवेंद्र
प्रोफेसर, रेडियो और टेलीविजन, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

प्रो. प्रमोद कुमार
प्रोफेसर, अंग्रेजी पत्रकारिता एवं संपादक, 'संचार माध्यम', भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

डॉ. शुचि यादव
सह–आचार्य, मीडिया अध्ययन केंद्र,
सामाजिक विज्ञान स्कूल,
जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. शाहिद अली
विभागाध्यक्ष, जन संचार, कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जन संचार विश्वविद्यालय, रायपुर

डॉ. पवन कौंडल
सह–आचार्य, प्रकाशन विभाग,
भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली

भारतीय जन संचार संस्थान की ओर से वीरेंद्र कुमार भारती द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

*सभी तरह के संपादकीय पत्राचार और लेख भेजने के लिए **संपादक, संचार माध्यम,** भारतीय जन संचार संस्थान, अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-110067 (भारत), को संबोधित किया जाना चाहिए (दूरभाष : 91-11-26742920, 26741357)*

***ई मेल :** sancharmadhyamiimc@gmail.com, drpk.iimc@gmail.com*
***जर्नल का वेब लिंक :** http://iimc.gov.in/content/426_1_AboutTheJournal.aspx*
***वेबसाईट :** www.iimc.gov.in*

'संचार माध्यम' में प्रकाशित विचार लेखकों की अपनी अभिव्यक्ति हैं। भारतीय जन संचार संस्थान का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

महानिदेशक की कलम से

प्रो. (डॉ.) संजय द्विवेदी
महानिदेशक
भारतीय जन संचार संस्थान

भारतीय समाज में किसी नए प्रयोग को लेकर इतनी स्वीकार्यता कभी नहीं थी, जितनी कम समय में सोशल मीडिया ने अर्जित की है। जब इसे सोशल मीडिया कहा गया तो कई विद्वानों ने पूछा, क्या बाकी मीडिया 'अनसोशल' हैं? अगर वे भी सामाजिक हैं, तो यह सामाजिक मीडिया कैसे? किंतु समय ने साबित किया कि यह वास्तव में सोशल मीडिया है।

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने स्वयं भी कहा, "सोशल मीडिया नहीं होता तो हिंदुस्तान की 'क्रिएटिविटी' का पता ही नहीं चलता।" सोशल मीडिया अपने स्वभाव में ही बेहद लोकतांत्रिक है। जाति, धर्म, भाषा, लिंग और रंग की सीमाएँ तोड़कर इसने न सिर्फ पारंपरिक मीडिया को चुनौती दी है, वरन् यह सही मायने में आम आदमी का माध्यम बन गया है। इसने संवाद को निरंतर, समय से पार और लगातार बना दिया है। इसने न सिर्फ आपकी निजता को स्थापित किया है, वरन् एकांत को भी भर दिया है।

सूचनाएँ आज मुक्त हैं और वे इंटरनेट के पंखों पर उड़ रही हैं। सूचना 21वीं सदी की सबसे बड़ी ताकत बनी, तो सोशल मीडिया सभी उपलब्ध मीडिया माध्यमों में सबसे लोकप्रिय माध्यम बन गया। सूचनाएँ अब ताकतवर देशों, बड़ी कंपनियों और धनपतियों द्वारा चलाए जा रहे प्रचार माध्यमों की मोहताज नहीं रहीं। वे कभी भी वायरल हो सकती हैं और कहीं से भी वैश्विक हो सकती हैं। निजता अब सामूहिक संवाद में बदल रही है। वार्तालाप अब वैश्विक हो रहे हैं। इस वचुर्अल दुनिया में आपका होना ही आपको पहचान दिला रहा है। 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय' कहने वाले देश में अब एक वाक्य का विचार क्रांति बन रहा है। यही विचार की ताकत है कि वह किताबों और विद्वानों के इंतजार में नहीं है।

सोशल साइटों का समाजशास्त्र अलग है। यहाँ ट्वीट फैशन भी है और सामाजिक काम भी। फेसबुक और ट्विटर नए गणराज्य हैं। इस खूबसूरत दुनिया में आपकी मौजूदगी को दर्ज करते हुए गणतंत्र। एक नया भूगोल और प्रतिपल नया इतिहास रचते हुए गणतंत्र। निजी जिंदगी से लेकर जनांदोलन और चुनावों तक अपनी गंभीर मौजूदगी को दर्ज करवा रहा यह माध्यम, सबको आवाज और सबको वाणी देने के संकल्प से लबरेज है। कंप्यूटर से आगे अब स्मार्ट होते मोबाइल इसे गति दे रहे हैं। इंटरनेट की प्रकृति ही ऐसी है कि वह डिजिटल गैप को समाप्त करने की संभावनाओं से भरा-पूरा है। यहाँ मनुष्य न तो सत्ता का मोहताज है, न ही व्यापार का। कोई भी मनुष्यता सहअस्तित्व से ही सार्थक और जीवंत बनती है। यहाँ यह संभव होता हुआ दिख रहा है।

आप देखें तो कभी किसी भी माध्यम के प्रति इतना स्वागत भाव नहीं था। फिल्में आईं तो अच्छे घरों के लोग न इनमें काम करते थे, न ही वे फिल्में देखने जाते थे। माँ-पिता से छिपकर युवा सिनेमा देखने जाते थे। टीवी आया तो उसे भी 'इडियट बॉक्स' कहा गया। टीवी को लगातार देखते हुए भी हिंदुस्तान उसके प्रति आलोचना के भाव से भरा रहा और आज भी है, किंतु सोशल मीडिया के प्रति आरंभ से ही स्वागत भाव है। इसके प्रति समाज में अस्वीकृति नहीं दिखती, क्योंकि यह कहीं-न-कहीं संबंधों का विस्तार कर रहा है। संवाद की गुंजाइश बना रहा है। 'रहिए कनेक्ट' के नारे को साकार कर रहा है। इसके सही और सार्थक इस्तेमाल से छवियाँ गढ़ी जा रही हैं, चुनाव लड़े और जीते जा रहे हैं। समाज में पारदर्शिता का विस्तार हो रहा है। लोग कहने लगे हैं। प्रतिक्रिया करने लगे हैं।

सोशल मीडिया में समरस और मानवीय समाज की रचना की शक्ति छिपी है, किंतु उसकी यह संभावना उसके इस्तेमाल करने वालों में छिपी हुई है। इसका सही इस्तेमाल ही हमें इसके वास्तविक लाभ दिला सकता है। सामाजिक सवालों पर जागरूकता और जनचेतना के जागरण में भी यह माध्यम सहायक सिद्ध हो सकता है। आम चुनावों में राजनीतिक दलों ने इस माध्यम की ताकत को इस्तेमाल किया और समझा है। आज युवा शक्ति के इस माध्यम में बड़ी उपस्थिति के चलते इसे सामाजिक बदलाव और परिवर्तन का वाहक भी माना जा रहा है। सकारात्मकता से भरे-पूरे युवा और सामाजिक सोच से लैस लोग इस माध्यम से उपजी शक्ति को भारत के निर्माण में लगा सकते हैं। ऐसे समय में, जब सोशल मीडिया की शक्ति का प्रगटीकरण साफ है, हमें इसके सावधान, सतर्क और समाज के लिए उपयोगी प्रयोगों की तरफ बढ़ने की जरूरत है। यदि ऐसा संभव हो सका, तो सोशल मीडिया की शक्ति हमारे लोकतंत्र के लिए वरदान साबित हो सकती है।

संपादकीय

शोध गुणवत्ता का गंभीर प्रश्न

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के स्वायत्त अंतर-विश्वविद्यालय केंद्र, सूचना और पुस्तकालय नेटवर्क (इन्फ्लिब्नेट) केंद्र, द्वारा स्थापित 'शोधगंगा' प्लेटफार्म पर 20 जून, 2022 तक 552 विश्वविद्यालयों द्वारा 3,65,559 शोध प्रबंध, 8526 शोध प्रस्ताव और 45 पोस्ट डाक्टरल फेलोशिप रिपोर्ट डिजिटल फॉर्म में अपलोड किए गए हैं। इनमें से 3.51 लाख शोध प्रबंध भूगोल, मनोविज्ञान, राजनीति शास्त्र, संस्कृत, कंप्यूटर साइंस, बायोटेक्नोलॉजी, इतिहास, गणित, जूलॉजी, बॉटनी, हिंदी, अँग्रेजी, अर्थशास्त्र, प्रबंधन, वाणिज्य, शिक्षा, भौतिकी, इंजीनियरिंग और केमिस्ट्री विषयों के हैं। 20 जून, 2022 तक ही देश के 646 उच्च शिक्षा संस्थान शोधगंगा के साथ सहमति ज्ञापन पर हस्ताक्षर कर चुके हैं और भविष्य में ये सभी संस्थान शोध में पारदर्शिता एवं गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए अपने सभी शोध प्रबंध और पोस्ट डॉक्टरल रिपोर्ट शोधगंगा पर सार्वजनिक करेंगे। शोधगंगा पर जो शोध प्रबंध, शोध प्रस्ताव अथवा पोस्ट डाक्टरल रिपोर्ट अपलोड किए जाते हैं वे सार्वजनिक उपयोग के लिए हैं, यानी उन्हें कोई भी देख और पढ़ सकता है। इन्फिलिब्नेट केंद्र द्वारा एक और प्लेटफार्म का संचालन किया जाता है, जिसका नाम है 'शोधगंगोत्री'। इस प्लेटफार्म पर विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में संचालित पीएचडी के शोध प्रस्ताव अपलोड किए जाते हैं। शोध प्रबंध और शोध प्रस्ताव को सार्वजनिक करने के पीछे एक ध्येय यह भी है कि इससे अन्य शोधार्थियों और संकाय सदस्यों को पता रहता है कि शिक्षा संस्थानों में किन विषयों पर शोध कार्य जारी है और जिन विषयों पर शोध कार्य पूर्ण हो चुका है उनके परिणाम क्या हैं? यह व्यवस्था यूजीसी-2009 दिशानिर्देशों को लागू करने के संदर्भ में की गई है।

देश की अनुसंधान क्षमता के उपयोग की चुनौती

सूचना और पुस्तकालय नेटवर्क केंद्र पर अप्रैल 2021 से मार्च 2022 तक कुल 50,501 शोध प्रबंध अपलोड किए गए। इसका मतलब है कि इस एक वर्ष की अवधि में भारत के उच्च शिक्षा संस्थानों में 50,501 शोध उपाधियाँ प्रदान की गईं। भारत में वर्ष 2017-18 के दौरान कुल 34,400 पीएचडी डिग्रियाँ प्रदान की गई थीं, जबकि 2011-12 में यह आँकड़ा 21,544 था। इसका अभिप्राय है कि भारत में शोध करने वाले लोगों की संख्या तेजी से बढ़ रही है, परंतु यहाँ सवाल उठता है कि यदि देश में प्रतिवर्ष 50,000 से अधिक समस्याओं पर शोध हो रहा है तो देश की वर्तमान समस्याओं का समाधान क्यों नहीं हो रहा है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि जिन विषयों पर शोध हो रहा है उनका देश-दुनिया की वर्तमान समस्याओं से कोई लेना-देना ही नहीं है? केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय (अब शिक्षा मंत्रालय) के अनुसार भारत में प्रतिवर्ष करीब 1,69,170 विद्यार्थी पीएचडी डिग्री हेतु पंजीकरण कराते हैं। भारत में 1043 विश्वविद्यालय (2019-20) संचालित हैं, जहाँ शोध कार्य होता है, जिनमें बड़ी संख्या निजी शिक्षा संस्थानों की है। वैसे भारत में उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले संस्थानों की संख्या 55,000 से अधिक है। एक रिपोर्ट के अनुसार देश के लगभग 40,000 उच्च शिक्षा संस्थानों में से एक प्रतिशत से भी कम संस्थान शोध में शामिल हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो देश के अधिकांश उच्च शिक्षा संस्थानों के संकाय सदस्य और छात्र ज्ञान सृजन में शामिल ही नहीं हैं। यानी हम अपनी अनुसंधान क्षमता का एक मामूली अंश ही उपयोग कर पा रहे हैं। हमारी राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ, केंद्रीय विश्वविद्यालय, आईआईटी, आईआईएससी, टीआईएफआर और आईआईएसईआर अनुसंधान और विकास के बड़े केंद्र हैं। परंतु भारत में 95 प्रतिशत से अधिक छात्र राज्य विश्वविद्यालयों और कालेजों में पढ़ते हैं, जहाँ अनुसंधान कार्य अभी बहुत सीमित है। इन विश्वविद्यालयों और कालेजों में एक मजबूत अनुसंधान इकोसिस्टम विकसित करना एक बड़ी चुनौती है।

आर्गेनाईजेशन फॉर इकॉनोमिक कोऑपरेशन एंड डेवलपमेंट द्वारा 2018 में जारी एक रिपोर्ट के अनुसार डॉक्टरल डिग्री प्रदान करने में भारत का विश्व में चौथा स्थान है। भारत का ग्लोबल इनोवेशन इंडेक्स 2020 में 48 था। वर्ष 2015 में यह 81 था। 135 करोड़ जनसंख्या वाले देश का 48वाँ स्थान भी चिंताजनक स्थिति की ओर संकेत करता है। अन्य देशों की तुलना में भारत में (2018 में) कुल सकल घरेलू उत्पाद का महज 0.69 प्रतिशत हिस्सा ही अनुसंधान और नवाचार पर खर्च किया गया, जबकि अमेरिका में यह 2.8%, चीन में 2.1%, इजराइल में 4.3% और दक्षिण कोरिया में 4.2% खर्च हुआ। वर्ष 2020-21 के आर्थिक सर्वेक्षण में इसे बढ़ाकर 2 प्रतिशत करने का सुझाव था। इस आर्थिक सर्वेक्षण में निजी क्षेत्र को भी सुझाव दिया गया था कि वह अनुसंधान और नवाचार में अपनी हिस्सेदारी को बढ़ाए, परंतु निजी क्षेत्र से भी अभी तक बहुत उत्साहजनक परिणाम सामने नहीं आए हैं। भारत में अनुसंधान करने के लिए सहायता प्राप्त लोगों की संख्या भी अपेक्षाकृत बहुत कम है। 2016-17 के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार भारत में एक लाख की जनसंख्या पर सहायता प्राप्त अनुसंधानकर्ताओं की संख्या महज 15 थी, जबकि चीन में यह संख्या 111, अमेरिका में 423 और इजरायल में 825 थी।

पेटेंट संख्या की बात करें तो भारत में उत्पादित किए गए पेटेंट की संख्या अन्य देशों की तुलना में काफी कम है। वर्ल्ड इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी ऑर्गेनाइजेशन की 2017 की रिपोर्ट के अनुसार उस वर्ष चीन द्वारा 13,81,584 और अमेरिका द्वारा 6,06,956 पेटेंट आवेदन किए गए, जबकि भारत द्वारा केवल 46,582 ही आवेदन दिए गए। इनमें भी लगभग 68% आवेदन प्रवासी भारतीयों द्वारा दिए गए। भारत में इस समय करीब 25 नवाचार सेंटर हैं, जिनके कारण पेटेंट फाइलिंग की संख्या 2021-22 में बढ़कर 66,440 हो गई। परंतु जिस देश में प्रतिवर्ष 50,000 से अधिक पीएचडी की डिग्रियाँ प्रदान की जाती हों, उसके लिए यह संख्या अच्छी स्थिति की ओर संकेत नहीं करती। वास्तव में यहीं पर शोध की गुणवत्ता और प्रासंगिकता का गंभीर प्रश्न खड़ा होता है। इसका मतलब है कि जिन विषयों पर हमारे उच्च शिक्षा संस्थानों

में शोध हो रहा है उनमें नयेपन का अभाव है और शोध महज डॉक्टरल डिग्री प्राप्त करने के लिए हो रहा है, ताकि किसी शिक्षा संस्थान में एक नौकरी मिल जाए। अप्रासंगिक समस्याओं अथवा विषयों पर गुणवत्ताहीन शोध करने वाले लोगों को यदि जैसे-तैसे देश के शिक्षा संस्थानों में नौकरी मिल भी जाती है तो वे देश के लिए अनुसंधान करने वाले बेहतर शोधार्थी तैयार कर पाएँगे इसमें संदेह है। यही कारण है कि आज भारतीय विश्वविद्यालयों में काम करने वाले संकाय सदस्यों के एक बहुत बड़े वर्ग का अनुसंधान और नवाचार में ठोस योगदान नहीं है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि उच्च शिक्षा संस्थानों में अध्ययनरत छात्रों को शोधाभिमुख करने के साथ-साथ वहाँ कार्यरत संकाय सदस्यों को भी शोधाभिमुख करने हेतु सघन शोध प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाएँ और ये प्रशिक्षण कार्यक्रम उन शिक्षा संस्थानों द्वारा चलाए जाएँ, जिन्होंने शोध में ईमानदार योगदान दिया है।

शिकारी शोध पत्रिकाओं पर अंकुश

संकाय सदस्यों और शोधार्थियों की शोध गुणवत्ता का आकलन करने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने जो अकादमिक निष्पादन सूचक (एपीआई स्कोर) का पैमाना लागू किया गया है, उससे शोधार्थियों और संकाय सदस्यों की शोध गुणवत्ता में क्या अभिवृद्धि हुई है, यह तो नहीं पता, परंतु इससे दूसरी अनेक समस्याएँ पैदा हो गई हैं। इसके कारण ऐसी शोध पत्रिकाओं की बाढ़ आ गई है, जो शोधार्थियों और संकाय सदस्यों से मोटे पैसे वसूलकर गुणवत्ताविहीन शोध पत्रों का प्रकाशन कर रही हैं। यही नहीं, देश-विदेश की नामी शोध पत्रिकाओं के नाम से 'क्लोंड पत्रिकाएँ' शुरू कर उनमें शोध पत्र प्रकाशित किए जा रहे हैं। यूजीसी-केयर की वेबसाइट पर ऐसी 'क्लोंड पत्रिकाओं' की सूची उपलब्ध है, जो नामी पत्रिकाओं के नाम का दुरुपयोग कर रही हैं। आश्चर्य की बात है कि इन पत्रिकाओं की सूची यूजीसी-केयर की वेबसाइट पर प्रकाशित होने के बावजूद इनका धंधा बेखौफ जारी है। इस पर अविलंब रोक आवश्यक है। चूँकि बड़ी संख्या में ईमानदार शोधार्थी और संकाय सदस्य 'क्लोंड पत्रिकाओं' के जाल में फँस रहे हैं, इसलिए सभी शिक्षा संस्थानों में शोधार्थियों को जागरूक करने की जरूरत है। क्लोंड पत्रिकाओं की समस्या को उजागर करता और बचाव के सुझाव देता हुआ एक शोध पत्र 'संचार माध्यम' के इस अंक में समाहित किया गया है। क्लोंड पत्रिकाओं के साथ-साथ देश में ऐसे गिरोह भी सक्रिय हैं, जो माँग के अनुसार शोध पत्र और शोध प्रबंध लिखने का धंधा करते हैं। इसकी एवज में वे मोटा पैसा वसूलते हैं। ये गिरोह संकाय सदस्यों और शोधार्थियों को बाकायदा ईमेल भेजकर और फोन करके शोध प्रबंध अथवा शोध पत्र लिखवाने व प्रकाशित कराने का दावा करते हैं। भारत में यदि शोध की गुणवत्ता सुनिश्चित करनी है तो ऐसे गिरोहों पर तत्काल सख्त कार्रवाई आवश्यक है।

राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन: उम्मीद की एक किरण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 लागू होने के बाद देश में शोध की गुणवत्ता में सुधार आने की उम्मीद जताई जा रही है। राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन की स्थापना को इस संबंध में एक ठोस पहल के रूप में देखा जा रहा है। 3 मार्च, 2021 को केंद्रीय बजट 2021 के प्रावधानों के प्रभावी कार्यान्वयन पर केंद्रित एक वेबिनार को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने कहा: "देश में पहली बार नेशनल रिसर्च फाउंडेशन बनाया जा रहा है। इसके लिए 50 हजार करोड़ रुपये आवंटित किए गए हैं। यह अनुसंधान से संबंधित संस्थानों की शासन संरचना को मजबूत बनाएगा और आर एंड डी, शिक्षा और उद्योग के बीच संबंधों में सुधार करेगा।" नेशनल रिसर्च फाउंडेशन के लिए केंद्रीय बजट 2021-22 में वर्ष 2021 से अगले पाँच वर्षों तक 50,000 करोड़ रुपये घोषित किए गए हैं। नेशनल रिसर्च फाउंडेशन का प्रमुख उद्देश्य देश में गुणवत्तायुक्त अनुसंधान के मार्ग में आ रही बाधाओं को दूर करना है। देश की अनुसंधान और नवाचार क्षमता को मजबूत करने के लिए इसके माध्यम से सभी संस्थानों को एक साथ लाना है। यह शोधकर्ताओं, प्रासंगिक केंद्रीय और राज्य सरकारी निकायों और उद्योग के बीच एक समन्वयक के रूप में भी काम करेगा। साथ ही अनुसंधान रुचि के विषयों पर विभिन्न ऑनलाइन और ऑफलाइन पाठ्यक्रमों, कार्यशालाओं, सम्मेलनों के माध्यम से छात्रों और नए शोधकर्ताओं के संज्ञानात्मक और 'आर एंड आई' कौशल को बढ़ाने का काम भी करेगा। अनुसंधान में महिलाओं और 'अंडररिप्रजेंटिड' समूहों की भागीदारी बढ़ाने के लिए इसके माध्यम से विभिन्न गतिविधियाँ शुरू की जाएँगी। अनुसंधान डेटा के संग्रहण, विवेचन और विशेषण के लिए भी यह केंद्रीय क्लीयरिंग हाउस के रूप में काम करेगा।

राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन ने काम करना शुरू किया ही है। इसके परिणाम आने वाले दिनों में दिखाई देंगे। परंतु इस बिंदु पर विद्वानों में सहमति है कि देश में शोध की गुणवत्ता तब तक सुनिश्चित नहीं हो सकती, जब तक शोध के उद्देश्य के संबंध में शोधार्थियों की सोच में बदलाव नहीं आता। अभी वे महज नौकरी के लिए शोध उपाधि प्राप्त करना चाहते हैं। यदि शोध का उद्देश्य देश का पुनरुत्थान और समाज की वर्तमान समस्याओं को दूर करने में योगदान हो तो आने वाले कुछ ही दिनों में देशभर में अनुसंधान का एक अलग वातावरण विकसित होगा और उस वातावरण में जो शोध होगा वह गुणवत्तायुक्त और परिणामकारी सिद्ध होगा। उसके बाद ही विश्व में भारत की अनुसंधान स्थिति में बदलाव आएगा। तब पेटेंट फाइलिंग की संख्या भी बढ़ेगी और भारत में हुआ अनुसंधान संपूर्ण विश्व की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करेगा। देश में अनुसंधान का ईमानदार वातावरण तैयार करने के लिए सरकार के साथ-साथ समाज को भी अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिए। शिक्षा संस्थानों के प्रशासकों और संकाय सदस्यों को भी इस संबंध में पहल करनी चाहिए। अनुसंधान और नवाचार पर समन्वित प्रयास युवाओं के लिए रोजगार के पर्याप्त अवसर पैदा करते हुए देश को वैश्विक अनुसंधान के क्षेत्र में अग्रणी बनाएगा।

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

प्रकाशन विभाग
भारतीय जन संचार संस्थान
अरुणा आसफ अली मार्ग, जेएनयू न्यू कैंपस, नई दिल्ली-110 067

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान की शोध पत्रिका

खंड 34 (2) | आईएसएसएन: 2321-2608 | जुलाई-दिसम्बर 2022

विषय सूची

1. नई शिक्षा नीति और मीडिया साक्षरता 1
   प्रो. (डॉ.) संजय द्विवेदी

2. भारतीय भाषाई पत्रकारिता के क्रांतिधर्मी संपादक 6
   प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

3. सुब्रह्मण्य भारती की पत्रकारिता का स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान 5
   डॉ. सी. जय शंकर बाबु

4. स्वतंत्रता आंदोलन में राजस्थान के पत्रकारों का योगदान 21
   आशाराम खटीक और डॉ. सुबोध कुमार

5. 1857 का स्वतंत्रता संग्राम और दयानंद सरस्वती का संचार तंत्र 26
   डॉ. संजय कुमार

6. महिला स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा मीडिया के प्रयोग का अध्ययन 31
   साधिका कुमारी

7. स्वातंत्र्य संग्राम में संवाद समितियों की भूमिका 37
   डॉ. रवींद्र अग्रवाल

8. स्वतंत्रता आंदोलन कालीन सिनेमा और गांधी 51
   अंजना शर्मा और डॉ. मीता उज्जैन

9. सिनेमॅटोग्राफी तकनीक के स्वदेशीकरण पर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव 57
   डॉ. श्रीकांत सिंह और आशीष भवालकर

10. स्वतंत्रता संग्राम में लोकगीतों की भूमिका : बिहार के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन 65
    डॉ अर्चना भारती

11. स्वाधीनता आंदोलन, जनजातीय महिलाएँ और लोक माध्यम : बैतूल जिले के विशेष संदर्भ में अध्ययन 70
    डॉ. संदीप भट्ट और प्रमोद कुमार सिन्हा

12. पत्रिकाओं, कविताओं एवं नाटक-सिनेमा द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन में 'पतित' स्त्रियों के संघर्ष का चित्रण 76
    डॉ. अमृता शिल्पी

13. राष्ट्रीय चेतना के विविध स्वर और हिंदी कहानी 85
    डॉ. अंशु यादव[1]

14. एक पत्रकार और लेखक के रूप में दीनदयाल उपाध्याय का अध्ययन 92
    प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

15. समाधानमूलक पत्रकारिता की प्रासंगिकता का अध्ययन 100
    डॉ. ईश्वर दास बैरागी

16. राजनीतिक चुनाव प्रचार में मीम्स की भूमिका : 2022 में संपन्न पाँच राज्यों के विधानसभा चुनाव के संदर्भ में एक अध्ययन 106
डॉ. बिजेंद्र कुमार

17. इंटरनेट युग में वैज्ञानिक शोध पत्रिकाओं के आपराधिक स्वरूप 'क्लोंड शोध पत्रिकाओं' का बढ़ता वर्चस्व एवं उनसे बचाव : क्लोंड शोध पत्रिका 'बुलेटिन मोनुमेंटल' के अध्ययन पर आधारित 114
अखिलेश कुमार

18. पुस्तक समीक्षा
प्रो. कृपाशंकर चौबे 121
डॉ. विनीत उत्पल 122
गिरीश पंकज 124

19. आईआईएमसी गतिविधियाँ 126

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 1-5, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

नई शिक्षा नीति और मीडिया साक्षरता

प्रो. (डॉ.) संजय द्विवेदी[1]

सारांश

अल्बर्ट आइंस्टीन ने कहा था, "जो आपने सीखा है, उसे भूल जाने के बाद जो रह जाता है, वह शिक्षा है।" शिक्षा सबसे शक्तिशाली हथियार है, जिसे आप दुनिया बदलने के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं। जब देश में बड़ा बदलाव करना हो, तो सबसे पहले शिक्षा नीति को बदला जाता है। लगभग दो वर्ष पहले 29 जुलाई, 2020 को केंद्रीय मंत्रिमंडल ने नई शिक्षा नीति को मंजूरी दी थी। शिक्षा नीति किसी भी देश के भविष्य को तैयार करने का सबसे अहम पड़ाव होती है। यह किस राजनीतिक और आर्थिक माहौल में तैयार की गई है, इस पर विचार करना भी काफी अहम होता है। किसी भी शिक्षा नीति को चाहिए कि उसमें न केवल देश के संवैधानिक मूल्य शामिल रहें, बल्कि वह एक जागरूक और आधुनिक पीढ़ी तैयार करने के साथ ही सामाजिक कुरीतियों को भी दूर करे। हालाँकि किसी भी देश की शिक्षा नीति को सफल बनाने के लिए आज जो सबसे बड़ा वाहक है, वह उस देश का मीडिया है। देश के विकास में जिसमें शिक्षा एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है, उसकी वस्तुस्थिति का अंदाजा मीडिया के द्वारा ही लगाया जा सकता है। पिछले कुछ समय से, जब संपूर्ण विश्व कोरोना महामारी के दौर से गुजर रहा है तो एक 'इन्फोडेमिक' शब्द अत्यंत प्रचलित हुआ, उसके अनेक परिणाम और दुष्परिणाम भी देखने को मिले हैं। इस शब्द का तात्पर्य अतिशय सूचना या आम बोलचाल की भाषा में सूचनाओं के विस्फोट से है। इन अतिशय सूचनाओं में से जब यह चुनना मुश्किल हो जाए कि किस सूचना पर विश्वास करें और किस पर नहीं, तो ऐसी स्थिति मीडिया एवं सूचना साक्षरता जैसे विमर्श को जन्म देती है। जहाँ तक राष्ट्रीय शिक्षा नीति की बात है, उसमें भी 'समस्या समाधान' के साथ तर्कों और रचनात्मकता का प्रावधान किया गया है, जो मीडिया साक्षरता और नई शिक्षा नीति को एक-दूसरे के पूरक के रूप में प्रतिबिंबित करता है।

संकेत शब्द : मीडिया साक्षरता, नई शिक्षा नीति, डिजिटल मीडिया, सूचना साक्षरता, आजादी का अमृत महोत्सव, अमृत काल

प्रस्तावना

शिक्षा ऐसा विषय है, जिसमें रातोंरात परिवर्तन होना मुश्किल है। लेकिन, अगर लागू करने वाले प्राधिकारियों में इच्छाशक्ति हो, तो बदलाव बहुत कठिन भी नहीं होता। देश में नई शिक्षा नीति के हिसाब से कई परिवर्तनों की आधारशिला रखी गई है। बदलाव की यह बयार आने वाले दिनों में उस सोच को रूपायित करेगी, जिसकी कल्पना इस नीति में की गई है। पिछले दो वर्षों में शिक्षकों और नीतिकारों ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति को धरातल पर उतारने में बहुत मेहनत की है। कोरोना के इस काल में भी लाखों नागरिकों से, शिक्षकों, राज्यों, स्वायत्त संस्थाओं से सुझाव लेकर, टास्क फोर्स बनाकर नई शिक्षा नीति को चरणबद्ध तरीके से लागू किया जा रहा है। आज से कुछ दिन बाद 15 अगस्त को हम आजादी के 75वें साल में प्रवेश करने जा रहे हैं। एक तरह से नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति का कार्यान्वयन, आजादी के अमृत महोत्सव का प्रमुख हिस्सा है। भारत के जिस सुनहरे भविष्य के संकल्प के साथ हम आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं, उस भविष्य की ओर हमें आज की नई पीढ़ी ही ले जाएगी। भविष्य में हम कितना आगे जाएँगे, कितनी ऊँचाई प्राप्त करेंगे, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि हम अपने युवाओं को वर्तमान में कैसी शिक्षा दे रहे हैं, कैसी दिशा दे रहे हैं। भारत की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति राष्ट्र निर्माण के महायज्ञ में सबसे महत्वपूर्ण तत्व है।

कोरोना काल में हमारी शिक्षा व्यवस्था के सामने बहुत बड़ी चुनौती थी। इस दौरान विद्यार्थियों की पढ़ाई का, जीवन का ढंग बदल गया। लेकिन विद्यार्थियों ने तेजी से इस बदलाव को स्वीकार किया। ऑनलाइन एजुकेशन अब एक सहज चलन बन गया है। शिक्षा मंत्रालय ने भी इसके लिए अनेक प्रयास किए हैं। मंत्रालय ने 'दीक्षा' प्लेटफॉर्म शुरू किया, 'स्वयं' पोर्टल पर पाठ्यक्रम शुरू किए और देशभर से विद्यार्थी इनका हिस्सा बन गए। यह 'नॉलेज शेयरिंग' के लिए 'डिजिटल इन्फ्रास्ट्रक्चर' के तहत स्कूली शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय है, जो राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की एक पहल है। 'दीक्षा' खुली वास्तुकला के मूल सिद्धांतों के आधार पर विकसित किया गया है। इसे 5 सितंबर, 2017 में शुरू किया गया था और तब से 35 राज्य/केंद्र शासित प्रदेशों ने इसे अपनाया है, और साथ-ही-साथ, सीबीएसई और एनसीईआरटी के साथ और करोड़ों शिक्षार्थियों और शिक्षकों द्वारा भी अपनाया गया है। इसकी सफलता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आज तक सभी राज्यों में इसका उपयोग मैट्रिक्स 4,94,61,48,417 (चार अरब नौ सौ छियालीस लाख एक सौ अड़तालीस हजार चार सौ सत्रह) तक जा पहुँचा है, जिसमें 'दीक्षा' का उपयोग करते हुए छात्रों द्वारा कई बार सीखने की गतिविधियाँ की गई हैं (दीक्षा.गॉव.इन, जून 2022)।

इक्कीसवीं सदी का युवा अपनी व्यवस्थाएँ, अपनी दुनिया खुद अपने हिसाब से बनाना चाहता है। आज छोटे-छोटे गाँवों से, कस्बों से निकलने वाले युवा कैसे-कैसे कमाल कर रहे हैं। इन्हीं दूर-दराज के इलाकों और सामान्य परिवारों से आने वाले युवा आज ओलंपिक में देश का झंडा बुलंद कर रहे हैं, भारत को नई पहचान दे रहे हैं। ऐसे ही करोड़ों युवा आज अलग-अलग क्षेत्रों में असाधारण काम कर रहे हैं, असाधारण लक्ष्यों की नींव रख

[1]महानिदेशक, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली. ईमेल: 123dwivedi@gmail.com

रहे हैं। कोई कला और संस्कृति के क्षेत्र में पुरातन और आधुनिकता के संगम से नई विधाओं को जन्म दे रहा है। कोई आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के क्षेत्र में मानवीय क्षमताओं को नई ऊँचाई दे रहा है। हर क्षेत्र में भारत के युवा अपना परचम लहराने के लिए आगे बढ़ रहे हैं। यही युवा भारत के स्टार्टअप ईको सिस्टम में क्रांतिकारी बदलाव कर रहे हैं, इंडस्ट्री में भारत के नेतृत्व को तैयार कर रहे हैं और डिजिटल इंडिया को नई गति दे रहे हैं। इस युवा पीढ़ी को जब इनके सपनों के अनुरूप वातावरण मिलेगा, तो इनकी शक्ति कितनी ज्यादा बढ़ जाएगी। इसीलिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति युवाओं को यह विश्वास दिलाती है कि देश अब पूरी तरह से उनके हौसलों के साथ है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि शिक्षा में हुए डिजिटल बदलाव पूरे देश में एक साथ हों और गाँव-शहर सब समान रूप से डिजिटल लर्निंग से जुड़ें। 'नेशनल डिजिटल एजुकेशन आर्किटेक्चर' और 'नेशनल एजुकेशन टेक्नोलॉजी फोरम' इस दिशा में पूरे देश में डिजिटल और टेक्नोलॉजिकल फ्रेमवर्क उपलब्ध कराने में अहम भूमिका निभा रहे हैं। एनईपी के तहत देशभर में एक नई पहल लागू की जाएगी जो 'स्कूल क्वालिटी असेसमेंट एंड एश्योरेंस फ्रेमवर्क' है। यह पाठ्यक्रम, शिक्षाशास्त्र, मूल्यांकन, बुनियादी ढाँचे, समावेशी प्रथाओं और शासन प्रक्रिया जैसे आयामों के लिए एक सामान्य वैज्ञानिक ढाँचे की अनुपस्थिति की कमी को दूर करेगा (सक्सेना, 2021)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत जो नए कार्यक्रम शुरू हुए हैं, उनमें भारत का भाग्य बदलने का सामर्थ्य है। वर्तमान में बन रही संभावनाओं को साकार करने के लिए हमारे युवाओं को दुनिया से एक कदम आगे होना पड़ेगा। एक कदम आगे का सोचना होगा। स्वास्थ्य, रक्षा, आधारभूत संरचना या तकनीक, भारत को हर दिशा में समर्थ और आत्मनिर्भर होना होगा। 'आत्मनिर्भर भारत' का यह रास्ता 'स्किल डेवलपमेंट' और तकनीक से होकर जाता है, जिस पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति में विशेष ध्यान दिया गया है। पिछले एक साल में 1200 से ज्यादा उच्च शिक्षा संस्थानों में 'स्किल डेवलपमेंट' से जुड़े सैकड़ों नए 'कोर्सेस' को मंजूरी दी गई है। आज हम ऐसे दौर में रह रहे हैं, जहाँ सूचनाओं का अंबार है और रोजमर्रा की बातचीत में 'पोस्ट ट्रुथ' जैसे शब्द शामिल हो गए हैं। जब कोई बात सत्य से परे हो, जब झूठ और सच में कोई अंतर न हो, जब सही और गलत का विचार तथ्य या ज्ञान से न हो, बल्कि भावनाओं के आधार पर हो, तो उसे 'पोस्ट ट्रुथ' कहते हैं। ऐसे दौर में 'सूचनाओं' को लेकर लोगों में जागरूकता बढ़ानी होगी और समझ पैदा करनी होगी। अपने मतलब के लिए बातें गढ़ना और उनका प्रचार करना कोई नई बात नहीं है, लेकिन डिजिटल दुनिया में जिस तरह से राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मुद्दों पर झूठी खबरें आ रही हैं, वह चिंता की बात है। इसी क्रम में राष्ट्रीय शिक्षा नीति में आलोचनात्मक चिंतन की क्षमता का विकास, 'पीयर टयूटरिंग' अवधारणा, डिजिटल पुस्तकालय, समस्या समाधान की प्रवृति, रचनात्मक सोच और तार्किकता जैसे विमर्शों को पाकर लगता है कि इस नीति ने मीडिया और सूचना साक्षरता को एक खास स्थान दिया है (राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020)।

मीडिया साक्षरता : समय की माँग

मीडिया साक्षरता दक्षताओं को आगे बढ़ाने के लिए उपयोग की जाने वाली प्रक्रिया है मीडिया साक्षरता शिक्षा। इसका उद्देश्य मीडिया प्रभाव के बारे में जागरूकता को बढ़ावा देना और मीडिया के उपभोग और निर्माण दोनों के प्रति सक्रिय रुख बनाना है (होब्स, 2011)। मीडिया साक्षरता का विमर्श कोरोना काल में ही खड़ा नहीं हुआ है। तकनीक के विकास के साथ ही सूचनाओं का अंबार भी लगातार बढ़ता जा रहा है। कहा जाता है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। इन सूचनाओं के अंबार से अपने उपयोग की सूचनाओं को चुनना और उनको भी विश्वसनीयता की कसौटी पर परखने की आवश्यकता ने 90 के दशक में मीडिया साक्षरता की अवधारणा को जन्म दिया। आज 'फेक न्यूज' अपने आपमें एक बड़ा व्यापार बन गया है और डिजिटल मीडिया ने भी इसे प्रभावित किया है। ऐसे में मीडिया साक्षरता की आवश्यकता और बढ़ जाती है। सोशल मीडिया की वजह से बड़े पैमाने पर सूचनाओं का प्रसार एलीट वर्ग या मीडिया तक सीमित नहीं रह गया है। इस नेटवर्क के चलते सूचनाओं के प्रवाह को रोकना नामुमकिन हो गया है। ऐसे माहौल में लोगों के पास ऐसे 'टूल्स' होने चाहिए, जिससे वे उनका विश्लेषण और यहाँ तक कि उन सूचनाओं को खारिज भी कर सकें। इसके लिए हमें बहुत कम उम्र से ही जागरूकता बढ़ानी होगी, क्योंकि सूचनाओं की बमबारी बचपन की उम्र से ही शुरू हो गई है। इसके लिए हमें स्कूली कोर्स, पढ़ाने के तरीकों और शिक्षा व्यवस्था में बदलाव करने होंगे। ऐसे तरीके ढूंढ़ने होंगे, जिनसे तथ्यों और काल्पनिक बातों में फर्क किया जा सके। स्मार्टफोन और टैबलेट की संख्या बढ़ने से आज की पीढ़ी के छात्रों की सूचनाओं तक पहुँच काफी आसान हो गई है। वर्ष 2016 में स्टेनफोर्ड हिस्ट्री एजुकेशन ग्रुप के एक शोध से यह पता चला कि अलग-अलग सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल करने वाले छात्रों में से 80 प्रतिशत छात्र, विज्ञापन और खबरों के बीच फर्क नहीं कर पाते। इसका मतलब ये है कि छात्रों को जिस बड़े पैमाने पर सूचनाओं से जूझना पड़ रहा है, उसमें वे सच या झूठ का फर्क करने में खुद को मुश्किल स्थिति में पाते हैं। हालाँकि, कुछ देशों ने इस दिक्कत को पहले ही समझ लिया था और वे पिछले कुछ वर्षों से इससे निपटने की कोशिश कर रहे हैं (डोनाल्ड, 2026)।

फिनलैंड को दुनिया के बेहतरीन सरकारी स्कूलों और कॉलेजों वाला देश कहा जाता है। वर्ष 2014 के बाद से फिनलैंड में झूठी खबरों के खिलाफ एक अभियान शुरू किया गया, जिसका मकसद छात्रों में विश्लेषण की क्षमता और सूझबूझ को बढ़ाना है। वर्ष 2016 की इंटरनेशनल सिविक एंड सिटिजनशिप एजुकेशन स्टडी के मुताबिक, फिनलैंड में 82 प्रतिशत शिक्षक 'छात्रों में विश्लेषणात्मक और स्वतंत्र सोच को बढ़ावा देने' को जरूरी काम मानते हैं। फैक्ट चेकिंग यानी सच्ची और झूठी खबरों का फर्क बताने वाले संस्थानों या जानकारों के साथ मिलकर फिनलैंड छात्रों को हुनरमंद बना रहा है, ताकि वे झूठी खबरों की पहचान कर सकें। इसके लिए छात्रों के साथ मौजूदा मुद्दों पर बातचीत की जाती है एवं सवाल पूछने के कल्चर को और विमर्श को बढ़ावा दिया जाता है। भारत के उच्च शिक्षा संस्थानों में इस तरह का प्रयास शिक्षकों को अवश्य करना चाहिए (आईसीसीएस, 2016)।

आज भारत में भी कौन-सी सूचना सच है और कौन-सी झूठ, इसका पता लगाना मुश्किल होता जा रहा है, लेकिन अभी तक हमारे यहाँ उच्च शिक्षा के स्तर पर तो छोड़िए, स्कूली स्तर पर भी मीडिया साक्षरता बढ़ाने के लिए बातचीत भी शुरू नहीं हुई है। शिक्षा के क्षेत्र में आईसीटी का दखल

बढ़ रहा है, लेकिन कामकाजी तकनीकी क्षमता को साक्षरता समझने की भूल हमें नहीं करनी चाहिए। सूचनाएँ सीमा से नहीं बँधी होतीं, इसलिए हमें यह देखना होगा कि उनका संदर्भ क्या है और क्या वे नैतिक होने की शर्त पूरी करती हैं। भारत की स्कूली और कॉलेज शिक्षा व्यवस्था काफी हद तक सिलेबस पूरा करने तक सीमित है। वह छात्रों को झूठी और सच्ची खबरों का फर्क सिखाने की बड़ी जिम्मेदारी के लिए तैयार नहीं है। पहली बात तो यह है कि अभी तक प्रशासनिक स्तर पर यह स्वीकार भी नहीं किया गया है कि झूठी खबरों की समस्या कितनी बड़ी है। अधिकतर शिक्षक डिजिटल टेक्नोलॉजी से अच्छी तरह वाकिफ नहीं हैं। इस अभियान में सबसे बड़ी बाधा तो यही है। हमारे यहाँ अखबारों में छपे हुए शब्दों को या टीवी पर कही गई बात को या वॉट्सएप पर फॉरवर्ड संदेशों को आँख बंद करके सच मानने की एक सामाजिक संस्कृति है, जिसे बदलने के लिए हमें हर स्तर पर सुधार करने होंगे। शिक्षा विभाग इसकी शुरुआत मीडिया साक्षरता को कोर्स का हिस्सा बनाने के साथ कर सकता है। इसके बाद इस विषय पर शिक्षकों का ट्रेनिंग मॉड्यूल तैयार करने के लिए जानकारों की समितियाँ बनाई जानी चाहिए। इन समितियों में इस क्षेत्र में काम करने वालों और फैक्ट चेकिंग संस्थानों को शामिल करना होगा, जो सूचनाओं की सच्चाई का पता लगाने का सिस्टम तैयार कर चुके हैं। ये समितियाँ, राज्य या क्षेत्र के आधार पर बनाई जानी चाहिए, ताकि वे अपने छात्रों को ध्यान में रखकर कारगर मॉड्यूल तैयार कर सकें। ट्रेनिंग मॉड्यूल भी व्यापक होना चाहिए और सालाना आधार पर उसकी समीक्षा की जानी चाहिए, ताकि बदलती हुई जरूरतों के मुताबिक उसमें तब्दीली लाई जा सके। नई शिक्षा नीति के अतर्गत छात्रों में विश्लेषणात्मक और स्वतंत्र सोच को बढ़ावा देने के प्रावधानों का जिक्र देखने को मिलता है।

हर एक शताब्दी अपनी किसी-न-किसी चीज के लिए पहचानी जाती है। ऐसे ही 21वीं शताब्दी 'इंटरनेट और सोशल मीडिया' के युग की शताब्दी मानी जा रही है। मीडिया के बदलते आयामों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मौजूदा समय बदलाव का समय है। संप्रेषण के ऐसे नए तरीके और नए माध्यम सामने आए हैं, जो पूरी तरह हमारे जीवन का हिस्सा बन गए हैं। लोगों को जोड़ने वाला सोशल मीडिया ऐसा ही एक माध्यम है, जिसे हमने जीवन के एक अटूट हिस्से के रूप में अपनाया है। आज सोशल मीडिया हमारे जीवन के कई पहलुओं को तय कर रहा है। दुनियाभर में सोशल मीडिया का चलन किस तरह बढ़ रहा है, इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि अब दुनियाभर में सोशल मीडिया का इस्तेमाल करने वालों की संख्या, इसे इस्तेमाल नहीं करने वालों की संख्या से ज्यादा हो गई है। स्टेटिस्टा (2021) की रिपोर्ट के मुताबिक, सोशल मीडिया का उपयोग सबसे लोकप्रिय ऑनलाइन गतिविधियों में से एक है। 2020 में दुनिया भर में 3.6 बिलियन से अधिक लोग सोशल मीडिया का उपयोग कर रहे थे, यह संख्या 2025 में बढ़कर लगभग 4.41 बिलियन हो जाने का अनुमान है। ये आँकड़े यह बताने के लिए काफी हैं कि वर्तमान समय में सोशल मीडिया की क्या प्रासंगिकता है। आज सोशल मीडिया का उपयोग कर रहे लोगों को इसका उद्देश्य नहीं पता है।

वर्ष 2019 में माइक्रोसॉफ्ट की एक सर्वे रिपोर्ट में कहा गया था कि भारत में इंटरनेट उपभोक्ताओं को फर्जी खबरों का सबसे अधिक सामना करना पड़ता है। दुनिया के 22 देशों में किए गए सर्वेक्षण के बाद तैयार की गई इस रिपोर्ट में कहा गया था कि 64 फीसदी भारतीयों को फर्जी खबरों का सामना करना पड़ रहा है। यह चिंता की बात इसलिए है, क्योंकि वैश्विक स्तर पर यह आँकड़ा 57 फीसदी का है। इस रिपोर्ट की सबसे अहम बात यह थी कि फर्जी खबरों के प्रचार-प्रसार में परिवार या दोस्तों की भी अहम भूमिका होती है (पीटीआई, 2019)। भारत इंटरनेट और स्मार्टफोन के सबसे बड़े बाजार के तौर पर विकसित हो रहा है। सिस्को की रिपोर्ट (2020) के मुताबिक भारत में 2023 तक 359.8 से बढ़कर 697.4 मिलियन वायर्ड/वाई-फाई कनेक्टेड डिवाइस हो जाएँगे। इसके अलावा वर्ष 2022 तक भारत में इंटरनेट डाटा की खपत आज के मुकाबले पाँच गुना ज्यादा बढ़ने की संभावना है (सिस्को, 2020)। इन सब आँकड़ों से पता चलता है कि डिजिटल मीडिया हमारे देश के घर-घर में पहुँच चुका है। और यह ऐसा दौर है जब हम नई शिक्षा नीति का भी अनुसरण कर रहे हैं। कोविड महामारी के दौरान डिजिटल शिक्षा एक मुख्य स्रोत के रूप में नजर आ रहा है। जब नई शिक्षा नीति की बात होती है तो डिजिटल शिक्षा की बात भी की जा रही है। चूँकि डिजिटल माध्यम अपने साथ गलत सूचना भी लाते हैं तो मीडिया साक्षरता जैसे विमर्शों पर बात होना भी उतनी ही आवश्यक हो जाती है।

नई शिक्षा नीति और मीडिया साक्षरता

शिक्षा के विषय में महात्मा गांधी कहा करते थे, "राष्ट्रीय शिक्षा को सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय होने के लिए राष्ट्रीय परिस्थितियों को दर्शाना चाहिए।" गांधीजी के इसी दूरदर्शी विचार को पूरा करने के लिए स्थानीय भाषाओं में शिक्षा का विचार राष्ट्रीय शिक्षा नीति में रखा गया है। अब हायर एजुकेशन में 'मीडियम ऑफ इन्सट्रक्शन' के लिए स्थानीय भाषा भी एक विकल्प होगी। 8 राज्यों के 14 इंजीनियरिंग कॉलेज 5 भारतीय भाषाओं—हिंदी, तमिल, तेलुगू, मराठी और बांग्ला—में इंजीनियरिंग की पढ़ाई शुरू करने जा रहे हैं। इंजीनियरिंग के कोर्स का 11 भारतीय भाषाओं में अनुवाद के लिए एक टूल भी बनाया जा चुका है। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होने वाला है कि हमारे नागरिक संचार में कुशल होंगे और खुद तक पहुँचने वाली सूचनाओं को तोलमोल सकेंगे। इस तरह मीडिया साक्षरता के विभिन्न आयामों को इसमें शामिल किया जा सकता है। इसका सबसे बड़ा लाभ देश के गरीब वर्ग को, गाँव-कस्बों में रहने वाले मध्यम वर्ग के विद्यार्थियों को, दलित-पिछड़े और आदिवासी भाई-बहनों को होगा। इन्हीं परिवारों से आने वाले बच्चों को सबसे ज्यादा 'लैंग्वेज डिवाइड' यानी 'भाषा विभाजन' का सामना करना पड़ता था। मातृभाषा में पढ़ाई से गरीब बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ेगा, उनके सामर्थ्य और प्रतिभा के साथ न्याय होगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक नए तरह का खुलापन लिए हुए है। इसे हर तरह के दबाव से मुक्त रखा गया है। इसमें जो खुलापन पॉलिसी के स्तर पर है, वही खुलापन विद्यार्थियों को मिल रहे विकल्पों में भी है। अब विद्यार्थी कितना पढ़ें, कितने समय तक पढ़ें, यह सिर्फ बोर्ड्स और विश्वविद्यालय नहीं तय करेंगे। इस फैसले में विद्यार्थियों की भी सहभागिता होगी। मल्टीपल एंट्री और एग्जिट की जो व्यवस्था शुरू हुई है, इसने विद्यार्थियों को एक ही क्लास और एक ही कोर्स में जकड़े रहने की मजबूरी से मुक्त कर दिया है। आधुनिक टेक्नॉलोजी पर आधारित 'अकैडमिक बैंक ऑफ

क्रेडिट' सिस्टम से इस दिशा में विद्यार्थियों के लिए क्रांतिकारी परिवर्तन आने वाला है। अब हर युवा अपनी रुचि से, अपनी सुविधा से कभी भी एक स्ट्रीम का चयन कर सकता है और उसे छोड़ भी सकता है। इसी क्रम में फेक न्यूज के खतरे से निपटने के लिए केरल सरकार ने 'सत्यमेव जयते' नामक एक डिजिटल मीडिया साक्षरता कार्यक्रम की घोषणा की है। इस कार्यक्रम के संबंध में स्कूलों और कॉलेजों में जानकारी दी जाएगी, ताकि डिजिटल मीडिया साक्षरता पर पाठ्यक्रम विकसित करने के लिए शिक्षकों को प्रोत्साहित किया जा सके। इस कार्यक्रम के पाँच मुख्य बिंदु हैं...गलत जानकारी क्या है? वह क्यों तेजी से फैल रही है? सोशल मीडिया की सामग्री का उपयोग करते समय किन सावधानियों को अपनाना होगा? फेक न्यूज फैलाने वाले कैसे लाभ कमाते हैं? और नागरिकों द्वारा इससे बचने के लिए क्या कदम उठाए जा सकते हैं (फिलिप, 2021)?

कुछ वर्ष एनसीईआरटी ने कक्षा 11वीं और 12वीं के पाठ्यक्रम में मीडिया का एक अंश लागू किया। इसके बाद मीडिया अध्ययन को एक विषय के रूप में विद्यालयों में पढ़ाए जाने की योजना बनाई गई। लेकिन इन सब प्रयासों में पत्रकारिता या मीडिया प्रशिक्षण, मीडिया साक्षरता और मीडिया शिक्षा के बीच के अंतर को समझने का प्रयत्न नहीं के बराबर किया गया। मीडिया साक्षरता से क्या हमारा उद्देश्य बच्चों को अखबार निकालने, रेडियो और टेलीविजन के कार्यक्रम को बनाने की जानकारी देना है? मीडिया अध्ययन और मीडिया साक्षरता पर गंभीरता से विचार करने वाले यह मानेंगे कि इन दोनों का उद्देश्य मीडियाकर्मी तैयार करना नहीं है, बल्कि उन लोगों तक मीडिया के काम करने के तरीकों की जानकारियाँ पहुँचाना है, जो अपने संदेश प्रसारित करवाने के लिए या प्राप्त संदेशों और जानकारियों का फायदा उठाने के लिए मीडिया के उपभोक्ता हैं। उच्च शिक्षा में मीडिया साक्षरता के संदर्भ में यह बहुत जरूरी है कि हम बच्चों और संचार माध्यमों के रिश्तों को विभिन्न स्वरूपों में देखने का प्रयास करें। बच्चों के लिए विभिन्न संचार माध्यमों का उपयोग सीखना उतना ही जरूरी है, जितना विभिन्न संचार माध्यमों से प्रसारित संदेशों को ग्रहण करने से पहले उनकी आलोचनात्मक समझ पैदा करना। 'मीडिया साक्षरता' हमारे लिए एक नई अवधारणा है, लेकिन विश्व के कई हिस्सों में विशेषकर विकसित देशों में बहुत सालों से इसको लेकर प्रयोग किये जा रहे हैं। मीडिया अध्ययन और मीडिया साक्षरता पर गंभीरता से विचार करने पर मेरा यह मानना है कि इन दोनों का उद्देश्य मीडियाकर्मी तैयार करना नहीं है। इसका उद्देश्य उन लोगों तक मीडिया के काम करने के तरीकों की जानकारियाँ पहुँचाना है, जो संदेशों और जानकारियों का फायदा उठाने के लिए मीडिया के उपभोक्ता हैं।

मीडिया साक्षरता का महत्व आज पहले से कहीं अधिक इसलिए भी हो गया है, क्योंकि बाजार और व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा की वजह से मीडिया का स्वरूप बहुत बदल चुका है। साथ-ही-साथ मानव समाज में न्यू मीडिया इतना घुल-मिल चुका है, कि उसे इसके तौर तरीकों से वाकिफ नहीं कराया गया, तो यह उसी के लिए नुकसानदेह साबित हो सकता है। सूचना साक्षरता किसी व्यक्ति की वह योग्यता है, जिसके द्वारा वह जान जाता है कि उसे किस सूचना की जरूरत है और वह सूचना कहाँ मिलेगी। इसके अतिरिक्त सूचना साक्षर व्यक्ति में उस सूचना का मूल्यांकन करने तथा उस सूचना का प्रभावी ढंग से उपयोग करने की योग्यता भी होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के नियमन से लेकर कार्यान्वयन तक शिक्षक सक्रिय रूप से इस अभियान का हिस्सा रहे हैं। शिक्षकों के जीवन में यह स्वर्णिम अवसर आया है कि वे देश के भविष्य का निर्माण करेंगे, भविष्य की रूपरेखा अपने हाथों से खींचेंगे। आने वाले समय में जैसे-जैसे नई 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' के अलग-अलग तत्व हकीकत में बदलेंगे, हमारा देश एक नए युग का साक्षात्कार करेगा। जैसे-जैसे हम अपनी युवा पीढ़ी को एक आधुनिक और राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था से जोड़ते जाएँगे, देश आजादी के अमृत संकल्पों को हासिल करता जाएगा। 21वीं सदी ज्ञान की सदी है। यह सीखने और अनुसंधान की सदी है। इस संदर्भ में भारत की नई शिक्षा नीति अपनी शिक्षा प्रणाली को छात्रों के लिए सबसे आधुनिक और बेहतर बनाने का काम कर रही है। इस शिक्षा नीति के माध्यम से हम सीखने की उस प्रक्रिया की तरफ बढ़ेंगे, जो जीवन में मददगार हो और सिर्फ रटने की जगह तर्कपूर्ण तरीके से सोचना सिखाए। नई शिक्षा नीति का लक्ष्य भारत के स्कूलों और उच्च शिक्षा प्रणाली में इस तरह के सुधार करना है, कि दुनिया में भारत ज्ञान का 'सुपर पॉवर' कहलाए। मुझे यह पूरी उम्मीद है कि अपनी सामाजिक संपदा, देशज ज्ञान और लोक भावनात्मकता को आधुनिकता से जोड़कर राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारत में 'पूर्ण नागरिक' के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करेगी। भारत को अगर आत्मनिर्भर बनना है, तो ऐसे ही शिक्षित मनुष्य उसकी आधारशिला बनेंगे।

निष्कर्ष

मीडिया साक्षरता की जरूरत केवल छात्रों को नहीं, बल्कि पूरे समाज को है। एक बेहतर समाज के निर्माण में अपनी अहम भूमिका निभाने वाले प्रशासनिक अधिकारी और कर्मचारी अगर मीडिया साक्षर होंगे, तो वह फेक न्यूज की समस्या और उसके दुष्प्रभावों को बेहतर तरीके से समझ पाएँगे और उसके खिलाफ उचित कदम उठा पाएँगे। हमें यह समझना होगा कि किसी सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर दिखने वाली हर खबर सही हो, इसकी गारंटी नहीं है। उस कंटेंट की जाँच-पड़ताल जरूरी है, उसे यों ही दूसरे से साझा करना उचित नहीं है। सरकार की भी यह जिम्मेदारी बनती है कि वह एक बेहतर मानक तैयार करे और साथ ही हर वर्ग को मीडिया साक्षर बनाने के लिए एक सिलेबस तैयार करे और इसे स्कूली शिक्षा से लेकर बचपन की देखभाल और शिक्षा, ये दो ऐसे तत्व हैं, जो हर बच्चे के लिए पूरे जीवन भर सीखने और अच्छे भविष्य की नींव स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह एक अत्यंत रुचिकर और प्रेरक पहलू है कि इस नई शिक्षा नीति ने, कम उम्र में ही वैज्ञानिक कौशल विकसित करने के महत्व पर ध्यान केंद्रित किया है। वैदिक गणित, दर्शन और प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा से जुड़े विषयों को महत्त्व देने की कवायद भी नई शिक्षा नीति में की गई है। नई शिक्षा नीति विद्यार्थियों को अपनी परंपरा, संस्कृति और ज्ञान के आधार पर 'ग्लोबल सिटीजन' बनाते हुए उन्हें भारतीयता की जड़ों से जोड़े रखने पर आधारित है। यह नीति सैद्धांतिक ज्ञान के साथ-साथ व्यवहारपरक ज्ञान पर बल देती है, जिससे बच्चों के कंधे से बैग के बोझ को हल्का करते हुए उनको भावी जीवन के लिए तैयार किया जा सके। विश्व के प्रसिद्ध शिक्षाविद् जैक्स डेलर्स की अध्यक्षता में एक अंतरराष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया था। डेलर्स आयोग की रिपोर्ट को वर्ष 1996 में यूनेस्को द्वारा प्रकाशित किया गया। इस रिपोर्ट में 21वीं सदी में शिक्षा के चार आधार स्तंभ बताए गए थे। ये

आधार स्तंभ हैं, ज्ञान के लिए सीखना, करने के लिए सीखना, होने के लिए सीखना और साथ रहने के लिए सीखना। भारत की नई शिक्षा नीति इन सभी बातों पर जोर देती है।

संदर्भ

आईसीसीएस (2016). इंटरनेशनल सिविक एंड सिटिजनशिप एजुकेशन स्टडी. https://library.oapen.org/bitstream/handle/20.500.12657/28013/1001984.pdf?sequence=1 से पुन:प्राप्त.

डेलर्स कमीशन रिपोर्ट. (1996). शिक्षा के चार स्तंभ. https://www.hmoob.in/wiki/Delors_Report से पुन:प्राप्त.

डोनाल्ड, बी. (2016). स्टेनफोर्ड रिसर्चर्स फाइंड स्टूडेंट्स हेव ट्रबल जजिंग द क्रेडिबिलिटी ऑफ इनफोर्मेशन ऑनलाइन. https://ed.stanford.edu/news/stanford-researchers-find-students-have-trouble-judging-credibility-information-online से पुन:प्राप्त.

दीक्षा.गॉव.इन (2022, जून). यूसेज मैट्रिक्स. https://diksha.gov.in/ से पुन:प्राप्त.

पीटीआई (2019, फरवरी). माइक्रोसॉफ्ट सर्वे : इंडियंस आर मोर लाइकली टू एनकाउंटर ऑनलाइन फेक न्यूज. https://www.business-standard.com/article/pti-stories/microsoft-survey-india-topping-fake-news-menace-globally-119020501427_1.html से पुन:प्राप्त.

फिलिप, एस. (2021, जनवरी). केरला गवर्नमेंट अनाउंस डिजिटल मीडिया लिट्रेसी प्रोग्राम. https://indianexpress.com/article/india/kerala/kerala-govt-announces-digital-media-literacy-programme-7129258/ से पुन:प्राप्त.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020). https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf से पुन:प्राप्त.

सक्सेना, एन. (2021). नेशनल डिजिटल एजुकेशन आर्किटेक्चर खत्म करेगा शिक्षा में असमानता. https://www.newsnationtv.com/education/more/national-digital-education-architecture-remove-obstacles-in-equal-education-country-wide-208852.html से पुन:प्राप्त.

स्टेटिस्टा. (2022). नंबर ऑफ सोशल नेटवर्क यूजर्स वर्ल्डवाइड-2017 टू 2025. https://www.statista.com/statistics/278414/number-of-worldwide-social-network-users/ से पुन:प्राप्त.

सिस्को. (2020). सिस्को एनुअल इंटरनेट रिर्पोट. https://www.cisco.com/c/dam/m/en_us/solutions/executive-perspectives/vni-forecast-highlights/mobile/pdf/India_Connections_and_Applications.pdf से पुन:प्राप्त.

होब्स, आर. (2011). डिजिटल एंड मीडिया लिट्रेसी : कनेक्टिंग कल्चर एंड क्लासरूम. केलिफोर्निया : कोर्विन प्रेस.

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 6-14, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

भारतीय भाषाई पत्रकारिता के क्रांतिधर्मी संपादक

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार[1]

सारांश

भारत में पत्रकारिता के मूल्य स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता से उपजे हैं और इन मूल्यों को गढ़ने में भारतीय भाषाई पत्रकारिता का बड़ा योगदान है। ब्रिटिश शासन के दौरान जब अँग्रेजी मीडिया का एक बड़ा वर्ग अँग्रेजी शासन का समर्थन कर रहा था उस समय भारतीय भाषाई पत्रकारिता ने देश में स्वत्व जागरण हेतु त्याग, समर्पण और देशभक्ति की जो मिसाल प्रस्तुत की, उसके कारण ही पूरा देश अँग्रेज सरकार के दमन, अत्याचारों और शोषण के विरुद्ध मजबूती से खड़ा हुआ। पत्रकारिता के माध्यम से इस स्वत्व जागरण में प्रमुख भूमिका तत्कालीन संपादकों की थी। 'स्वराज' जैसे कुछ समाचार पत्र तो ऐसे थे, जिनके संपादकों को कालापानी की सजा दी जाती रही, परंतु नए युवा पत्रकार संपादक की जिम्मेदारी सँभालने के लिए बेखौफ आगे आते रहे। ऐसे संपादकों की भारत में बड़ी शृंखला है। कलकत्ता और आगरा ही नहीं छोटे-छोटे स्थानों पर भी ऐसे संपादकों और समाचार पत्रों के बारे में जानकारी मिलती है। बंगाल की भांति लाहौर भी उस समय मीडिया का बहुत बड़ा केंद्र था। दक्षिण भारत और उत्तर पूर्वांचल के राज्यों से भी अँग्रेजी के अलावा वहाँ की स्थानीय भाषाओं में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। उनके प्रकाशन में शामिल बहुत से संपादकों और पत्रकारों को इतिहास के पन्नों में कहीं जगह नहीं मिली, परंतु उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। बहुत से तो ऐसे नाम हैं जिनका आज कोई चित्र भी उपलब्ध नहीं है। इसकी एक वजह यह रही की बहुत से संपादक स्वयं की प्रसिद्धि पसंद नहीं करते थे। आज जब स्वतंत्रता संग्राम कालीन क्रांतिधर्मी संपादकों की चर्चा होती है तो उत्तर भारत के संपादकों के बारे में दक्षिण भारत के पाठकों को अधिक नहीं मालूम और दक्षिण भारत के संपादकों के बारे में उत्तर भारत के पाठकों को अधिक नहीं मालूम। भाषाई पत्रकारिता में भी सामान्यत: दस-बीस नामों की ही अक्सर चर्चा होती है, जबकि ऐसे क्रांतिधर्मी संपादकों की सूची बहुत लंबी है, जिन्होंने स्वतंत्रता हेतु देश जगाने के लिए अपना सर्वस्व अर्पित किया। वे संपादक कितनी चुनौतियों, अभावों और दमन के माहौल में काम करते थे, उसकी हम सिर्फ कल्पना कर सकते हैं। उनका एक पैर जेल में तो दूसरा पैर अखबार के दफ्तर में या संसाधन जुटाने में होता था। ऐसे संपादकों के योगदान का संकलन कर उसे पत्रकारिता की नई पीढ़ी को अनिवार्य रूप से बताने की जरूरत है, ताकि उन्हें पता रहे कि भारत में पत्रकारिता के मूल्यों को गढ़ने में संपादकों और पत्रकारों ने किस प्रकार अपना सर्वस्व अर्पित किया। यह काम सामूहिक शक्ति से होता। बेहतर होगा कि देश के उच्च शिक्षा संस्थान और गैर सरकारी शोध संस्थान ऐसे क्रांतिधर्मी संपादकों के बारे में जानकारी संकलन को एक अभियान के रूप में लें। यह जानकारी देशवासियों ही नहीं बल्कि पूरे विश्व के समक्ष आनी चाहिए।

संकेत शब्द : भाषाई पत्रकारिता, स्वतंत्रता आंदोलन, स्वराज, सेडीशन कमेटी, शांतिनारायण भटनागर, लद्धा राम कपूर

प्रस्तावना

संपादक समाचार पत्र की रीढ़ होता है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जब प्रिंट मीडिया ही जन संचार का बड़ा माध्यम था उस समय मालिक, प्रकाशक, संपादक, संवाददाता, उपसंपादक आदि सभी भूमिकाओं में ज्यादातर एक ही व्यक्ति होता था। शायद इसी कारण लोग उस समय खुलकर अपनी बात कहने की हिम्मत भी जुटा लेते थे। आज यह संभव नहीं है। यह बात भी सर्वज्ञात है कि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जब अँग्रेजी मीडिया का बहुत बड़ा वर्ग अँग्रेजों का खुलेआम साथ ही नहीं दे रहा था, बल्कि बार-बार यह सिद्ध करने का प्रयास करता था कि अँग्रेजों से बेहतर शासन कोई नहीं चला सकता और अँग्रेजों ने भारतीयों को सभ्य बनाया और अँग्रेजों ने ही भारत में आधुनिक विकास किया है, उस समय जनमानस में 'स्वत्व' का भाव जागरण करने का काम भारतीय भाषाई मीडिया ही कर रहा था। उस दौरान भारतीय मीडिया के तत्कालीन संपादकों ने तमाम संकट झेलकर स्वतंत्रता की मशाल को जलाए रखा। यह कल्पना करके ही आज हम सिंहर उठते हैं कि जब एक संपादक को कालापानी की सजा हुई तो उसकी कुर्सी पर बैठने के लिए तुरंत दूसरा संपादक हाजिर हो गया और एक-एक करके सात संपादकों को सजा हुई, परंतु अखबार को बंद नहीं होने दिया। उस समय के संपादकों में आजादी का क्या जज्बा था, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। ऐसे क्रांतिवीर संपादकों की भारतीय भाषाई मीडिया में एक बड़ी शृंखला है। हिंदी ही नहीं भारत की तमाम भाषाओं में ऐसे संपादक और समाचार पत्र थे। आजादी का अमृत महोत्सव ऐसे संपादकों के त्याग, बलिदान, समर्पण और देशभक्ति को स्मरण किए बगैर पूरा नहीं हो सकता।

भारतीय भाषाई पत्रकारिता की ऐसी समृद्ध संपादक परंपरा में जब संपादक के त्याग, समर्पण और देशभक्ति की मिसाल देनी होती है तो अक्सर 'स्वराज' अखबार में संपादक की भर्ती के लिए प्रकाशित एक विज्ञापन का उदाहरण दिया जाता है। वह विज्ञापन था : "चाहिए स्वराज के लिए एक संपादक। वेतन दो सूखी रोटियाँ, एक ग्लास ठंडा पानी और हर संपादकीय के लिए दस साल जेल"। 'स्वराज' उर्दू भाषा का अखबार था, जिसका प्रकाशन नवंबर 1907 में दीपावली के अवसर पर प्रयाग से शुरू हुआ। 1910 में जब इस पत्र में यह विज्ञापन प्रकाशित हुआ तो उस समय इसके संपादक लद्धा राम कपूर थे। अपने पूर्ववर्ती संपादकों की भांति जब एक

[1]पाठ्यक्रम निदेशक, उर्दू पत्रकारिता, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली. ईमेल: drpk.iimc.@gmail.com

संपादकीय लिखने के आरोप में उन्हें कालापानी की सजा हुई तो जेल जाने से पहले उन्होंने ही 'स्वराज' में यह विज्ञापन प्रकाशित किया था। उस समय 'स्वराज' के संपादकों को लगातार मिल रही कालापानी की सजा के बावजूद इस विज्ञापन के छपते ही तीन लोगों ने आवेदन किया और उनमें से एक का चयन भी हुआ। यह विज्ञापन स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारतीय मीडिया के संपादकों में मौजूद अपराजेय देशभक्ति की भावना का साक्षी है। भारतमाता सोसाइटी, इलाहाबाद, द्वारा प्रकाशित 'स्वराज' के संस्थापक संपादक शांतिनारायण भटनागर थे, जो प्रयाग के ही रहने वाले थे। 'स्वराज' का ध्येय वाक्य था 'हिंदुस्तान के हम हैं, हिंदुस्तान हमारा है'। ढाई वर्ष में इस साप्ताहिक के 75 अंक निकले, जिनसे तत्कालीन अँग्रेज सरकार इतनी डर गई कि इसके आठ संपादकों—शांतिनारायण भटनागर, रामदास सुरालिया, होतीलाल वर्मा, बाबू राम हरि, मुंशी राम सेवक, नंदगोपाल चोपड़ा, लद्धाराम कपूर और पं. अमीरचंद बंबवाल को सामान्य सजा से लेकर कालापानी के कठोर कारावास तक की सजा दी गई। इनमें से सात संपादकों को कुल मिलाकर 94 साल 9 महीने की सजा हुई।

श्री शांतिनारायण भटनागर पहले अँग्रेज सेना में नौकरी करते थे। नौकरी करते हुए मन दु:खी था इसलिए कुछ दिन बाद नौकरी छोड़ दी। एक दिन उन्हें चिंताग्रस्त देखकर उनकी पत्नी ने पूछा, "नौकरी तो छोड़ दी, फिर भी चिंता नहीं छोड़ सके, कारण क्या है?" भटनागर जी बोले, "सोचा था एक साप्ताहिक पत्र निकालूँगा, परंतु अब देखता हूँ कि बिना धन के वह शुरू हो तो कैसे?" "अखबार निकाल कर क्या करेंगे?" पत्नी के पूछने पर उन्होंने कहा, "बस स्वराज्य का प्रचार करूँगा। देश जगाऊँगा, ऐसे युवक तैयार करूँगा, जो देश को आजादी प्राप्त कराने के लिए जिए-मरें। इसीलिए नौकरी छोड़ी है। शेष जीवन इसी ध्येय में खपाने का संकल्प है। जो भी मुसीबत आए झेलूँगा।" इन बातों को सुन पत्नी अंदर गई और अपने सभी स्वर्णाभूषण पति के सामने प्रस्तुत कर दिए। उन्हीं आभूषणों और कुछ जमीन-जायदाद बेचकर शांतिनारायण भटनागर ने 'स्वराज' साप्ताहिक का प्रकाशन शुरू किया था (तिवारी, 2014)। 'स्वराज' ने पहले अंक से ही अँग्रेज सरकार को हिला दिया। 1908 के एक अंक में शांतिनारायण भटनागर ने शहीद खुदीराम बोस पर एक कविता प्रकाशित की, जिसे अँग्रेज सरकार ने राजद्रोह माना। उस 'जुर्म' में उन्हें 1000 रुपये जुर्माना और साढ़े तीन साल की सजा हुई। उनके जेल जाते ही संपादक की कुर्सी पर बैठे पंजाब निवासी रामदास सुरालिया। वे अभी दो अंक ही निकाल पाए थे कि प्रेस पर ताला पड़ गया और उसे नीलाम कर दिया गया। सुरालिया के नाम भी वारंट जारी हुआ, पर वे फरार होकर नई प्रेस की व्यवस्था में लग गए। नया प्रेस हाथ लगते ही इंग्लैंड से अभी लौटे होतीलाल वर्मा संपादक की कुर्सी पर बैठे। वे कुछ ही अंक निकाल पाए थे कि उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया गया और दो लेखों पर 10 साल की सजा दी गई। अब कुर्सी पर बैठे बाबू राम हरि, जिन्होंने पहले ही अंक को 1857 के स्वतंत्रता संग्राम पर विशेषांक के रूप में निकाला। उस विशेषांक में एक कविता लिखी, जिसमें मातृभूमि से कहा गया कि अब तेरे दुख के दिन दूर हुए, विदेशी शासन का डंका बज चुका है, राष्ट्रीय अपमान का अवसान होने को है, आजादी की हवा चल रही है, बूढ़े-बच्चे सब चाह रहे हैं स्वतंत्रता। अब भारत आजाद होगा, तब 'हरि' आजादी के मजे उड़

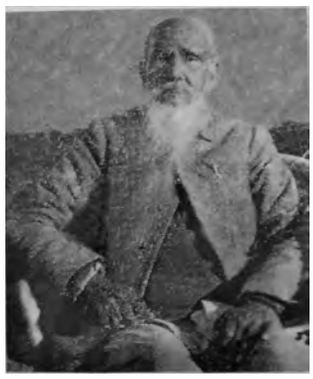

शांतिनारायण भटनागर

होतीलाल वर्मा

बाबू राम हरि

नंदगोपाल चोपड़ा

लद्धाराम कपूर

पं. अमीरचंद बंबवाल

छायाचित्र साभार : माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय, भोपाल

आएगा (गुप्त, 1977)। इस कविता को राजद्रोह मानकर हरि पर मुकदमा चला और उन्हें भी तीन मदों में 21 साल के कालापानी की सजा दी गई। यह सुनते ही लाहौर के 'सहायक' पत्र के संपादक मुंशी राम सेवक संपादक की जिम्मेदारी सँभालने के लिए इलाहाबाद आए। जिस गाड़ी से वे लाहौर से आ रहे थे, उसी गाड़ी में उनकी एक कविता पर गिरफ्तारी का वारंट लिए एक पुलिस अफसर भी इलाहाबाद आ रहा था। जिस शाम को मुंशीराम मजिस्ट्रेट के सामने 'स्वराज' के संपादक का 'डिक्लेरेशन' भर रहे थे, उसी समय उन्हें लाहौर के वारंट पर गिरफ्तार कर लिया गया। वे कालेपानी तो न जा सके पर उन्हें लाहौर के जज ने 7 साल की सजा दी। सात साल की सजा सुनाकर जज को लगा कि अब तो 'स्वराज' नहीं छप पाएगा। इसलिए व्यंग्य करते हुए जज मैकनेर ने पूछा, "अब तख्ते मुगलिया पर कौन बैठेगा?" पर कुर्सी खाली नहीं रही।

आवरण पृष्ठ परिचय

स्वतंत्रता आंदोलनकालीन पत्रकारिता के क्रांतिकारी शब्द साधक : बाएं से श्री सुब्रह्मण्य भारती, उर्दू साप्ताहिक 'स्वराज' के संपादक रहे श्री शांतिनारायण भटनागर, श्री होतीलाल वर्मा, श्री नंदगोपाल चोपड़ा, श्री लद्धाराम कपूर, श्री बाबू राम हरि, श्री अमीरचंद बंबवाल तथा सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा

अब 'स्वराज' की कुर्सी पर बैठने के लिए आए 'इनकलाब' साप्ताहिक के संपादक नंदगोपाल चोपड़ा। वे खानदानी जेल यात्री संपादक थे। उनके पिता बैरिस्टर बुलाकीराम को राजद्रोहात्मक लेखों के कारण लाहौर में पाँच साल की सजा मिली थी। नंदगोपाल ने इलाहाबाद पहुंचकर 'स्वराज' के संपादक के रूप में 'डिक्लेरेशन फाइल' किया। वे अभी 10-12 अंक ही निकाल पाए थे कि उन पर भी मुकदमा चलाकर उन्हें 3 मदों में 30 साल कालापानी की सजा दी गई। अब संपादक की कुर्सी पर आए शामदास वर्मा, जो 'भारतमाता' पत्र के संपादक रह चुके थे। वे मुश्किल से दो ही अंक निकाल पाए थे कि उन्हें लाहौर बुला लिया गया। तब कुर्सी पर आए युवा लद्धाराम कपूर, जो उस समय दक्षिण पूर्वी एशिया से अच्छी कमाई करके लौटे थे। उनके परिवार के लोग समझ रहे थे कि अब ये गुलछर्रे उड़ाएगा। जब 'स्वराज' की कुर्सी ने पुकारा तो वे अपनी नई बहू से बोले, "तुम से इश्क तो बहुत है, पर देश हमें पुकार रहा है।" उन्हीं दिनों एक अँग्रेज ने एक भारतीय महिला के साथ बलात्कार किया था। उस पर मुकदमा चल रहा था। उस पर लद्धा राम कपूर ने 'स्वराज' में लिखा, "वह स्त्री हर भारतीय की बहन है, अतएव उस दुष्ट अँग्रेज ने हमारी बहन के साथ बलात्कार किया।" इस पर राजद्रोह की धारा लगाकर कपूर को भी 3 मदों में 30 साल कालापानी की सजा हुई। सजा देने वाले थे वही जज नरपुंगव, जिसने बाबूराम हरि और नंदगोपाल को सजा सुनाई थी। सजा सुनाते हुए जज ने न्याय के ब्रिटिश स्वरूप का प्रदर्शन करते हुए कहा कि 'अभियुक्त ने उसी गंदी धारा की परंपरा को जारी रखते हुए लोगों को भड़काया, इसलिए मैं तीन मदों में अभियुक्त को 30 साल के कालापानी की सजा देता हूँ'। अंदमान की जेलों में वे अमानवीय यातनाएँ सहते रहे। उनकी सजा छह महीने और बढ़ा दी गई। इसी वीरता के कारण उनके साथियों ने उन्हें 'फील्ड मार्शल' की उपाधि दी थी। 7 जनवरी, 1966 को उस 'फील्ड मार्शल' का दिल्ली में बहुत गरीबी में देहांत हुआ।

जेल जाने से पहले लद्धाराम कपूर ने 'स्वराज' में जो प्रसिद्ध विज्ञापन छापा था और उसके बाद जिन तीन आजादी के दीवाने पत्रकारों ने आवेदन किया, उनमें शामिल थे पेशावर के रामचंद्र भारद्वाज, लाहौर के महाशय खुशाल चंद खुरसंद और पं. अमीरचंद बंबवाल। आखिर संपादक के रूप में चुने गए अमीरचंद बंबवाल, जो 'स्वराज' के अंतिम संपादक हुए। वे 'डिक्लेरेशन' दाखिल करने गए तो उन्हें कहा गया कि पहले 2000 रुपये की जमानत दो, उसके बाद ही 'डिक्लेरेशन' जमा कर सकते हो। 1910 के 2000 रुपये का मतलब आज के हिसाब से कई लाख रुपये की राशि। बंबवाल ने हिम्मत नहीं हारी। वे सहायता की उम्मीद में उस समय के मशहूर क्रांतिकारी मास्टर अमीरचंद के पास गए। वही मास्टर अमीरचंद, जिन्हें बाद में 8 मई, 1915 को वायसराय लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने के आरोप में फाँसी हुई। मास्टर अमीरचंद ने किसी तरह 2000 रुपये का प्रबंध किया और बंबवाल ने 'डिक्लेरेशन' दाखिल कर दिया और 'स्वराज' सितंबर 1910 में फिर शुरू हो गया। इससे छोटे लाट साहब बहुत नाराज हुए और उन्होंने फरमान जारी किया की आगे से संपादक से ही मुचलका लिया जाएगा। अभी 'स्वराज' के चार अंक ही निकले थे कि मुचलके की माँग हुई। बंबवाल किसी तरह भाग निकले। एक दिन वे एक प्रदर्शनी देखने गए, जहाँ एक हवाई जहाज दिखाया गया था। वहीं 25 सितंबर, 1910 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उस समय के सुप्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी पुरुषोत्तम दास टंडन ने बंबवाल की कोर्ट में पैरवी करते हुए गिरफ्तारी वारंट में कुछ तकनीकी खामियाँ निकाल दीं, जिसके कारण बंबवाल को थोड़ी राहत मिली। जब तक नया वारंट तैयार हुआ, वे भाग निकले (गुप्त, 1977)।

'स्वराज' जब भीषण आर्थिक संकट से गुजर रहा था तो उसकी आर्थिक सहायता करने वालों में पं. मदन मोहन मालवीय भी थे। जब प्रयाग में लोगों को यह पता चला कि मालवीय जी के कारण 'स्वराज' फिर से चल पड़ा है और उन्होंने इसकी आर्थिक मदद की है, तो कुछ लोग उनके पास आए और कहने लगे कि आपने एक उर्दू साप्ताहिक की क्यों मदद की। मालवीय जी ने जो उस समय कहा, वह इतिहास का एक अनमोल कथन है, जिसे किसी भी पत्रकार को और पत्रकारिता के किसी संस्थान को हमेशा याद रखना चाहिए। जो लोग शिकायत लेकर आए थे, उनसे मालवीय जी ने कहा—"मैंने जो कुछ भी किया है, देश में प्रेस की आजादी कायम करने के लिए किया है। अगर मैंने यह न किया होता तो मैं वैचारिक स्वतंत्रता के अंत का दोषी होता। जहाँ तक उन युवकों की मदद की बात है, तो मैं उससे कैसे पीछे हट सकता था? क्या एक पिता अपने पुत्रों को विचार भिन्नता के कारण छोड़ सकता है? खास तौर पर उनको, जिनकी देशभक्ति सोने की तरह चमकदार है। मैं नहीं चाहता कि मुझ पर द्रोणाचार्य की तरह अभिमन्यु की हत्या का आरोप लगे" (राय, 2022)।

शोध प्रविधि

चूँकि प्रस्तुत शोध पत्र ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है, इसलिए इसमें द्वितीयक स्रोतों का इस्तेमाल किया गया है। तथ्य संकलन में विभिन्न पुस्तकों, सरकारी दस्तावेजों और समाचार पत्रों में प्रकाशित सामग्री का सहारा लिया गया है।

हिंदू जीवन मूल्यों पर प्रहार का प्रतिकार

1780 में शुरू हुए जेम्स अगस्टस हिकी के 'हिकीज बंगाल गजट' के बाद 'इंडिया गजट', 'कैलकटा गजट' और 'हरकारा' आदि समाचार पत्रों से कंपनी सरकार इतनी डर गई थी कि मई 1799 में उसने देश में प्रेस सेंसरशिप लागू कर दी, जो 17 वर्ष तक यानी 19 अगस्त, 1818 तक जारी रही। मीडिया के लिए वह अत्यंत कठिन दौर था। उसके बाद ही हिंदी का प्रथम साप्ताहिक पत्र 'उदंत मार्तंड' 30 मई, 1826 को कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। हालाँकि लगभग डेढ़ वर्ष बाद 11 दिसंबर, 1827 को वह

माधवराव सप्रे

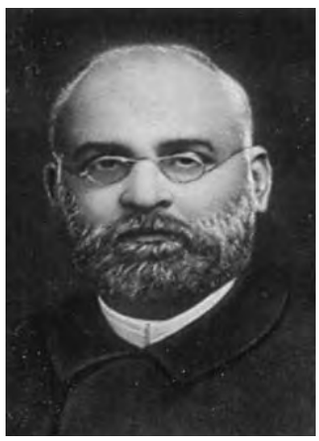
श्यामजी कृष्ण वर्मा

विजय सिंह पथिक

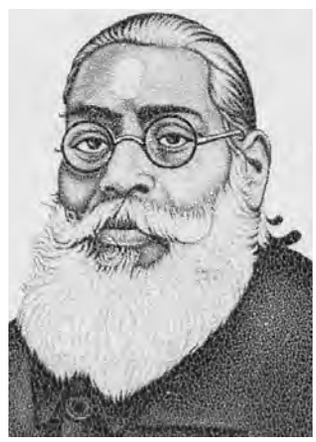
शिवनाथ गुप्त

बंद हो गया। इसके संपादक थे पं. युगलकिशोर शुक्ल थे, जो कानपुर के रहने वाले थे। इससे पूर्व उर्दू का प्रथम साप्ताहिक पत्र 'जामे जहाँ नुमा' 27 मार्च, 1822 को कलकत्ता से शुरू हो चुका था। उसके प्रकाशक हरिहर दत्त और संपादक लाला सदासुख लाल थे। लाला सदासुख लाल मिर्जापुर के रहने वाले थे, जबकि हरिहर दत्त प्रख्यात बंगाली पत्रकार और बंगाली साप्ताहिक 'संबाद कौमुदी' के संस्थापकों में से एक ताराचंद दत्त के पुत्र थे। 'जामे जहाँ नुमा' के सिर्फ छह अंक ही प्रकाशित हुए थे कि 16 मई, 1822 से इसे फारसी में परिवर्तित कर दिया गया। हालाँकि एक साल बाद 23 मई, 1823 से उसमें चार पृष्ठ का उर्दू परिशिष्ट जोड़ना शुरू कर दिया गया (खान, 2013)। जो लोग उर्दू पत्रकारिता को एक मजहब विशेष से जोड़ते हैं उन्हें पता होना चाहिए कि भारत में उर्दू पत्रकारिता की नींव गैर मुस्लिम पत्रकारों द्वारा हुई रखी गई। उर्दू के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'स्वराज' के तो सभी संपादक गैर मुस्लिम थे और उन्होंने मातृभूमि के लिए कालापानी की सजा तक भुगती। उसी दौरान बंगाल के हुगली में मई 1772 को जन्में राममोहन राय ने कलकत्ता से 4 दिसंबर, 1821 को साप्ताहिक 'संबाद कौमुदी' (बंगला) और 'ब्रह्मिकल मैगजीन' (अँग्रेजी) का प्रकाशन शुरू किया था। 'ब्रह्मिकल मैगजीन' का प्रकाशन शुद्ध रूप से उस समय ईसाई मिशनरियों द्वारा हिंदू जीवन मूल्यों पर किए जा रहे आघातों का प्रतिकार करने के लिए किया गया था। इसके 12 अंक ही प्रकाशित हो सके। 12 अप्रैल, 1822 को राय ने फारसी में 'मीरत-उल-अखबार' और 10 मई, 1829 को 'बंगदूत' का चार भाषाओं—बंगला, फारसी, उर्दू और हिंदी में प्रकाशन शुरू किया। इसके संपादक नील रतन हलदार थे। 'बंगदूत' का प्रकाशन 30 जुलाई, 1829 को बंद हो गया। राममोहन राय के जो लेख 'संबाद कौमुदी' में छपते थे, उनका अँग्रेजी अनुवाद 'कैलकटा जर्नल' में भी नियमित छपता था।

बंगला पत्रकारिता की राष्ट्रभक्ति

वर्ष 1813 में गंगाधर भट्टाचार्य ने बंगला में 'बंगाल गजट' शुरू किया। इससे बंगाल की पत्रकारिता दो धाराओं में बँट गई—ब्रिटिश धारा और भारतीय धारा। हरिश्चंद्र मुखोपाध्याय द्वारा संपादित 'द हिंदू पेट्रियट' ने अँग्रेज सरकार के अत्याचारों की गाथाएँ घर-घर पहुँचा दी, जिसके कारण पूरा देश भड़क उठा। जिस तरह हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में गणेश शंकर विद्यार्थी का नाम अमर है, उसी तरह बंगाल की पत्रकारिता में हरिश्चंद्र मुखोपाध्याय की कीर्ति आज भी है। उस काल में बंगाल में उनके नाम के गीत गाए जाते थे। 'द हिंदू पेट्रियट' की पत्रकारिता के जरिये उन्होंने जो बदलाव की बुनियाद रखी, वह अविस्मरणीय है। एक संवाददाता के रूप में 1853 में उन्होंने इस अखबार में नौकरी की थी, पर केवल दो वर्ष में वे अखबार के प्रधान संपादक बन गए और फिर मालिक भी। उसी दौर में 1857 का संग्राम हुआ, उन्होंने अपने अखबार में इसकी रिपोर्टिंग भी की। शिशिरकुमार घोष इसी पत्र में संवाददाता थे, जिन्होंने 20 फरवरी, 1868 को बंगला दैनिक 'अमृत बाजार पत्रिका' की शुरुआत की। जब वर्नाकुलर प्रेस एक्ट लागू हुआ तो घोष ने रातोंरात 'अमृत बाजार पत्रिका' को अँग्रेजी पत्र में परिवर्तित कर दिया, जो अँग्रेज सरकार के अहंकार को बड़ी चुनौती थी।

बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय की बंगला मासिक पत्रिका 'बंगदर्शन' ने भी राष्ट्रीय जागरण में बड़ी भूमिका निभाई। 'बंगदर्शन' की शुरुआत 1872 में हुई। बंकिम अप्रैल 1876 तक इसके संपादक रहे। इसकी अधिकांश रचनाएँ वे स्वयं लिखते थे। सुप्रसिद्ध 'वंदेमातरम्' गीत सबसे पहले इसी पत्रिका में छपा था, बाद में 'आनंद मठ' उपन्यास में आया। स्वामी विवेकानंद ने भी 1896 में 'प्रबुद्ध भारत' (अँग्रेजी) और 1899 में 'उद्बोधन' (बंगला) का प्रकाशन शुरू किया। ये पत्रिकाएँ आज भी जारी हैं। 'अमृत बाजार पत्रिका' के संपादक रहे सत्येंद्र मजूमदार के शिष्य विवेकानंद मुखर्जी ने बंगला दैनिक 'युगांतर' का संपादन किया। 'युगांतर' की निर्भीकता पर पूरा देश मुग्ध था। उसके संपादकीय लेखों में निर्भीकता के साथ अकाट्य तर्कपद्धति का अपूर्व संगम देखने को मिलता था। 1908 में इस पत्र की प्रसार संख्या 18,000 के लगभग थी (सेन, 1977)। 'युगांतर' से जुड़े भूपेंद्रनाथ दत्त काफी लोकप्रिय हुए। वे स्वामी विवेकानंद के छोटे भाई थे। इस पत्र में वारींद्र कुमार घोष, उपेंद्र बंदोपाध्याय, सखाराम गणेश देउस्कर जैसे कई सक्रिय क्रांतिकारी नियमित लिखते थे। दत्त को 1907 में एक साल की सजा हुई। इस पत्र ने 'पूर्ण स्वतंत्रता' का नारा दिया था। बंग-भंग आंदोलन (1905) के दौरान राष्ट्रीय विचार के जो पत्र और संपादक उभरे, उनमें 'संध्या' के संपादक ब्रह्मबांधव उपाध्याय का नाम प्रमुख है। 6 अगस्त, 1906 को शुरू हुए अँग्रेजी पत्र 'वंदेमातरम्' के संपादकों में बिपिन चंद्र पाल, श्यामसुंदर चक्रवर्ती और हेमेंद्र प्रसाद घोष जैसे लोग थे। श्री अरविंद के इसके संपादक बनते ही इसकी प्रसिद्धि में चार चाँद लग गए। इस पत्र का ध्येय वाक्य था 'इंडिया फॉर इंडियंस'। 1907 में 'युगांतर' के दमन के बाद 'वंदेमातरम्' और 'संध्या' पर भी प्रहार हुआ। उनके संपादक श्री अरविंद

केसरी

मराठा

बंगदर्शन

चाँद

और ब्रह्मबांधव उपाध्याय को गिरफ्तार किया गया। बाद में श्री अरविंद तो छूट गए, पर ब्रह्मबांधव नहीं छूट पाए। हवालात में ही उन्होंने एक दिन सबको बताकर प्राण त्याग दिए (गुप्त, 1977)।

सेन का समाचार सुधावर्षण

हिंदी का प्रथम दैनिक पत्र 'समाचार सुधावर्षण' 1854 में, यानी भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से तीन वर्ष पहले, श्याम सुंदर सेन द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित व संपादित किया गया था। यह हिंदी और बांग्ला में छपने वाला द्विभाषी पत्र था। जब 1857 का स्वतंत्रता संग्राम शुरू हुआ तो श्याम सुंदर सेन ने इस पत्र के माध्यम से अँग्रेजों के खिलाफ जबरदस्त मोर्चा खोला और निर्भीकतापूर्वक स्वतंत्रता संग्राम की खबरें छापीं। 'समाचार सुधावर्षण' ने बहादुरशाह जफर के उस संदेश को भी प्रकाशित किया था, जिसमें उन्होंने हिंदू-मुसलमानों से अपील की थी कि वे अपनी सबसे बड़ी नेमत आजादी के अपहर्ता अँग्रेजों को बलपूर्वक देश से बाहर निकालने का कर्तव्य निभाने के लिए कोई कसर न छोड़ें। परिणामस्वरूप अँग्रेज सरकार ने 17 जून, 1857 को सेन और 'समाचार सुधावर्षण' के खिलाफ देशद्रोह का आरोप लगाकर उन्हें अदालत में खींच लिया। इसके लिए पत्र के 26 मई, 5, 9 व 10 जून, 1857 के अंकों में छपी खबरों को आधार बनाया गया। हालाँकि सेन के समक्ष अभियोग से बरी होने का एक विकल्प था कि वे माफी माँग लेते, परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। अदालत में दी गई मजबूत दलीलों से वे यह साबित करने में सफल रहे कि उनके समाचार राजद्रोह की श्रेणी में नहीं आते। उन्होंने कहा कि 'देशद्रोही तो अँग्रेज हैं जो गैरकानूनी रूप से हमारे मुल्क पर काबिज हैं और उनके खिलाफ अपने सम्राट का संदेश छापकर 'समाचार सुधावर्षण' ने देशद्रोह नहीं किया, बल्कि देश के प्रति अपना कर्तव्य निभाया है' (सिंह, 2018)। भारत पर अँग्रेजों के कब्जे को उनकी ही अदालत में उन्हीं के चलाए मामले में गैरकानूनी करार देने वाली यह जीत तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता के हिस्से आई एक अहम जीत थी (सिंह, 2018)।

लोकराज वार्षिकी-1977 के अनुसार, 1826 से 1870 तक के 45 वर्षों में हिंदी भाषा में लगभग 50 पत्र प्रकाशित हुए, परंतु 1870 और 1900 के बीच करीब 400 पत्र निकले। 1826 से 1870 के बीच जो करीब 50 पत्र निकले, उनमें से 12 केवल आगरा से प्रकाशित हुए (चतुर्वेदी, 1977)। आगरा स्वतंत्रता संग्राम से पहले बहुत दिनों तक तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रदेश की राजधानी था। उस दौर में संपादक जेल जाते थे तो वहाँ भी वे चुप नहीं बैठते थे। 1921 में काशी जेल के अंदर बेचन शर्मा उग्र द्वारा हस्तलिखित पत्र 'कारागार' का संपादन किया गया। जेल में बंद पत्रकार ही उसके लिए खबरें जुटाते थे। इससे पता चलता है कि उस दौर में पत्रकारिता के क्षेत्र में कैसी हवाएँ चल रही थीं।

सेडीशन कमेटी रिपोर्ट

भारत में सशस्त्र क्रांति के कारणों का अध्ययन करने के लिए अँग्रेज सरकार ने जस्टिस सिडनी रौलेट की अध्यक्षता में 1917 में सेडीशन कमेटी का गठन किया, जिसकी रिपोर्ट 1918 में आई। उस रिपोर्ट में उन सभी पत्रों का विस्तार से उल्लेख है, जो उस समय भारत में सशस्त्र क्रांति की आवाज बुलंद कर रहे थे। उस रिपोर्ट में जिन मराठी पत्रों का उल्लेख है, उनमें 'केसरी', 'काल', 'बिहारी' और 'मराठा' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सशस्त्र क्रांति को बढ़ावा देने संबंधी अपने दावे की पुष्टि के लिए सेडीशन कमेटी ने उक्त समाचार पत्रों की जिस सामग्री का उल्लेख किया, वह गौर करने लायक है। सेडीशन कमेटी के अनुसार 15 जून, 1897 के 'केसरी' में तिलक ने लिखा, "हम सब मिलकर अँग्रेजी शासन के भार को उतार फेंकना चाहते हैं। हमारे मार्ग में रुकावट डालने वाले को समाप्त कर दिया जाएगा। फ्रांस के क्रांतिकारी जिन्हें मारते थे, उनकी हत्या होना नहीं, अपितु उन्हें मार्ग के काँटे हटाना कहते थे।" सेडीशन कमेटी का दावा है कि ऐसे ही लेखों के परिणामस्वरूप 22 जून, 1897 को जब प्लेग-कमिश्नर रैंड एक दूसरे अँग्रेज अफसर आर्यस्ट के साथ 'विस्टोरिया हीरक जयंती' उत्सव से लौट रहे थे तो चापेकर बंधुओं ने उन्हें गोलियों से भून दिया। जब इसके लिए चापेकर दामोदर पर मुकदमा चला तो उसने न केवल रैंड को मारना स्वीकार किया, बल्कि यह भी कहा कि विक्टोरिया का बुत भी उन्होंने ही तोड़ा। 'केसरी' के प्रभाव का जिक्र करते हुए सेडीशन कमेटी लिखती है कि सन 1898 से 1906 तक 'केसरी' की ग्राहक संख्या निरंतर बढ़ती रही और सन 1907 में उसकी बीस हजार प्रतियाँ प्रकाशित होती थी (देशराज, 1977)। 1908 में खुदीराम बोस की प्रशंसा में दो लेख लिखने के आरोप में लोकमान्य तिलक को भी निर्वासित कर म्यांमार की मांडले जेल भेजा गया।

सेडीशन कमेटी के अनुसार सशस्त्र क्रांति का समर्थन करने वाला दूसरा मराठी पत्र था 'काल', जिसने 1998 में लिखा, "भारत और रूस

हिंदू पंच

इंडियन सोशियोलॉजिस्ट

जामे जहाँ नुमा

बंदेमातरम्

में बम फेंकने के नतीजों में अंतर है। वहाँ रूसी बादशाह को भी समर्थन मिलता है, क्योंकि बादशाह भी रूसी है। यहाँ भारत में अँग्रेजों को समर्थन नहीं मिलेगा, इसलिए हमारा आंदोलन अवश्य सफल होगा।" 'काल' के संपादक शिवराव परांजपे को उन दिनों इस प्रकार के 'उत्तेजक' लेखों के प्रकाशन हेतु पाँच बार चेतावनी दी गई और बाद में 19 महीने जेल की सजा। सेडीशन कमेटी ने पूना से प्रकाशित 'बिहारी' का भी अपनी रिपोर्ट में जिक्र किया है, जिसके संपादकों को 1906 से 1908 तक प्रतिवर्ष जेल भेजा गया। सेडीशन कमेटी की रिपोर्ट में जिन बंगला पत्रों का उल्लेख है उनमें प्रमुख थे 'युगांतर', 'वंदेमातरम्', 'संध्या', 'नवशक्ति' और 'बंगाली'। इन पत्रों की सामग्री का जिक्र उपेंद्रनाथ ने 'निर्वासितेर आत्म-कहानी' में इस प्रकार किया है, "सन् 1906 की सर्दियों के दिन थे, किंतु इधर कुछ समय से 'संध्या' में खूब चटपटा मसाला भरा रहता था। अरविंद बाबू भी राष्ट्रीय शिक्षण हेतु अपनी बड़ौदे की नौकरी छोड़ आए थे। विपिन बाबू ने भी पुरानी काँग्रेस से नाता तोड़ लिया था। ऐसा मालूम होता था मानो सारा देश किसी नई चीज का इंतजार कर रहा है।" 'वंदेमातरम्' ने लिखा कि हम भारत के लिए ऐसा स्वराज्य चाहते हैं, जिसमें ब्रिटिश अंकुश न हो। उस समय ऐसा लिखना कम साहस की बात नहीं थी। उपेंद्रनाथ आगे लिखते हैं, "अखबारों में छपे ये शब्द मेरे कानों में गूँजते-गूँजते दिमाग में भी बस गए और रह-रह कर मेरा दिमाग कहने लगा, बैठे क्यों हो? उठो! अब तो उठ खड़े होने का समय आ गया।" अरविंद घोष के छोटे भाई वारींद्र घोष द्वारा प्रकाशित 'युगांतर' के बारे में तो चीफ जस्टिस ने 1908 में उसे बंद करने का आदेश जारी करते हुए कहा था, "इसकी हर एक पंक्ति से अँग्रेजों के विरुद्ध द्वेष टपकता है। प्रत्येक शब्द से क्रांति के लिए उत्तेजना झलकती है" (देशराज, 1977)।

हिंदू पंच और चाँद

मराठी और बंगला ही नहीं, हिंदी पत्रों के तेवर भी कम नहीं थे। 1905 के बंग-भंग आंदोलन के दौरान संपूर्ण देश में राष्ट्रीयता, आत्मविश्वास तथा बलिदान का जो सागर हिलोरे मार रहा था, उसमें पं. मदन मोहन मालवीय द्वारा आरंभ हिंदी पत्र 'अभ्युदय' और माधवराव सप्रे द्वारा संपादित 'हिंदी केसरी' का बड़ा योगदान था। 1908 में 'केसरी' में प्रकाशित दो लेखों के कारण जब तिलक पर बांबे हाईकोर्ट में राजद्रोह का मुकदमा चला तो उसी समय माधवराव सप्रे पर भी राजद्रोह का मुकदमा चला और 1909 में 'हिंदी केसरी' बंद हो गया। ठाणे से प्रकाशित मराठी 'हिंदू पंच' का हिंदी संस्करण 'हिंदी हिंदू पंच' 1908 में निकला। इसके कई अंकों को अँग्रेज सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया था। इसके संपादक काशी निवासी पं. गोविंद शास्त्री दुगवेकर थे। अनेक समाचार पत्रों के अंकों पर अँग्रेज सरकार द्वारा प्रतिबंध लगा दिया गया था। 1909 में पंडित सुंदरलाल ने इलाहाबाद से 'कर्मयोगी' का प्रकाशन किया, जो अत्यंत उग्र विचारों का पाक्षिक था। बाद में उसे साप्ताहिक कर दिया गया। 1907-08 में लाला हरदयाल की प्रेरणा से देश के अनेक हिस्सों से कई उग्र विचारों के पत्र आरंभ हुए। 1922 में इलाहाबाद से प्रकाशित 'चाँद' का संपादन रामरख सिंह सहगल, महादेवी वर्मा, नंद किशोर तिवारी और मुंशी नवजादिक लाल ने किया। इसका 'फाँसी' विशेषांक 1828 में प्रकाशित हुआ जो अनेक देशभक्तों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना। 'फाँसी अंक' के संपादक सुप्रसिद्ध साहित्यकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री थे। इस अंक में अमर हुतात्माओं पं. राम प्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त तथा शिव वर्मा के लेख भी छद्म नामों से प्रकाशित हुए थे। मासिक के सातवें वर्ष का यह पहला अंक था। अँग्रेज सरकार ने इस अंक का प्रकाशन होते ही इस पर रोक लगाकर पत्रिका के कार्यालय पर छापा मारा और वहाँ बची सारी प्रतियाँ जब्त कर लीं।

1913 में कानपुर से प्रकाशित गणेश शंकर विद्यार्थी का 'प्रताप' क्रांतिकारी आंदोलन का अगुआ था, जहाँ भगत सिंह जैसे क्रांतिकारियों ने भी पत्रकारिता की। 1920 में 'प्रताप' दैनिक हो गया। 1920 में डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने पटना से 'देश' साप्ताहिक का प्रकाशन किया। काँग्रेस समाजवादी पार्टी के 'संघर्ष' का भी जलवा कम नहीं था। इसके संपादक मंडल में आचार्य नरेंद्र देव, डॉ. संपूर्णानंद आदि बड़े नेता थे। 1942 में यह पत्र इसलिए बंद हो गया, क्योंकि इससे जुड़े सभी संपादक नजरबंद कर दिए गए। राजस्थान की रियासतों में स्वतंत्रता आंदोलन चलाने के आरोप में राज्य से निष्कासित विजयसिंह पथिक ने आगरा से 'संदेश' निकाला। अजमेर से उन्होंने 'नव संदेश' और 'राजस्थान संदेश' के नाम से पत्र निकाले। 'तरुण राजस्थान' नाम के एक हिंदी साप्ताहिक में वे 'राष्ट्रीय पथिक' नाम से लिखते थे। बाबूराव विष्णु पराड़कर ने 'आज' के 5 सितंबर, 1920 के अंक में तत्कालीन पत्रकारिता का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा था, "हमारा उद्देश्य अपने देश के लिए सर्व प्रकार से स्वातंत्र्य उपार्जन है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य है कि हम अपने देश के गौरव को बढावें, अपने देशवासियों में स्वाभिमान संचार

करें, उनको ऐसा बनाएं कि भारतीय होने का उन्हें अभिमान हो संकोच न हो। यह अभिमान स्वतंत्रता देवी की उपासना करने से मिलता है।" वास्तव में स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता ने इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु काम किया।

स्वतंत्रता आंदोलन की तेजस्वी पत्रिकाएँ

'उदंत मार्तंड' भले ही 4 दिसंबर, 1827 को बंद हो गया था, परंतु उसके संपादक युगल किशोर शुक्ल ने 1850 में फिर से एक पत्र 'सामयदंड मार्तंड' निकालने का साहस किया। हालाँकि वह भी अप्रैल 1852 तक ही प्रकाशित हो सका। 1861 में आगरा से गणेशीलाल का 'सूरज प्रकाश', शिवनारायण के संपादन में 'सर्वोपकारक', अजमेर से सोहनलाल के संपादन में 'प्रजाहित' निकला। भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रेरणा से 25 पत्र प्रकाशित हुए। अपने जीवन काल में उन्होंने पत्रकारों और साहित्यकारों का ऐसा समूह तैयार किया, जो उन्नीसवीं सदी के अंत तक पत्रकारिता में सक्रिय रहा। इस समूह में प्रमुख रूप से शामिल थे पं. प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', जगमोहन सिंह और बालकृष्ण भट्ट। हिंदी पत्रकारिता को जीवित करने, हिंदी भाषा की उन्नति के लिए इन पत्रकारों ने जी-तोड़ प्रयास किए। भारतेंदु युग की प्रमुख पत्रिकाएँ हैं 'कवि वचन सुधा', 'हरिश्चंद्र मैगजीन', 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'हिंदी प्रदीप', 'भारत मित्र', 'सार सुधानिधि' और 'उचित वक्ता'। 'उचित वक्ता' की शुरुआत दुर्गा प्रसाद मिश्र ने 1880 में कलकत्ता से की थी। 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1868 में किया। इस पत्र की नीति का दिग्दर्शन उसके मुखपृष्ठ पर छपने वाले निम्नलिखित सिद्धांत वाक्य से होता है :

"खल-गननसों सज्जन दुखी मति होहिं, हरिपद मति रहै।
अपधर्म छूटै, स्तत्व निज भारत गहै, करदुख बहै।
बुध तजहिं मत्सर, नारिनरसन होहिं, जग आनंद लहै।
तजि ग्रामकविता, सुकविजनकी अमृतबानी सब कहै।"

इसके माध्यम से 'स्वत्व निज भारत गहै, करदुख बहै, नारिनरसम होहिं' जैसे विचार प्रकट किए गए, जो उस समय क्रांत्रिकारी थे। 'हरिश्चंद्र मैगजीन' का प्रकाशन 1873 में हुआ। इसे एक ही वर्ष में 'हरिश्चंद्र पत्रिका' बना दिया गया। उसी समय पं. बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप' निकला। 1878 में कलकत्ता से 'भारत मित्र' पं. छोटूलाल मिश्र और दुर्गा प्रसाद मिश्र ने निकाला। इस पत्र ने हिंदी पत्रकारिता को ही ऊँचा नहीं उठाया, बल्कि हिंदी भाषा के संस्कार आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। स्वामी दयानंद सरस्वती और भारतेंदु के लेख भी इसमें छपते थे। इसके संपादकों में बाबु बालमुकुंद गुप्त, पं. लक्ष्मीनारायण गर्दे और अंबिका प्रसाद वाजपेयी शामिल थे। हिंदी पत्रकारिता को सही मायने में भाषा देने का काम भारतेंदु हरिश्चंद्र के अलावा किसी दूसरे व्यक्ति ने किया तो वे बालमुकुंद गुप्त थे। वर्ष 1900 में 'सरस्वती' का प्रकाशन शुरू हुआ। 1903 में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी इसके संपादक बने और उन्होंने नई भाषा शैली चलाई और व्याकरण सम्मत भाषा लिखने पर जोर दिया। 'सरस्वती' को बाद में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, पं देवीदत्त शुक्ल, देवीदयाल चतुर्वेदी और पं श्री नारायण चतुर्वेदी का भी संपादक के रूप में सहयोग मिला। 1907 में प्रयाग से प्रकाशित 'अभ्युदय' को मदनमोहन मालवीय के अलावा बाबु पुरुषोत्तम दास टंडन और पं. कृष्णकांत मालवीय ने भी संपादित किया। हिंदी साहित्य सम्मलेन की स्थापना में 'अभ्युदय' का विशेष योगदान था। 1907 में ही अंबिका प्रसाद वाजपेयी ने कलकाता से 'नृसिंह' मासिक निकाला। 1909 में 'इंदु' और 'मर्यादा' का प्रकाशन आरंभ हुआ। 'इंदु' का प्रकाशन काशी से जयशंकर प्रसाद ने किया, जिसके संपादक अंबिका प्रसाद गुप्त थे। 'मर्यादा' का प्रकाशन मदन मोहन मालवीय की प्रेरणा से प्रयाग से हुआ। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की परिकल्पना सबसे पहले 'मर्यादा' में ही प्रकाशित हुई थी। बाद में इसका संपादन डॉ. संपूर्णानंद ने भी किया। 1913 में खंडवा से 'प्रभा' नामक मासिक निकला, जिसका संपादन गणेश शंकर विद्यार्थी, श्रीकृष्णदत्त पालीवाल, पं. माखनलाल चतुर्वेदी और पं. बालकृष्ण शर्मा नवीन ने किया। 1920 में माखनलाल चतुर्वेदी ने जबलपुर से 'कर्मवीर' निकाला। अँग्रेज सरकार के कोप का सामना करते हुए इस पत्र ने राष्ट्र के तन-मन-प्राण में स्वतंत्रता की अखंड ज्योति प्रज्ज्वलित की (तिवारी, 1977)।

लाला लाजपत राय का पंजाबी

पं बनारसीदास चतुर्वेदी के संपादकत्व में कलकत्ता से 1928 में 'विशाल भारत' नामक हिंदी मासिक निकला। वे अपनी स्वतंत्र वृत्ति के लिए जाने जाते हैं। उनके जैसा शहीदों की स्मृति का पुरस्कर्ता हिंदी साहित्य में दिखाई नहीं देता। कहते हैं कि वे किसी भी नई सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक या राष्ट्रीय मुहिम से जुड़ने, नए काम में हाथ डालने या नई रचना में प्रवृत्त होने से पहले स्वयं से एक ही प्रश्न पूछते थे कि उससे देश, समाज, उसकी भाषाओं और साहित्य, विशेषकर हिंदी का कुछ भला होगा या मानव जीवन के किसी क्षेत्र में उच्चतर मूल्यों की प्रतिष्ठा होगी या नहीं? 'विशाल भारत' में भारत ही नहीं, प्रवासी भारतीयों की खबरें भी होती थीं। 'विशाल भारत' के प्रकाशक रामानंद चट्टोपाध्याय थे, जो कलकत्ता से ही प्रकाशित पत्रिका 'मॉडर्न रिव्यू' के संस्थापक, संपादक एवं मालिक भी थे। 'मार्डन रिव्यू' की गिनती अँग्रेजी के आधे दर्जन श्रेष्ठ पत्रों में की जाती थी। रामानंद बाबू की शैली तेजयुक्त, प्रवाहपूर्ण और निर्लिप्त थी। कई सुप्रसिद्ध अंतरराष्ट्रीय लेखक 'माडर्न रिव्यू' में लेख लिखने में अपना गौरव समझते थे। रामानंद बाबू ने ही सर्वप्रथ रवींद्रनाथ टैगोर को अँग्रेजी जगत् के सम्मुख प्रस्तुत किया। टैगोर की सबसे पहली अँग्रेजी रचना 'माडर्न रिव्यू' में ही प्रकाशित हुई।

पंजाब में लाला लाजपत राय ने 1904 में 'पंजाबी' साप्ताहिक की शुरुआत की। हालाँकि 2 फरवरी, 1881 को लाहौर में सरदार दयाल सिंह मजीठिया द्वारा स्थापित अँग्रेजी 'ट्रिब्यून' उस समय एक प्रमुख समाचार पत्र का स्थान हासिल कर चुका था, परंतु लाला लाजपत राय और उनके आर्य समाजी साथी 'ट्रिब्यून' की राष्ट्रीय विषयों पर नीति से खुश नहीं थे। वे एक ऐसा दृढ़ राष्ट्र नीतिधारक पत्र चाहते थे, जिससे स्वतंत्रता संग्राम संबंधी सामग्री संभ्रांत वर्ग तक पहुँचे। हालाँकि लाला लाजपत राय इसके अधिकारिक संपादक या व्यवस्थापक नहीं थे, पर हर कोई जानता था कि 'पंजाबी' के पीछे असली स्तंभ लाला लाजपत राय ही थे। खुद बाल गंगाधर तिलक द्वारा महाराष्ट्र के एक युवा श्री आठवले को इसका संपादक नियुक्त किया गया था। यह अखबार ज्यादा दिनों तक नहीं चल सका और इसके संपादक व प्रबंधक को हिरासत में ले लिया गया, पर इस पत्र ने तत्कालीन पंजाब के वातावरण को तूफानी रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वतंत्रता आंदोलन में उग्र राजनीतिक विचारों को धार देने में जिन तीन क्रांतिकारियों और उनके समाचार पत्रों की प्रमुख भूमिका थी, उनमें महाराष्ट्र में तिलक के 'केसरी', बंगाल में अरविंद के

'वंदेमातरम्' और पंजाब में लाला लाजपत राय के 'पंजाबी' का नाम आता है (चंद & राय, 1966)।

सुब्रह्मण्य भारती के प्रकाशन

दक्षिण भारत में सुब्रह्मण्य भारती ने अपने तमिल पत्र 'इंदिया' (इंडिया) में हिंदी सामग्री प्रकाशित कर तमिलभाषियों से हिंदी सीखने की अपील की। भारती ने 'इंदिया', 'विजया' और 'सूर्योदयम्' के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण हेतु अपनी लेखनी चलाई। अँग्रेजों ने भारती की लेखनी से खतरा महसूस कर उनकी पत्रकारिता पर प्रतिबंध लगाया और उनके सहयोगी की गिरफ्तारी की। अपनी बारी आने से पूर्व ही भारती पांडिच्चेरी पहुँच गए और वहीं से अपनी पत्रकारिता को और ओजस्वी बनाया। उनके इन साहसिक कदमों से विचलित अँग्रेजों ने फ्रांसीसियों से माँग की कि वे भारती के पत्रों पर रोक लगा दें। भारती की पत्रकारिता की विराटता, प्रतिबद्धता और निर्भीकता ने अँग्रेजों को हिला दिया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अँग्रेज शासन के विरुद्ध चेतना जगाने और आजादी की लड़ाई के लिए जन-गण-मन को प्रभावित करने में उन्होंने बड़ी भूमिका अदा की। 'सुदेश मित्रन' में कार्य करते हुए वे 'चक्रवर्तिनी' (स्त्री-पक्षधर तमिल मासिक) और 'इंदिया' (इंडिया-तमिल साप्ताहिक) के संपादन में भी सक्रिय थे। 'विजया' (तमिल दैनिक), 'सूर्योदयम' (साप्ताहिक) और 'बाल भारत' (अँग्रेजी मासिक) के संपादन में भी उनकी विशिष्ट भूमिका थी। लगभग एक दर्जन पत्र-पत्रिकाओं के साथ उनका प्रत्यक्ष संबंध रहा। उन्होंने अपने अखबारों में कार्टून चित्रों का प्रयोग करते हुए अँग्रेज शासन की नीतियों के विरुद्ध व्यापक जनमत तैयार करने का काम किया (रामचंद्र, 2012)। स्वतंत्रता संग्राम में अन्य तमिल पत्र-पत्रिकाओं की बात करें तो 1831 में प्रकाशित 'तमिल पत्रिका', 1857 में प्रकाशित 'दिनवर्तमानी' और 1892 में प्रकाशित 'विवेक चिंतामणि' का बड़ा योगदान है। 1917 में सुप्रसिद्ध तमिल उपन्यासकार माधवी द्वारा संपादित 'तमिल नेशन' ने बाल विवाह का विरोध और विधवा विवाह का समर्थन किया। 1920 में 'नवशक्ति' का प्रकाशन हुआ (शेष, 2021)। चेन्नई से प्रकाशित अँग्रेजी दैनिक 'द हिंदू' आज भले ही अलग धारा का पत्र हो, परंतु 20 सितंबर, 1878 को इसकी स्थापना सर टी. मुथुस्वामी अय्यर नाम के एक भारतीय विधिवेत्ता को मद्रास उच्च न्यायालय का न्यायाधीश बनाने के अभियान को बल प्रदान करने और उनके विरुद्ध तत्कालीन अँग्रेज समर्थक अँग्रेजी पत्रों के दुष्प्रचार का जबाव देने के लिए एक साप्ताहिक पत्र के रूप में की गई थी। इसके प्रथम संपादक सुब्रह्मण्य अय्यर थे। इसकी स्थापना छह लोगों (चार विधि के विद्यार्थी और दो शिक्षक) ने मिलकर की थी।

कन्नड़ पत्रकारिता

कर्नाटक में पत्रकारिता का इतिहास वैसे तो 1843 से शुरू होता है जब रेवरंड हर्मन मोंग्लिंग ने ईसाई मत का प्रचार करने के लिए मंगलुरु से 'मंगलुरू समाचार' का प्रकाशन आरंभ किया। इसके बाद 1 सितम्बर, 1849 को बेलगाम से 'सुबुद्धि प्रकाश' प्रकाशित हुआ, परन्तु यह ब्रिटिश शासन के समर्थन में अधिक समाचार प्रकाशित करता था। 1870 में बागलकोट के कलादगी ग्राम से 'हितेच्छु' पत्रिका प्रकाशित हुई, जिसने वास्तविक अर्थ में कन्नड़भाषियों की अपेक्षाओं को अभिव्यक्त करने के साथ राष्ट्रीय भावना को मुखरित करने का प्रयास किया।1880 से बेल्लारी से 'विजयध्वज' और 1887 में उडुपी से 'सुदर्शन' का प्रकाशन हुआ। इन पत्रिकाओं ने कन्नड़ भाषा के प्रसार के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना को मजबूत किया। 1885 में कन्नड़ का पहला दैनिक पत्र 'सूर्योदय प्रकाशिके' का प्रकाशन हुआ, परन्तु यह छह महीने बाद ही बंद हो गया। इसके बाद कन्नड़ मीडिया के भीष्म पितामह माने जाने वाले एम. वेंकटकृष्णय्य ने मैसूर से 'वृतांत चिंतामणि' साप्ताहिक शुरू किया। 1900 के आते-आते वी. श्रीनिवास अय्यंगार द्वारा सम्पादित 'देशाभिमान', कर्की वेंकटरमण शास्त्री द्वारा सम्पादित 'हितोपदेश', बीजापुर के मण्नूर गुंडेराय का 'कर्नाटक वैभव', धारवाड़ के विद्यावर्धक संघ का 'वाग्भूषण' शुरू हुए। 1900 में वीर बसप्पा द्वारा प्रकाशित 'मैसूर स्टार' साप्ताहिक ने पिछड़े वर्गों की प्रगति हेतु स्वर बुलंद किया। 1907 में मंगलूर से वी.एम. कामत ने 'स्वदेश स्वाभिमान' का प्रकाशन-संपादन किया। 1909 में तिलक के 'केसरी' को डॉ एन. एस. हर्डीकर ने 'कन्नड़ केसरी' नाम से प्रकाशित किया। उन्होंने 1910 में 'धनुर्धारी' का भी प्रकाशन किया। 1910-11 में एम. वेंकटकृष्णय्य ने साप्ताहिक 'साध्वी' का प्रकाशन किया। मुड्विडू कृष्णराय द्वारा प्रकाशित 'कर्नाटक वृत्त', एम. गुंडेराय द्वारा सम्पादित बीजापुर से 'कर्नाटक वैभव', वेंकट रंगोकटटी के 'कर्नाटक पत्र' ने बंग-भंग के खिलाफ आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गाँधीजी से प्रभावित होकर 1920 के बाद कर्नाटक में 'विश्वकर्नाटक', 'तायिनाडु', 'प्रजामत', 'जनवाणी', 'वीर केसरी', 'राष्ट्रबंधु', 'स्वराज्य', 'देशाभिमान', 'तिलक संदेश', 'सत्याग्रही' आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। रंगनाथ दिवाकर और माध्वराव कब्बूर और आर. एस. हुक्केरीकर ने मिलकर 1921 में 'कर्मवीर' साप्ताहिक का प्रकाशन किया। उसमें प्रकाशित कुछ लेखों के कारण रंगनाथ दिवाकर को चार वर्षों की कैद हुई, किंतु पत्रिका बंद नहीं हुई। गाँधीजी की आत्मकथा सबसे पहले 'कर्मवीर' के माध्यम से ही कन्नड़ में पहुंची। 1924 में जेल से 'संयुक्त कर्नाटक' का प्रकाशन शुरू हुआ। बाद में 1929 में यह पत्र नियमित बेल्लारी से प्रकाशित होने लगा। कुल मिलकर 'संयुक्त कर्नाटक' और 'कर्मवीर' राष्ट्रीय आन्दोलन के पर्याय बन गए थे (मंजनबैल, 2022)।

प्रवासी भारतीयों के प्रकाशन

स्वतंत्रता संग्राम में जितना योगदान भारत में प्रकाशित समाचार पत्रों का था, उतना ही प्रवासी भारतीयों द्वारा विदेशों से प्रकाशित पत्रों का भी था। प्रवासी स्वतंत्रता सेनानियों और संपादकों में प्रमुख रूप से श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला हरदयाल, मैडम भीकाजी कामा और महात्मा गांधी का नाम लिया जा सकता है, जिन्होंने विदेशी भूमि से अपनी मातृभूमि के लिए आजादी की लड़ाई लड़ी। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 1905 में लंदन से और बाद में पेरिस से 'द इंडियन सोशियोलोजिस्ट' के द्वारा ब्रिटिश शासन को चुनौती दी। 'इंडियन सोशियोलॉजिस्ट' की सामग्री से अँग्रेज उन दिनों इतने भयभीत थे कि 1907 में लंदन की संसद में इस पत्र के विरुद्ध कार्रवाई की माँग की गई, जिसके परिणामस्वरूप पत्र के मुद्रक और प्रबंधक को एक-एक साल की सजा हुई। लाला हरदयाल ने 1913 में अमेरिका से 'गदर' पत्रिका प्रकाशित कर क्रांतिकारियों में नया जोश भरा। मैडम भीकाजी कामा ने पेरिस से 'वंदेमातरम्' और 'तलवार' नामक पत्रों के माध्यम से राष्ट्रवादियों को आजादी के लिए प्रेरित किया। वहीं गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका से 1903 में 'इंडियन ओपिनियन' के द्वारा अँग्रेजों

के शोषण को उजागर किया। बहुत कम लोगों को मालूम है कि गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका से जो 'इंडियन ओपिनियन' प्रकाशित किया था उसके हिंदी खंड के संपादक भवानीदयाल सन्न्यासी थे। वे दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी के अत्यंत निकट सहयोगी थे। फिजी के भारतीयों की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने संघर्ष किया। वे अपने समय में दक्षिण अफ्रीका में बेहद सक्रिय, लोकप्रिय औक कर्मठ प्रवासियों में थे। उनके नाम पर फिजी की आर्य प्रतिनिधि सभा ने भवानीदयाल आर्य कॉलेज की स्थापना की। बिहार के एक गिरमिटिया मजदूर और अयोध्या से आरकाटी प्रथा के तहत ले जायी गयी एक महिला के पुत्र भवानी दयाल सन्न्यासी ने दक्षिण अफ्रीका में अप्रवासियों के साथ भारतीयों का एकीकरण करने के साथ ही उनका बौद्धिक और राजनीतिक नेतृत्व भी किया था। श्री सन्न्यासी दक्षिण अफ्रीकी देशों में रहनेवाले भारतीयों के सबसे विश्वसनीय और लोकप्रिय दूत थे। इन सबसे बड़ी पहचान उनकी हिंदी के अनन्य सेवक की रही। अपने समय में उन्होंने दक्षिण अफ्रीकी देशों में हिंदी के प्रचार में महती भूमिका निभायी। 1922 में सन्न्यासी ने नेटाल (दक्षिण अफ्रीका) से 'हिंदी' नाम से एक साप्ताहिक पत्रिका निकाली, जो अफ्रीका के अलग-अलग देशों में रहने वाले प्रवासी भारतीयों के बीच अत्यंत लोकप्रिय हुई।

निष्कर्ष

वर्ष 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति तक भारतीय भाषाई पत्रकारिता को जिन संपादकों ने अपने त्याग और समर्पण से पोषित किया, उनकी सूची अंतहीन है। उसे एक शोध पत्र में समेटना संभव नहीं है। प्रांत और जिला स्तर ही नहीं, दूरदराज के क्षेत्रों से भी समाचार पत्र और पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। बंगाल की भाँति लाहौर भी उस समय मीडिया का बहुत बड़ा केंद्र था। दक्षिण भारत से भी अँग्रेजी के अलावा वहाँ की स्थानीय भाषाओं में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। उनके प्रकाशन में शामिल बहुत से संपादकों और पत्रकारों को इतिहास के पन्नों में कहीं जगह नहीं मिली, परंतु उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। आज स्थिति यह है कि उत्तर भारत के संपादकों के बारे में दक्षिण भारत के पाठकों को अधिक नहीं मालूम और दक्षिण भारत के संपादकों के बारे में उत्तर भारत के पाठकों को नहीं मालूम। बेहतर होगा कि ऐसे संपादकों और पत्रकारों के योगदान का संकलन और प्रकाशन राज्य स्तर पर होना चाहिए। सामान्यत: जब स्वतंत्रता आंदोलनकालीन संपादकों की बात होती है तो राजा राममोहन राय, मदन मोहन मालवीय, बालगंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, सुभाष चंद्र बोस, बी.आर. अंबेडकर, गणेश शंकर विद्यार्थी, रवींद्रनाथ टैगोर, अरविंद घोष, लाला लाजपत राय, अंबिका प्रसाद वाजपेयी, पं. प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, भारतेंदु हरिश्चंद्र, बाबूराव विष्णु पराड़कर, लक्ष्मण नारायण गर्दे, बालमुकुंद गुप्त, श्यामजी कृष्ण वर्मा, आचार्य नरेंद्र देव आदि का नाम लेकर विषय समाप्त हो जाता है, परंतु भारतीय भाषाई पत्रकारिता में संपादकों की एक विशाल शृंखला है, जिन्होंने क्रांतिधर्मी पत्रकारिता के लिए अपना सर्वस्व अर्पित किया। आजादी का अमृत महोत्सव उनके योगदान का जिक्र किए बगैर पूरा नहीं हो सकता। वे संपादक कितनी चुनौतियों और अभावों में काम करते थे उनकी हम सिर्फ कल्पना कर सकते हैं। उनका एक पैर जेल में तो दूसरा पैर अखबार के दफ्तर में या संसाधन जुटाने में होता था। ऐसे संपादकों के योगदान का संकलन करने के लिए उच्च शिक्षा संस्थानों के शोधार्थियों और गैर सरकारी संस्थानों के नेताओं को पहल करनी चाहिए। इन संपादकों के बारे में पत्रकारिता की नई पीढ़ी को अवगत कराना आवश्यक है, ताकि उन्हें पता चल सके कि भारत में पत्रकारिता के क्या मूल्य रहे हैं और इन मूल्यों को गढ़ने में असंख्य संपादकों और पत्रकारों ने किस प्रकार अपना सर्वस्व समर्पण किया।

संदर्भ

खान, ए. (2013). उर्दू का सर्वप्रथम समाचार पत्र. नवभारत टाइम्स. https://readerblogs.navbharattimes.indiatimes.com/KASAUTI/%E0%A4%89%E0%A4%B0-%E0%A4%A6-%E0%A4%95-%E0%A4%AA-%E0%A4%B0%E0%A4%A5%E0%A4%AE-%E0%A4%B8%E0%A4%AE-%E0%A4%9A-%E0%A4%B0-%E0%A4%AA%E0%A4%A4-%E0%A4%B01/ से दिनांक 23 मई, 2022 को पुन:प्राप्त.

गुप्त, एम.एन. (1977). स्वतंत्रता के पहले पत्रकारिता का माहौल. नई दिल्ली : लोकराज वार्षिकी, पृष्ठ 49, 51

चतुर्वेदी, एस. (1977). हिदी पत्रकारिता : एक विहंगावलोकन. नई दिल्ली : लोकराज वार्षिकी, पृष्ठ 25-30.

चंद, एफ. & राय, एल.एल. (1966). सम एमिनेंट इंडियन एडीटर्स. नई दिल्ली : पब्लिकेशंस डिवीजन. पृ, 5.

तिवारी, ए. (2014). हिंदी पत्रकारिता का वृहद् इतिहास. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

तिवारी, आर. (1977). हिंदी की तेजस्वी पत्रिकाएँ. नई दिल्ली : लोकराज वार्षिकी, पृष्ठ 77-87.

दीक्षित, सी. (1977). स्वतंत्रता संग्राम में पत्रों का योगदान. नई दिल्ली : लोकराज वार्षिकी, पृष्ठ 64-65.

देशराज, टी. (1977). क्रांति-युग और स्वतंत्रता संग्राम के कुछ समाचार पत्र. नई दिल्ली : लोकराज वार्षिकी, पृष्ठ 60-61.

मंजनबैल, एस. (जनवरी-जून 2022). स्वतंत्रता आंदोलन में कन्नड़ पत्रकरिता का योगदान. भोपाल: मीडिया विमर्श, पृ.64-70.

रामचंद्र, जी. (2012). सी. सुब्रह्मण्य भरतियार– ए बायोग्राफिकल स्टडी (1882-1921). डिपार्टमेंट ऑफ इंडियन हिस्ट्री. मद्रास यूनिवर्सिटी.

राय, आर. (2022). सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का संदेश दिया मालवीय जी. आईआईएमसी शुक्रवार संवाद-2021-22. नई दिल्ली : भारतीय जन संचार संस्थान, पृ.188-189.

शेष, वी. (अक्टूबर-दिसम्बर, 2021). स्वतंत्रता आंदोलन में तमिल पत्र-पत्रिकाओं का योगदान. भोपाल: मीडिया विमर्श, पृ.35-41

सिंह, के.पी. (2018). आज की हिंदी पत्रकारिता को याद भी नहीं कि वह प्रतिरोध की शानदार परंपरा की वारिस है. https://thewirehindi.com/44965/hindi-journalism-udant-martand-samachar-sudha-varshan/ से दिनांक 10 मई, 2022 को पुन:प्राप्त.

सेन, एस. (1977). बंगला पत्रकारिता. नई दिल्ली : लोकराज वार्षिकी, पृष्ठ 35-37.

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 15-20, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

सुब्रह्मण्य भारती की पत्रकारिता का स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान

डॉ. सी. जय शंकर बाबु[1]

सारांश

'राष्ट्रकवि' की उपाधि से ख्यात सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921) राष्ट्रीय भावनाओं से प्रेरित ओजस्वी कवि होने के साथ-साथ क्रांतिदर्शी पत्रकार थे। स्वतंत्रता संग्राम के लिए समर्पित क्रांतिधारा के पत्रकारों में तमिलभाषी भारती अग्रगण्य हैं, जिन्होंने तमिल और अँग्रेजी में पत्रकारिता की। अपने तमिल पत्र 'इंदिया' (इंडिया) में उन्होंने हिंदी की सामग्री छापी थी और तमिलभाषियों से हिंदी सीखने की अपील की। राष्ट्र की स्वाधीनता में राष्ट्रभाषा हिंदी की भूमिका के आलोक में भारती ने जो पहल की, वही दक्षिण में हिंदी पत्रकारिता की नींव थी। भारती की सद्भावना के बाद 1921 में ही दक्षिण भारत में हिंदी पत्रकारिता का आरंभ हुआ। दुर्भाग्यवश, उसी वर्ष भारती स्वर्ग सिधार गए। भारती ने 'इंदिया', 'विजया' आदि पत्रों के माध्यम से अँग्रेज शासन से भारतमाता की मुक्ति के लिए अपनी लेखनी चलाई। अँग्रेजों ने भारती की वाणी से खतरा महसूस कर उनकी पत्रकारिता पर प्रतिबंध लगाया और उनके सहयोगी की गिरफ्तारी की। अपनी बारी आने से पूर्व ही भारती पांडिच्चेरी पहुँच गए और वहीं से अपनी पत्रकारिता को और ओजस्वी बना दिया। उनके इन साहसिक कदमों से विचलित अँग्रेजों ने आखिर फ्रांसीसियों से माँग की कि वे भारती के पत्रों पर रोक लगा दें। भारती की पत्रकारिता की विराटता, प्रतिबद्धता और निर्भीकता ने अँग्रेजों को हिला दिया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अँग्रेज शासन के विरुद्ध चेतना जगाने और आजादी की लड़ाई के लिए जन-गण-मन को प्रभावित करने में उन्होंने बड़ी भूमिका अदा की। स्वतंत्रता मिलने से 26 वर्ष पूर्व अल्पायु में ही एक दुर्घटनावश भले ही उनका देहावसान हो गया, मगर स्वतंत्रता की चेतना के प्रबल स्वर के रूप में उनकी वाणी, लेखनी और पत्रकारिता प्रासंगिक रही है। स्वतंत्रता आंदोलन के क्रम में भारती की पत्रकारिता की प्रासंगिकता और उनके विचारों के मूल्यांकन का बड़ा महत्व है। प्रस्तुत शोध आलेख के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि राष्ट्रकवि भारती की पत्रकारिता का स्वतंत्रता आंदोलन में क्या योगदान रहा है? इस संदर्भ में उनके द्वारा संपादित पत्र-पत्रिकाओं के अंकों का विश्लेषण किया गया है और उनके विचारों का इस दृष्टि से मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है कि संचार के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पहलुओं के अनुरूप भारती ने उनका प्रयोग कैसे किया है? संचार को प्रबल अस्त्र के रूप में प्रयोग करने में भारती की सफलता का आकलन प्रस्तुत शोध-आलेख का मुख्य उद्देश्य है। मुख्यतः विश्लेषणात्मक प्रविधि का प्रयोग करते हुए उनकी 'इंदिया' पत्रिका के कुछ अंकों की सामग्री तथा संपादकीय वाणी का विश्लेषण किया गया है। महाकवि भारती के कृतित्व के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद की समझ विकसित करने में यह अध्ययन सहायक सिद्ध होगा। साथ ही यह भी समझना आसान होगा कि भारती के क्रांतिकारी विचार किस रूप में अँग्रेज शासन के विरुद्ध सिंहनाद बन गए थे।

संकेत शब्द : सुब्रह्मण्य भारती, राष्ट्रीय भावना, इंदिया, विजया, तमिल पत्रकारिता, स्वतंत्रता आंदोलन

प्रस्तावना

चिन्नस्वामी सुब्रह्मण्य भारती (1882-1921) राष्ट्रीय भावनाओं से लेखनी चलाने वाले एक समर्पित एवं क्रांतिदर्शी पत्रकार थे। स्वतंत्रता आंदोलन के लिए समर्पित क्रांतिधारा के गणमान्य नेताओं में वे भी एक थे। विदेशी शासन से भारतमाता की मुक्ति के लिए उन्होंने अपनी लेखनी चलाई (रामचंद्र, 2012)। राष्ट्रभक्ति की चेतना, अनन्य साहस और उग्रता उनके स्वर की विशिष्टता थी। कई प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं के संपादन में उन्होंने सक्रिय भूमिका निभाई। तमिल के पहले समाचार पत्र 'सुदेश मित्रन' (स्वदेश मित्र) में उप-संपादक के रूप में उन्होंने अपना पत्रकार जीवन नवंबर 1904 में आरंभ किया (रामचंद्र, 2012)। पहले से ही एक कवि के रूप में वे राष्ट्रीय भावनाओं को वाणी दे रहे थे। 'सुदेश मित्रन' में कार्य करते हुए वे 'चक्रवर्तिनी' (स्त्री-पक्षधर तमिल मासिक) और 'इंदिया' (इंडिया-तमिल साप्ताहिक) के संपादन में भी सक्रिय थे। 'विजया' (तमिल दैनिक), 'सूर्योदयम्' (साप्ताहिक) और 'बाल भारत' (अँग्रेजी मासिक) के संपादन में भी उनकी विशिष्ट भूमिका थी (रामचंद्र, 2012)। लगभग एक दर्जन पत्र-पत्रिकाओं के साथ उनका प्रत्यक्ष संबंध रहा। उन पत्र-पत्रिकाओं के संचालन, संपादन, संयोजन, सहयोग में उन्होंने कई साहसपूर्ण कदमों के साथ सक्रिय भूमिका निभाई थी (रामचंद्र, 2012)। उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अपने लेखन के माध्यम से क्रांतिकारी भावनाएँ फैलाईं। औपनिवेशिक शासकों को अँग्रेजी के अखबारों की तुलना में क्षेत्रीय भाषाओं के अखबारों से ज्यादा डर था। इसी वजह से भारतीय भाषाई अखबारों पर रोक लगाने के उद्देश्य से विभिन्न कानून (देशी प्रेस अधिनियम, 1878) बनाएँ। यह कानून भले ही 1881 में निरस्त हो गया, परंतु इसकी बुरी नजरें दूसरे स्वरूपों में बनी रहीं। भारती के संपादकत्व में प्रकाशित तमिल समाचार पत्र 'इंदिया' और 'चक्रवर्तिनी' को भी प्रतिबंध और संपादकों की गिरफ्तारी की विडंबनाएँ झेलनी पड़ी थीं। पत्रकारिता की मुख्यतः तीन भूमिकाओं की बात होती है–संचेतना, शिक्षा और मनोरंजन। ये तीनों भूमिकाएँ भारती द्वारा संपादित पत्र-पत्रिकाओं ने निभाईं। राष्ट्रीयता की संचेतना और अँग्रेजों के विरुद्ध लड़ने की शिक्षा देने के साथ-साथ गंभीर विषयों को भी हास्य-व्यंग्यात्मक चित्रों के माध्यम से भारती ने प्रस्तुत किया।

इंदिया

महाकवि भारती के संपादन में 'इंदिया' (इंडिया) साप्ताहिक समाचार

[1]अध्यक्ष (प्र.), हिंदी विभाग, पांडिचेरी विश्वविद्यालय, पुदुच्चेरी. ईमेल : professorbabuji1@gmail.com

सुब्रह्मण्य भारती द्वारा संपादित 'इंदिया' तमिल साप्ताहिक

पत्र का प्रकाशन 9 मई, 1906 को मद्रास में आरंभ हुआ था। मंड्यम भाइयों के नाम से ख्यात तिरुमलाचारी और श्रीनिवासाचारी द्वारा इस पत्र का प्रकाशन किया गया था। तिलक के विचारों के प्रसार के लिए भारती ने इस पत्र का भरपूर प्रयोग किया। ऐसी सुविधा उन्हें दैनिक 'सुदेश मित्रन' में नहीं मिल रही थी (रामचंद्र, 2012)। चूँकि अँग्रेजों के विरुद्ध कई बातों पर उन्हें लिखना पड़ता था, वे अपने नाम के अलावा कई उपनामों से भी लिखते थे–वेदांति, शेल्लीदासन, शक्तिदासन, देशभक्तन आदि (रामचंद्र, 2012)। 'इंदिया' में प्रकाशित भारती के विचारों का विश्लेषण करने पर कई बातें सामने आती हैं। 'इंदिया' के 17 नवंबर, 1906 के अंक में दादाभाई नौरोजी की राजनीति पर केंद्रित आलेख, दिनांक 14 जुलाई 1906 के अंक में तिलक के राष्ट्रीय विचारों पर केंद्रित आलेख, दिनांक 11 अगस्त, 1906 के अंक में तूत्तुकुडी में स्वदेशी आंदोलन पर केंद्रित उनके आलेख प्रकाशित हुए थे (रामचंद्र, 2012)। तूत्तुकुडी में जी. सुब्रह्मण्य अय्यर की अध्यक्षता में संपन्न स्वदेशी सम्मेलन में स्वदेशी स्टीम नॉविगेशन कंपनी शुरू करने के संबंध में निर्णय हुआ था। वी.ओ. चिदंबरम द्वारा इस कंपनी की स्थापना भारतीय नावों के संचालन के लिए जन सहयोग से स्थापित करने का आशय था। काँग्रेस पार्टी का पुरानी और नई पार्टी के रूप में विभाजन होने की आलोचना 27 अक्तूबर, 1906 के अंक में देखी जा सकती है। दिनांक 24 अगस्त, 1906 के अंक में भगिनी निवेदिता पर केंद्रित आलेख प्रकाशित किया गया था (रामचंद्र, 2012)। स्त्रीवादी चेतना पर प्राप्त मार्गदर्शन के लिए वे भगिनी निवेदिता को अपना गुरु मानते थे। निवेदिता के अस्वस्थ होने पर उन्होंने पाठकों व अपने सभी साथी नागरिकों से अनुरोध किया था कि उनके सुदीर्घ स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करें, ताकि वे भारतीय जनता में राष्ट्रीय चेतना फूँकती रहें। तिलक के विचारों के अनुसार छत्रपति शिवाजी के जन्मदिवस को 'शिष्टता दिवस' के रूप में मनाने के संबंध में 17 नवंबर, 1906 तथा 8 दिसंबर, 1907 के अंकों में उन्होंने विचार प्रकट किए। शिवाजी की चेतना को अपनाने का आह्वान कर उन्होंने लोगों में यह जोश भरने की कोशिश की कि देश से विदेशी शासक रूपी शत्रु को जितनी जल्दी हो, भगाना चाहिए। उन्होंने यूरोपीय श्रेष्ठता का खंडन करते हुए एशिया की श्रेष्ठता को सिद्ध किया था (रामचंद्र, 2012)।

पत्र-पत्रिकाओं में ब्रिटिश विरोधी विचारों के प्रकाशन पर प्रतिबंध के लिए ब्रिटिश सरकार ने न्यूज़पेपर्स (इनसाईटमेंट टू ओफेंस) एक्ट, मार्च 1908 पारित किया था। इसके तहत 'सुदेश मित्रन' में अँग्रेजों की आलोचना पर प्रकाशित सामग्री की वजह से जी. सुब्रह्मण्य अय्यर को जेल जाना पड़ा था (रामचंद्र, 2012)। इस कानून के तहत 'इंदिया' के प्रबंधन और संपादक पर भी खतरे के बादल मँडराने लगे थे। इसकी परवाह किए बिना भारती ने अपनी धारदार कलम चलाई थी। दिनांक 2 नवंबर, 1907 को 'इंदिया' में प्रकाशित आलेखों को ब्रिटिश शासक हजम नहीं कर पाए। उस अँग्रेजी विरोधी सामग्री में मुख्यतः तीन बातें थीं –1. सरकार को अँग्रेज का सुझाव (भारती ने स्वयं को एक अँग्रेज के रूप में प्रस्तुत करते हुए अपने लेख के माध्यम से अँग्रेजों को उनके हित में सुझाव दिया था कि तिलक की स्वराज की लड़ाई में साथ देने वाले भारतवासियों के सपनों को साकार करने के लिए वे भारत छोड़कर चले जाएँ।) 2. अँग्रेजों द्वारा भारत को पहुँचाए जा रहे नुकसान, 3. स्वशासन। इन तीन विषयों पर केंद्रित आलेखों से खतरा महसूस करने की वजह से 21 अगस्त, 1908 को प्रकाशक श्रीनिवास अय्यंगार को गिरफ्तार कर लिया गया। अगली बारी भारती की ही थी। अतः गिरफ्तारी से बचकर अँग्रेजों के विरुद्ध अपनी लड़ाई जारी रखने के उद्देश्य से वे पांडिच्चेरी पहुँच गए, जो फ्रांसीसियों के अधीन वाला प्रांत था। उनके साथ 'इंदिया' के दूसरे प्रकाशक एस.पी. तिरुमलाचारी भी थे। भारती ने पांडिच्चेरी से 'इंदिया' के प्रकाशन का विचार किया। 10 अक्तूबर, 1908 से 'इंदिया' पांडिच्चेरी से निकलने लगा (रामचंद्र, 2012)। पांडिच्चेरी से 'इंदिया' का संपादन करते हुए भारती ने इस पत्र के लिए फ्रांसीसी क्रांति के आदर्शों को अपनाया था–समानता, स्वतंत्रता और भाईचारा। दिनांक 7 नवंबर, 1908 के अंक में तमिल की प्रतिष्ठा को बचाने की अपील करते हुए उन्होंने लिखा कि अँग्रेजी फैलाने की अँग्रेजों की महत्वाकांक्षा को सफल न होने दें। अँग्रेजों की कूटनीतिक चालों से थोपी गई गुलामी अँग्रेजी के माध्यम से कायम रह जाने की आशंका रहेगी। वैसे भारती एक दर्जन से अधिक भाषाओं के ज्ञाता थे। अपनी मातृभाषा तमिल के अलावा वे संस्कृत, हिंदी, तेलुगु, कन्नड़ आदि कई भारतीय भाषाएँ तथा तीन विदेशी भाषाएँ भी जानते थे। भारतीय भाषाओं के हित में सोचकर वे अँग्रेजी का विरोध करते थे। अँग्रेजों को उनकी अपनी भाषा में धमकी देने की दृष्टि से राष्ट्रभक्त भारती अँग्रेजी में भी लिखते थे। इसी संदर्भ में तमिल भाषा तथा साहित्य के लिए यू.वी. स्वामिनाथ अय्यर के प्रयासों की उन्होंने प्रशंसा की। उसी अंक में भारत में अँग्रेज शासन की स्वर्ण जयंती मनाने का भी उन्होंने विरोध किया था। मद्रास के गवर्नर की भी उन्होंने आलोचना की। मार्ले सुधारों का भारतीयों के लिए कोई महत्व नहीं होने की बात कहकर नवबंर-दिसंबर 1908 के अंक में उन्होंने व्यंग्यात्मक आलोचना की थी।

इस तथ्य से बहुत कम लोग परिचित हैं कि महाकवि भारती को दक्षिण भारत में हिंदी पत्रकारिता के जनक के रूप में भी माना जा सकता है (बाबु, 2002)। उन्होंने अपने साप्ताहिक पत्र 'इंदिया' के 1907 के अंकों में तमिलभाषियों से अपील की थी कि वे राष्ट्रीयता के हित में हिंदी सीखें। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उन्होंने 'इंदिया' में हिंदी की सामग्री प्रकाशित करने के लिए कुछ पृष्ठ आवंटित किए थे। अँग्रेजों को भारत से भगाने के लिए हर किसी प्रासंगिक मुद्दे पर भारती अपनी कलम चलाते थे। उनके संपादन-संयोजन में प्रकाशित कार्टूनों से अनपढ़ भी उनके तीव्र विचारों से अवगत हो जाते थे। राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए स्वावलंबन और स्वदेशी भावनाओं को विकसित करने के लिए वे सदा तत्पर थे। जब वी.ओ. चिदंबरम द्वारा शुरू किए गए स्वदेशी नॉविगेशन कंपनी को अँग्रेजों ने दिवालिया घोषित किया, और वी.ओ. चिदंबरम और सुब्रमणिय शिवा को गिरफ्तार किया तो उनकी मदद के लिए और उस संस्था को बचाने के लिए स्वयं दान देते हुए सभी से मदद की अपील की। इस घटना पर उन्होंने 'इंदिया' के एक अंक के आवरण पृष्ठ पर कार्टून भी प्रकाशित किया। 'इंदिया' में इस प्रयास में मदद करने वालों की सूची उन्होंने प्रकाशित की थी। इनमें छोटी-सी मदद को भी बड़ी मदद के रूप में मानते हुए हर किसी को वे प्रोत्साहित, प्रेरित करते रहे।

इस बीच ब्रिटिश सरकार ने 8 फरवरी, 1910 से प्रभावी प्रेस विधेयक को पारित किया। इस विधेयक के आलोक में ब्रिटिश अधिकारियों ने फ्रांसीसी सरकार से अनुरोध किया कि अँग्रेजों के विरुद्ध भावनाएँ फैलाने वाले 'इंदिया' तथा अन्य अखबारों पर रोक लगा दें। 'इंदिया' के फरवरी 1910 के अंक में अँग्रेजों के विरुद्ध चार लेखों का प्रकाशन हुआ। 12 फरवरी, 1910 के अंक में प्रेस की आजादी पर रोक लगाने के लिए अँग्रेजों द्वारा दो साल की अवधि के भीतर दो प्रेस कानून पारित करने की कड़ी आलोचना की थी। अभिव्यक्ति की आजादी पर प्रतिबंध लगाने की बात पर भारती ने भरपूर आक्रोश प्रकट किया था। उन्होंने अँग्रेजों की इन चालों की तुलना लार्ड लिट्टन के 1878 के कानून के साथ की थी, जिसे भारतीय राष्ट्रीयता के विरुद्ध पारित किया गया था। उन्होंने अँग्रेजों को सुझाव दिया था कि वे भारतीयों को यातनाएँ देना बंद कर दें, तभी क्रांतिकारी गतिविधियाँ रुक सकती हैं। स्वतंत्रता पर गहन विश्वास के साथ भारती अपनी लेखनी चलाते थे। भारती के संपादन में प्रकाशित 'इंदिया' तथा 'सूर्योदयम' पर 12 मार्च, 1910 को रोक लग गई। उस प्रतिबंध को हटाने के लिए मालिक लक्ष्मण अय्यर के माध्यम से उन्होंने अँग्रेजों के पास कई अपील भेजीं, परंतु कोई जवाब नहीं मिलने पर बिना अनुमति के 2 जुलाई, 1910 से पुनः प्रकाशन शुरू कर दिया। राष्ट्रभक्त पत्रकार भारती की लेखनी से भयभीत सरकार ने अक्तूबर 1910 को पुनः प्रतिबंध लगा दिया (बाबु, 2021)।

विजया

'विजया' पत्र का प्रकाशन मद्रास से आरंभ हुआ था, जिसमें अक्सर सुब्रह्मण्य भारती के लेख प्रकाशित होते थे। अँग्रेजों द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों की वजह से इस पत्र के स्वामी ने 15 मई, 1909 को इसका प्रकाशन बंद करके इसे पांडिच्चेरी स्थानांतरित कर दिया और वहाँ से सुब्रह्मण्य भारती के संपादन में 15 सितंबर, 1909 से प्रकाशन आरंभ कर दिया (रामचंद्र, 2012)। तमिल सांध्य दैनिक के रूप में यह पत्र सितंबर, 1909 से अगस्त, 1910 तक प्रकाशित होता रहा। रविवार और छुट्टियों के

सुब्रह्मण्य भारती द्वारा संपादित तमिल दैनिक 'विजया'

दिनों में इस अखबार के अंक नहीं निकलते थे। पांडिच्चेरी से कुल 160 अंकों का प्रकाशन हुआ था। फ्रांसीसी क्रांति के आदर्श स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा को इस पत्र के आदर्शों के रूप अपनाया गया था, जिन्हें अखबार के आवरण पृष्ठ पर प्रकाशित किया जाता था। सामाजिक-राजनीतिक व राष्ट्रीय महत्व के कई मुद्दों पर भारती ने संपादकीय लिखे, जिनमें उनके विचारों की उदात्तता, प्रखरता और राष्ट्रीय भावनाएँ स्पष्टतः उजागर होती हैं।

सूर्योदयम्

'सूरियोदयम' (सूर्योदयम्) तमिल साप्ताहिक का प्रकाशन चेन्नै से शुरू हुआ था। सुब्रह्मण्य भारती ने इसका संपादन किया था। इस पत्र का प्रकाशन 5 जुलाई, 1908 को बंद हुआ और दिनांक 21 मार्च, 1909 से पांडिच्चेरी से आरंभ हुआ (रामचंद्र, 2012)। इस पत्र के 20 फरवरी, 1910 के अंक के आवरण पृष्ठ पर प्रेस की आजादी पर अंकुश लगाने के विरोध में एक चित्र छपा था। चित्र में प्रेस की आजादी के मृतदेह, जिसे ब्रिटिश अधिकारी ढो रहे हैं और गोखले उस शवयात्रा का नेतृत्व कर रहे हैं अपने हाथों में अग्निपात्र के साथ।

माँ कहती है, "यह अधिकार अधिकारियों द्वारा दिया गया था, जिसे उन्होंने वापस ले लिया। मेरे पास अफसोस करने के लिए कुछ नहीं है। इसमें मेरा कोई नुकसान नहीं है।" प्रेस की आजादी पर प्रतिबंध लगने से 1910 में ही इस पत्र का भी अंत हो गया।

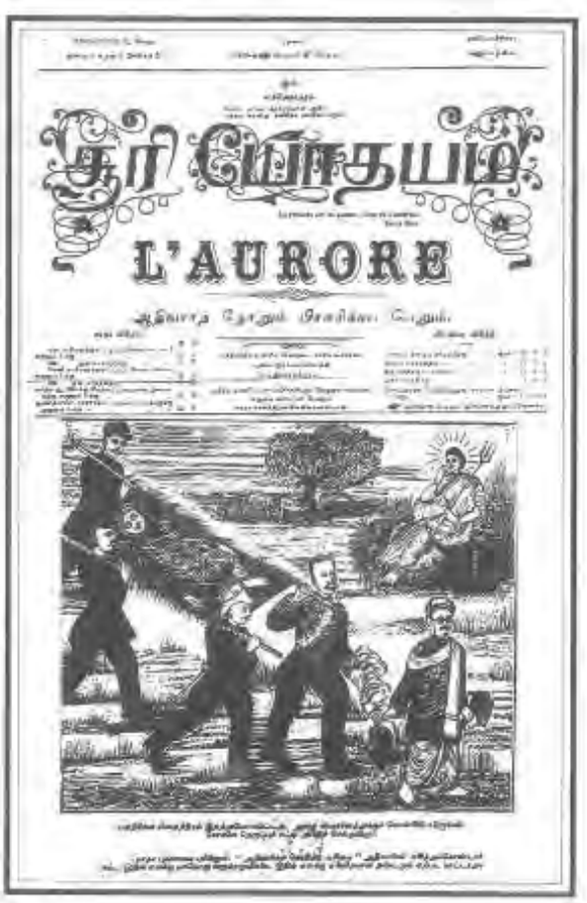

तमिल साप्ताहिक 'सूर्योदयम'

सुब्रह्मण्य भारती की कार्टून पत्रकारिता

तमिल पत्रकारिता के इतिहास में कार्टून पत्रकारिता के जनक के रूप में सुब्रह्मण्य भारती को माना जा सकता है, जिन्होंने सबसे पहले अपने 'इंदिया' अखबार के माध्यम से कार्टूनों का प्रकाशन आरंभ किया। 'इंदिया' के लगभग हर अंक के आवरण पृष्ठ पर कार्टून होते थे। सुब्रह्मण्य भारती को तमिल राजनीतिक कार्टून पत्रकारिता के जनक के रूप में भी माना जा सकता है, क्योंकि उनके तमाम कार्टून तत्कालीन राजनीति पर केंद्रित थे। भारती ने 'इंदिया' के अलावा 'सूर्योदयम्' और 'विजया' अखबारों के मुख्यपृष्ठों पर भी कार्टून चित्रों का प्रकाशन किया (बाबु, 2021)। निश्चय ही इन तमाम कार्टूनों का एक स्वतंत्र अध्ययन किया जा सकता है। भारती द्वारा प्रकाशित कुछ कार्टूनों का विश्लेषण आगे प्रस्तुत है :

जिस समय महाकवि भारती अखबार चलाते थे, उस समय समाचार पत्र जनसंचार के प्रबल माध्यम थे। शिक्षा, सूचना, चेतना के प्रबल अस्त्र के रूप में अपने अखबारों के कार्टून चित्रों का प्रयोग अँग्रेजों के शासन व उनकी नीतियों के विरुद्ध जनमत तैयार करने के लिए उन्होंने किया था। पत्रकारिता की एक सफल तकनीक है कार्टून पत्रकारिता, जिसके माध्यम से कम शब्दों में कई बातें रसात्मक तरीके से चित्रों, रेखा-चित्रों का प्रयोग करके की जा सकती हैं। कार्टूनों के संबंध में ओहियो स्टेट विश्वविद्यालय की राय है : "किसी भी अखबार के संपादकीय कार्टून उसके निर्माता के विचारों की ग्राफिक अभिव्यक्ति होते हैं। संपादकीय कार्टून आमतौर पर प्रकाशक के दृष्टिकोण को दर्शाते हैं। संपादकीय कार्टून समसामयिक घटनाओं पर आधारित होते हैं। संपादकीय कार्टून, जैसे लिखित संपादकीय का एक शैक्षिक उद्देश्य होता है। उसका उद्देश्य पाठकों को वर्तमान राजनीतिक मुद्दों के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करना है। संपादकीय कार्टून को कभी-कभी राजनीतिक कार्टून के रूप में संदर्भित किया जाता है, क्योंकि वे अक्सर राजनीतिक मुद्दों से निपटते हैं। एक अच्छा संपादकीय कार्टून एक पहचानने योग्य दृष्टिकोण या राय व्यक्त करता है। सबसे अच्छे उदाहरणों में, केवल शब्दों को देखकर या केवल चित्र को देखकर कार्टून को पढ़ा या समझा नहीं जा सकता है। कार्टूनिस्ट के संदेश को समझने के लिए शब्दों और चित्रों दोनों को एक साथ पढ़ना चाहिए। संपादकीय कार्टून हमें यह दिखाते हुए इतिहास में एक वातायन प्रदान करते हैं कि लोग एक निश्चित समय और स्थान पर क्या सोच रहे थे और किस बारे में बात कर रहे थे"। (https://hti.osu.edu) (अँग्रेजी में प्रस्तुत सामग्री का हिंदी भावानुवाद)।

उक्त दृष्टि से और तत्कालीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में महाकवि भारती की पत्रकारिता में कार्टूनों का संक्षेप में विश्लेषण निम्न है :

'इंदिया' के 16-3-1907 अंक के पृष्ठ सं.2 पर 'The Barking Dogs and The Rising Sun' के शीर्षक से प्रकाशित कार्टून (http://www.mahakavibharathiyar.info/b_katturaigal/bharati_matha.html)

"इस बार हमारी पत्रिका में, प्रकाशन की तस्वीर समुद्र की लहर और उसके ऊपर उगते सूरज की तरह दिखती है। कई लोग इस सूर्य के सामने खड़े होकर पूजा कर रहे हैं। यह सूर्य जो दर्शाता है वह 'आधुनिक विद्रोह' है जो अब भारत में बढ़ रहा है। भारत कई सदियों से गरीबी, बीमारी, अज्ञानता, गुलामी और कायरता से त्रस्त रहा है। एक नया विद्रोह पैदा हो गया है, सूर्य के साथ आधुनिक जुनून, जो जानने के योग्य है और जिसमें शाश्वत चमक है, ताकि रात फिर से न हो। इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि यह गति प्राप्त कर रहा है और दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहेगा। इस सूर्य के सामने कौन पूजा कर रहे हैं? वे भारतीयों के सभी वर्गों जैसे मुस्लिम, हिंदू, पारसी, ईसाई आदि से संबंधित हैं। वे इस नए विद्रोह की पूजा कर रहे हैं। इस विद्रोह को देखते ही उनका हृदय उस कमल के समान खिल उठा, जिसने सूर्य को देखा था।

"आओ! स्वतंत्र रवि, हम आपकी पूजा करते हैं। आप हमारी दयनीय गरीबी को बर्फ की तरह दूर करेंगे। हमारा देश अब भूखा नहीं रहेगा। हमारे पास हर तरह की बुद्धि होगी और हमारे शर्मनाक बंधन दूर होंगे और हम एक स्वतंत्र राज्य में आएँगे।

अरुणा बालगंगाधर तिलक के नेतृत्व में राष्ट्रवाद के रथ में रेंगते हुए, हिंदुओं के रूप में, हम आपको, स्वतंत्रता के सूर्य को प्रणाम करते हैं। हम,

मुस्लिम, ईसाई और पारसी आपके लिए घुटने टेकते हैं और प्रार्थना करते हैं। आप दीर्घायु हों।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, लोग इस आधुनिक सूर्य की पूजा कर रहे हैं।

सूर्योदयम्: 13-2-1910 – आवरण पर प्रकाशित कार्टून चित्र

तस्वीर की दूसरी तरफ हम देखते हैं कि कुछ कुत्ते खड़े हैं और भौंक (परिहास कर) रहे हैं। ये कुछ अँग्रेजी अखबारों को संदर्भित करते हैं। ये हैं वे कुत्ते, जो भारत को हमेशा के लिए अँधेरे में रखना चाहते हैं :

ये कुत्ते भारत में रोशनी को आते ही देख गुस्सा हो जाते हैं।

कुत्तों की आस है कि उगता सूरज फिर से समुद्र में डूब जाएगा!

ये कुत्ते, जिन्हें उम्मीद थी कि भारत हमेशा गरीबी, बीमारी, अज्ञानता और गुलामी को देखकर खुश होगा, अब भारतीयों की इच्छा के खिलाफ सभी शिकायतों को मिटाने के लिए आधुनिक क्रोध के उगते सूरज को देखकर दिल टूट गया है।

अगर कुत्ता सूरज को देखकर परेशान हो जाता है, तो क्या वह कुत्ते के मुँह पर चोट करता है न कि सूरज को?"

कार्टून के साथ अंदर के पृष्ठों में उक्त विवरण भी प्रकाशित मिलता है। प्रत्येक कार्टून का इस तरह से स्पष्टीकरण भारती की राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ-साथ अँग्रेजों का राजनीतिक विरोध स्पष्टतः नजर आता है। 'सूर्योदयम्' पत्र में प्रकाशित एक कार्टून का निम्न संपादकीय उल्लेखनीय है। जनस्वतंत्रता के खेत में 'ब्रिटिश अधिकारी' का बैल चरता है और पौधे को नष्ट कर देता है।

संपादक का नोट

सरकार के निजी बयान में शामिल करने के लिए कैरिकेचर के पाठ का अनुवाद इस प्रकार किया गया था :

13 फरवरी का 'सूर्योदयम्' एक कार्टून प्रकाशित करता है, जिसमें 'ब्रिटिश अधिकारी' कहे जाने वाले बैल को लोकप्रिय स्वतंत्रता के क्षेत्र को चराने और एक के बाद एक पौधे खाकर स्वतंत्रता को नष्ट करने के रूप में वर्णित किया गया है, जैसे कि सार्वजनिक सभाएँ, स्वतंत्रता प्रेस, आदि।

[मद्रास नेटिव न्यूज पेपर रिपोर्ट्स (1910) – पृ.372]

सूर्योदयम् : 13-2-1910 - पृ.1 http://www.mahaka9 vibharathiyar.info/b_katturaigal/bharati_matha.html (25 दिसंबर, 2021)

संपादकीय वाणी

सुब्रह्मण्य भारती निर्भीक वाणी में अँग्रेज सरकार के विरोध में लिखते थे। आजादी पाने के लिए जन-चेतना जगाने के आशय से अपने गीतों के माध्यम से वे जितनी चेतना फैलाते थे, अपने संपादकीयों के माध्यम से भी उसी स्वर में आवाज उठाते थे। उदाहरण के तौर पर 'कोडिय अनीति' (घातक अन्याय) शीर्षक से प्रकाशित उनके एक (तमिल) संपादकीय की कुछ पंक्तियों का अनूदित पाठ यहाँ प्रस्तुत है–"चेन्नै के राज्यपाल ने आश्वासन दिया है कि उच्च न्यायालय में श्री शंकरन नायर के लिए कोई जगह नहीं होगी। उन्होंने श्री वालिस, एक योगी को नियुक्त किया, जो अब तक एक न्यायाधीश थे। सरकार को ऐसा लग रहा था कि वह कितना भी अनुभवी भारतीय क्यों न हो, वह उससे कहीं अधिक अनुभवहीन अँग्रेज था। श्री शंकरन नायर ने दो या तीन बार काम किया है और उन्हें एक अच्छे न्यायाधीश के रूप में जाना जाता है। ऐसा मत सोचो कि राज्यपाल का यह अपमान केवल शंकरन नायर का है; इस प्रांत के सभी लोगों का है। हम आशा करते हैं कि प्रत्येक जिले के निवासी जनसभाओं और बयानों के माध्यम से अपनी शिकायतों को भारत के मंत्री तक पहुँचाएँगे। ऐसा लगता है कि राज्यपाल की मंशा है कि दो भारतीय जज हाई कोर्ट में न हों! क्यों नहीं? क्या सुब्रह्मण्य अय्यर और बाश्यम अय्यर पहले एक ही समय में जज नहीं रहे हैं? ऐसा लगता है कि हमारे राज्यपाल सर ए. लाली ने कुछ दुष्ट मंत्रियों की सलाह पर ऐसा किया है। जनता ने खुलकर बोलना शुरू कर दिया है कि पिछले गवर्नर लॉर्ड एंफीथिल अगर अब गवर्नर होते तो ऐसा अकल्पनीय काम नहीं किया गया होता।"

तमिल व राष्ट्र गौरव के अग्रणी पत्रकार

'इंदिया' के माध्यम से महाकवि भारती ने पत्रकारिता में जो-जो प्रयोग किए उनसे तमिल पत्रकारिता कई दृष्टियों से समृद्ध हुई थी। उन्होंने इस पत्र के माध्यम से उग्र राष्ट्रवाद को प्रश्रय दिया। वे अपनी कलम को एक खड्ग के रूप में प्रयोग करने लगे, जिससे अँग्रेज भयभीत थे। अपने विचारों को संपादकीयों व विशेष लेखों के माध्यम से वे केवल अक्षरों में ही प्रकट नहीं करते थे, पत्र-पत्रिकाओं के आवरण पृष्ठों पर कार्टून-चित्र छापते थे। उन चित्रों में अँग्रेजों की कूटनीतिक चालों का पर्दाफाश करते थे। कार्टून-चित्रों पर विस्तृत टिप्पणी भी वे प्रकाशित करते थे। भारत की राजनैतिक स्वाधीनता की आकांक्षा से स्पष्ट राजनैतिक, राष्ट्रीय भावनाओं को प्रकट करते हुए वे लिखते थे। अतः हम उनकी पत्रकारिता को राजनैतिक पत्रकारिता के रूप में भी मान सकते हैं (बाबु, 2021)। इन तमाम तथ्यों के आधार पर उन्हें 'तमिल राजनैतिक पत्रकारिता का जनक', 'तमिल राष्ट्रवादी पत्रकारिता का जनक' तथा 'तमिल कार्टून

पत्रकारिता का जनक' मानने का औचित्य है। उन्होंने अपने संपादन में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में 1907 से 1910 के बीच आवरण पृष्ठों पर कई कार्टून-चित्रों को प्रकाशित किया था। यह तमिल भाषा एवं साहित्य के लिए भारती की विशिष्ट देन है। उनकी तमिल भाषा की शैली के परिप्रेक्ष्य में उन्हें 'आधुनिक तमिल शैली के जनक' के रूप में भी माना जाता है।

मात्र 38 वर्ष की अल्पायु में भारती की मृत्यु हुई। उन दिनों उनका निवास मद्रास में पार्थसारथी मंदिर की गली में था। मंदिर के हाथी ने उन्हें कुचल दिया था, घायल होने के बाद इलाज के दौरान उनकी मृत्यु हुई। समर्पित पत्रकार के रूप में लगभग एक दर्जन पत्र-पत्रिकाओं से जुड़े रहने, कई अग्रणी राष्ट्रीय नेताओं के संपर्क में रहने, साहित्य की अनेक अनूठी कृतियों के लेखन के बावजूद वे बदहाली में रहे। गरीबी के तांडव नृत्य के बीच उनकी मृत्यु होने पर उनके अंतिम संस्कार के समय एक दर्जन लोग भी नहीं जुट पाए थे। अमर पत्रकार, कवि, राष्ट्रभक्त के रूप में उनकी मृत्यु के कुछ वर्षों बाद उनकी पहचान सहस्रों गुणा बढ़ी। मृत्यु के बाद भी उनकी रचनाएँ लगातार पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहीं। कई रचनाएँ पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुईं। आखिर मृत्यु के बाद ही सही, माँ भारती के इस अमर नायक की पहचान विश्वव्यापी हुई। अपनी पुस्तक 'हू ओन्स दैट सांग? द बैटल फॉर सुब्रह्मण्य भारतीज कॉपीराइट' में ए.आर. वेंकटाचलपति लिखते हैं कि भारत में महाकवि भारती ही ऐसे एकमात्र लेखक हैं, जिनकी रचनाओं के प्रतिलिप्याधिकार मद्रास राज्य की सरकार ने खरीदे और तत्पश्चात् उन रचनाओं पर भारत की समूची जनता के अधिकार के लिए उन्हें कॉपीराइट मुक्त कर दिया (वेंकटाचलपति, 2018)। वेंकटाचलपति इस घटना को भारती की रचनाओं के 'राष्ट्रीयकरण' के रूप में मानते हैं।

एक सफल पत्रकार के रूप में भारती का लक्ष्य केवल साक्षर पाठक ही नहीं थे, उन्होंने निरक्षर पाठकों को भी अपना लक्ष्य बनाया। उनके लिए वे अपनी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से कार्टून-चित्र प्रकाशित करते थे, जिससे अंक में प्रस्तावित सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा समझ में आ जाए। वैसे साक्षरों को अधिक स्पष्टता देने के लिए वे उस चित्र-कार्टून की टिप्पणी भी अंदर के पृष्ठों में प्रकाशित करते थे। संपादकीय वाणी, उनके लेख व गीतों में उनकी राष्ट्रीयता की भावना की स्पष्ट झलक मिल जाती थी, भले ही कितनी भी कठिनाइयों में रहते हुए उन्होंने लेखन किया। अँग्रेजों की कूटनीतिक चालों के पर्दाफाश में अपने समय के बड़े निडर पत्र के संपादक थे महाकवि भारती। उनकी लेखनी के ओज से जनता में असंतोष फैलने के डर से अँग्रेजों ने उनके अखबारों पर रोक लगा दी थी।

निष्कर्ष

सुब्रह्मण्य भारती की वाणी में राष्ट्रवादी स्वर की प्रबलता देखी जा सकती है। एक सफल पत्रकार के रूप में उन्होंने जिन विचारों को फैलाया, उन्हें आचारण में भी अपनाया। स्त्री, दलित, गरीब आदि के पक्ष में उन्होंने अपने लेखन में वकालत की। वे किसी भी प्रकार के भेदभाव को नहीं मानते थे। जाति, संप्रदाय के भेदभावों का वे भरपूर विरोध करते थे। सामाजिक न्याय के लिए वे लड़ते रहे। दिनांक 12 सितंबर, 1921 को उनकी मृत्यु हुई थी। उनकी मृत्यु की शताब्दी का स्मरण हम कर रहे हैं। पत्रकारिता के लिए भारती के योगदान पर अभी समग्र अध्ययन नहीं हुआ है। राजनैतिक स्वाधीनता की आकांक्षा से क्रांति दल के पक्षधर के रूप में भारती ने जो पत्रकारिता की, उसे राजनैतिक पत्रकारिता का आरंभिक रूप मानने का जितना औचित्य है, राष्ट्रवादी पत्रकारिता के रूप में मूल्यांकन करने की भी उतनी ही प्रासंगिकता है। भारती के संपादकीयों, कार्टूनों में राष्ट्रवादी स्वर हम देखते हैं। औपनिवेशिक शासन के विरोध में उन्होंने लगातार आवाज उठाई और जन-चेतना जगाई। उनके कार्टूनों में अँग्रेजों की बड़ी आलोचना हर बिंदु में हम देख सकते हैं। संचार के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पहलुओं के अनुरूप भारती ने अपने अखबारों, पत्रिकाओं का, उनके प्रत्येक अंग व आयाम का भरपूर प्रयोग किया। संचार को प्रबल अस्त्र के रूप में प्रयोग करते हुए उनके आवरण पृष्ठ के कार्टून, उन कार्टूनों पर अंदर के पृष्ठों पर टिप्पणी, संपादकीय, आलेख, टिप्पणियाँ आदि अँग्रेजों को हिला देते थे। इन तमाम प्रयासों से जो जनचेतना फैल रही थी, उनसे निश्चय ही अँग्रेज शासक भयभीत होते थे। भारती और उनके प्रकाशनों के विरुद्ध अँग्रेज सरकार ने कार्रवाई शुरू की थी। यहाँ तक कि सख्त कानून भी बना दिए। इस तरह राष्ट्रीय-चेतना की क्रांति फैलाने वाले पत्रकार के रूप में उनकी पत्रकारिता का मूल्यांकन किया जा सकता है। इस आलेख के दायरे में चंद संपादकीयों और कार्टूनों का ही अध्ययन किया गया है। इनसे कुछ हद तक भारती की राष्ट्रवाद की चेतना स्पष्ट होने के साथ-साथ भारतीय राष्ट्रवाद में उनके चिंतन के योगदान का स्पष्ट आभास होता है। उनके समूचे कार्टूनों और संपादकीयों के समग्र अध्ययन से उनके दृष्टिकोण का व्यापक विश्लेषण और मूल्यांकन संभव है।

संदर्भ सूची

बाबु, सी. जे. एस. (2021). मीडिया विमर्श – तमिल मीडिया विशेषांक. सितंबर-दिसंबर, 2021.

बाबु, सी. जे.एस. (2002). दक्षिण भारत में हिंदी पत्रकारिता : एक अध्ययन, http://hdl.handle.net/2009/3073

बाबु, सी. जे. एस. (2022). राष्ट्रभक्त सुब्रह्मण्य भारती की पत्रकारिता, समन्वय दक्षिण - सुब्रह्मण्य भारती विशेषांक, 2022.

रामचंद्र, जी. (2012). सी. सुब्रह्मण्य भरतियार– ए बायोग्राफिकल स्टडी (1882-1921). डिपार्टमेंट ऑफ इंडियन हिस्ट्री. मद्रास यूनिवर्सिटी.

वेंकटाचलपति, ए.आर. (2018). हू ओंस दैट सोंग? द बैटल फॉर सुब्रह्मण्य भारतीज कॉपीराइट. जैगरनॉट, पृष्ठ31.

वेबसाइट

Britannica, T. Information Architects of Encyclopaedia (2021, December 14). Subramania Bharati. Encyclopedia Britannica. https://www.britannica.com/facts/Subramania-Bharati

https://www.britannica.com/biography/Subramania-Bharati (2021, December 14).

http://www.mahakavibharathiyar.info/b_katturaigal/bharati_matha.html (25 दिसंबर, 2021)

https://hti.osu.edu/opper/editorial-cartoons-introduction

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 21-25, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

स्वतंत्रता आंदोलन में राजस्थान के पत्रकारों का योगदान

आशाराम खटीक[1] और डॉ. सुबोध कुमार[2]

सारांश

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान स्वतंत्रता के संदेश को जन-जन तक पहुँचाने और उस संघर्ष को जन-आंदोलन में बदलने के प्रयासों में सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिका समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं ने निभाई। उस दौरान अधिकतर समाचार पत्रों के संपादक और प्रकाशक स्वतंत्रता संग्राम के वे वीर सेनानी थे, जिन्होंने हरसंभव प्रयास कर संघर्ष की मशाल को जलाए रखा। स्वातंत्र्यपूर्व राजस्थान देशी रजवाड़ों व रियासतों का क्षेत्र हुआ करता था। राजपूताना काल में अखबारों को अपनी बात कहने की जरा भी स्वतंत्रता नहीं थी। राजस्थान में राजा, महाराजा और अँग्रेजी एजेंसियों द्वारा जनता का शोषण किया जा रहा था। राजस्थान का जनमानस अँग्रेजों के आतंक, रियासती सामंतों के कुशासन और अत्याचार तथा जागीरदारों के शोषण और उत्पीड़न के तिहरे कुचक्र में फँसकर अपनी मुक्ति के लिए छटपटा रहा था। राजस्थान में तत्कालीन निरंकुश एवं शोषक व्यवस्था के विरुद्ध जितने भी राजनीतिक सुधार आंदोलन हुए, उनके लिए वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने और उनके लिए राष्ट्रीय चेतना की भावना के विकास में तत्कालीन समय में प्रकाशित विभिन्न समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। प्रस्तुत शोध पत्र में राजस्थान यानी तत्कालीन राजपूताने में उठी विरोध की ज्वाला को समाचार-पत्र, पत्रिकाओं के माध्यम से जो दशा और दिशा मिली, उन्हीं तथ्यों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। कैसे तत्कालीन पत्रकारों ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से पत्रकारिता को आधार बनाकर स्वतंत्रता संग्राम द्वारा अँग्रेजों को खदेड़ने व व्यापक जनमानस तक स्वाधीनता के उद्घोष को संप्रेषित करने का महान कार्य किया? राजा-महाराजाओं के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने और अँग्रेजी शासन को समाप्त कर स्वतंत्रता का आह्वान करने वाले महानायकों में से कदाचित् प्रमुख पत्रकारों का उल्लेख 'आजादी के अमृत महोत्सव' के अवसर पर करना अत्यंत प्रासंगिक है।

संकेत शब्द : स्वतंत्रता आंदोलन, राजस्थान की पत्रकारिता, विजय सिंह पथिक, पंडित झाबरमल्ल शर्मा, जयनारायण व्यास।

प्रस्तावना

अँग्रेजी शासन के दौरान देश में समाचार पत्र भी दासता की बेड़ियों में जकड़े हुए थे। राष्ट्रीय विचारधारा वाले समाचार पत्रों के प्रकाशन को बंद करने पर विवश किया जाता था। राजस्थान में देशी रियासतों में स्थिति और भी दयनीय थी, वहाँ तो छापाखाना क्या, टाइपराइटर तक भी सरकारी अनुमति के बिना नहीं रखा जा सकता था। ऐसी परिस्थितियों में समाचार पत्रों के प्रकाशन द्वारा जन-जागरण का प्रयास बड़े जोखिम का काम था। इसके बावजूद अनेक साहसी पत्रकारों ने समाचार पत्रों द्वारा जन-मानस में स्वाधीनता के प्रति चेतना उत्पन्न करने का अदम्य प्रयास किया। इसके लिए उन्हें अनेक यातनाएँ सहनी पड़ीं, किंतु उनका निश्चय अटल था और वे अपने उद्देश्य के प्रति पूरी तरह समर्पित थे। आजादी के आंदोलन में राजस्थान के कुछ ऐसे ही कर्मठ पत्रकार थे, जिनके कृत्यों को यहाँ पर रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। इन पत्रकारों के उग्र संपादकीय लेखों के अंशों को भी उद्धृत किया गया है, जिससे उसकी प्रामाणिकता पर सवाल न खड़े किए जा सकें (आर्येंद्र, 1993)।

राजस्थान में सन् 1849 में समाचार पत्रों की शुरुआत हुई। भरतपुर से प्रकाशित मासिक 'मजहर-उल-सरूर' प्रदेश का पहला समाचार पत्र था। छोटे-छोटे रजवाड़ों में बँटा होने के कारण राजस्थान में पत्रकारिता का उदय लोकशिक्षण से हुआ। जनजागरण और स्वतंत्रता का शंखनाद करने में राजस्थान की पत्रकारिता राष्ट्र की मुख्य जीवनधारा से जुड़ी रही। राजस्थान से प्रकाशित प्रारंभ के पत्रों का स्वर धार्मिक और सुधारवादी रहा। 1881 में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'मोहन चंद्रिका' 1902 में गोपाल राम गहमरी का 'समालोचक', 1920 में झालरापाटन से पंडित रामनिवास शर्मा का 'सौरभ', 1927 में पंडित हरिभाऊ उपाध्याय का अजमेर से प्रकाशित 'त्यागभूमि', 1945 में अलवर से प्रकाशित ऋषि जैमिनी कौशिक का 'राजस्थान क्षितिज' आदि राजस्थान से प्रकाशित कीर्तिशेष पत्र-पत्रिकाएँ हैं। राजस्थान में पत्रकारिता के प्रारंभिक काल में मुख्यतः सरकारी सूचनाओं से परिपूर्ण राजकीय राजपत्रों का जन्म हुआ, जिनकी सामग्री मुख्यतः सुधारवादी होती थी (पीतलिया, 2000)।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध आलेख के निम्न उद्देश्य हैं :

- स्वाधीनता आंदोलन के दौरान राजस्थान की पत्रकारिता के परिदृश्य का अध्ययन।
- स्वाधीनता आंदोलन के दौरान राजस्थान के पत्रकारों की स्थितियों का विश्लेषण।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख में द्वितीयक स्तर पर चयनित की गई सामग्री का विश्लेषण किया गया है। इसमें पुस्तकें, शोध आलेख, समाचार आलेख, सरकारी दस्तावेज, ऐतिहासिक दस्तावेज आदि शामिल किए गए हैं। राजस्थान की पत्रकारिता और पत्रकारों के बारे में कई पुस्तकों में लेखकों ने तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण किया है। विभिन्न पत्रकारों की लेखकीय क्षमताओं के बारे में भी कई आलेख प्रकाशित हुए हैं और

[1]शोध छात्र, पत्रकारिता विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान. ईमेल : asharamjou19@vmou.ac.in
[2]सह-आचार्य, पत्रकारिता विभाग, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान. ईमेल : skumar@vmou.ac.in

उन पत्रकारों की संपादकीय टिप्पणियों को आधार बनाकर आलेख में उन्हें समाहित करने का प्रयास किया गया है।

राजस्थान की पत्रकारिता और पत्रकारों की स्थिति

आजादी के आंदोलन का लेखा-जोखा देखा जाए जो 1857 से लेकर 1947 के 90 वर्षों के कालखंड को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। राजपूताना धरती पर जिस प्रकार से अँग्रेजी सत्ता के खिलाफ आंदोलन हुए, उससे पत्रकारिता में न केवल एक प्रतिमान स्थापित हुआ, बल्कि अँग्रेजी सत्ता का समय-समय पर साहस भी डोला। समाचार पत्रों ने अपने जन्म के साथ ही अभिव्यक्ति की आजादी की भी माँग की। जल्द ही यह माँग हिंदुस्तान की आजादी की माँग में बदल गई। बाद में जितने भी समाचार पत्र प्रकाशित हुए, वे भी जनचेतना से संबंधित रहे। संचार के साधनों के अभाव और अशिक्षा के कारण राजस्थान के समाचार पत्र-पत्रिकाएँ यद्यपि अल्पजीवी रहीं, परंतु राजस्थान के स्वतंत्रता आंदोलन को अनुकूलतम आबोहवा देने में कदापि पीछे नहीं रहीं। राजस्थान की पत्रकारिता के प्रमुख व्यक्तित्वों में से स्वतंत्रता आंदोलन के लिए मिशनरी पत्रकारिता करते हुए जनजागृति के कार्य को नेतृत्व देने, स्वतंत्रता आंदोलन रूपी महायज्ञ में आहुति देने का भगीरथ प्रयास एवं सामंतवादी व्यवस्था के खिलाफ बिगुल फूँकने का बखूबी काम इन समाचार पत्र-पत्रिकाओं और मूर्धन्य पत्रकारों ने किया।

आजादी के लिए संघर्ष की धधकती ज्वाला में अँग्रेजों की दमनकारी नीतियों के विरुद्ध उस दौर में लिखना कोई कम बड़ी बात नहीं थी, लेकिन नरम दल के प्रणेता के रूप में महात्मा गांधी एवं गरम दल के रूप में लाल, बाल और पाल की भूमिका को कौन नहीं जानता। राजस्थान, जो स्वतंत्रता पूर्व एवं एकीकरण से पूर्व एक नहीं था, तब भी यहाँ के रणबाँकुरों ने जौहर दिखाते हुए कलम की धार से अँग्रेजी शासन के ताबूत में अंतिम कील ठोंक डाली। इस शोध-पत्र में राजस्थान के कतिपय पत्रकारों के व्यक्तित्व एवं स्वतंत्रता-संग्राम में उनके योगदान को दर्शाया गया है, इनमें विजय सिंह पथिक, पंडित झाबरमल शर्मा, मनीषी समर्थदान, श्यामलाल वर्मा, हरिभाऊ उपाध्याय, जयनारायण व्यास, ऋषि दत्त मेहता, केसरी सिंह बारहठ, कैप्टन दुर्गा प्रसाद चौधरी, रामनारायण चौधरी आदि प्रमुख हैं। कुछ पत्रकारों के योगदान को यहाँ रेखांकित किया जा रहा है।

विजय सिंह पथिक : इनका जन्म सन् 1882 में उत्तर प्रदेश में बुलंदशहर जिले के गुठावली ग्राम में हुआ। बिज्जी के नाम से ख्यातनाम विजय सिंह पथिक राजस्थान के प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी, प्रखर पत्रकार और प्रबुद्ध लेखक थे। बिजौलिया किसान आंदोलन का सूत्रपात करने का श्रेय पथिक जी को ही जाता है। अक्टूबर 1920 में वर्धा से उन्होंने 'राजस्थान केसरी' साप्ताहिक पत्र प्रकाशित किया। उन्होंने कई समाचार पत्रों का प्रकाशन भी किया। 1921 में अजमेर से प्रकाशित साप्ताहिक 'नवीन राजस्थान' का जन्म हुआ, जिसका आदर्श वाक्य ही यह था :

"यश वैभव सुख की चाह नहीं, परवाह नहीं जीवन न रहे।
यदि इच्छा है तो यह है, जग में स्वेच्छाचार दमन न रहे।।"

यह समाचार-पत्र राजस्थान की दबी-कुचली जनता की बुलंद आवाज बन गया। इस पत्र ने पथिक द्वारा संचालित 'बिजौलिया सत्याग्रह' को पूरा समर्थन प्रदान किया। यही पत्र बाद में 'तरुण राजस्थान' के नाम से प्रकाशित हुआ।

केसरी सिंह बारहठ : इनका जन्म सन् 1872 में शाहपुरा रियासत के देवपुरा गाँव में हुआ। केसरी सिंह के देश के शीर्ष क्रांतिकारियों के साथ घनिष्ठ संबंध रहे थे। बारहठ द्वारा रचित 'चेतावनी रा चुंग्ट्या' नामक सोरठे पढ़कर मेवाड़ के महाराणा फतेह सिंह इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने लॉर्ड कर्जन द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार में नहीं जाने का निश्चय किया। वर्ष 1920-21 में सेठ जमनालाल बजाज के आमंत्रण पर बारहठ वर्धा चले गए। वर्धा में उनके नाम से 'राजस्थान केसरी' साप्ताहिक समाचार-पत्र शुरू किया गया, जिसके संपादक 'विजय सिंह पथिक' थे। वर्धा में बारहठ महात्मा गांधी के निकट संपर्क में आए। 'चेतावनी रा चुंग्ट्या' उनकी अँग्रेजों के विरुद्ध भावना की सुस्पष्ट एवं कटाक्षपूर्ण सपाट अभिव्यक्ति है।

कैप्टन दुर्गाप्रसाद चौधरी : इनका जन्म सन् 1906 में सीकर जिले के नीम का थाना कस्बे में हुआ। कप्तान श्री दुर्गाप्रसाद चौधरी ने स्वाधीनता संग्राम और आंदोलनों में सक्रियता के साथ भाग लिया, साथ ही पत्रकारिता के क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किए। 2 अक्टूबर, 1936 से साप्ताहिक पत्र 'नवज्योति' का प्रकाशन रामनारायण चौधरी ने किया। दुर्गाप्रसाद जी इनके प्रमुख सहयोगी रहे। इस पत्र ने राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने, जन आंदोलनों को आगे बढ़ाने, ब्रिटिश सामंतवादी जुल्मों को प्रकाश में लाने और आजादी की लड़ाई को ताकत देने का कार्य किया। पत्र के मुखपृष्ठ पर छपा होता था :

''फूँकने निष्प्राणों में प्राण, कराने दुखितों को निजभान।
जगाने को आई नवज्योति, जनों में त्याग और बलिदान।।''

कप्तान साहब ने अपनी कलम को तलवार बनाकर सुतीक्ष्ण हथियार के रूप में इसका उपयोग करते हुए आजादी की लड़ाई में भाग लिया। उस समय एकमात्र यही ऐसा पत्र था, जिसने ब्रिटिश साम्राज्यवाद और सामंतशाही के विरुद्ध कठोर प्रहार करते हुए उनकी चूलें हिला दीं।

रामनारायण चौधरी : रामनारायण चौधरी का जन्म सन् 1895 में सीकर जिले के 'नीम का थाना' कस्बे में हुआ। रामनारायण चौधरी, विजय सिंह पथिक द्वारा स्थापित राजस्थान सेवा संघ के मंत्री बने और संघ द्वारा प्रकाशित 'राजस्थान केसरी' के सह संपादक और प्रकाशक नियुक्त हुए। सन् 1921 में चौधरी जी के संपादकत्व में अजमेर से 'नवीन राजस्थान' साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन हुआ, जो बाद में 'तरुण राजस्थान' के नाम से निकलने लगा। सन् 1929 में ब्यावर से अँग्रेजी साप्ताहिक 'यंग राजस्थान' और सन् 1930 में हस्तलिखित अँग्रेजी साप्ताहिक पत्र 'द मैन' का प्रकाशन हुआ। सन् 1936 में अजमेर से साप्ताहिक पत्र 'नवज्योति' और सन् 1947 में दैनिक 'नया राजस्थान' के प्रकाशन का श्रेय भी रामनारायण चौधरी को ही जाता है।

अचलेश्वर प्रसाद शर्मा : इनका जन्म सन् 1907 में जोधपुर में हुआ। एक कर्मठ पत्रकार और स्वतंत्रता सेनानी अचलेश्वर प्रसाद शर्मा ने सदैव अपनी लेखनी से जनसमस्याओं को उजागर कर अँग्रेजी शासन पर प्रहार किया। तत्कालीन राजस्थान की डेढ़ करोड़ जनता की आवाज बने पत्र 'तरुण राजस्थान' के ये सह-संपादक रहे। सन् 1930 में अजमेर

में 'राजस्थान', सन् 1931 में आगरा में 'सैनिक' और सन् 1933-37 तक आकोला में 'नव राजस्थान' का संपादकीय कार्य किया। सन् 1940 में अचलेश्वर प्रसाद शर्मा ने जोधपुर से प्रकाशित 'प्रजासेवक' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन, संपादन और संचालन किया। निष्पक्ष समाचार, तेजतर्रार टिप्पणियों और लेखों के कारण वे अँग्रेजों के कोपभाजन का शिकार बने और अपने 9 वर्षीय संपादन काल में तीन वर्ष उन्हें जेल में ही बिताने पड़े।

पंडित झाबरमल्ल शर्मा : पंडित झाबरमल्ल शर्मा का जन्म सन् 1888 में झुंझनूँ जिले के खेतड़ी में जसरापुर गाँव में हुआ। राजस्थान की पत्रकारिता के भीष्म पितामह कहलाने वाले पंडित झाबरमल्ल शर्मा जी का उद्देश्य देश, धर्म व जनता की सेवा करना था। जनपक्षधर पत्रकारिता करते हुए इन्होंने कई प्रमुख प्रकाशन यथा सन् 1907 में मासिक 'ज्ञानोदय' का संपादन, सन् 1909 में बंबई से प्रकाशित साप्ताहिक पत्र 'भारत', सन् 1910 में नागपुर से प्रकाशित 'मारवाड़ी' आदि का संपादन किया। इन्होंने सन् 1914 में कलकत्ता से दैनिक समाचार-पत्र 'कलकत्ता समाचार' का प्रकाशन-संपादन भी किया। घी में चर्बी की मिलावट के विरोध में उन्होंने 'कलकत्ता समाचार' में ही अभियान चलाया। इसका परिणाम यह हुआ कि अँग्रेजी सरकार को 24 घंटे में ही कानून बनाकर अपराधियों को दंडित करना पड़ा। बाद में शर्मा जी ने दिल्ली से 'हिंदू संसार' नामक पत्र का संपादन किया, जिसकी नीति और उद्देश्य 'कलकत्ता समाचार' के ही रहे। शर्मा जी ने साहित्य और इतिहास के क्षेत्र में भी अनेक काम किए। 'सीकर का इतिहास', 'खेतड़ी का इतिहास', 'खेतड़ी नरेश और स्वामी विवेकानंद' आदि उनके प्रामाणिक ग्रंथ हैं। 4 जनवरी, 1983 को शर्मा जी का निधन जयपुर में हुआ (आर्येंदु, 1993)।

जयनारायण व्यास : इनका जन्म सन् 1899 में जोधपुर में हुआ। श्री व्यास ने सन् 1927 में 'तरुण राजस्थान' का प्रकाशन एवं संपादन कर क्रांति की अलख जगाई। सन् 1933 में बंबई से दैनिक समाचार पत्र 'अखंड भारत' का प्रकाशन और सन् 1937 में ब्यावर से राजस्थानी भाषा के प्रथम पाक्षिक पत्र 'आगीवाण' का प्रकाशन व संपादन किया। व्यास जी केवल पत्रकार ही नहीं थे। पत्रकारिता तो उनका एक साधन था। साध्य थी क्रांति, साध्य थी राजतंत्रों की और जागीरी प्रथा की समाप्ति, साध्य थी देश की स्वाधीनता, साध्य था जनता का जीवन स्तर ऊँचा उठाकर एक लोकतांत्रिक शासन की स्थापना करना। इन साध्यों को ही पाने के लिए व्यास जी ने पत्रकारिता को एक साधन के रूप में अपनाया। उनका कर्मक्षेत्र तो जनता के बीच था। जनता को जाग्रत और संगठित करना तथा उसे अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत करना उनका मिशन था। अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक व्यास जी समाचार पत्र निकालते रहे। सबसे आखिर में उन्होंने 'पीप' नाम का अँग्रेजी साप्ताहिक पत्र निकाला। इस अखबार के जरिये व्यास जी अपने स्वतंत्र चिंतन और परिपक्व विचारों से लोगों को परिचित कराते रहे। 14 मार्च, 1963 को दिल्ली के एक नर्सिंग होम में उन्होंने अंतिम साँस ली (आर्येंदु, 1993)।

हरिभाऊ उपाध्याय : हरिभाऊ उपाध्याय का जन्म सन् 1892 में ग्वालियर, मध्यप्रदेश, में हुआ। हरिभाऊ उपाध्याय प्रख्यात समाचार पत्र-पत्रिकाओं से जुड़े रहे। उन्होंने 'सरस्वती', 'प्रताप', 'हिंदी नवजीवन', 'प्रभा', 'मालवा मयूर' जैसे ख्यातनाम पत्र-पत्रिकाओं का संपादन कार्य किया। अजमेर से सन् 1927 में 'त्यागभूमि' और 1940 में 'जीवन साहित्य' का प्रकाशन एवं संपादन किया। श्री उपाध्याय सदैव देशवासियों में राष्ट्र निर्माण एवं राजनीतिक चेतना की भावना जाग्रत करने में रत रहे। गांधीवादी विचारधारा के प्रबल समर्थक, राष्ट्रीय पुनरोदय का शंखनाद करने वाले, स्वदेशी प्रचार-प्रसार की भावना को दैनिक जीवन में ढालने की प्रेरणा देने वाले युगपुरुष श्री हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा संपादित 'त्याग भूमि' का आदर्श वाक्य परवर्ती पत्रकारों को भी अपना संदेश देता रहेगा :

"आत्म समर्पण होते जहां, जहाँ शुभ्र बलिदान।
मर मिटने की साध तहँ, तहँ हैं श्री भगवान।।"

'त्याग भूमि' में संपादन कौशल श्रेष्ठ था। कलेवर और संपादन के क्षेत्र में अखिल भारतीय स्तर पर इसकी टक्कर के कम ही पत्र थे। 'त्याग भूमि' ने राजस्थान की पत्रकारिता को बुलंदियों पर पहुँचाने की महती भूमिका निभाई। गांधी का जयघोष आज भी 'त्याग भूमि' की बात कह रहा है:

'गांधी सा नरदेव जहाँ है, अखिल विश्व का पुरुष प्रधान।
जिसका है हमको अति गौरव, वह है प्यारा हिंदुस्तान।।'

चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी' : इनका जन्म सन् 1884 में जयपुर में हुआ। श्री जवाहरलाल जैन वैद्य द्वारा प्रकाशित मासिक 'समालोचक' के संपादक रहे। हिंदी में साक्षात्कार विधा का सूत्रपात करने वाले श्री गुलेरी अपनी रचनाओं में राष्ट्रीय सरोकारों की अवधारणाओं का खुलकर समर्थन करते थे। राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत रचनाएँ, सांस्कृतिक पुनरोदय और जन जागरण हेतु प्रेरक कविताएँ, युग धर्मानुकूल राष्ट्रीय स्वाभिमान को प्रदर्शित करने वाला कथा साहित्य आदि 'समालोचक' में खूब प्रकाशित हुआ। साहित्यिक रचनाओं की समालोचना प्रकाशित करना 'समालोचक' की अपनी विशेषता थी। इसकी समीक्षाओं में राष्ट्रीय सरोकार की अवधारणाओं का खुलकर समर्थन किया जाता था। राष्ट्रीय भावनाओं का जोरदार समर्थन किया जाता था। समालोचक के तेवर तीखे थे। स्वर मुखर था। स्वरूप तेजस्वी था। इसी कारण सभी समकालीन पत्रों में इसका अपना महत्त्व था। कहीं-कहीं इसकी समकालीन शैली बड़ी चुटीली, ओजस्वी और सटीक होती थी। ललित निबंध इस तरह के होते थे कि रेखाचित्र भी पीछे रह जाएँ। समालोचक ने हिंदी को परिष्कृत किया। नई-नई रचनाओं को प्रकाश में आने का अवसर दिया। उच्चकोटि की समालोचना के नए अध्याय का सूत्रपात किया। हिंदी की स्तरीय कविताएँ, ललित निबंध तथा अन्य विधाओं की रचनाएँ, जो 'समालोचक' में छपीं, परवर्ती साहित्यकारों के मार्गदर्शन हेतु आदर्श बनीं।

चंद्रगुप्त वार्ष्णेय : श्री वार्ष्णेय का जन्म सन् 1904 में राजस्थान की हृदयस्थली अजमेर में हुआ। श्री चंद्रगुप्त वार्ष्णेय ने एक जागरूक व राष्ट्रभक्त पत्रकार के रूप में अपनी कलम द्वारा स्वतंत्रता की ज्योति जलाई और राजस्थान में जन जागरण के लिए कलम की धार को कभी कुंद नहीं होने दिया एवं पत्रकारिता के सदैव अग्रणी प्रतिमान रहे। सन् 1932 से सन् 1948 तक 'हिंदुस्तान टाइम्स' समूह के साथ जुड़े रहे। इस दौरान उन्होंने अपने लेखन में राजस्थान की सभी रियासतों के आंदोलनों को विस्तारपूर्वक व प्रभावी ढंग से प्रकट किया।

हीरालाल शास्त्री : श्री हीरालाल शास्त्री का जन्म सन् 1880 में जोबनेर में हुआ। सामाजिक सुधारों के लिए 'प्रयास' नामक हस्तलिखित मासिक पत्र का प्रकाशन इनके द्वारा किया गया। अँग्रेजी समाचार पत्र 'हिंदुस्तान टाइम्स' और हिंदी पत्र 'विश्वामित्र' में तत्कालीन जयपुर रियासत के कुशासन पर तीखे तेवरयुक्त लेख एवं सन् 1943 में जयपुर से साप्ताहिक 'लोकवाणी' का प्रकाशन भी इनके द्वारा किया गया। अपनी संपादकीय टिप्पणियों में शास्त्री जी अँग्रेज सरकार के अधिकारियों और उनके कामकाज पर पैनी नजर रखते थे। अपने इन्हीं तेवरों के चलते कई अधिकारियों की आँख की किरकिरी भी वे बन चुके थे।

देवी शंकर तिवारी : श्री तिवारी का जन्म सन् 1903 में जयपुर में हुआ। राज्य में राजनीतिक चेतना के प्रसार में सहयोगी साप्ताहिक समाचार पत्र 'लोकवाणी' के संपादक के रूप में इन्होंने कार्य किया और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आलेख लिखे, जिससे अवाम में स्वाधीनता के प्रति रुझान और जनचेतना का प्रभावी प्रसरण संभव हो सका। नए राजस्थान के निर्माण में देवी शंकर तिवारी के योगदान को याद किया जाता है। ये जयपुर प्रजा मंडल के अध्यक्ष भी बने। बाद में इन्हें 1946 से 1949 के बीच राजस्थान सरकार में शिक्षा और स्वास्थ्य मंत्री के रूप में दायित्व सौंपे गए। महिलाओं की शिक्षा के प्रबल समर्थक देवी शंकर तिवारी ने राजस्थान में कई शिक्षण संस्थानों की स्थापना भी की। श्री तिवारी ने राजस्थान लोक सेवा आयोग को भी अपनी सेवाएँ दीं।

गुलाबचंद काला : इनका जन्म सन् 1908 में जयपुर में हुआ। राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत समाचार, लेख, कविताओं, गीत व नाटक को प्राथमिकता से प्रकाशित करने वाले पाक्षिक समाचार-पत्र 'जयभूमि' का प्रकाशन श्री गुलाबचंद काला ने सन् 1940 में किया, जो कालांतर में दैनिक हो गया। काला साहब की पत्रकारिता वास्तव में धारदार थी। अपने लेखों और संपादकीय टिप्पणियों के जरिये वे अँग्रेजी सत्ता को कठघरे में खड़ा करने से चूकते नहीं थे।

जमना लाल बजाज : श्री जमना लाल बजाज का जन्म 1889 में सीकर में हुआ। श्री बजाज स्वतंत्र पत्रकारिता को लोकतंत्रीय जीवन का आधार स्तंभ मानते थे। उन्होंने राष्ट्रीय स्तर के चेतना जाग्रत करने वाले अनेक समाचार-पत्रों को वित्तीय सहायता उपलब्ध करवाई जैसे 'यंग इंडिया', 'नवजीवन', 'कर्मवीर', 'प्रताप', 'राजस्थान केसरी'। महात्मा गांधी ने उन्हें अपना 'पाँचवाँ पुत्र' कहा था। लोकरंग या फोक मीडिया के लोक कलाकारों, शायरों और साहित्यकारों ने उस दौर में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। बंग-भंग के दौरान स्वदेशी आंदोलन की एक झलक इस ख्याल में देखी जा सकती है।

'लाल, बाल और पाल कहें यह सुनके ख्याल मत भौं तानो।
छोड़ो सब अँग्रेजी चीजें, चलन स्वदेशी पहचानो।।' (मैकू माली)

इसी प्रकार महात्मा गांधी के सत्य, अहिंसा के मंत्र द्वारा प्राप्त भारत की स्वतंत्रता का आख्यान भी शायरों ने लिखा।

बिना लिए हथियार हाथ, पर भारतवर्ष स्वतंत्र किया।
सत्य अहिंसा का तुमने बापू, फूँक देश में मंत्र दिया।।' (लाला शालिगराम बजाज)

'शहीदों की याद' शीर्षक ख्याल में क्रांतिकारियों के लिए लिखा गया—

'सुख-चैनो-अमन, ऐशो-इशरत इस मातृभूमि-हित भूल गए।
अशफाक, भगतसिंह बिस्मिल से फाँसी का झूला झूल गए।।'

जवाहर लाल जैन वैद्य : श्री वैद्य का जन्म सन् 1902 में जयपुर में हुआ। मासिक साहित्यिक पत्रिका 'समालोचक' का प्रकाशन एवं संपादन श्री जवाहर लाल जैन वैद्य द्वारा किया गया। चंद्रधर शर्मा गुलेरी और जवाहरलाल जैन वैद्य ने जयपुर से हिंदी मासिक पत्रिका 'समालोचक' का प्रकाशन किया तथा गोपालराम गहमरी को संपादन दायित्व सौंपा गया। प्रवेशांक में प्रकाशक ने 'आगमन' शीर्षक टिप्पणी में लिखा—"इतना कह देना उचित है कि साधारणतः सबके मुख्य और गौण दो उद्देश्य होते हैं। इस पत्र का मुख्य उद्देश्य समालोचना होगा। उसके साथ साहित्य की आलोचना भी उसमें रहा करेगी। अपने उद्देश्य साधन में समालोचक साध्यानुसार त्रुटि नहीं करेगा।" 'समालोचक' के नियमों में कहा गया—"किसी के व्यक्तिगत विरोध से भरी व असभ्य शब्दपूरित समालोचना नहीं छापी जाएगी।" जून-जुलाई 1903 के अंक में विष्णु शास्त्री चिपलूणकर की पुस्तक 'निबंधमालादर्श' की समालोचना गुलेरी ने की। इसी पुस्तक में समालोचना के धर्म और कर्म की व्याख्या करने वाला यह श्लोक वर्णित है :

'नीरक्षीर विवेके हंस आलस्यं तवमेव तनुषे चेत्।
विश्वस्मिन् अधुना अन्यः कुलव्रतं पालयिष्यति कः।।'

अगस्त 1903 के अंक से यह श्लोक आलोचना के आदर्श के रूप में मुख्य पृष्ठ पर छपने लगा, जिसका अर्थ है—"हे हंस! जल और दूध को पृथक् करने के लिए यदि तू ही आलस्य करेगा तो संसार में तेरे उक्त कुलव्रत का पालन कौन करेगा?"

ऋषि जैमिनी कौशिक : ऋषि जैमिनी कौशिक के संपादकत्व में सन् 1945 में 'राजस्थान क्षितिज' का प्रकाशन अलवर से हुआ। विषयक विविधता और चिंतन की गंभीरता के लिए राजस्थान 'राजस्थान क्षितिज' को पाठकों का बड़ा सहज स्नेह मिला। हिंदी काव्य की परंपरागत शैली से हटकर क्रांतिकारी विचारों से युक्त प्रगतिशील काव्य धारा की रचनाएँ 'राजस्थान क्षितिज' में खूब छपती थी। छत्रपति सिंह की रचना 'धनिक नगर' का एक अंश दृष्टव्य है :

कट कट, पट पट। सर सर, फर फर। चलती बग्घी, चलती मोटर।
घोड़ों की टापों से प्रतिपल। बिजली-सी जाती चमक निकल।
मोटर की घर घर से उठकर। चलते गरीब फुटपाथों पर।
यह कोलतार की सड़क और यह धनिक नगर। यह हवा महल।
यह राज महल। देखो पैसों की चहल पहल। पर इधर देख! यह क्यों पैदल?

निश्चय ही यह कहा जा सकता है कि अल्पकाल में ही प्रगतिवादी कविताओं को 'राजस्थान क्षितिज' ने लोकप्रियता की ओर उन्मुख कर दिया था। प्रतिबद्ध काव्य जगत् को कविता की ओर लाने का यह उद्यम संपादक की युगबोधप्रियता का द्योतक है।

पंडित रामनिवास शर्मा : सन् 1920 में झालरापाटन से हिंदी के

प्रकांड पंडित रामनिवास शर्मा के संपादकत्व में 'सौरभ' का प्रकाशन हुआ। झालावाड़ के महाराजा भवानीसिंह के संरक्षण में इसका प्रकाशन ऐसे समय में हुआ जब सेठ गोविंद दास ने मध्यप्रदेश से 'शारदा' निकालना प्रारंभ किया था। 'सौरभ' के पास लब्धप्रतिष्ठ हिंदी साहित्यकारों का दल था, जिनकी सशक्त रचनाओं ने प्रवेशांक से ही इसे 'सरस्वती' की टक्कर का पत्र बना दिया था। इसका प्रकाशन अँग्रेजों के दबदबे के ऐसे समय में हुआ, जब स्वतंत्रता और स्वराज्य की बात करना तक भी राजद्रोह माना जाता था। 'सौरभ' ने प्रवेशांक से ही अपने तीखे तेवर दिखाने आरंभ कर डाले। उस समय आर्थिक स्वराज्य का मुद्दा उठाना भारी जोखिम भरा था, किंतु पंडित रामनिवास शर्मा अपनी धुन के पक्के और भारी जीवट वाले उत्साही व्यक्ति थे। उनमें अपने निर्धारित लक्ष्य पर लगातार आगे बढ़ने की उत्कट लालसा थी।

'सौरभ' के प्रवेशांक का पहला लेख था—'आर्थिक स्वराज्य'। आर्थिक स्वराज्य के माध्यम से श्री विद्यालंकार ने इस लेख में लिखा था : 'इंग्लैंड, फ्रांस, अमेरिका आदि सभी देशों में जनता को आर्थिक स्वराज्य मिला हुआ है। भारत वर्ष ही इस आर्थिक स्वराज्य से वंचित क्यों रहे? बिना आर्थिक स्वराज्य भारत की आर्थिक उन्नति के उपायों को सोचना वृथा है।...भारत का बिना आर्थिक स्वराज्य प्राप्त किए व्यापार व्यवसाय की उन्नति करना बालू पर महल बनाना है। बिना आर्थिक स्वराज्य के भारत का व्यापार व्यवसाय स्वार्थ की भयंकर आँधियों तथा खूनी तूफानों से अपने-आपको कभी भी नहीं बचा सकता है" (सौरभ, प्रवेशांक सितंबर, 1920)। इस प्रकार अँग्रेजों की रीति नीति, उनकी कारगुजारियों, उनकी औपनिवेशिक भूख, उनकी दमनकारी नीतियों आदि विषयों पर स्पष्ट रूप से 'सौरभ' में चर्चा होती थी। 'सौरभ' की दो टूक बयानी और साफ-सुथरी अभिव्यक्ति बहुत लोकप्रिय हुई। स्वतंत्रता आंदोलन के कर्मठ देशभक्तों को इससे नया जोश और स्फूर्ति मिली और यह समाचार पत्र सरकार की आँख की किरकिरी बन गया। अँग्रेजी सरकार के आक्रोश के कारण मार्च 1922 में 'सौरभ'-सुषमा अनंत में विलीन हो गई। अंतिम अंक में छपा 'अंतिम' निवेदन कितना मर्माहत करने वाला है :

'पाठक, हमारी अयोग्यता या दौर्बल्य के कुफल यही हैं कि महान् उद्देश्य और स्वल्प सामग्री और निजी प्रेस आदि की कमी के कारण आज अल्पायु में या यों कहें जीवन के दूसरे श्वास में ही 'सौरभ' को मृत्यु का ग्रास होता देखना पड़ा। इसका हमें अत्यंत शोक है, किंतु इस गहरे शोक में अपने एक मित्र के निम्नलिखित शब्द ही हमें थोड़ा-बहुत ढाढ़स बँधाते हैं।' वे शब्द हैं—'सौरभ ने जिस परिस्थिति में जन्म लिया था वह अपना काम पूरा कर चुका' (पीतलिया, 2000)।

निष्कर्ष

आज भारत आजादी को गौरवान्वित करते 75 वर्ष मना रहा है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने इस मौके को 'आजादी के अमृत महोत्सव' के रूप में मनाने की दिशा में सराहनीय नवाचारी कदम उठाते हुए 'एक भारत श्रेष्ठ भारत' की परिकल्पना को साकार करने की सार्थक पहल की है। उपर्युक्त पत्रकार एवं स्वतंत्रता सेनानियों को हम आदरपूर्वक इस अवसर पर श्रद्धांजलि देते हुए उनका स्मरण करते हैं। आजादी में उनको एवं और भी उन ज्ञात-अज्ञात सभी स्वतंत्रता सेनानियों को स्मरणांजलि अदा करते हैं। श्री हरिदेव जोशी, कनक मधुकर, केशरलाल अजमेरा जैन, नंदकिशोर पारीक, पद्मसिंह शर्मा, ऋषि दत्त मेहता, शोभालाल गुप्त, सिद्धराज जैसे अनेक नाम राजस्थान की पत्रकारिता के बुलंद नाम रहे हैं। जिन्होंने मूल्यों की पत्रकारिता को मिशन के रूप में प्रयोग किया और अपने सर्वस्व का समर्पण करते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति के इस भगीरथ यज्ञ में अपनी कलम से आहुतियाँ देते हुए अँग्रेजों की बेड़ियों से भारत माता को आजाद कराया। आज एक सवाल उठता है कि हम अपने बीते दिनों को क्यों याद कर रहे हैं? वास्तव में भारत माँ को अँग्रेजी हुकूमत की बेड़ियों से मुक्त कराने में जिन रणबाँकुरों ने अपनी आहुतियाँ दीं, उन्हें याद करने और उन पर गौरव करने का समय है। हमारी नई पीढ़ी इंटरनेट और डिजिटल मीडिया के इस युग में काफी कुछ इतिहास के नाम पर नहीं जानती है। हमें उन्हें इन पुष्पगुच्छों को समेटकर दिखाना होगा और उनकी खुशबू से उन्हें परिचित कराना होगा। पत्रकारिता के सिद्धांतों पर अमल करने वाले राजस्थान के मनीषियों ने जिस मजबूती से राजपूताने की लाज रखी और अँग्रेजों को उनके कारनामों के कारण उजागर किया, वास्तव में उनका योगदान काबिलेतारीफ है। हमें अपनी जड़ों की लाज रखनी होगी, तभी हम अपने इतिहास पर गौरव कर पाएँगे। विषय गंभीर है और इसे कम शब्दों में समेट देना निश्चित रूप से विषय के साथ न्याय नहीं है। इस विषय पर गहन शोध की आवश्यकता है।

संदर्भ

उपाध्याय, ए. (1993). राजस्थान के भूले-बिसरे पत्रकार. नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय.

पीतलिया, आर. (2000). हिंदी की कीर्तिशेष पत्र-पत्रिकाएँ. जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी.

भट्ट, पी.के. (2018). भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के नरम और गरम सेनानी. नई दिल्ली : सरोज प्रकाशन.

भानावत, एम. (1971). लोकरंग. उदयपुर : भारतीय लोक कला मण्डल.

मिश्र, ए. एवं मिश्र, वी. (2004). पत्रकारिता : मिशन से मीडिया तक. दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.

मेहता, ए. (2011). भारत में पत्रकारिता. नई दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट.

राजस्थान सुजस. (2008 & 2010). जयपुर : सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, राजस्थान.

श्रीधर, वी. (2008). भारतीय पत्रकारिता कोश, दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

सहाय, एस. (2018). हंस-नवसंचार के जनाचारः (न्यू मीडिया विशेषांक) दिल्ली : अक्षर प्रकाशन.

सिंह, डी. (2016). भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के क्रांतिकारी सेनानी. नई दिल्ली : चंबल प्रकाशन.

सिंह, वाई.पी. (2010). मीडिया और साहित्य (प्रथम संस्करण). कानपुर : साहित्य रत्नालय.

सौरभ. (1920). झालावाड़ : 1920 (प्रवेशांक)

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 26-30, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

1857 का स्वतंत्रता संग्राम और दयानंद सरस्वती का संचार तंत्र

डॉ. संजय कुमार[1]

सारांश

मध्यकाल की चुनौतियों के बाद 19वीं शताब्दी में अँग्रेजी शासन के दौरान भारतीय समाज को परिष्कृत करने के प्रयास महर्षि दयानंद सरस्वती, राजा राममोहन राय, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद आदि समाज सुधारकों के द्वारा निरंतर हुए। इन प्रयासों के फलस्वरूप भारतीय समाज में एक नवीन चेतना जाग्रत हुई, जिसे नवजागरण, समाज-सुधार-काल अथवा पुनर्जागरण काल आदि संज्ञा दी जाती है। रामधारी सिंह दिनकर ने अपने ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' में समाज सुधार के इन प्रयासों को 'नवोत्थान' नाम दिया। समाज सुधार के ये कार्य 20वीं सदी में भी अनवरत जारी रहे और आज 21वीं सदी में भी जारी हैं। समाज सुधार कार्यों के अतिरिक्त दयानंद सरस्वती ने ब्रिटिश सत्ता के उन्मूलन के लिए सन् 1857 की राज्य क्रांति का सूत्रपात 1855 के हरिद्वार कुंभ में दंडी स्वामी विरजानंद के गुरु स्वामी पूर्णानंद सरस्वती के सान्निध्य में विद्यार्जन करते हुए नाना साहब, अजीमुल्ला खाँ, बाला साहब, ताँत्या टोपे, बाबू कुँवर सिंह और झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई आदि के साथ मिलकर किया। 1857 की क्रांति में जिन राजाओं ने भाग लिया, वे अधिकतर सभी दंडी स्वामी विरजानंद जी के शिष्य थे। उस समय के राजाओं की जैसी मनोस्थिति थी, उसे देखते हुए कहा जाता है कि उस स्वातंत्र्य समर में स्वयं की आहुति देने की भावना उनकी अपनी नहीं थी, अवश्य ही उन्हें किसी दिव्यात्मा ने प्रेरित किया था। यह प्रेरणा किसी ऐसी दिव्यात्मा द्वारा दी गई, जिसकी उपेक्षा करने का साहस या उसकी बात टालने की हिम्मत उन राजाओं में नहीं थी। भारतीय संस्कृति में गुरु ही एक ऐसा उच्च पदस्थ व्यक्तित्व होता है, जिसकी आज्ञा का उल्लंघन करने की कल्पना उसके शिष्यों में नहीं आती। ऐसे ही गुरु थे स्वामी पूर्णानंद सरस्वती और उनके शिष्य दंडी स्वामी विरजानंद जी। स्वामी विरजानंद जी के ही शिष्य थे दयानंद सरस्वती, जिन्होंने अपने शिष्यों को स्वभाषा, स्वराज और स्वसंस्कृति के रक्षण हेतु प्रेरित किया। इसके लिए उन्होंने उस समय संपूर्ण देश को जोड़ने वाली भाषा हिंदी का उपयोग अपने क्रांतिकारी विचारों को सामान्य जनमानस में संचारित करने के लिए किया। यद्यपि दयानंद जी गुजरात में जन्मे और गुजराती तथा संस्कृत भाषा में ही संप्रेषण करते थे, लेकिन उन्होंने केशवचंद्र सेन के सुझाव पर देवनागरी लिपि सहित हिंदी भाषा को अपने संवाद का माध्यम बनाया। जन संचार के लिए उन्होंने पत्र लेखन, पत्रिकाओं का प्रकाशन, यात्राएँ, प्रवचन, समाचार पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञापन, लेखन आदि का प्रयोग किया। दयानंद सरस्वती का पत्र व्यवहार सर्वप्रथम 1910 में महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानंद) द्वारा संपादित व प्रकाशित किया गया। कुछ विचारक इसे हिंदी साहित्य में पहला प्रकाशित पत्र संग्रह भी कहते हैं। इसके पश्चात् प्राप्त पत्रों को समाहित करते हुए पंडित चमूपति, पंडित भगवद्दत्त रिसर्च स्कालर तथा पंडित युधिष्ठिर मीमांसक ने इसका संपादन किया। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम और दयानंद सरस्वती के संचार तंत्र की जब हम बात करते हैं तो उस समय संचार के सबसे प्रभावी एवं भरोसेमंद माध्यम थे संदेशवाहक और गुप्त सभाएँ। आज संपूर्ण भारत स्वतंत्रता के 75 वर्ष पूर्ण होने पर आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है। इसके पश्चात् देश वर्ष 2023-24 में दयानंद सरस्वती का 200वाँ जयंती वर्ष भी मनाने की प्रतीक्षा कर रहा है। इस निमित्त उनके जीवन पर गहन शोध की आवश्यकता है।

संकेत शब्द : 1857 का स्वातंत्र्य समर, आजादी का अमृत महोत्सव, दयानंद सरस्वती, जनसंचार माध्यम

प्रस्तावना

आर्यावर्त की पवित्र भूमि ने समय-समय पर राष्ट्र को अनेक महापुरुष प्रदान किए हैं। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानंद सरस्वती एक ऐसे ही महापुरुष हैं, जिन्होंने राष्ट्रऋण से उऋण होने के लिए अपना सर्वस्व देश के लिए न्योछावर कर दिया। इसलिए इनको समाज सुधारक, राष्ट्रभक्त, प्रकांड विद्वान, ओजस्वी वक्ता, स्वराज, स्वतंत्रता और स्वभाषा के समर्थक के रूप में जाना जाता है। राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए उनके योगदान पर अभी बहुत अधिक दृष्टि नहीं पड़ी है। संसार उनको एक धार्मिक और सामाजिक महापुरुष के रूप में ही जानता है। वास्तव में वे एक स्वतंत्र विचारक थे, किसी परंपरा और पूर्वाग्रह से बँधे रहना उन्हें स्वीकार न था। वेद से स्वतंत्र चिंतन शक्ति पाने वाले उदारचित्त दयानंद जी अपनी मातृभूमि को पराधीनता में जकड़ा देखकर चुप रहें, यह संभव न था। महारानी विक्टोरिया ने कहा था कि हम चेतावनी देते हैं कि यदि किसी ने हमारी प्रजा के धार्मिक विश्वासों और पूजा पद्धति में हस्तक्षेप किया तो उसे हमारे तीव्र कोप का शिकार होना पड़ेगा। महारानी के अंतर्निहित भावों को समझकर दयानंद सरस्वती ने प्रतिकारस्वरूप कहा कि मत-मतांतरों के आग्रह से रहित, अपने-पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज पूर्ण सुखदायी नहीं है। जीवन के हर क्षेत्र में स्वतंत्रता की अभिव्यक्ति देने वाले संन्यासी द्वारा देश की स्वतंत्रता का यह शंखनाद ही आगे चलकर भारत के जन-जन में गूँजने लगा। स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में जितने भी आंदोलन हुए, उनके बीज दयानंद जी ने अपने अमर ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' के माध्यम से डाले थे। उनका यह ग्रंथ क्रांतिकारियों में स्वतंत्रता की भावना का संचार करने का प्रमुख माध्यम बना। भगत सिंह हों या गांधी, तिलक हों या गोखले, सभी ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से दयानंद जी के ग्रंथों से स्वतंत्रता का बीज मंत्र हासिल किया। बाल्यावस्था के दौरान कुछ ऐसी

[1]सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, महात्मा गांधी टी.टी. कॉलेज, महवा, जिला- दौसा, राजस्थान. ईमेल: sanjaykumararya7@gmail.com

घटनाएँ उनके जीवन में घटीं, जिन्होंने उन्हें राष्ट्र हेतु जीवन समर्पित करने को विवश कर दिया। उन्होंने मानव जीवन के रहस्यों को जानने के लिए अपना पूरा जीवन लगा दिया और फिर जो ज्ञान अर्जित हुआ, उसे भारत की स्वतंत्रता के लिए समर्पित कर दिया। इसके परिणामस्वरूप वर्ष 1857 की क्रांति की योजना को व्यावहारिक रूप में लाने का कार्य नाना साहब, अजीमुल्ला खाँ, बाला साहब, ताँत्या टोपे, बाबू कुँवर सिंह और झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई आदि क्रांतिकारियों ने किया। दयानंद सरस्वती को सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का अग्रदूत कहना गलत नहीं होगा। इसलिए इनके जीवन के विषय में जानने से पूर्व उनके जीवन चरित्र को समझना आवश्यक है।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य दयानंद सरस्वती के सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में योगदान और उस क्रांति के विचारों को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए उनके द्वारा प्रयुक्त संचार माध्यमों का अध्ययन करना है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र की दार्शनिकता, उपादेयता और उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए वर्णनात्मक शोध विधि के अंतर्गत दार्शनिक तथा पुस्तकालीय विधि का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का संकलन

प्रस्तुत शोध-पत्र की आधारभूत सूचना सामग्री के संकलन का आधार पुस्तकों, लेख-स्रोतों और टीकाओं को बनाया गया, जिसके अंतर्गत निम्नलिखित दो प्रकार की लेख- स्रोत सामग्री का प्रयोग किया गया है :

1. प्राथमिक लेख सामग्री : दयानंद सरस्वती द्वारा रचित मौलिक ग्रंथ, प्रलेख एवं टीकाएँ।
2. द्वितीयक लेख सामग्री : प्रबुद्ध व्यक्तियों, विद्वानों और अध्येताओं द्वारा दयानंद सरस्वती के विषय में लिखी गई पुस्तकें, शोधपत्र, प्रलेख एवं टीकाएँ।

दयानंद सरस्वती के सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में योगदान के मूल्यांकन का आधार उनके स्वयं के द्वारा रचित साहित्य और उस साहित्य पर विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखी गई टीकाएँ हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में महर्षि दयानंद सरस्वती द्वारा रचित 'सत्यार्थ प्रकाश', 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका', 'वेदांगप्रकाश', 'पंचमहायज्ञविधि' 'संस्कारविधि, 'गोकरुणानिधि', 'आर्योद्देश्यरत्नमाला, 'भ्रमोच्छेदन' और 'भ्रांतिनिवारण' आदि मौलिक ग्रंथों को प्राथमिक लेख सामग्री के रूप में प्रयुक्त किया गया है। इसी प्रकार पंडित लेखराज, पिंडीदास ज्ञानी और भवानीलाल भारतीय जैसे विद्वानों द्वारा दयानंद सरस्वती के व्यक्तित्व और कृतित्व पर रचित साहित्य को द्वितीयक लेख सामग्री के रूप में सम्मिलित किया गया है।

दयानंद सरस्वती का व्यक्तित्व

जिन्होंने शैशवावस्था में वैदिक संस्कारों को माता के दूध के साथ ग्रहण किया, किशोरावस्था में स्वामी पूर्णानंद सरस्वती और उनके शिष्य दंडी स्वामी विरजानंद जी के चरणों में रहकर पाणिनि रचित अष्टाध्यायी के द्वारा सत्यविद्या को आत्मसात् करने का सौभाग्य प्राप्त किया, उनके व्यक्तित्व को जानना उनके द्वारा स्वतंत्रता संग्राम में दिए गए योगदान को जानने से अधिक कम महत्वपूर्ण नहीं है। दयानंद सरस्वती का जन्म गुजरात के राजकोट जिले में स्थित काठियावाड़ क्षेत्र के टंकारा गाँव के निकट मौरवी नामक स्थान पर 12 फरवरी, 1824 को एक साधन संपन्न परिवार में हुआ था। मूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण दयानंद जी के बचपन का नाम मूलशंकर था। वे बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि के स्वामी थे। मूलशंकर तीन भाइयों और दो बहनों में सबसे बड़े थे। बचपन में घटी कुछ घटनाओं ने उन्हें मूलशंकर से दयानंद सरस्वती बनने की राह पर अग्रसर कर दिया। जब मूलशंकर 16 वर्ष के थे तो उनकी चौदह वर्षीय छोटी बहन का देहांत हो गया। मूलशंकर अपनी बहन से बहुत स्नेह करते थे। पूरा परिवार और निकट-संबंधी शोकाकुल होकर विलाप कर रहे थे और मूलशंकर भी गहन शोक में भाव-विहल थे। तभी उनके मन-मस्तिष्क में कई तरह के विचार उत्पन्न हुए। इस संसार में जो भी आया है उसे एक-न-एक दिन यहाँ से जाना ही पड़ेगा, अर्थात् सबकी मृत्यु निश्चित है और यह जीवन का शाश्वत सत्य है। अगर ऐसा है तो फिर शोक किस बात का? क्या इस शोक और विलाप की समाप्ति का कोई उपाय हो सकता है? इसी प्रकार जब उनके चाचा की उनके सामने बेहद पीड़ा के बीच मृत्यु हुई तब युवा मूलशंकर के मन-मस्तिष्क में एक विचार बार-बार मानसिक प्रतिबिंब बना रहा था कि जब जीवन मिथ्या है और मृत्यु एकमात्र सत्य है, तो ऐसे में क्या मृत्यु पर विजय नहीं पाई जा सकती? क्या मृत्यु के समय के समस्त दुःखों से बचा नहीं जा सकता? यदि हाँ, तो कैसे? इन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए युवा मूलशंकर विचलित रहने लगे। बहुत प्रयास करने के पश्चात् युवा मूलशंकर को एक आचार्य का सान्निध्य प्राप्त हुआ, जिन्होंने परामर्श दिया कि योग से मृत्यु पर विजय पाई जा सकती है तथा योगाभ्यास के माध्यम से ही अमरता को प्राप्त किया जा सकता है। आचार्य के इस परामर्श ने युवा मूलशंकर को इतना प्रभावित किया कि जब उनके विवाह की तैयारियाँ चल रही थीं तो उन्होंने घर को त्यागकर सच्चे ईश्वर, मृत्यु और मोक्ष का रहस्य जानने का दृढ़ संकल्प ले लिया। घर को त्यागने के पश्चात् उन्हें समाज में व्याप्त कर्मकांडों, अंधविश्वासों, कुरीतियों, पाखंडों और आडंबरों से परिचित होने का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। युवा मूलशंकर ने संन्यासी बनने के मार्ग पर चलते हुए अपना नाम मूलशंकर से बदलकर शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी रख लिया। शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी वर्ष 1847 में देशाटन करते हुए नर्मदा नदी के तट पर स्थित स्वामी पूर्णानंद सरस्वती के आश्रम चाणोद कन्याली जा पहुँचे और उनसे 24 वर्ष 2 माह की आयु में सन्न्यास-व्रत की दीक्षा ली।

सन्न्यास-दीक्षा लेने के पश्चात् शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी को एक नया नाम 'दयानंद सरस्वती' दिया गया। स्वामी पूर्णानंद सरस्वती के आश्रम में प्रवास के दौरान दयानंद सरस्वती को सन्न्यासियों से वेदों, पुराणों, उपनिषदों और अन्य धार्मिक साहित्यों के विषय में आलौकिक और दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ। इसके साथ ही उन्हें योगाभ्यास करने और उसकी शक्ति से साक्षात्कार करने का अवसर भी मिला (भवानीलाल भारतीय, 1989, पृ. 21-30)। उन्होंने अपनी योग-साधना के संदर्भ में देशभर के अनेक महत्वपूर्ण पवित्र स्थानों जैसे विंध्याचल, हरिद्वार, राजस्थान, मथुरा आदि की यात्राएँ कीं। इसी दौरान जब वे 4 नवंबर, 1860 को मथुरा पहुँचे तो

उन्हें परम तपस्वी दंडी स्वामी गुरु विरजानंद जी महाराज के दर्शन का लाभ प्राप्त हुआ। गुरु विरजानंद जी एक परम सिद्ध सन्न्यासी थे। अतः पूर्ण विद्या का अध्ययन करने के लिए दयानंद सरस्वती ने उन्हें अपना गुरु बना लिया और वर्ष 1860 से वर्ष 1863 तक तीन वर्ष में उन्होंने गुरु की छत्रछाया में संस्कृत, वेद, पाणिनिकृत अष्टाध्यायी आदि महत्वपूर्ण ग्रंथों का गहन अध्ययन किया (पं. लेखराम, 1897, पृ.30) । पूर्ण विद्याध्ययन के पश्चात् दयानंद सरस्वती ने गुरु विरजानंद जी की इच्छा को देखते हुए गुरुदक्षिणा में आधा सेर लौंग समर्पित करने का प्रयास किया। इस पर गुरु विरजानंद जी ने दयानंद सरस्वती से गुरु-दक्षिणा के रूप में प्रतिज्ञा स्वरूप वचन माँगते हुए कहा कि देश का उपकार करो, सत्य शास्त्रों का उद्धार करो, मत-मतांतरों की अविद्या को समाप्त करो, वैदिक धर्म का प्रचार करो और देश को ब्रिटिश सत्ता से मुक्त करने के लिए लोगों को जागरूक करो। गुरु विरजानंद जी के वचनों की पालना का संकल्प और आशीर्वाद लेकर स्वामी दयानंद जी ने देशभर का भ्रमण और वेदों के ज्ञान का प्रचार-प्रसार करना आरंभ कर दिया (पं. लेखराम, 1897, पृ. 31)। स्वामी दयानंद ने जनसामान्य को वेद-शास्त्रों के आधार पर आध्यात्मिक ज्ञान, योग, यज्ञ, तप और ब्रह्मचर्य की शिक्षा प्रदान की। उन्होंने आलौकिक ज्ञान, समृद्धि और मोक्ष की प्राप्ति हेतु 'वेदों की ओर लौटो' जैसा अचूक मंत्र दिया। उनके अनुसार ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है। जिस प्रकार तिलों में तेल समाया रहता है, उसी प्रकार ईश्वर भी सर्वत्र समाया हुआ है। परमेश्वर ने ही इस संसार का सृजन किया है। जितने भी दुःख हैं, उन सभी से मुक्त होने के लिए मनुष्य को एक सच्चिदानंदस्वरूप परमेश्वर को ही जानने का उद्देश्य लेकर सदैव आनंद में रहना चाहिए। स्वामी दयानंद ने देश में रूढ़ियों, कुरीतियों, आडंबरों, पाखंडों आदि से मुक्ति के लिए चेतनायुक्त एक नवीन स्वर्णिम समाज की स्थापना के उद्देश्य से 10 अप्रैल, 1875 को मुंबई के गिरगाँव के काकड़बाड़ी और पूना में आर्य समाज नाम से एक सुधार आंदोलन की शुरुआत की।

1857 की क्रांति के अग्रदूत

सन् 1857 का स्वतंत्रता संग्राम ऐसी क्रांति थी, जिसमें भारतीय राजा, जनसमूह, किसान, संत, नागरिक और सेना सभी सम्मिलित थे। जनसामान्य ने इसमें उत्साह से भाग लिया। इस आंदोलन को इतिहासकारों ने भारतीय स्वतंत्रता का पहला संग्राम कहा है। इस आंदोलन के दौरान हुए संघर्षों में कई ऐसे गुमनाम संचारक भी शामिल थे, जिन्हें तत्कालीन परिस्थितियों में आदर और उपेक्षा दोनों का सामना करना पड़ा। तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद वे संचारक लोगों में क्रांति का संचार करते रहे। दयानंद सरस्वती के नेतृत्व में सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की संपूर्ण कार्य योजना हरिद्वार के कुंभ मेले के दौरान नाना साहब, अजीमुल्ला खाँ बाला साहब, ताँत्या टोपे और बाबू कुँवर सिंह आदि के साथ हुई बैठक में तैयार की गई थी। 'भारत भारतीयों का है' यह कहने का साहस भी अँग्रेजी शासन में केवल दयानंद सरस्वती में ही था (भवानीलाल भारतीय, 1989, पृ. 31)। उन्होंने अपने प्रवचनों के माध्यम से भारतवासियों को राष्ट्रीयता के साथ स्वयं को देश पर न्योछावर करने का उपदेश दिया। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के शब्दों में स्वराज्य के प्रथम संदेशवाहक स्वामी दयानंद थे। सुभाषचंद्र बोस ने स्वामी दयानंद को आधुनिक भारत का निर्माता कहा है। सरदार बल्लभभाई पटेल ने दयानंद जी को भारत की स्वतंत्रता की नींव डालने वाला कहा है। गरम दल का नेतृत्व करने वाले लोकमान्य बाल गंगाधार तिलक वास्तव में दयानंद सरस्वती के अनुयायी थे और उनके द्वारा लिखित कालजयी ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' से बहुत प्रभावित थे। 'सत्यार्थ प्रकाश' के अध्ययन ने ही लाला लाजपतराय, भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, इंग्लैंड में इंडिया हाउस एवं होमरूल सोसायटी के संस्थापक श्यामजी कृष्ण वर्मा, पंडित लेखराम, पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी, स्वामी श्रद्धानंद सरस्वती, विनायक दामोदर सावरकर, महात्मा हंसराज, मदनलाल ढींगरा और महर्षि अरविंद सहित अनेक क्रांतिकारियों एवं मनीषियों के निर्माण में महती भूमिका का निर्वहन किया। माँ भारती को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए दयानंद सरस्वती ने स्वतंत्रता के लिए पहली क्रांति का ताना-बाना सन् 1855 में ही तैयार कर लिया था। उन्होंने ताँत्या टोपे, नाना साहेब, अजीमुल्लाह खाँ, बाला साहेब तथा बाबू कुँवर सिंह से विमर्श कर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संपूर्ण देश में पदयात्राएँ करके सशत्र क्रांति की योजना को मूर्त रूप दिया था।

दयानंद सरस्वती के संचार माध्यम

पहले दयानंद सरस्वती के विचार गुजराती और संस्कृत भाषाओं में ही प्रकट होते थे, लेकिन उन्होंने यह अनुभव किया कि जनसामान्य उनके विचारों को वैसे नहीं समझ पा रहा है जैसे समझना चाहिए। इसलिए उन्होंने अपने प्रवचनों को उस समय प्रचलित हिंदी भाषा में देना आरंभ किया और इसी भाषा को ग्रंथ लिखने का माध्यम बनाया। दयानंद सरस्वती ने वेदों की शिक्षाओं पर आधारित सत्य साहित्य का सृजन किया। इसके अतिरिक्त दयानंद सरस्वती ने महर्षि पाणिनि कृत अष्टाध्यायी के अर्थ को समझने के लिए 'वेदांगप्रकाश' की रचना की। 'अष्टाध्यायी' की उत्तमता दर्शाना और उसको पढ़ने के लिए रुचि उत्पन्न करना 'वेदांगप्रकाश' का प्रमुख उद्देश्य है। 'वेदांगप्रकाश' के सोलह भाग हैं, जिनमें 'संस्कृतवाक्यप्रबोध' और 'व्यवहारभानु' की रचना दयानंद ने की है और निघंटु, जो कि वेदों का प्राचीन कोश है, महर्षि यास्क द्वारा रचित है। शेष भाग महर्षि पाणिनि कृत अष्टाध्यायी की रचनाएँ हैं । व्याकरण को समझने के लिए 'वेदांगप्रकाश' पाठकों की सहायता करता है। दयानंद सरस्वती ने मनुष्य की व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति के लिए एक अन्य ग्रंथ 'पंचमहायज्ञविधि' की रचना की, जिसमें नित्यकर्म विधि के रूप में पंच महायज्ञों (ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ और भूयज्ञ/बलिवैश्वदेवयज्ञ और नृयज्ञ/अतिथियज्ञ) को करने का विधान समझाया है। उक्त साहित्य के अतिरिक्त दयानंद सरस्वती ने 'संस्कारविधि', 'गोकरुणानिधि', 'आर्योद्देश्यरत्नमाला', 'भ्रमोच्छेदन' और 'भ्रांतिनिवारण' जैसे ग्रंथों की रचना कर देवनागरी भाषा के साहित्य को सशक्त किया है। उन्होंने अपने साहित्य सृजन द्वारा राष्ट्रीयता को प्रोत्साहित करते हुए राष्ट्रभाषा हिंदी का भी समर्थन किया और उसे संचार का माध्यम बनाया।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान न तो टेलीविजन का आविष्कार हुआ था और न ही इंटरनेट का कोई अस्तित्व था। समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकों के अलावा उस समय टेलीग्राफ थोड़ा-बहुत प्रचलन में जरूर था, परंतु ये साधन भी इतने विकसित नहीं हो पाए थे। इसलिए उस समय अधिकांश संचार के माध्यम पत्र-पत्रिकाएँ तथा जनसामान्य से सीधी बातचीत के लिए सभाएँ, यात्राएँ, प्रवचन, पत्र-व्यवहार आदि ही थे। दयानंद सरस्वती द्वारा

लिखे गए पत्र अनेक खंडों में प्रकाशित हुए हैं। मूल रूप से ये पत्र व्यवहार 'ऋषि दयानंद सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' शीर्षक से चार भाग में प्रकाशित हुए। प्रथम व द्वितीय भाग में महर्षि द्वारा लिखित पत्र व विज्ञापन हैं। तृतीय व चतुर्थ भाग में अन्य व्यक्तियों द्वारा लिखित महर्षि से संबद्ध पत्र व विज्ञापन हैं। कई बार इन पत्रों के पाठकों में जिज्ञासा होती है कि संबद्ध व्यक्ति ने इसका क्या उत्तर दिया है अथवा उसने किस प्रकार प्रतिक्रिया की होगी? इस जिज्ञासा का समाधान तीसरे और चौथे भाग में होता है। पत्रों का संकलन एवं संपादन पंडित लेखराम आर्यपथिक, स्वामी श्रद्धानंद, मा. लक्ष्मण शर्मा, पंडित चमूपति, देवेंद्रनाथ मुखोपाध्याय, पंडित घासीराम, महाशय मामराज आर्य, पंडित भगवदत्त, पंडित युधिष्ठिर मीमांसक और प्राध्यापक धर्मवीर ने किया है। बाद में पत्रों के दो खंडों का संपादन डॉ. वेदपाल ने किया। ये दोनों खंड वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से प्रकाशित हुए हैं। पत्र देश ही नहीं, विदेश में रहने वाले लोगों को भी लिखे जाते थे।

'महर्षि दयानंद सरस्वती का पत्र-व्यवहार' खंड-एक की प्रस्तावना में दयानंद सरस्वती के पत्र व्यवहार का जिक्र करते हुए इसके संपादक डॉ. वेदपाल लिखते हैं, "महर्षि दयानंद सरस्वती का पत्र व्यवहार न तो निपट धर्माचार्य और न ही केवल मुक्तिकामी संन्यासी का पत्र व्यवहार है, अपितु राजाओं के साथ राजनीति की चर्चा के समय राजनीतिशास्त्री, राजाओं को दैनंदिन व्यवहार में नैतिकता का संदेश देते हुए राजगुरु तथा राजकर्मचारियों के लिए पेंशन, उनकी विधवाओं तथा अवयस्क बच्चों के निर्वाह की दृष्टि से पेंशन की निर्धारित राशि का निर्देश देते समय आज की परिभाषा में श्रमिक नेता का है। 1882 में गठित शिक्षा आयोग (हंटर कमीशन) के पास हिंदी भाषा के राजकार्य में प्रवृत्ति के लिए ज्ञापन भेजने के लिए स्थान-स्थान पर पत्र लिखकर प्रेरणा देते तथा देश के युवाओं को तकनीकी कला-कौशल सिखाने के लिए जर्मन (जी. वाइज) से पत्र व्यवहार करते हुए वे राष्ट्रचिंतक के रूप में दिखाई देते हैं। कृषि प्रधान देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ है गौ। गौरक्षा के लिए दो करोड़ हस्ताक्षर कराकर लार्डरिपन को सौंपने का उद्यम करते हुए कृषिशास्त्री के दर्शन महर्षि में होते हैं। महर्षि के इस बहुआयामी व्यक्तित्व को समझने के लिए महर्षि का पत्र-व्यवहार गंभीर अध्ययन की अपेक्षा रखता है" (वेदपाल, 2015, खंड एक)। दयानंद सरस्वती का पत्र व्यवहार सर्वप्रथम 1910 में महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानंद) द्वारा संपादित व प्रकाशित किया गया। प्रख्यात समालोचक डॉ. नगेंद्र ने इसे समूचे हिंदी साहित्य में पहला प्रकाशित पत्र संग्रह कहा है। इसके पश्चात् प्राप्त पत्रों को समाहित करते हुए पंडित चमूपति, पंडित भगवद्दत्त रिसर्च स्कालर तथा पंडित युधिष्ठिर मीमांसक ने इसका संपादन किया। महर्षि दयानंद सरस्वती द्वारा बोलकर लिखवाए गए वेदभाष्य, 'सत्यार्थ प्रकाश' तथा संस्कार विधि में कुछ लेखकों ने दयानंद सरस्वती के मंतव्य के विरुद्ध मांस भक्षण, मृतक श्राद्ध, पार्वण यज्ञ में बकरे की बलि आदि प्रसंग प्रक्षेपित कर दिए थे। दयानंद सरस्वती को विज्ञापन जारी कर इन संदर्भों के प्रक्षेप की सूचना देनी पड़ी थी (वेदपाल, 2015, खंड-दो)।

उस समय दूरदराज के लोगों से संवाद का प्रमुख माध्यम पत्र ही थे। उस विधा का दयानंद सरस्वती ने भरपूर प्रयोग किया। इसके अलावा दयानंद सरस्वती जहाँ भी जाते, वहाँ कुछ समय ठहरते और लोगों से संवाद करने का लिए प्रवचन सभाओं का आयोजन करते थे। इसके अलावा दयानंद सरस्वती ने अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया और अनेक शिष्यों को ऐसे प्रकाशन आरंभ करने के लिए प्रेरित किया। इसकी जानकारी उनके द्वारा अपने शिष्यों को लिखे गए पत्रों से साफ तौर से मिलती है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जो भी क्रांतिकारी थे, वे जनसामान्य से सीधे संवाद स्थापित करके ही अपने आंदोलन को गति देते थे। स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान आंदोलनकारी और सत्याग्रही हमेशा पत्रों या संदेशवाहक अथवा तार के द्वारा संवादों का आदान-प्रदान करते थे। पत्र हमारे जीवन में संवाद प्रेषण का महत्वपूर्ण माध्यम हैं। तत्कालीन अँग्रेज विद्वानों के साथ दयानंद सरस्वती का निरंतर पत्राचार होता था और उस समय देश की स्थिति पर वे विचार-विमर्श करते थे।

दयानंद सरस्वती ने अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन इसलिए किया ताकि वे लोगों से प्रभावी संवाद कर सकें। इस कड़ी में अँग्रेजी समाचार पत्रों का प्रकाशन भी चाहते हैं। इसकी जानकारी लाला कालीचरण जी रामचरण जी फर्रुखाबाद को 12 मई, 1881 को लिखे एक पत्र से होती है। उस पत्र में महर्षि लिखते हैं, "आपको भी विदित करते हैं कि आर्यसमाज लाहौर से एक अखबार अँग्रेजी भाषा में जारी होने वाला है। इससे यह अभिप्राय है कि उसके द्वारा वेदोक्त आर्यधर्म तथा आर्यसमाजों की कार्रवाई राज प्रधान अँग्रेजी लोगों को भी विदित होती रहे। वरन विलायत वालों पर भी प्रगट होता रहेगा। इसके प्रबंध में आर्यसमाज लाहौर और मेरठ की अंतरंग सभी को ठीक ठीक अनुमति हो गई है। इसके नफे-नुकसान में सहभागी रहेंगे। मेरी अनुमति है, आप लोग भी इनके शामिल होओ, क्योंकि इस आमदनी और तुम्हारे धर्म तथा आर्यसमाजों की कार्रवाई का ठीक-ठीक वृत्तांत गवर्नमेंट तथा संपूर्ण अँग्रेजों को विदित भी होता रहेगा, जिससे अनेक अच्छे लाभों की आशा हो सकती है। और अनुमान होता है कि यह पत्र विलायत के बड़े-बड़े ठिकानों में पहुँचेगा, इससे आशा है कि लाभ भी अच्छा रहेगा।" प्रयाग के पंडित सुन्दरलाल को 23 मार्च, 1882 को लिखे एक पत्र में महर्षि लिखते हैं, "विदित हो कि आर्य समाज लाहौर में प्रतिमास अँग्रेजी का एक आर्यापत्र निकलता है।" यही नहीं, उन्होंने अपनी अनेक पुस्तकों का अँग्रेजी में अनुवाद कराया, ताकि उनका संदेश पूरे विश्व में अँग्रेजी के जानकार लोगों तक भी पहुँचे और वे भारत को समझ सकें। लाहौर के लाला मूलराज जी को 28 मई, 1881 को लिखे एक पत्र में दयानंद जी 'गोकरुणानिधि' के अँग्रेजी अनुवाद की बात करते हैं। वे लिखते हैं, "लाला मूलराज जी एम.ए. आनंदित रहो। अर्सा तीन महीने के लगभग व्यतीत हुआ कि हमने आगरे के मुकाम से प्रथम ही 'गोकरुणानिधि' की प्रति आपके पास इस अभिप्राय से भेज दी है कि इसका बहुत अच्छा तर्जुमा अँग्रेजी भाषा में कर दीजिए कि वह जल्द छापकर अँग्रेज राजपुरुषों वा सामान्यों के अवलोकनार्थ विलायत तक भी भेजी जावे। जिससे इस बड़े धर्मकार्य में फलप्राप्ति होवे"।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता संग्राम के सूत्रधार के रूप में जिन सामाजिक चेतना और समाज सुधार के कार्यों को 19वीं सदी में जहाँ पर महर्षि दयानंद सरस्वती ने अपनी असामायिक मृत्यु के कारण विश्राम दिया था, उन्हें वहाँ से लाला लाजपतराय, भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल, सुभाष चंद्र बोस के द्वारा पूर्ण करने का प्रयास किया गया। उसी को बाद में काँग्रेस ने अपनाया। महात्मा

गाँधी को राष्ट्रभक्ति का पाठ भी महर्षि दयानंद सरस्वती की परंपरा से प्राप्त हुआ था। महात्मा गाँधी के गुरु गोपालकृष्ण गोखले थे और गोखले के गुरु महादेव गोविंद रानाडे तथा महादेव गोविंद रानाडे के प्रेरणा स्रोत महर्षि दयानंद सरस्वती थे (आचार्य, 2021, पृ. 28)। दयानंद सरस्वती का मूल मंत्र 'वेदों की ओर लौटो' का अनुसरण करके आधुनिक तकनीकी युग के भारत को विश्वगुरु बनाया जा सकता है। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जब सूचना-संचार के साधन अत्यंत सीमित और प्राथमिक अवस्था में थे, तब दयानंद सरस्वती ने किस तरह इतने वैविध्यसभर जनसामान्य से उनकी ही भाषा में बिना विक्षेप के सीधा प्रत्यायन किया? यह वर्तमान संदर्भ में उतना ही बड़ा आश्चर्य है। सूचना और संचार की उन दिनों की प्रणाली का श्रेष्ठतम उपयोग करके दयानंद सरस्वती ने जो भी देशहित के कार्य किए, वे सभी के लिए प्रेरणापुंज के समान हैं। आजादी के अमृत महोत्सव के इस अवसर पर दयानंद सरस्वती को विस्मृत करने का तात्पर्य देश की युवापीढ़ी को स्वभाषा, स्वसंस्कृति और स्वराज की भावना से विमुख करना है। उनके कार्यों के साथ भारतीय संस्कृति वेदों के रूप में हमेशा विश्व समुदाय का मार्ग प्रशस्त करती रहेगी। कोविड-19 महामारी ने इस महापुरुष के विचारों की सत्यता को प्रमाणित ही किया है और दुनिया को वैदिक संस्कृति 'नमस्ते' और वैदिक ज्ञान के महत्व की अनुभूति भी कराई है। भौतिकतावादी विचारधारा केवल महामारी ही दे सकती है, मानव का कल्याण नहीं कर सकती। मानव का हित यदि कहीं है तो वह प्रकृति के संरक्षण के सिद्धांत पर आधारित वैदिक संस्कृति में निहित है। भारत को एकता के सूत्र में बाँधने का जो कार्य महर्षि दयानंद सरस्वती ने हिंदी के माध्यम से किया, उसे आज के संदर्भ में भी जनसंचार का माध्यम बनाकर किया जा सकता है। शायद भारत के नीति-निर्धारक दयानंद जी के विचारों से मतभेद रखते हों, लेकिन गूगल, जो दुनिया का सबसे बड़ा जनसंचार का माध्यम बन चुका है, उसने भी हिंदी और संस्कृत के महत्व को स्वीकार करते हुए इन भाषाओं में अनुवाद की सुविधा देकर इसकी महत्ता को सिद्ध किया है। अतः इस सिद्धांत को समझकर ही विकास की योजनाओं का क्रियान्वयन केंद्र और राज्य सरकारों द्वारा किया जाना चाहिए, ताकि समाज की लघुत्तम इकाई मानव की मानवता जीवित रहे और सभी के अंदर मनुर्भव अर्थात् मनुष्य बनने का भाव विकसित हो।

संदर्भ

आचार्य, बी. (2021, अप्रैल 01). महर्षि दयानंद सरस्वती और आर्यसमाज का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान, अजमेर : पाक्षिक परोपकारी, वर्ष 63, अंक 07, पृ. 28.

दिनकर, आर.एस. (1956, प्र. सं.). संस्कृति के चार अध्याय. पटना : उदयाचल.

लेखराम, पी. (1897). जीवन चरित-महर्षि दयानंद सरस्वती. अजमेर : वैदिक पुस्तकालय.

भारतीय, एल.बी. (1967). स्वामी दयानंद सरस्वती : व्यक्तित्व एवं विचार. जयपुर : सत्य धर्म प्रकाशन.

लक्ष्मी, वी. (2010). महर्षि दयानंद की राष्ट्र को देन. अमृतसर : एक्सल कंप्यूटर्स एंड प्रिंटर्स.

लाजपतराय, एल. (2006). युग प्रवर्तक स्वामी दयानंद. नई दिल्ली : आर्य प्रकाशन.

विद्यार्थी, एम. (1999). ऋषि दयानंद की हिंदी भाषा और साहित्य को देन. हिंडौन सिटी : पं. गुरुदत्त संस्थान.

वेदपाल. (2015). महर्षि दयानंद सरस्वती का पत्र-व्यवहार. अजमेर : वैदिक पुस्तकालय.

सरस्वती, डी. (1884 द्वि. सं.). अथ सत्यार्थ प्रकाश. अजमेर : वैदिक पुस्तकालय.

हंसेन, टी. (1999). द सैफरन वेव: डेमोक्रेसी एंड हिंदू नेशनलिजम इन मॉडर्न इंडिया. यूएसए : प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस.

ज्ञानी, पी. (1971). 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम में स्वराज प्रवर्तक महर्षि दयानंद सरस्वती का क्रियात्मक योगदान, नई दिल्ली : आर्य प्रकाशन.

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 31-36, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

महिला स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा मीडिया के प्रयोग का अध्ययन

साधिका कुमारी[1]

सारांश

भारत की आजादी के लिए हर वर्ग, समुदाय और पेशे के लोगों ने संघर्ष किया, परंतु आजादी की यह गाथा महिला स्वतंत्रता सेनानियों के योगदान के बिना अधूरी है। पुरुषों के साथ महिलाएँ भी स्वराज प्राप्ति के लिए अँग्रेज शासन से संघर्ष करती रहीं। अनेक वीरांगनाओं ने स्वाधीनता संग्राम में अपनी जान की बाजी लगा दी तो कई सालों तक जेलों में अँग्रेजों की बर्बरता सहती रहीं। रणक्षेत्र में अँग्रेजी शासन से लोहा लेने वाली वीर महिलाओं ने भारतीयों को जागरूक करने और आजादी की लड़ाई का संदेश जन-जन तक पहुँचाया, ताकि स्वाधीनता संग्राम को जनआंदोलन का स्वरूप प्रदान किया जा सके। हेमंतकुमारी देवी चौधरी, मैडम भीकाजी कामा, रामेश्वरी देवी, सुभद्राकुमारी चौहान, उर्मिला देवी शास्त्री, बसंती देवी, अरुणा आसफ अली जैसी कई महिला पत्रकारों का नाम इस सूची में शामिल है, जिन्होंने आजादी की इबारत अपनी कलम से लिखी। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महिला स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा संचार माध्यमों का प्रयोग मील का पत्थर साबित हुआ। अनेक स्वतंत्रता सेनानी महिलाओं ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से महिलाओं को शिक्षित कर स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया, जिसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में महिलाओं की भागीदारी स्वाधीनता संग्राम में देखी गई और इस तरह वे अँग्रेज शासन के लिए बड़ी चुनौती साबित हुईं। आजादी के अमृत महोत्सव के दौरान उन वीर महिलाओं पर भी शोध आवश्यक है, जो आजादी के आंदोलन की सूत्रधार रहीं। प्रस्तुत शोध पत्र में मुख्य रूप से आजादी की लड़ाई में महिलाओं के योगदान और उनके द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए मीडिया के प्रयोग का अध्ययन किया गया है।

संकेत शब्द: महिला स्वतंत्रता सेनानी, महिला पत्रकार, स्वतंत्रता आंदोलन, आजादी का अमृत महोत्सव

प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता कई सौ साल के संघर्ष का परिणाम है। बाहरी आक्रमण शुरू होते ही उनका कड़ा प्रतिकार हुआ। अँग्रेज शासन के विरुद्ध भी आम जनता में असंतोष की लहर बढ़ती जा रही थी। 19वीं शताब्दी के दौरान यह असंतोष काफी बढ़ चुका था। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में अँग्रेजी शासन का विरोध कई स्तरों पर शुरू हो गया। आंदोलनकारियों में दो तरह के लोग थे। पहले वे लोग थे, जो शासन में भागीदारी की माँग कर रहे थे, तो दूसरे वे लोग थे, जो पूर्ण स्वाधीनता की माँग कर रहे थे। इधर पुरुषों के साथ महिलाएँ भी कदमताल कर स्वतंत्रता आंदोलन में कूद रही थीं। इनमें ज्यादातर स्वंतत्रता सेनानी महिलाएँ लोगों को जागरूक कर आंदोलन को जन-जन तक पहुँचाने का काम कर रही थीं। वहीं, कई स्वतंत्रता सेनानी महिलाएँ काँग्रेस की बैठकों में शामिल होकर देश को आजाद करने की रणनीति बनाने पर भी काम कर रही थीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जरूरी था कि देश की जनता जागरूक हो, ताकि स्वाधीनता की माँग कुछ लोगों तक सीमित न रहकर जनआंदोलन बन सके। इसके लिए क्रांतिकारियों ने उस वक्त के प्रचलित संचार माध्यमों का सहारा लिया, जिनमें पारंपरिक संचार माध्यमों के साथ ही आधुनिक संचार माध्यमों का भी बड़े स्तर पर प्रयोग किया गया। बड़ी संख्या में उस वक्त समाचार पत्र और पत्रिकाएँ छपने लगी थीं। अँग्रेजी के साथ ही देशी भाषाओं में भी समाचार पत्र-पत्रिकाओं का छपना शुरू हुआ, वहीं 'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान क्रांतिकारियों ने अँग्रेजों के दमन की सूचनाएँ जनता तक पहुँचाने के लिए गुप्त रेडियो प्रसारण शुरू किया।

स्वाधीनता की माँग देश के गाँव-गाँव तक गूँजे, इसके लिए जरूरी था कि पुरुषों के साथ महिलाओं को भी शिक्षित और जागरूक किया जाए। 19वीं शताब्दी में कई ऐसी अग्रिम पंक्ति की महिला स्वतंत्रता सेनानी हुईं, जिन्होंने महिलाओं को शिक्षित और जागरूक करने का बीड़ा उठाया। महिलाएँ भी धीरे-धीरे पुरुषों की भाँति पत्रकारिता के क्षेत्र में कदम बढ़ा रही थीं। अँग्रेजी भाषा में छपने वाले पत्रों के साथ बड़ी संख्या में भारतीय भाषा में भी अखबार और पत्रिकाएँ निकलने लगीं। इनके प्रकाशन, संपादन और लेखन का कार्य ज्यादातर पुरुषों के जिम्मे था, लेकिन कई पढ़ी-लिखी महिलाएँ भी थीं, जिन्होंने घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर न केवल स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लिया, बल्कि वे अपने लेखन कार्य से दूसरी महिलाओं के लिए प्रेरणा भी बनीं। स्वतंत्रता आंदोलन के शुरुआती दिनों से ही महिलाएँ बढ़-चढ़कर इसमें भाग लेने लगी थीं। उस वक्त छप रहे अखबारों और पत्रिकाओं में बड़े पैमाने पर महिलाओं द्वारा प्रकाशित और संपादित पत्र-पत्रिकाएँ भी शामिल थीं। महिला प्रकाशकों, संपादकों और लेखकों का मुख्य उद्देश्य पत्र-पत्रिकाओं के जरिये देश की जनता को शिक्षित करना और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जागरूक करना था।

साहित्य समीक्षा

डॉ. आशीष द्विवेदी ने वर्ष 2017 में भारतीय मीडिया में महिलाओं का प्रतिनिधित्व और चुनौतियाँ पर एक अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि भारतीय मीडिया में महिलाओं की भागीदारी काफी कम रही है। प्रेस के शुरुआती दौर से लेकर आज भी मीडिया के सभी आयामों में पुरुषों की तुलना में महिला मीडियाकर्मियों की संख्या काफी कम है। मीडिया में आज भी प्रमुख पदों पर पुरुषों का ही कब्जा है। दूसरी ओर महिलाओं को मीडिया में काम करने के लिए घर और संस्थान दोनों ही जगहों पर

[1]शोधार्थी, विज्ञापन एवं जनसंपर्क विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल, ईमेल: kumarisinghsadhika45@gmail.com

मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। 'इक्कीसवीं सदी की ओर' पुस्तक में भारतीय महिलाओं को मुख्य विषय के रूप में चुना गया है। पुस्तक में आजादी से पहले और वर्तमान में महिलाओं की स्थिति पर विचार प्रस्तुत किए गए हैं। बदलते परिवेश में भारतीय महिलाओं की समस्याएँ, चुनौतियाँ और उनकी छवि पर लेख प्रस्तुत किए गए हैं। इस पुस्तक में डॉ. राजम नटराजन पिल्लै द्वारा लिखित 'भारत का मुक्ति संघर्षः भारतीय स्त्रियों का मुक्ति आंदोलन' लेख में भारत की आजादी में महिला स्वतंत्रता सेनानियों की भूमिका पर पर विमर्श है, जिसमें बताया गया है कि किस तरह से महिलाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। महिलाओं ने हथियार थामकर अँग्रेजी शासन को चुनौती दी, वहीं अपनी लेखनी से भी स्वतंत्रता आंदोलन को जन आंदोलन बनाने में अपनी भागीदारी निभाई। सुधा शुक्ला ने अपनी पुस्तक 'महिला पत्रकारिता' में आजादी से पहले और स्वतंत्र्योत्तर भारत में महिला पत्रकारों पर गहन अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक के माध्यम से पत्रकारिता के क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को जाना और समझा जा सकता है। स्वतंत्र भारत में महिला पत्रकारों पर भी विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की गई है। इस पुस्तक में महिलाओं द्वारा पत्र-पत्रिकाओं में लिखे गए लेख और उनके विषय पर भी चर्चा की गई है। इसमें पत्रकारों, संपादकों, कवियों और लेखकों के साक्षात्कार भी शामिल हैं।

शोध उद्देश्य

भारत को अँग्रेजों से स्वतंत्र कराने के लिए हजारों देशवासियों ने अपने प्राणों की आहुति दी। इनमें पुरुषों के साथ महिलाओं ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। 1947 से पहले संचार के आधुनिक माध्यमों का उपयोग भी जन जागरूकता के लिए खूब किया गया। प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य यह जानना है कि भारत को स्वतंत्र कराने में महिलाओं की क्या भूमिका रही। साथ ही यह भी जानना है कि महिलाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन को गति देने के लिए संचार माध्यमों का प्रयोग किस प्रकार किया और वह कितना प्रभावी रहा? इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध के दो प्रमुख उद्देश्य हैं :

- भारत की आजादी में महिला स्वतंत्रता सेनानियों की भागीदारी का अध्ययन करना
- महिला स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन में प्रयुक्त संचार माध्यमों (पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो) का अध्ययन करना

शोध प्रविधि

शोध का विषय स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं द्वारा संचार माध्यमों के उपयोग को जानना है। शोध के ऐतिहासिक दृष्टिकोण को देखते हुए इसे पूरा करने के लिए द्वितीयक आँकड़ों एवं तथ्यों का उपयोग किया गया है। इसके लिए पुस्तकों, डाक्यूमेंट, मैगजीन, वेब पोर्टल, शोध आलेख आदि से प्राप्त साक्ष्यों का वर्णनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं का प्रतिनिधित्व

भारत में जिन स्वतंत्रता सेनानियों का प्रमुखता से नाम लिया जाता है, उनमें कई महिला स्वतंत्रता सेनानी भी शामिल हैं। इनमें रानी लक्ष्मीबाई, कस्तूरबा गांधी, विजया लक्ष्मी पंडित, सुचेता कृपलानी, कमला नेहरू, झलकारी बाई, बेगम हजरत महल, रानी चेन्नम्मा, मातंगिनी हजरा, कनकलता बरुआ, तारा रानी श्रीवास्तव, मूलमती, कमला देवी चट्टोपाध्याय, कैप्टन लक्ष्मी सहगल सहित सैकड़ों वीरांगनाएँ शामिल हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के लिए महिला स्वतंत्रता सेनानी हाथों में हथियार लेकर जंग में मैदान में कूद पड़ी थीं। इनमें शिवगंगा की रानी वेलु नचियार ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के खिलाफ युद्ध छेड़ने वाली पहली भारतीय महिला थीं। झलकारी बाई एक महिला सैनिक थीं, जो झाँसी की रानी के प्रमुख सलाहकारों में एक थीं और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की पहली लड़ाई (सिपाही विद्रोह) 1857 में प्रमुख हस्ती बन गईं। मातंगिनी हाजरा बंगाल की बहादुर स्वतंत्रता सेनानी थीं, जिन्होंने अँग्रेजों के खिलाफ आंदोलन करते हुए अपने प्राण न्योछावर कर दिए।

तिलेश्वरी बरुआ : 12 साल की उम्र में शहीद होने वाली तिलेश्वरी बरुआ का स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने स्वतंत्रता सेनानियों के साथ असम के एक पुलिस स्टेशन पर तिरंगा फहराने की कोशिश की, इस दौरान पुलिस की गोली लगने से शहीद हो गईं। तिलेश्वरी बरुआ भारत की सबसे कम उम्र के शहीदों में शामिल हैं।

कनकलता बरुआ : 20 सितंबर, 1942 को तेजपुर कचहरी पर तिरंगा फहराने का निर्णय लिया गया। कनकलता बरुआ हाथ में तिरंगा लेकर आंदोलन का नेतृत्व कर रही थीं। अँग्रेजी सेना के सामने भी निर्भय होकर वे आगे बढ़ती रहीं, इस दौरान उन्हें गोली मार दी गई, जिससे उनकी मृत्यु हो गई। कनकलता बरुआ को उनकी वीरता और निडरता की वजह से वीरबाला भी कहा जाता है।

झलकारी बाई : झलकारी बाई घुड़सवारी और तीरंदाजी में पारंगत थीं। उन्होंने रानी लक्ष्मीबाई के दुर्गा दल में शामिल होकर तोप और बंदूक चलाना भी सीखा। वे रानी लक्ष्मीबाई की हमशक्ल थीं, इसलिए रानी को शत्रुओं से बचाने के लिए कई बार लक्ष्मीबाई के वेश में भी युद्धाभ्यास करती थीं। उन्हें रानी के वेश में युद्धाभ्यास करते हुए अँग्रेजों ने पकड़ लिया, जिसका लाभ उठाकर रानी वहाँ से भागने में कामयाब हो गईं।

रानी चेन्नमा : कर्नाटक के कित्तूर राज्य की रानी चेन्नमा थीं। रानी के पति और बेटे की मृत्यु के बाद अँग्रेजों ने कित्तूर राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने की साजिश रची। रानी ने इसका विरोध किया और अँग्रेजों के साथ युद्ध किए। इस दौरान वे अँग्रेजी सेना का मुकाबला न कर सकीं और गिरफ्तार कर ली गईं। 21 फरवरी, 1829 को कैद के दौरान ही उनकी मृत्यु हो गई।

दुर्गावती बोहरा : 1902 में जन्मी दुर्गावती का विवाह 10 साल की आयु में हो गया। पति की मृत्यु के बाद स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाने लगीं। 9 अक्टूबर, 1930 को उन्होंने गवर्नर हैली पर गोलियाँ चलाई, परंतु वह बच गया। मुंबई पुलिस कमिश्नर को भी दुर्गा भाभी ने गोली दागी थी, जिसके बाद वे गिरफ्तार कर ली गईं। दुर्गा भाभी भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त, चंद्रशेखर आजाद जैसे स्वतंत्रता सेनानियों के साथ काम कर रही थीं। उनका काम क्रांतिकारियों को हथियार पहुँचाना था।

मातंगिनी हाजरा : मातंगिनी हाजरा बंगाल की एक बहादुर स्वतंत्रता

सेनानी थीं, जिन्होंने अँग्रेजों के खिलाफ आंदोलन करते हुए अपने प्राण न्योछावर कर दिए। सन् 1930 में हुए सविनय अवज्ञा आंदोलन में उन्होंने भाग लिया, जिसके बाद नमक कानून को तोड़ने के जुर्म में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। 29 सितंबर, 1942 को तामलुक पुलिस स्टेशन के सामने पुलिस ने गोली मार कर उनकी हत्या कर दी। मातंगिनी हाजरा को बूढ़ी गांधी के नाम भी जाना जाता है।

स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं द्वारा मीडिया का प्रयोग

19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में हुए सामाजिक सुधारों ने पढ़ने-लिखने वाली जनता तैयार की। पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से लोगों को शिक्षित और राजनीतिक रूप से जागरूक किया जाने लगा। महिलाएँ भी सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने लगीं और देशभर में महिलाओं के अपने संगठन बनने लगे। 1920 के दशक में स्वतंत्रता आंदोलन में बड़ी संख्या में महिलाएँ शामिल हुईं। वहीं आजादी की लड़ाई को जन आंदोलन बनाने के लिए महिला स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा संचार माध्यमों का सफल प्रयोग किया गया। इनमें सरोजिनी नायडू, मैडम भीकाजी कामा, उषा मेहता, अरुणा आसफ अली, सुभद्रा कुमारी चौहान, सावित्रीबाई फुले का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। यही वह काल था जब अँग्रेजों के दमन के बावजूद देशी भाषा में बड़ी संख्या में पत्र-पत्रि-काएँ छपने लगी थीं। देसी भाषा की इन पत्र-पत्रिकाओं का मुख्य उद्देश्य जनता को स्वाधीनता आंदोलन के लिए प्रेरित करना था। स्त्रियों के लिए भी कई पत्र-पत्रिकाएँ छपने लगी थीं, इनमें हिंदी की पहली स्त्री पत्रिका 1874 में भारतेंदु द्वारा संपादित 'बालाबोधिनी' थी, जो महिला पाठकों के बीच काफी लोकप्रिय हुई। इस दौरान महिला प्रकाशकों और संपादकों का पदार्पण भी हुआ, जिन्होंने स्त्री शिक्षा पर बल दिया, साथ ही महिलाओं को भी स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया।

भारतीय मीडिया में महिलाओं का प्रवेश सबसे पहले श्रीमती प्रिटचार्ट के रूप में हुआ, जो अँग्रेज महिला थीं। उन्होंने 1833 में प्रकाशित 'ओरिएंटल ऑब्जर्वर' की जिम्मेदारी सँभाली। भारतीय भाषा की पहली महिला पत्रकार मोक्षदायिनी देवी ने कोलकाता से सन् 1848 में 'बांग्ला महिला' नाम से पत्रिका निकाली। इसके बाद गिरींद्रमोहिनी देवी ने बांग्ला पत्रिका 'जाह्नवी' का तीन सालों तक संपादन किया। उषाप्रभा दत्त ने अगस्त 1863 में 'बामा बोधिनी' महिला पत्रिका निकाल कर महिला पत्रकारिता को गति प्रदान की (त्रिवेदी, 2022)। दुर्गाबाई देशमुख समाजसेवी और चिंतक थीं। उनके विचार हिंदी और अँग्रेजी के पत्र और पत्रिकाओं में छपते थे। ब्रिटिश शासन के खिलाफ उन्होंने कई क्रांतिकारी लेख भी लिखे थे। रवींद्रनाथ टैगोर की बड़ी बहन स्वर्णकुमारी देवी ने स्वतंत्रता सेनानी होने के साथ ही पत्रकार और संपादक का दायित्व भी निभाया। उन्होंने 1877 से प्रकाशित 'भारती पत्रिका' का सात सालों तक संपादन किया। वे कवयित्री, उपन्यासकार और सामाजिक कार्यकर्ता भी थीं। इनकी बेटी सरला देवी चौधरी का नाम सक्रिय पत्रकारिता में प्रमुखता से लिया जाता है। स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी 'भारती पत्रिका' में उनके जोशीले लेख छपते थे। वे महात्मा गांधी के विचारों को बांग्ला में अनुवादित कर 'भारती पत्रिका' द्वारा पाठकों तक पहुँचा रही थीं। उन्होंने 'भारती पत्रिका' का संपादन कार्य भी सँभाला और इसके माध्यम से जनमानस में राष्ट्र-चेतना जगाने का काम किया (शुक्ला, 2012)। 'भारती पत्रिका' के संपादन के अलावा सरला देवी ने 'बंगेर वीर' पुस्तक भी लिखी तथा अनेक अनुवाद किए। सन् 1880 से लेकर 1895 तक तीन महत्वपूर्ण स्त्री पत्रिकाओं का जन्म हुआ, जिनका संपादन खुद स्त्रियाँ कर रही थीं। इनमें हिंदी की पहली पत्रिका 'सुगृहिणी' 1888 में छपीं, जिसकी संपादक हेमंतकुमारी देवी थीं। 'भारतभगिनी' 1889 में छपी, जिसकी संपादक हरदेवी और 1893 में छपीं 'वनिता हितैषी' की संपादक भाग्यवती थीं।

हिंदी पत्रकारिता में महिलाओं का प्रवेश

हेमंतकुमारी देवी चौधरी : हेमंतकुमारी देवी चौधरी ने फरवरी 1888 में मध्यप्रदेश के रतलाम से हिंदी की पहली पत्रिका 'सुगृहिणी' निकाली, जिसका उद्देश्य हिंदी क्षेत्र की महिलाओं की दुर्दशा में सुधार लाना था। इस पत्रिका में कुल बारह पृष्ठ होते थे। 19वीं सदी के नवजागरण काल की यह बहुत बड़ी घटना थी कि किसी गैर हिंदी भाषी स्त्री ने स्त्रियों के दुख-दर्द को सामने लाने के लिए हिंदी भाषा में पत्रिका निकाली थी। उन्होंने 'अंतःपुर' (बंग भाषा) पत्रिका का भी तीन साल तक संपादन किया। इसके बाद मध्यप्रदेश से 1902 में प्रकाशित 'आर्य वनिता' का संपादन पंडिता सुमित्रा देवी ने किया। वहीं लाहौर के बैरिस्टर रोशनलाल की पत्नी हरदेवी बहिष्कार आंदोलन के समय 'भारत भगिनी' पत्रिका का संपादन कर रही थीं। स्वतंत्रता सेनानी जानकी देवी ने हरदेवी के विषय में लिखा था कि हरदेवी लाहौर के बैरिस्टर रोशनलाल की पत्नी, समाजसेविका, हिंदी पत्रिका 'भारत-भगिनी' की संपादिका थीं, जो क्रांतिकारियों के मुकदमों में धन इकट्ठा करके सहायता देती थीं। भारतीय इतिहासकार सत्यकेतु विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक 'आर्य समाज का इतिहास' में पटियाला षड्यंत्र केस में हरदेवी द्वारा प्रकाशित समाचारपत्र 'भारत-भगिनी' को राजद्रोहात्मक साहित्य मानकर उसे जब्त करने का उल्लेख किया है तथा रोशनलाल के योगदान को रेखांकित किया है।

मैडम भीकाजी कामा : विदेशी धरती पर पहली बार भारत का झंडा मैडम भीकाजी कामा ने फहराया। सन् 1907 में जर्मनी के स्टटगार्ट में दूसरी इंटरनेशनल सोशलिस्ट काँग्रेस में 46 साल की भीकाजी कामा ने देवनागरी में 'वन्दे मातरम्' लिखा हुआ झंडा फहराया। लंदन में भारतीय छात्रों को अपमानित करने वाले अँग्रेज अधिकारी कर्जन वाइली की हत्या करने वाले मदनलाल ढींगरा की स्मृति में मैडम भीकाजी कामा ने 1909 में 'मदन तलवार' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया। मैडम भीकाजी कामा ने जेनेवा से 'वन्दे मातरम्' नामक क्रांतिकारी जर्नल छापना शुरू किया। उनके द्वारा प्रकाशित 'वन्दे मातरम्' काफी लोकप्रिय हुआ (पांडेय, 2021)। मैडम भीकाजी कामा का कहना था कि हमारे जीवन की सार्थकता अपने देश के लिए मर-मिटने में है। हम भारतीय हैं और अपने देश के लिए प्राण न्योछावर करना हमारा सबसे बड़ा धर्म है। उन्होंने भारतीय युवाओं के लिए दिए गए एक संदेश में कहा था—'आगे बढ़ो, मित्र! आगे बढ़ो! भारत माता को क्रूर ब्रिटिश शासन ने अपने पैरों तले दबा रखा है। वे असहाय होकर निरंतर कुचले जा रहे हैं। उन्हें स्वराज के लिए प्रेरित करो। आगे बढ़ो! हमारा केवल एक ही उद्देश्य होना चाहिए कि हम भारत के लिए हैं और भारत हम भारतीयों का है' (कपिल, 2021).

रामेश्वरी देवी : जून 1909 में प्रयाग से रामेश्वरी देवी के संपादन में

'स्त्री दर्पण' पत्रिका छपनी शुरू हुई। इस पत्रिका का प्रबंधन कमला नेहरू के हाथों में था। पत्रिका में स्त्री मुद्दों पर सामाजिक-राजनीतिक लेख छपते थे। 'स्त्री दर्पण' मुख्य रूप से हिंदी भाषी क्षेत्र में बहुत लोकप्रिय हुई (देव, 2020)। वर्ष 1912 में मेरठ से प्रकाशित 'भारत महिला' जैसी पत्रिका बेहद लोकप्रिय हुई। कुमुदनी मित्रा ने इसके एक अंक में लिखा था कि अगर भारतवासियों ने ब्रिटिश सामान का बहुतायत में बहिष्कार करना शुरू कर दिया तब इंग्लैंड में बड़ी उथल-पुथल हो जाएगी और इससे लॉर्ज कर्जन पर दबाव पड़ेगा कि वह बंगाल विभाजन को रद्द कर दे। इधर भारत की महिलाएँ भी लगातार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अपने विचार जन-जन तक पहुँचाने का काम कर रही थीं। असहयोग आंदोलन के दौरान स्वतंत्रता सेनानी श्याम कुमारी नेहरू जब्त किए गए समाचार पत्र 'स्वराज' की हस्तलिखित प्रतियाँ तैयार करके गुप्त रूप से उनका वितरण करती रहीं।

सुभद्राकुमारी चौहान : सुभद्राकुमारी चौहान का भारत के प्रति प्रेम जगजाहिर है। उन्हें अँग्रेजी शासन का विरोध करने के कारण वर्ष 1923 और 1942 में जेल जाना पड़ा। लेखन के प्रति उनका अगाध प्रेम था। उन्होंने कई कविताओं की रचना की, लेकिन झाँसी की रानी की वीरता पर लिखी गई कविता काफी प्रसिद्ध हुई। सुभद्रा कुमारी चौहान न केवल वीररस की प्रसिद्ध कवयित्री थीं, बल्कि पत्रकार भी थीं। उन्होंने 'कर्मवीर' जैसी पत्रिका में भी लेखन कार्य किया।

उर्मिला देवी शास्त्री : क्रांतिकारी उर्मिला देवी शास्त्री ने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। 21 साल की उम्र में उन्होंने महात्मा गांधी के सत्याग्रह आंदोलन में भाग लिया, जिसकी वजह से उन्हें 17 जुलाई, 1930 को गिरफ्तार कर लिया गया। इस दौरान वे छह महीने जेल में रहीं। इसके बाद वर्ष 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, जहाँ वे गंभीर रूप से बीमार हो गईं। 6 जुलाई, 1942 को उनका निधन हो गया। स्वतंत्रता सेनानी उर्मिला देवी शास्त्री संवेदनशील लेखिका और जुझारू संपादक भी थीं। उन्होंने लाहौर से प्रकाशित दैनिक समाचार पत्र 'जन्मभूमि' का संपादन किया, जिसमें 'जेल जीवन के अनुभव' धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुए थे। इसका संपादकीय अँग्रेजी शासन के विरुद्ध होने की वजह से पत्र के प्रकाशन पर रोक लगा दी गई।

बसंती देवी : बसंती देवी (23 मार्च, 1880) ने स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्हें असहयोग आंदोलन में शामिल होने की वजह से पहली बार 1921 में गिरफ्तार किया गया। 1921-22 के दौरान वे बंगाल काँग्रेस की प्रेसिडेंट भी रहीं। वर्ष 1925 में पति चितरंजन दास की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने 'बंगालेर कथा' नामक पत्रिका का संपादन किया। उन्होंने लाला लाजपत राय पर ब्रिटिश हमले के बाद भारतीय युवाओं का भारत की गरिमा पर जोर देने का आह्वान किया था। नेताजी सुभाष चंद्र बोस उन्हें 'दत्तक माता' मानते थे।

कमला देवी चट्टोपाध्याय : कमला देवी चट्टोपाध्याय ने 'ऑल इंडिया वीमेंस कांफ्रेंस' की स्थापना की। वे गांधीजी के 'नमक आंदोलन' (1930) और 'असहयोग आंदोलन' में हिस्सा लेने वाली महिलाओं में से एक थीं। नमक कानून तोड़ने के मामले में बांबे प्रेसीडेंसी में गिरफ्तार होने वाली वे पहली महिला थीं। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान चार बार जेल गईं और पाँच साल तक सलाखों के पीछे रहीं। कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने 'द अवेकिंग ऑफ इंडियन वोमेन' वर्ष 1939, 'जापान इट्स विकनेस एंड स्ट्रेंथ' वर्ष 1943, 'अंकल सैम एंपायर' वर्ष 1944, 'इन वार-टॉर्न चाइना' वर्ष 1944 और 'टुवर्ड्स ए नेशनल थिएटर' नामक पुस्तकें भी लिखीं, जो बहुत चर्चित रहीं।

गुलाब कौर : फिलीपींस के मनीला में गदर पार्टी के क्रांतिकारियों से मुलाकात के बाद भारत की इस बेटी का मन बदल गया और उन्होंने देश की आजादी में भाग लेने का मन बनाया। इसके बाद देश को अँग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराने के लिए वे स्वदेश वापस लौट आईं। यहाँ उन्होंने जालंधर, कपूरथला, होशियारपुर जैसे इलाकों में क्रांतिकारी गतिविधियों में भाग लेना शुरू किया। साथ ही स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े साहित्य और प्रकाशनों को घर-घर जाकर बाँटा। पत्रकार की भूमिका में उन्होंने गदर पार्टी के क्रांतिकारियों के लिए गुप्त संदेश और हथियार पहुँचाने का काम भी किया। 1929 में ब्रिटिश पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और दो साल तक लाहौर के शाही किले में बंद रखा गया, जहाँ उन्हें तरह-तरह की यातनाएँ दी गईं। गिरफ्तारी से छूटने के बाद बेहद कमजोर हो चुकी गुलाब कौर की जल्द ही मृत्यु हो गई।

स्वराज आंदोलन में विदेशी महिलाओं का योगदान और मीडिया

भारत में स्वतंत्रता आंदोलन को गति देने और जनता को जागरूक करने में विदेशी महिलाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनमें एनीबेसेंट, मार्गरेट कजिंस, भगिनी निवेदिता का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। ब्रिटेन में जन्मीं एनी बेसेंट को भारत से विशेष लगाव था। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सहयोग प्रदान किया। 1908 में एनी बेसेंट थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्ष बनीं। वर्ष 1917 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्ष चुनी गईं। 1914 में एनी बेसेंट द्वारा 'कॉमन व्हील' नामक साप्ताहिक समाचार पत्र निकालने का उल्लेख मिलता है, जिसमें स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी खबरें छपती थीं। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित मुद्दों को उजागर करने के लिए दैनिक समाचार पत्र 'न्यू इंडिया' का भी प्रकाशन किया। अखिल भारतीय महिला सम्मेलन तथा 'इंडियन वुमेन एसोसिएशन' की संस्थापिका मार्गरेट कजिंस ने संस्था की अध्यक्ष होने के साथ-साथ संस्था की पत्रिका 'स्त्रीधर्म' (1918) और 'रोशनी' का भी संपादन किया।

भारत छोड़ो आंदोलन में महिलाओं का योगदान

1942 का भारत छोड़ो आंदोलन देश को स्वराज दिलाने में अहम कड़ी साबित हुआ। इस आंदोलन में कई महिला क्रांतिकारी उभरकर सामने आईं। इनमें अरुणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी, राजकुमारी अमृत कौर, बहुरिया रामस्वरूप देवी, सुभद्रा जोशी, पूर्णिमा बनर्जी, डॉ. सुशीला नायर, अम्मू स्वामीनाथन, उषा मेहता आदि महत्वपूर्ण महिला क्रांतिकारी नेता रहीं। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान व्यापक पैमाने पर महिलाओं ने ऐसे शिविरों का आयोजन किया, जिनमें अनुशासनबद्ध होकर काम करने, आत्मरक्षा के लिए लाठी चलाने और प्राथमिक चिकित्सा के लिए प्रशिक्षण दिया जाता था। इस दौरान महिला स्वतंत्रता सेनानियों ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अँग्रेजी हुकूमत को चुनौती दी और राष्ट्रवादी

विचारधारा का प्रचार-प्रसार किया। स्वतंत्रता सेनानी गोपाल देवी ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन में श्रेष्ठ योगदान दिया। उनके संपादन में छपने वाली 'गृहलक्ष्मी' पत्रिका में राष्ट्रवादी विचारधारा का प्रसार-प्रचार किया जा रहा था। भारत की पहली महिला फोटोग्राफर के रूप में होमी व्यारवाला को पहचान मिली। फोटो पत्रकार के रूप में उन्होंने भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरु, मुहम्मद अली जिन्ना की तस्वीरें लीं। अपने छायांकन के माध्यम से उन्होंने राष्ट्र के तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक जीवन को दर्शाया। उन्होंने 15 अगस्त, 1947 को लाल किले पर पहली बार फहराए गए झंडे, भारत से लॉर्ड माउंटबेटन के प्रस्थान, महात्मा गांधी की अंतिम यात्रा आदि की तस्वीरें भी लीं।

अरुणा आसफ अली

'ग्रांड ओल्ड लेडी' के नाम से प्रसिद्ध अरुणा आसफ अली ने स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1930 में हुए नमक सत्याग्रह में अरुणा आसफ अली शामिल हुईं और कई स्थानों पर इस आंदोलन का नेतृत्व किया, जिसकी वजह से उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और ब्रिटिश शासन ने उन्हें एक साल जेल की सजा सुनाई। जेल से रिहा होने के बाद भी वे लगातार आंदोलन में भाग लेती रहीं। 1932 में उन्हें एक बार फिर गिरफ्तार कर लिया गया। यहाँ जेल में कैदियों के साथ हो रहे बुरे बर्ताव को लेकर उन्होंने भूख हड़ताल की, जिसके बाद कैदियों को राहत मिली। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान मुंबई में आयोजित काँग्रेस अधिवेशन (1942) में उन्होंने हिस्सा लिया। 9 अगस्त, 1942 को काँग्रेस नेताओं की गिरफ्तारी के बाद अरुणा आसफ अली ने मुंबई के गोवालिया टैंक मैदान में झंडा फहराकर आंदोलन की अध्यक्षता की। सरकार ने उन्हें पकड़ने के लिए 5 हजार रुपये इनाम की घोषणा की। 26 जनवरी, 1946 को उन्होंने खुद 'सरेंडर' कर दिया। स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वालीं अरुणा आसफ अली ने डॉ. राममनोहर लोहिया के साथ मिलकर 'इनकलाब' नामक मासिक पत्रिका का संचालन किया। वर्ष 1944 में 'इनकलाब' नामक पत्र में लिखा, 'आजादी की लड़ाई के लिए हिंसा-अहिंसा की बहस में नहीं पड़ना चाहिए। क्रांति का यह समय बहस में खोने का नहीं है। मैं चाहती हूं इस समय देश का हर नागरिक अपने ढंग से क्रांति का सिपाही बने' (पिल्लै, 2001)।

सरोजिनी नायडू

सरोजनी नायडू का स्वाधीनता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान रहा। गोपाल कृष्ण गोखले को वे अपना राजनीतिक पिता मानती थीं। 1914 में महात्मा गांधी से पहली बार उनकी मुलाकात हुई, गांधीजी से प्रभावित होकर वे स्वराज आंदोलन में सक्रिय हो गईं। 1925 में कानपुर में हुए काँग्रेस अधिवेशन में काँग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष चुनी गईं। उन्होंने नमक सत्याग्रह में हिस्सा लिया और गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद नमक सत्याग्रह का नेतृत्व सँभाला। भारत में प्लेग महामारी के दौरान किए गए उनके कार्यों की वजह से उन्हें 'केसर-ए-हिंद' की उपाधि दी गई, लेकिन जालियावालाँ बाग हत्याकांड से क्षुब्ध होकर उन्होंने ब्रिटिश हुकूमत को यह उपाधि लौटा दी। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रियता की वजह से उन्हें जेल भी जाना पड़ा। स्वतंत्रता सेनानी सरोजिनी नायडू सामाजिक और राजनीतिक कार्यकर्ता होने के साथ ही कवयित्री भी थीं। उनकी कविताओं में देशभक्ति, प्रकृति, मानवता, वसुधैव कुटुंबकम्, महिला जैसे विषयों की प्रमुखता होती थीं। उनकी महत्वपूर्ण कृतियों में 'दी मैजिक ट्री', 'ए ट्रेजरी ऑफ पोयम्स', 'द गिफ्ट ऑफ इंडिया', 'द गोल्डन थ्रेशोल्ड', 'द बर्ड ऑफ टाइम', 'द ब्रोकन विंग', 'द क्वींस राइवल' शामिल हैं। सरोजिनी नायडू को आजाद भारत की पहली महिला गवर्नर होने का गौरव भी प्राप्त है (नरावणे, 1996)। लेखन में उनके योगदान को देखते हुए ही पत्रकारिता के क्षेत्र में हर साल सरोजनी नायडू पुरस्कार प्रदान किए जाते हैं। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में भी महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई। महिलाओं ने पैंफलेट (पर्चे) तैयार करने से लेकर, प्रतिबंधित साहित्य के वितरण, काँग्रेस रेडियो के प्रसारण तक जैसे कार्यों में अग्रणी भूमिका निभाई।

स्वराज आंदोलन में रेडियो का प्रयोग और महिला स्वतंत्रता सेनानी

स्वंतत्रता आंदोलन को तेज करने के लिए प्रेस को माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया गया, जिसकी वजह से ब्रिटिश हुकूमत ने प्रेस पर तरह-तरह की पाबंदियाँ लगाईं। इधर प्रेस के साथ ही आंदोलनकारी प्रसारण माध्यम का प्रयोग भी जनता तक सूचनाएँ पहुँचाने के लिए करने लगे। नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने वर्ष 1942 में जर्मनी से 'आजाद हिंद रेडियो' का प्रसारण प्रारंभ किया, ताकि भारतीय जनता को अँग्रेजी शासन के खिलाफ लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। इस रेडियो स्टेशन से अँग्रेजी, तमिल, बंगाली, मराठी, पंजाबी, पश्तो और उर्दू में साप्ताहिक समाचार बुलेटिन प्रसारित किए जाते थे। 1942 में महात्मा गांधी के भारत छोड़ो आंदोलन की वजह से ब्रिटिश शासन ने प्रेस पर पाबंदी लगा दी, जिसके बाद काँग्रेस के कुछ नेताओं ने रेडियो प्रसारण का खुफिया संचालन करने का फैसला लिया। काँग्रेस नेताओं के कहने पर नरीमन प्रिंटर ने ट्रांसमीटर के पुर्जे जमा किए और रेडियो प्रसारण के लिए उसे तैयार कर दिया। रेडियो प्रसारण का नाम 'द वायस ऑफ फ्रीडम' रखा गया था। 14 अगस्त, 1942 को मुंबई के चौपाटी इलाके की 'सी व्यू' नामक इमारत से रेडियो प्रसारण शुरू हो गया। इस रेडियो स्टेशन से पहला संदेश भेजा गया : 'यह काँग्रेस रेडियो है और 42.84 मीटर पर हिंदुस्तान की किसी जगह से प्रसारित हो रहा है।' उषा मेहता का मुख्य काम समाचार और हिंदुस्तानी भाषाओं में वार्ताएँ प्रसारित करना था। 'काँग्रेस रेडियो' का अपना ट्रांसमीशन स्टेशन और रिकॉर्डिंग स्टेशन था, साथ ही उसकी अपनी वेव लाइन भी थी। 12 नवंबर, 1942 को पुलिस ने छापा मारकर उषा मेहता, बाबूभाई प्रसाद और उनके सहयोगी को गिरफ्तार कर लिया। रेडियो प्रसारण करने की वजह से उषा मेहता को 4 साल जेल की सजा हुई, वे अप्रैल 1946 तक जेल में ही रहीं (पिल्लै, 2001)।

निष्कर्ष

भारतीय स्वधीनता संग्राम में पुरुषों की भाँति महिलाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। शोध से स्पष्ट है कि महिलाओं की भागीदारी ने स्वराज आंदोलन को मजबूती प्रदान की। महिलाओं ने अँग्रेजों के अन्याय के खिलाफ शस्त्र तो उठाया ही, साथ ही लेखनी के माध्यम से भी जनता को स्वराज आंदोलन के लिए लगातार प्रेरित किया। अँग्रेजी हुकूमत के दौरान समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। महिलाओं

को घर की चारदीवारी से बाहर भी निकलने की अनुमति नहीं थी, तब सैंकड़ों वीर महिलाओं ने समाज की रूढ़िवादी बेड़ियों को तोड़कर देश को अँग्रेजी हुकूमत से आजादी दिलाने के लिए अपनी जान तक को न्योछावर कर दिया। सरोजिनी नायडू और अरुणा आसफ अली जैसी कई स्वतंत्रता सेनानी महिलाएँ काँग्रेस में महत्वपूर्ण पदों पर रहीं और देशहित में अहम फैसले लिए। इनके कदमों ने अँग्रेजी शासन को भारत छोड़ने पर मजबूर कर दिया। स्वतंत्रता आंदोलन में उस वक्त की पढ़ी-लिखी भारतीय महिलाओं ने भी समाज को जागरूक करने का कार्य किया, ताकि देश की जनता अँग्रेजी हुकूमत के खिलाफ खड़ी हो सके। इन महिला पत्रकारों की वजह से वे महिलाएँ भी बड़ी संख्या में स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने लगीं, जो अनपढ़ थीं या जिन्हें समाज में दोयम दर्जे का समझा जाता था। शोध से स्पष्ट है कि महिलाओं ने भी पुरुषों की भाँति आजादी के संग्राम में बराबर भूमिका निभाई। शुरुआती दिनों में भारतीय महिलाओं के पत्रकारिता जैसे पेशे में आने की बड़ी वजह स्वतंत्रता प्राप्ति ही थी। इसलिए यह कहा जा सकता है कि महिलाएँ जब कलम हाथ में थाम लेती हैं तो वे समाज ही नहीं, देश में भी बड़े बदलाव की सूचक बन जाती हैं और समाज के साथ देश को भी एक नई दिशा प्रदान करती हैं। इतिहास के पन्नों में कई महिला पत्रकार हैं, जिन पर अभी भी शोध होना शेष है। उनमें से कई वीरांगनाओं को हम चिह्नित नहीं कर पाते हैं, इन क्रांतिकारी महिलाओं को चिह्नित कर उन पर शोध किया जा सकता है, जिससे देश की युवा पीढ़ी को भारत के इतिहास को जानने में मदद मिल सकती है। स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं की भूमिका और मीडिया के प्रयोग पर आधारित इस शोध में सीमित संसाधनों से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण किया गया है। शोध का कार्य क्षेत्र विस्तृत होने की वजह से कम समय में पूरे किए गए इस अध्ययन में तथ्यों के संकलन की सीमाएँ हैं। शोध पत्र में जिन स्वतंत्रता सेनानी महिलाओं के कार्यों का वर्णन है, उनके अलावा भी स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाने वाली महिलाओं और उनके द्वारा मीडिया के प्रयोग पर शोध की संभावना है। इसलिए प्रस्तुत शोधपत्र के बाद भी इस विषय पर गहन शोध की आवश्यकता है, जिससे स्वराज आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाने वाली अन्यान्य महिलाओं को जाना जा सके।

संदर्भ सूची

अखंड ज्योति. (फरवरी 2001). नारी जागरणः स्वतंत्रचेता मन की प्रतिध्वनि, ये वीरांगनाएँ. अखंड ज्योति, फरवरी 2001 अंक. पृ. 35.

अनसंग हिरोज डिटेल. (2022). आजादी का अमृत महोत्सव. https://amritmahotsav.nic.in/unsung-heroes-detail.htm?2073 से दिनांक 25 अप्रैल, 2022 को पुनःप्राप्त.

आर्य, डी. (8 मार्च, 2018). वो औरत जिसने विदेश में पहली बार फहराया भारत का झंडा. बीबीसी न्यूज हिंदी: https://www.bbc.com/hindi/india-39190433 से दिनांक 22 अप्रैल, 2022 को पुनःप्राप्त.

कपिल. (2021). मैडम भीकाजी कामा. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

त्रिवेदी, ए. (2022). सृजन क्षेत्र. स्वंय सिद्धा: https://www.swayamsiddha.co से दिनांक 21 अप्रैल, 2022 को पुनःप्राप्त.

दशोत्तर, ए. (2017). 150 साल पहले 'रत्नप्रकाश' से हुई थी रतलाम में पत्रकारिता की शुरुआत. दैनिक भास्कर : https://www.bhaskar.com/news/MP-RAT-MAT-latest-ratlam-news-043014-2708601-NOR.html से दिनांक 20 अप्रैल, 2022 को पुनःप्राप्त.

देव, ए. (2 नवंबर, 2020). आलेख. समालोचन: https://samalochan.blogspot.com/ से दिनांक 20 अप्रैल, 2022 को पुनःप्राप्त.

नरावणे, वी.एस. (1996). सरोजनी नायडू हर लाइफ, वर्क एंड पोएट्री. नई दिल्ली : ओरियंट लॉङ्गमैन लिमिटेड.

पांडेय, एस. वाई. (2021). वीरांगनाएँ : भारत की महान मातृशक्ति को समर्पित. नोशन प्रेस मीडिया प्राइवेट लिमिटेड.

पिल्लै, डी. आर. (2001). भारत का मुक्ति संघर्षः भारतीय स्त्रियों का मुक्ति संघर्ष. स. क. कांत, इक्कीसवीं सदी की ओर. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.

यामिनी, आर.बी. (2017). मैडम भीकाजी कामा. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

श्वेता, डी. (2018). भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस एवं महिलाएँ. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

शुक्ला, एस. (2012). महिला पत्रकारिता. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.

शुभी, सी. (29 जुलाई, 2019). अरुणा, जिनके आंदोलनों से परेशान होकर अँग्रेजों ने संपत्ति जब्त कर ली थी. द लल्लनटॉप : https://www.thelallantop.com/bherant/aruna-asaf-ali-was-the-leader-of-1942s-quit-india-movement-with-maa hatma-gandhi/ से दिनांक 20 अप्रैल, 2022 को पुनःप्राप्त.

श्रीधर, वी. (2008). भारतीय पत्रकारिता कोश, वोल्यूम-1. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 37-50, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

स्वातंत्र्य संग्राम में संवाद समितियों की भूमिका

डॉ. रवींद्र अग्रवाल[1]

सारांश

भारत में ब्रिटिश संवाद समिति 'रॉयटर' ने सबसे पहले 1866 में बंबई में कार्यालय स्थापित कर ब्रिटेन के कपास व जूट आदि उद्योगों के लिए कच्चे माल के बाजार भाव यहाँ से भेजने प्रारंभ किए। परंतु, राजनीतिक समाचार प्रेषण का कार्य 1885 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना के समय ही प्रारंभ किया गया। 'रॉयटर' ब्रिटेन की कार्यप्रणाली के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में कार्यरत थी और समाचारों पर अँग्रेजों का ही नियंत्रण था। चूँकि 'रॉयटर' ही भारत के समाचार पत्रों को देश-विदेश के समाचार उपलब्ध कराती थी, इसलिए उन्हें स्वातंत्र्य आंदोलन से संबंधित समाचार इसके माध्यम से नहीं मिलते थे। अत: स्वातंत्र्य चेतना जागरण की दृष्टि से 'रॉयटर' की कोई भूमिका नहीं रही। इसके विपरीत वह ब्रिटिश हितों के दृष्टिगत इस चेतना को दबाने में ही लगी थी। अँग्रेजों ने 'रॉयटर' का उपयोग एक हथियार के रूप में किया और उसके असंतोषजनक काम के बावजूद उसका वर्चस्व बनाए रखने के लिए उसे पूरा संरक्षण भी प्रदान किया। भारत में समाचार पत्रों की आवश्यकताओं को देखते हुए पत्रकार केशब चंद्र रॉय ने अपने कुछ सहयोगियों के साथ मिलकर 1910 में 'एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया' नाम से एक संवाद समिति की स्थापना की, लेकिन संसाधनों की कमी और सरकार का सहयोग न मिलने से इसे 1919 में रॉयटर के साथ गठबंधन करने के लिए बाध्य होना पड़ा। 1925 में पत्रकार स्वामीनाथ सदानंद ने कुछ उद्यमियों के सहयोग से 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' (एफपीआई) की स्थापना की, जिसका उद्देश्य समाचारों में भारतीय दृष्टिकोण को प्रस्तुत करना था। अँग्रेजों को यह सब नहीं भाया और उन्होंने 'एफपीआई' को कुचलने के लिए भी वही सब तरीके अपनाए जो वे 1757 से भारतीयों की भावनाओं को क्रूरतापूर्वक कुचलने के लिए अपनाते रहे। इस कारण 'एफपीआई' को 1935 में बंद कर दिया गया, परंतु सदानंद ने हार नहीं मानी। इसी बीच पत्रकार बी. सेन गुप्त ने 1933 में 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया' की स्थापना की, लेकिन संसाधनों की कमी के कारण यह भी 'रॉयटर' को चुनौती नहीं दे सकी। अँग्रेजों ने अमेरिकी स्वामित्व वाली 'ब्रिटिश यूनाइटेड प्रेस' और आस्ट्रेलिया की 'आस्ट्रेलियन केबल सर्विस' को भी भारत छोड़ने के लिए बाध्य किया, ताकि 'रॉयटर' का वर्चस्व बना रहे।

संकेत शब्द : न्यूज एजेंसीज, रॉयटर्स, एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया, फ्री प्रेस ऑफ इंडिया, यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया, ब्रिटिश यूनाइटेड प्रेस, आस्ट्रेलियन केबल सर्विस, फ्री प्रेस जर्नल, स्वामीनाथ सदानंद, केशब चंद्र राय, बी. सेन गुप्त

प्रस्तावना

सत्य के अन्वेषण हेतु जनजागरण और समाचारों व जानकारियों के वैश्विक आदान-प्रदान में संवाद समितियों यानी न्यूज एजेंसियों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। जब से संवाद समितियाँ आरंभ हुई हैं, तब से वैश्विक स्तर पर, समाचार प्रेषण का कार्य सरलतापूर्वक व त्वरित गति से होने लगा है। यह कहना गलत न होगा कि संवाद समितियों के उद्भव और दूरसंचार के लिए टेलीग्राफ तार के दुनियाभर में बिछाए जाने से समाचारों को पंख लग गए। इस बात को इस तथ्य से और भी सहज रूप से समझा जा सकता है कि संवाद समिति के प्रारंभ होने से पहले 19वीं शताब्दी के मध्य में भारत से किसी समाचार को लंदन पहुँचने में जहाँ एक माह से अधिक का समय लग जाता था, वहीं संवाद समितियों के विस्तार के बाद कोई भी समाचार पल भर में दुनिया के किसी भी कोने में पहुँच जाता है। इससे जहाँ समाचारों का आदान-प्रदान सहज हुआ है, वहीं सामान्य व्यक्ति के लिए भी समाचारों की सच्चाई से अवगत होना सहज व सुलभ हुआ है। भारत में संवाद समिति की शुरुआत ब्रिटेन की संवाद समिति 'रॉयटर' द्वारा 1866 में बंबई से की गई, जिसका उद्देश्य भारत से कपास व जूट आदि जिंसों के दैनिक बाजार भाव ब्रिटेन के उद्योगों को उपलब्ध कराना था। उस समय ब्रिटेन के कपड़ा, जूट व कई अन्य उद्योग भारत से आयातित कच्चे माल पर निर्भर थे, इसलिए उन्हें बाजार में टिके रहने के लिए भारत से आयातित कच्चे माल के बाजार भावों के उतार-चढ़ाव को ध्यान में रखना आवश्यक था। इस प्रकार ब्रिटेन के उद्योग व बाजार के हितों को देखते हुए 'रॉयटर' ने बंबई में अपना रिपोर्टर नियुक्त किया था। इसके बाद भारत से राजनीतिक समाचार भेजने का सिलसिला 19 वर्ष बाद 1885 में शुरू हुआ। यह वही वर्ष है जब एक अँग्रेज अधिकारी ए.ओ. ह्यूम ने भारत में 'इंडियन नेशनल काँग्रेस' की स्थापना तत्कालीन वायसराय लॉर्ड डफरिन से परामर्श और उनकी अनुमति मिलने के बाद की थी।

'रॉयटर' को 1885 में ही भारत से राजनीतिक समाचार भेजने की आवश्यकता क्यों महसूस हुई और उसके प्रति अँग्रेज सरकार का क्या रुख था, यह विस्तृत विश्लेषण का विषय है। इसके साथ ही यह प्रश्न भी विश्लेषण का विषय है कि क्या इसके बाद किसी भारतीय पत्रकार या समाचार पत्र ने भारतीय संवाद समिति शुरू करने के प्रयास किए या नहीं और यदि ऐसा कोई प्रयास हुआ तो उसके प्रति अँग्रेज सरकार का रुख कैसा था और क्या भारतीय संवाद समिति के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जाता था जैसा 'रॉयटर' के प्रति था? इसके साथ ही इस शोधपत्र का प्रतिपाद्य विषय 'स्वातंत्र्य संग्राम में संवाद समितियों की भूमिका' भी विस्तृत विश्लेषण का विषय है। प्रस्तुत शोध के प्रतिपाद्य विषय के साथ यथोचित न्याय करने के लिए सर्वप्रथम संक्षेप में यह जानना और समझना आवश्यक है कि भारत में, जन-जागरण में, संचार माध्यमों की क्या भूमिका

[1]वरिष्ठ पत्रकार, लेखक एवं पूर्व सहयोगी संपादक, दैनिक जागरण. नई दिल्ली. ईमेल : agravindra@gmail.com

रही? 'अँग्रेजी राज' के खिलाफ भारतवासियों को लगभग 200 वर्ष, जो संघर्ष करने के लिए मजबूर होना पड़ा, उसके क्या कारण थे? अँग्रेजों के राज ('ईस्ट इंडिया कंपनी के राज' व 'ताज के राज') में भारतीयों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता था? ब्रिटेन के राजनेताओं, भद्रलोक, समाचार पत्रों व सामान्य जनमानस में भारतीयों के प्रति आम धारणा कैसी थी? इसे समझने के बाद ही 'स्वातंत्र्य संग्राम में संवाद समितियों की भूमिका' को सरलता से समझा जा सकेगा।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है, इसलिए इस हेतु द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है। इस संबंध में विभिन्न पुस्तकों, सरकारी दस्तावेजों और वेबसाइटों पर उपलब्ध सामग्री का भी उपयोग किया गया है। शोध मुख्य रूप से गुणात्मक डाटा पर आधारित है।

भारत में संचार माध्यमों का क्रमिक विकास और जनजागरण में उनकी भूमिका

मानव विकास के प्रारंभ से ही सत्यान्वेषण की दृष्टि से जनजागरण और सामाजिक परिवर्तनों में संचार माध्यमों की विशेष भूमिका रही है। इस विकास क्रम के आगे बढ़ते रहने के साथ ही यह भूमिका भी अधिकाधिक प्रभावी और महत्त्वपूर्ण होती गई। भाषा व लिपि के आविष्कार और इसके साथ ही तकनीकी विकास से संचार माध्यमों की इस भूमिका में बहुत ही क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। परंपरागत रूप से संचार माध्यमों के रूप में शिलालेखों, ताम्रपत्रों व ताड़पत्रों पर लिखी गई विविध सूचनाओं और साहित्य सृजन ने जनजागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके साथ ही उपदेश व प्रवचन, नाटक, नौटंकी, कठपुतली, नृत्य-संगीत, लोकगीतों व मेले आदि समय-समय पर जनजागरण के माध्यम रहे और इससे समाज में बदलाव भी हुए। इस दृष्टि से अशोक के शिलालेख, महात्मा बुद्ध के उपदेश आदि शंकराचार्य के प्रवचन व वेदों और उपनिषदों के भाष्य तथा महाकवि कालीदास के नाटकों का उल्लेखनीय महत्त्व है। मध्यकाल में गोस्वामी तुलसीदास ने समाज के खोए हुए आत्मविश्वास व स्वाभिमान के पुनर्जागरण के लिए पहले 'श्री रामचरितमानस' की रचना की और इसके उपरांत 1621 में काशी के अस्सी घाट पर रामलीला की परंपरा को पुनर्स्थापित किया (अस्थाना, 2002)। इस काल में नाटकों के साथ ही संतों के प्रवचनों और लोकगीतों ने भी बिखरे हुए समाज को एकजुट करने में विशेष भूमिका निभाई।

भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में अँग्रेजों के प्रवास (अगस्त 1608 को सूरत में आगमन से लेकर 15 अगस्त, 1947 को यहाँ से उनके जाने तक) के उनके 340 वर्षों के काल खंड को इस अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से चार खंडों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यह वर्गीकरण भारत में उनके 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के रूप में यहाँ व्यापार करने के लिए आए व्यापारी से लेकर, भारत को गुलाम बनाने और फिर लगभग 200 वर्षों तक चले स्वातंत्र्य संग्राम के फलस्वरूप 15 अगस्त, 1947 को भारत के स्वतंत्र होने और उनकी इंग्लैंड वापसी के विभिन्न चरणों के आधार पर किया गया है।

(1) अँग्रेजों के अगस्त 1608 में 'ईस्ट इंडिया कंपनी' के नाम से व्यापारी के रूप में भारत आने से लेकर 1757 में प्लासी के युद्ध में नवाब सिराजुदौला की पराजय और 20 अक्तूबर, 1773 को पहले गवर्नर जनरल वार्रन हास्टिंग्स की नियुक्ति।

(2) 1773 में गवर्नर जनरल की नियुक्ति से लेकर 1857 की क्रांति। (भारत में समाचार पत्रों का प्रकाशन और अँग्रेजी राज के खिलाफ जन-आक्रोश)

(3) 1857 की क्रांति के बाद ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत का शासन 'ईस्ट इंडिया कंपनी' से हस्तगत करने से लेकर दिसंबर 1885 में काँग्रेस की स्थापना। (समाचार पत्रों की बढ़ती भूमिका और संवाद समिति की शुरुआत)

(4) काँग्रेस के जन्म से लेकर 15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतंत्र होने तक। (अँग्रेजी राज के खिलाफ जनजागरण और संवाद समितियों की भूमिका)

अगस्त 1608 से 20 अक्तूबर, 1773 को पहले गवर्नर जनरल वार्रन हास्टिंग्स की नियुक्ति तक : अँग्रेज कैप्टन विलियम हॉकिंस ने अगस्त 1608 में भारत के सूरत बंदरगाह पर अपने जहाज का लंगर डालकर ईस्ट इंडिया कंपनी के आने की घोषणा की। उसका उद्देश्य भारत से कपड़े और मसाले आदि खरीद कर इंग्लैंड भेजना था। प्रारंभ में अँग्रेजों को पुर्तगाली व्यापारियों के विरोध का सामना करना पड़ा, क्योंकि पुर्तगाली व्यापारी पहले से ही भारत से व्यापार कर रहे थे। दोनों में हिंसक लड़ाइयाँ भी हुईं। इस संघर्ष में अंततः ईस्ट इंडिया कंपनी का वर्चस्व स्थापित हुआ। ये लड़ाइयाँ मात्र व्यापारिक संघर्ष का परिणाम नहीं थीं, वरन् इसके मूल में एक लंबी कहानी है। इसका एक कारण पश्चिम के देशों की दुनियाभर के देशों पर कब्जा कर अपने साम्राज्य विस्तार की महत्त्वाकांक्षा भी है। 'कंपनी' को 1663 में एक शाही फरमान के तहत सूरत में व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हुआ और फिर 1615 से 1618 में इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम के राजदूत 'सर टामस रो' ने मुगल बादशाह जहाँगीर से व्यापार करने के अधिकार प्राप्त कर कंपनी यहाँ से व्यापार करने लगी। लेकिन यहाँ पर व्यापार करने के लिए आई 'ईस्ट इंडिया कंपनी' अगस्त 1765 में जहाँगीर के ही वंशज मुगल बादशाह शाहआलम को हराकर भारत की शासक बन बैठी। यह सब क्यों और कैसे हुआ, यह भी एक लंबी कहानी है। वस्तुतः भारत पर कंपनी के शासन की शुरुआत 22 जून, 1757 को तब हुई, जब बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला और 'कंपनी' में प्लासी में हुए युद्ध में नवाब को पराजय का मुँह देखना पड़ा, जिसमें नवाब का सेनापति मीर जाफर विश्वासघात कर कंपनी से मिल गया था। मीर जाफर और कंपनी में हुए एक गुप्त करार के तहत उसे बंगाल का नवाब तो बना दिया गया, लेकिन कंपनी उससे मालगुजारी वसूलने लगी, और फिर 1764 में कंपनी ने बंगाल का प्रशासन उससे हथिया लिया। कंपनी ने राजस्व वसूली के नाम पर जनता पर तरह-तरह के अत्याचार करने शुरू कर दिए। इससे कंपनी का दुस्साहस बढ़ता गया और उसने अगस्त 1765 में मुगल बादशाह शाहआलम को हराकर पूर्वी प्रांतों जैसे बंगाल, बिहार और उड़ीसा के दीवानी अधिकार और इसके साथ ही जनता को नियंत्रित करने के अधिकार भी ले लिए। इसके बाद कंपनी ने 20 अक्तूबर, 1773 को वारेन हेस्टिंग्स को पहला गवर्नर जनरल नियुक्त किया।

1773 में गवर्नर जनरल की नियुक्ति से लेकर 1857 की क्रांति तक (भारत में समाचार पत्रों का प्रकाशन और अँग्रेजी राज के खिलाफ जन-आक्रोश) : भारत में अपने पहले गवर्नर जनरल की नियुक्ति के साथ ही कंपनी ने कलकत्ता को अपनी राजधानी बनाया, इससे कलकत्ता प्रशासनिक व अन्य महत्त्वपूर्ण गतिविधियों का केंद्र बन गया। इस कारण भारत का पहला समाचार पत्र 'बंगाल गजट' 1780 में कलकत्ता से ही आरंभ हुआ। अँग्रेजी में प्रकाशित इस साप्ताहिक समाचार पत्र के प्रकाशक जेम्स ऑगस्टस हिक्की थे। यह 'हिक्की गजट' नाम से भी जाना जाता है। से इसके प्रकाशन का उद्देश्य बाजार के लिए सूचनाएँ उपलब्ध कराना था। यह कंपनी का समर्थक था। इसके बाद दूसरा अखबार 'द इंडिया गजट' (1780) निकला, मूलरुप यह मुख्यतः कंपनी के व्यावसायिक क्रियाकलापों के समाचार छापता था। 1784 में 'कलकता गजट' तथा 1785 में 'बंगाल जर्नल' निकले। मद्रास से पहला साप्ताहिक पत्र 'मद्रास कोरियर' 1785 में निकला। बंबई से 'बंबई हेराल्ड' 1789 में निकला। ये सभी पत्र मुख्यतः कंपनी के कार्यकलापों से संबंधित थे और अँग्रेजी शासन के समर्थक थे। भारतीयों की भावनाओं और चिंताओं को स्वर देने वाले समाचार पत्रों के रूप में पहला पत्र 'संवाद कौमुदी' बांग्ला साप्ताहिक था। इसे पुनर्जागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय ने 1821 में कलकत्ता से आरंभ किया। 1821 में उन्होंने फारसी में 'मिरात उल अखबार' भी प्रारंभ किया। इनका मुख्य स्वर सामाजिक व धार्मिक सुधारों पर केंद्रित था।

हिंदी का पहला समाचार पत्र 'उदंत मार्तंड' 30 मई, 1826 को कलकत्ता से आरंभ हुआ। इस साप्ताहिक पत्र के संपादक जुगल किशोर शुक्ल थे। यह प्रत्येक मंगलवार को प्रकाशित होता था। उस समय में देश में अँग्रेजी, फारसी और बांग्ला में तो पत्रों का प्रकाशन किया जा रहा था, किंतु हिंदी में कोई पत्र नहीं था। 'उदंत मार्तंड' के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए जुगल किशोर शुक्ल ने लिखा था, "यह उदंत मार्तंड अब पहले पहल हिंदुस्तानियों के हित के हेत जो, आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अँग्रेजी ओ पारसी ओ बंगाली में जो समाचार का कागज छपता है उसका उन बोलियों को जान्ने ओ समझने वालों को ही होता है और सब लोग पराये सुख सुखी होते हैं। जैसे पराये धन धनी होना और अपनी रहते परायी आँख देखना वैसे ही जिस गुण में जिसकी पैठ न हो उसको उसके रस का मिलना कठिन ही है और हिंदुस्तानियों में बहुतेरे ऐसे हैं" (मुंडा, 2018)। उन दिनों सरकारी सहायता व समर्थन के बिना, किसी भी समाचार पत्र का चलना प्रायः असंभव था। कंपनी सरकार ने ईसाई मिशनरियों के पत्रों को तो डाक आदि की सुविधा दे रखी थी, परंतु चेष्टा करने पर भी 'उदंत मार्तंड' को यह सुविधा प्राप्त नहीं हो सकी। इसके कुल 79 अंक ही प्रकाशित हो पाए थे कि डेढ़ साल बाद दिसंबर 1827 को इसका प्रकाशन बंद करना पड़ा (उदंत मार्तंड, 2021)। इसके अंतिम अंक में लिखा है, "आज दिवस लौं उग चुक्यौ मार्तंड उदंत, अस्ताचल को जात है दिनकर दिन अब अंत।"

'उदंत मार्तंड' ने समाज के विरोधाभासों पर तीखे हमले किए और सवाल उठाए। इसके साथ ही अखबार ने आमजन की आवाज को बुलंद करने का भी काम किया। बावजूद इसके 19 दिसंबर, 1827 को कुछ कानूनी कारणों से इसे बंद करना पड़ा। इससे स्पष्ट है कि हिंदी का पहला पत्र 'उदंत मार्तंड' भारतीयों की आवाज और कंपनी सरकार के खिलाफ देशभर में उमड़े असंतोष का स्वर बन गया था, इसी कारण अँग्रेज सरकार इस समाचार पत्र को येन-केन-प्रकारेण बंद कराना चाहती थी। 'उदंत मार्तंड' तो सरकार की नीतियों के कारण अल्पजीवी सिद्ध हुआ, लेकिन इसके बाद देशभर में समाचार पत्रों के निकलने का सिलसिला आरंभ हो गया। भारतीयों द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओं में आरंभ किए गए पत्रों में मुख्यतः अँग्रेजों की जनविरोधी नीतियों का विरोध और जन भावनाओं की अभिव्यक्ति होती थी। किसी भी शासन के खिलाफ हुए जन-आंदोलनों में संचार माध्यमों और विशेषकर समाचार पत्रों व सवांद समितियों की भूमिका को समझने के लिए उन आंदोलनों की पृष्ठभूमि की संक्षिप्त चर्चा किए बिना संचार माध्यमों की भूमिका की उपयुक्त तरीके से व्याख्या नहीं की जा सकती, क्योंकि कोई भी संचार माध्यम तभी लोकप्रिय होता है जब वह जनभावनाओं को अभिव्यक्त करे। ऐसी स्थिति में जनभावनाओं को समझने के लिए उस समय की परिस्थितियों और जन-सामान्य में उपजे आक्रोश के कारणों को जानना बहुत आवश्यक होता है। इसीलिए यहाँ पर सबसे पहले 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम और उससे पूर्व देशभर में अँग्रेजों के खिलाफ हुए जनआंदोलनों की संक्षिप्त चर्चा करना उपयुक्त होगा।

1857 के स्वातंत्र्य संग्राम से पहले के जन-आंदोलन

1857 की क्रांति को वास्तव में भारतीय इतिहास का एक निर्णायक मोड़ कहा जा सकता है। 10 मई, 1857 को हुई सैनिक क्रांति अँग्रेज सेना के भारतीय सैनिकों में अचानक उत्पन्न हुए किसी असंतोष का परिणाम नहीं थी, वरन् इसे कंपनी सरकार के खिलाफ पिछले सौ वर्ष से पूरे देश में पनपे असंतोष और पहले दिन से ही उसके खिलाफ स्थानीय स्तर पर हो रहे आंदोलनों का एक सार्वदेशिक स्वरूप कहना ज्यादा उपयुक्त होगा। 1757 में जब से कंपनी ने बंगाल में मीर जाफर से मालगुजारी वसूलनी शुरू की, तभी से उनके अत्याचारों का सिलसिला शुरू हो गया था और इसके बाद 1765 में जब उन्होंने मुगल बादशाह शाहआलम को हराकर दीवानी अधिकार प्राप्त किए, तब पूरे बंगाल, उड़ीसा और बिहार में उनके अत्याचार बहुत अधिक बढ़ गए थे और उन्होंने मनमाने तरीके से लोगों को लूटा और कुल कृषि उपज का 50 प्रतिशत लगान तय किया, यह लगान 1760 से 1820 के बीच तय हुआ (धर्मपाल, 1988, पृ. 8)। 1793 में कार्नवालिस के भूमिकर नियम से बंगाल, बिहार व उड़ीसा में जमींदारी प्रथा आरंभ हुई, इससे वनवासी भूमि से बेदखल हो गए (मित्तल, 2009, पृ.13)। इससे स्पष्ट है कि कृषि उपज पर मनमाना लगान लगाकर किसानों को इस तरह लूटा, जिससे वे कंगाल हो गए। कंपनी ने लोगों को मनमाने तरीके से लूटा ही नहीं, वरन् उनसे बेगार भी कराई जाती थी। "सड़क बनवाने तथा ब्रिटिश सेना के साथ कसाई, मोची, तेली, लोहार, बढ़ई व कुली आदि 34-35 पेशों के लोगों से बेगार कराई जाती थी। इसके अलावा 300-400 बैलगाड़ियाँ व घोड़े-खच्चर आदि भी बेगार में लिए जाते थे" (धर्मपाल, 2016, पृ. 73)। अँग्रेजों ने वनवासियों को कई तरह से लूटा। लूट की यह प्रवृत्ति रेल निर्माण के लिए वनवासियों की जमीन पर बलात् कब्जे करने में भी दिखाई देती है (कुरुक्षेत्र, 2006, पृ. 13)।

अँग्रेजों ने जिस प्रकार वनवासियों के सामाजिक जीवन से खिलवाड़ किया और उनका आर्थिक शोषण किया, इससे उद्वेलित होकर वनवासियों ने प्लासी के युद्ध के बाद से ही उनके खिलाफ अनवरत संघर्ष किए। देश के विभिन्न वनवासी क्षेत्रों में 1757 से 1856 तक 90 से अधिक संघर्ष

हुए, परंतु अँग्रेजों ने इन्हें 'बलवा', 'दंगे', 'धार्मिक झगड़े' आदि नाम देकर कमतर दिखाने की कोशिश की (मित्तल, 2009, पृ. 7 व 116-117)। कंपनी ने केवल वनवासी और ग्रामीण क्षेत्रों में ही अत्याचार नहीं किए, वरन् नगरीय क्षेत्र भी अछूते नहीं रहे। अँग्रेजों ने 1810-11 में 'आवास कर' लगाया गया तो उसके विरुद्ध चले आंदोलन का केंद्र वाराणसी शहर रहा। वाराणसी के क्लेक्टर के अनुसार कोई 20 हजार लोग लगातार धरने पर बैठे रहे (धर्मपाल, 1988, पृ. 26)। इसी प्रकार 1840 में सूरत में 'नमक कर' के खिलाफ आंदोलन हुआ। कंपनी सरकार ने नमक पर कर की दर आठ आना (वर्तमान के पचास पैसे) से बढ़ाकर एक रुपया कर दी थी। इससे अनिवार्य आवश्यकता की वस्तु नमक पर कर बढ़ाकर एकदम दो गुना कर दिया था। इसके विरोध में हुए व्यापक जनआंदोलन के दबाव में इस बढ़ोतरी को वापस लिया गया (धर्मपाल, 1988, पृ. 26)। इसके साथ ही भारतीय उद्योग धंधों को भी सुनियोजित तरीके से बर्बाद किया गया। भारत में इंग्लैंड के कारखानों का माल खपाया गया और यहाँ से कच्चा माल वहाँ भेजा गया। इससे भारतीयों को जो दुर्दिन देखने पड़े, उसका एक उदाहरण 1828 में बंगाली अखबार 'समाचार दर्पण' में प्रकाशित एक महिला के पत्र से स्पष्ट होता है। उसने लिखा, "22 वर्ष की आयु में उसकी तीन लड़कियाँ थीं। वह विधवा हो गई थी, लेकिन चरखे पर सूत कातकर उसे इतनी आमदनी हो जाती थी कि घर खर्च चलाने के बाद भी उसने कुछ ही वर्षों में तीनों लड़कियों की शादी कर दी। जब उसके ससुर की मृत्यु हुई तो उसने उनका श्राद्ध भी किया। इस पर 44 रुपये खर्च हुए। वह चरखा कातकर सम्मानपूर्वक जी रही थी, परंतु जब से विलायती सूत भारत आने लगा तब से हालत खराब हो गई।" गांधीजी ने यह पूरा पत्र 1931 में 'यंग इंडिया' में छापा (धर्मपाल, 1988, पृ. 34)।

अँग्रेजी राज में पड़ने वाले अकालों ने किसानों की रीढ़ तोड़ दी और असंख्य लोग काल के गाल में समा गए। प्लासी की लड़ाई के बाद 1769-70 में पड़े अकाल से बंगाल, बिहार व उड़ीसा की एक तिहाई आबादी नष्ट हो गई। 1837-38 में समस्त उत्तर भारत अकाल ग्रस्त हुआ, जिसमें आठ लाख व्यक्ति मौत का शिकार हुए। 1861 में पुन: भारी अकाल पड़ा, जिसमें उत्तर भारत में असंख्य व्यक्ति मरे (भट्टाचार्य, 1967)। 1770 में पड़े भयंकर अकाल पीड़ितों को कोई राहत देने के स्थान पर कंपनी ने भूमि कर बढ़ाकर 10 प्रतिशत कर दिया। अकाल के कारण देश में चोरी, डकैती व अपराध बढ़ गए (मित्तल, 2009, पृ. 18)। 1757 में नवाब मीर जाफर से मालगुजारी वसूलने से लेकर 1857 तक के स्वातंत्र्य संग्राम तक के 100 वर्षों में अँग्रेजों के बर्बर अत्याचार, छल-कपट और भोले-भाले वनवासियों की जमीन से लेकर राजा-महाराजाओं के तख्तो-ताज को हड़पने और भारत से लूटी गई अकूत संपदा को इंग्लैंड भेजने व बढ़ती हुई अव्यवस्था से जनमानस में अँग्रेजों के खिलाफ गुस्सा कई तरह से फूटा, जिनमें स्थान-स्थान पर अँग्रेजों के खिलाफ अनवरत रूप से वनवासियों के आंदोलन, जनआंदोलन व सैनिक विद्रोह होने लगे थे (विप्लव सैनिक विद्रोह, 2021)।

इन विद्रोहों में प्रमुख है सन्न्यासी विद्रोह (1760-1800)। ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा मालगुजारी वसूलने के लिए पहले दिन से ही किसानों और स्थानीय नागरिकों पर जो अत्याचार किए जाने लगे, इससे किसानों और जनसामान्य में कंपनी के खिलाफ आक्रोश पनपने लगा। इस आक्रोश ने तब विस्फोटक रूप धारण कर लिया जब सन्न्यासी दिर्जीनारायण केना सरकार के नेतृत्व में सन्न्यासियों ने 1760 में विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह में बंगाल व बिहार के किसानों और शिल्पकारों ने भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। ये लोग कंपनी के सैनिकों से बहुत वीरता से लड़े और मैमन सिंह के नेतृत्व में बोग्रा में अपनी स्वतंत्र सरकार बना ली। यह आंदोलन 1800 ई. तक चलता रहा। प्रसिद्ध उपन्यासकार बंकिम चंद्र चटोपाध्याय ने इसी 'सन्न्यासी विद्रोह' की घटना पर आधारित उपन्यास 'आनंद मठ' की रचना 1882 में की थी। स्वातंत्र्य संग्राम का मंत्र बना 'वंदे मातरम्' इसी उपन्यास का गीत है। एक प्रकार इसे भारत में अँग्रेजों के विरुद्ध पहला स्वातंत्र्य आंदोलन कहना अधिक उपयुक्त होगा। इसके बाद तो देशभर में अँग्रेजों के खिलाफ आंदोलनों का क्रम स्वतंत्रता प्राप्ति तक अनवरत चलता रहा। इसके बाद हुए मुख्य आंदोलन व विद्रोह हैं : जंगल महाल विद्रोह (1765-1805), फकीर विद्रोह (1776-77), विजय नगर विद्रोह (1794), पालीगारों का विद्रोह (1801 से 1856), दीवान वेलु थंपी का विद्रोह (1805), पाइक विद्रोह (1817-1825), बघेरा विद्रोह (1818-1820), कच्छ विद्रोह (1819-1831), भील विद्रोह (1819-1824), हो-मुंडा विद्रोह (1820-1831), रामोसी विद्रोह (1822-1841), किट्टूर विद्रोह (1824), अहोम विद्रोह (1828), कोल विद्रोह (1829 से1848), खासी जाति विद्रोह (1833), खोंडा विद्रोह (1837-1856), घोंडजी बाघ का विद्रोह (1848-1841), सावंतवादी विद्रोह (1844), गडकरी विद्रोह (1844), हूल विद्रोह (1855), संथाल विद्रोह (1856), आदि।

अँग्रेज सेना के विद्रोह

1857 की क्रांति से पहले भी अँग्रेज सेना में विभिन्न कारणों से विद्रोह होते रहे (अँग्रेजी सेना में सैनिक विद्रोह, 2021)। इनमें से कुछ प्रमुख विद्रोह इस प्रकार हैं :

(1) मीर कासिम के खिलाफ लड़े गए बक्सर के युद्ध (1763-64) में हैक्टर मुनरो के नेतृत्व में लड़ रही एक सैन्य टुकड़ी विद्रोह कर मीर कासिम से मिल गई थी।

(2) वेल्लोर के सैनिकों ने अपनी धार्मिक व सामाजिक मान्यताओं पर चोट लगने के विरोध में, 1806 में, विद्रोह कर मैसूर के राजा का ध्वज फहरा दिया था।

(3) 1824 में 47वीं पैदल सैन्य टुकड़ी ने पर्याप्त भत्ते के अभाव में बर्मा युद्ध में जाने के आदेश की अवहेलना कर विद्रोह कर दिया था।

(4) 1838 में शोलापुर में एक भारतीय सैन्य टुकड़ी ने पूरा भत्ता न मिलने के कारण विद्रोह कर दिया था।

अँग्रेज सेना के सैनिकों के विद्रोहों के कारणों को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि जिन सैनिकों के बल पर अँग्रेज भारत में अपना साम्राज्य विस्तार कर रहे थे, जब वे उन्हीं सैनिकों की मान्यताओं व भावनाओं से खिलवाड़ करते थे, तो शेष समाज से उनका व्यवहार कितना अपमानजनक होगा, यह इसी बात से समझा जा सकता है।

1857 की क्रांति से पूर्व समाचार पत्र

1857 की क्रांति के दौरान देश में कई समाचार पत्र प्रकाशित हो रहे

थे, जिन्होंने देश में क्रांति की ज्वाला को सुलगाने में विशेष भूमिका निभाई। इनमें से कुछ प्रमुख समाचार पत्र हैं :

रास्त गुफ्तार पाक्षिक - 1851 गुजराती दादा भाई नौरोजी,
नवजीवन (गुजराती) -1854 दादाभाई नौरोजी,
हिंदू पैट्रिअट-1853 कलकत्ता गिरीश चंद्र घोष,
पयामे आजादी-1857 अजीमुल्ला खाँ आदि।

जनआंदोलनों व सैन्य विद्रोहों के उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से स्पष्ट होता है कि 1857 की क्रांति से पूर्व भी देश में अँग्रेजों के खिलाफ विद्रोह सर्वत्र और निरंतर होते रहे, जिन्हें अँग्रेज क्रूरतापूर्वक कुचलते रहे और लंदन में बैठी महारानी इन सबकी अनदेखी करती रही, लेकिन 1857 की क्रांति ने ब्रिटेन की महारानी की रातों की नींद ही उड़ा दी, जिस कारण महारानी को ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत की सत्ता से बेदखल कर स्वयं ही राजकाज की बागडोर सँभालने के लिए मजबूर होना पड़ा।

1857 की क्रांति और ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत का शासन ईस्ट इंडिया कंपनी से हस्तगत करने से लेकर दिसंबर 1885 में कॉंग्रेस की स्थापना तक (समाचार पत्रों की बढ़ती भूमिका और संवाद समिति की शुरुआत का समय) : सैन्य छावनी में 10 मई, 1857 को मंगल पांडेय ने अँग्रेजों के विरुद्ध क्रांति की जिस ज्वाला को सुलगाया उसकी आँच ने, यहाँ से हजारों मील दूर लंदन के राजमहल में बैठी, ब्रिटेन की महारानी को भी झुलसा दिया। हालाँकि आज सैटेलाइट व डिजिटल युग में रहने वालों के लिए यह कम आश्चर्य की बात नहीं है कि 10 मई, 1857 को भारत में मेरठ की धरती से प्रारंभ हुए इस सैन्य विद्रोह की खबर के बारे में ब्रिटेन के लोगों को सबसे पहले जानकारी 13 जून, 1857 को लंदन के अखबार 'इलैस्ट्रेटिड लंदन न्यूज' में छपी खबर से हुई थी। यह खबर भी कोई ज्यादा विस्तार से नहीं थी, वरन् मात्र 300 शब्दों में (राणा, 2017)। (ऐसा इस कारण हुआ था, क्योंकि तब तक बंबई (भारत) और लंदन (ब्रिटेन) के बीच संदेश प्रेषण की कोई द्रुत संचार सुविधा नहीं थी। सबसे पहले 1858 में ब्रिटेन और श्रीलंका के बीच में इलेक्ट्रिक टेलीग्राफी लाइन बिछाई गई, जिससे श्रीलंका, ब्रिटेन और भारत के साथ तार सेवा से जुड़ा और उसके बाद 1870 में बंबई और लंदन के बीच टेलीग्राफ की समुद्री तार बिछाई गई (मेंडिस, 1952), जिसके बाद ही दोनों देशों के बीच सीधी द्रुत संचार सेवा प्रारंभ हो सकी।) इसके बाद लंदन के ही अखबार 'द गार्जियन' ने 30 जून, 1857 को थोड़ा विस्तार से इस खबर को प्रकाशित किया था। तदुपरांत जुलाई में कुछ साप्ताहिक अखबारों ने इस बारे में लेख प्रकाशित किए और 18 जुलाई, 1857 को 'इलैस्ट्रेटिड लंदन न्यूज' ने इस संबंध में पूरे पृष्ठ पर कवरेज की। जिस प्रकार से लंदन के अखबारों ने इस संबंध में समाचार प्रकाशित किए, इससे स्पष्ट है कि उनके पास एक तो पूरी जानकारी नहीं थी, दूसरे जो भी समाचार या लेख प्रकाशित हो रहे थे, वे उन्हें काफी देर से मिल रहे थे।

1857 की क्रांति के समय ब्रिटेन के सत्ताधीशों, राजनेताओं और जनसामान्य की भारत के प्रति मानसिकता कैसी थी, यहाँ यह जानना विषय के अनुकूल होगा, क्योंकि इंग्लैंड के विरुद्ध भारतीय जनमानस में पनपे रोष व आक्रोश का मूल कारण ब्रिटेन की वही मानसिकता है, जो उस समय के ब्रिटिश समाज में व्याप्त थी और कैसे 'ईस्ट इंडिया कंपनी इंग्लैंड के भीतर ही अपनी शक्ति और प्रभाव को बनाए रखने और बढ़ाने के जुगत में लगी रहती थी।' यदि लंदन ने कभी भारतीयों की मनोभावनाओं को समझा और उनका सम्मान किया होता तो 'शांतिप्रिय' समझे जाने वाले भारत के निवासी सिपाही इस प्रकार अनपेक्षित तरह से 'विद्रोही' न बने होते और ब्रिटिश 'साम्राज्य के सुरक्षित और निरापद हिस्से' के भारतीय 'सिपाही आज्ञाकारी और विनम्र' ही बने रहते। यही नहीं, यदि ब्रिटिश शासक भारत और भारतीयों की भावनाओं के प्रति 'उदासीन' न रहे होते और भारतीयों के प्रति 'दिलचस्पी' ली होती तो 1857 की क्रांति के बाद वे इस प्रकार 'हतप्रभ' न होते। उस समय के ब्रिटिश शासन, राजनेताओं और जनमानस की इस मानसिकता का विश्लेषण किया है मीडिया विश्लेषक 'केविन हॉब्सन' ने अपने शोधपत्र 'द ब्रिटिश प्रेस एंड इंडियन म्यूटिनी' में। उनका यह अध्ययन 4 जुलाई से 1 अगस्त, 1857 की अवधि के दौरान समाचार पत्र 'पंच', 'द स्पेक्टेटर', 'द सैटरडे रिव्यू' और 'द टाइम्स' में प्रकाशित समाचारों पर आधारित है (हॉब्सन, 2021)।

'केविन हॉब्सन' ने उस समय के चार समाचार पत्रों और राजनेताओं के भाषणों आदि के आधार पर अपने शोधपत्र के निष्कर्ष में जो कुछ लिखा है, वह सब एक प्रकार से तत्कालीन समूचे ब्रिटेन की मानसिकता को दर्शाता है। उन्होंने लिखा है, "विद्रोह के फैलने से पहले के वर्षों में, बहुत कम समाचार सामने आए, जो भारत से संबंधित थे। उनमें से कुछ ही ईस्ट इंडिया कंपनी और उसके कथित भ्रष्ट आचरण पर केंद्रित थे। वस्तुतः भारत के लोगों की स्थिति में कोई दिलचस्पी नहीं थी और न ही इस बात की कोई वास्तविक जाँच थी कि कंपनी का शासन उनके जीवन को कैसे प्रभावित कर रहा है। ... (अखबारों के पास) वास्तव में, इस समय बहुत कम सत्यापन योग्य समाचार उपलब्ध थे। यहाँ तक कि 'द टाइम्स', जिसके पास उस समय भारत में एक फ्रीलांस स्ट्रिंगर था, ने विद्रोह की तुलना में, इस दौरान ब्रिटेन की स्थानीय घटनाओं को, अधिक कॉलम इंच दिया। इन सभी पत्रों में सबसे दिलचस्प बात यह है कि जब उन्होंने भारत में संघर्ष के बारे में लिखा, तो यह इस दृष्टिकोण से था कि ब्रिटेन अपने हितों की सबसे अच्छी रक्षा कैसे कर सकता है या संकट के बाद, किसके द्वारा ब्रिटेन के लिए भारत पर शासन करना सबसे अच्छा होगा। एक बार भी भारतीय जनता पर कभी ध्यान नहीं दिया गया। यह एक ऐसा प्रेस था, जिसने 19वीं सदी के मध्य में अँग्रेजों के अत्यधिक स्वार्थ को प्रतिबिंबित किया। गैर-ब्रिटिश लोगों के अधिकारों के लिए या ब्रिटेन को उन पर शासन करने का अधिकार था या नहीं, इसकी कोई चिंता नहीं थी। हालाँकि इस अवधि के किसी भी इतिहासकार के लिए यह कोई बड़ा आश्चर्य नहीं है। यह दिलचस्प है, जब कोई इस धारणा पर विचार करता है कि ब्रिटेन को जिम्मेदार सरकार के उदाहरण के रूप में और स्वतंत्र पुरुषों के अधिकारों को मूर्त रूप देने और उनकी रक्षा करने के रूप में रखा गया है। हालाँकि, इनमें से कोई भी धारणा प्रेस में कभी भी स्पष्ट नहीं होती है जब वह ब्रिटेन के बाहर किसी अन्य व्यक्ति पर चर्चा कर रहा हो। इसके अलावा, प्रेस अखबार की बिक्री और पक्षपातपूर्ण राजनीति के कारण सच्चाई और तथ्यात्मक रिपोर्टिंग की जो भी धारणाएँ हो सकती हैं, उनका त्याग करने के लिए तैयार था। शायद, जब कोई आज प्रेस को देखता है और वर्तमान संघर्षों की रिपोर्टिंग को देखता है, तो यह वास्तव में कहा जा सकता है कि जितनी अधिक चीजें बदली हुई लगती हैं, उतनी ही वे वैसी ही रहती हैं।"

यहाँ यह जानना भी समीचीन होगा कि ब्रिटेन का जनमानस भारतीयों को किस दृष्टि से देखता था। 'केविन हॉब्सन' ने 'द स्पेक्टेटर' के एक लेख में 'स्थानीय लोगों के मूल चरित्र का अध्ययन' करने में यूरोपीय अधिकारियों की विफलता पर अखबार की टिप्पणी का उल्लेख करते हुए लिखा- "...हिंदुओं के चरित्र के संबंध में ऊपर वर्णित मनोवृत्ति को फिर से बताया गया और इस बार पशु-समान गुणों का आभास पहले से भी अधिक स्पष्ट था; ... हिंदू आसानी से नियंत्रित किए जा सकने वाला एक योग्य जानवर है जब उस पर बुद्धिमत्तापूर्वक शासन किया जाता है; जब उसके यूरोपीय प्रबंधक लापरवाह या अविवेकी होते हैं तब वह बेअदब हो जाता है।"

'केविन हॉब्सन' ने इस तथ्य को भी उजागर किया है कि ब्रिटेन के लोगों को यह चिंता तो नहीं थी कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने पिछले सौ वर्षों में भारतीयों के साथ कैसा व्यवहार किया, जिसने उन्हें विद्रोह के लिए प्रेरित किया, लेकिन उनकी चिंता यह अवश्य थी कि कंपनी के अधिकारियों ने अपनी नासमझी से ब्रिटेन के नाम पर धब्बा लगा दिया। ब्रिटेन में यह आम धारणा थी कि—"...विद्रोह कंपनी द्वारा ब्रिटेन के नाम पर नियोजित नीतियों के खिलाफ था, न कि धार्मिक वर्जनाओं के उल्लंघन का विरोध।" इसलिए वहाँ इस बात पर आम सहमति थी कि 'भारत पर सीधे ताज का शासन होना चाहिए न कि किसी चार्टर्ड कंपनी के माध्यम से।' और इसी दबाव के बाद 1876 में ब्रिटेन की महारानी ने शासन की बागडोर कंपनी के हाथों से सीधे अपने हाथों में ले ली और उन्हें पहली जनवरी,1877 को भारत की साम्राज्ञी घोषित कर दिया गया। 'केविन हॉब्सन' का शोधपत्र यह भी बताता है कि 'चीजें जितनी अधिक बदली हुई लगती हैं, उतनी ही वे वैसी ही रहती हैं।' यह तथ्य 1877 में महारानी द्वारा शासन की बागडोर अपने हाथ में लेने से लेकर भारत को 1947 में स्वतंत्रता मिलने तक के घटनाक्रम और ब्रिटेन के व्यवहार से सत्य सिद्ध होता है।

ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया ने भारत में शासन की बागडोर अपने हाथ में लेने पर घोषणा की थी, "अब प्रजा के साथ पक्षपात रहित न्याययुक्त, माता-पिता के समान दयापूर्वक शासन होगा।" 'कंपनी राज' के स्थान पर 'ताज का राज' स्थापित होने के बाद भी जनमानस में असंतोष कम होने का नाम नहीं ले रहा था। इसका एकमात्र कारण यह था कि राज भले ही 'महारानी' का हो, लेकिन भारतीयों के प्रति अँग्रेजों के दृष्टिकोण में रंच मात्र भी बदलाव नहीं आया था। राज की अदला-बदली के बाद भी भारतीयों के प्रति उनकी मानसिकता वही रही, जिसका उल्लेख 'केविन हॉब्सन' ने अपने शोधपत्र में किया है। अँग्रेज अब भी यही मानते थे कि "हिंदू आसानी से नियंत्रित किए जा सकने वाला एक योग्य जानवर है।" और यह भी कि भारतीयों पर राज करना उनका अधिकार है, जिसके प्रति भारतीयों को अँग्रेजों का कृतज्ञ होना चाहिए।

नहीं थमा विद्रोहों का सिलसिला

अँग्रेजों की इसी मानसिकता के चलते 'ताज के राज' के बाद भी जनआंदोलन और विद्रोह पूर्व की भाँति निरंतर होते रहे, जिनमें से कुछ प्रमुख विद्रोह इस प्रकार हैं—कूका विद्रोह (1860-1872), युआन-जुआंग विद्रोह (1867-68 व 1891-93), रंपा विद्रोह (1879-1922), कोया विद्रोह (1879-1886), खोंडा विद्रोह (1900), बिरसा विद्रोह-मुंडा आंदोलन (1895), पाइक विद्रोह खुर्द (1904), वन सत्याग्रह (1930-32), नागा आंदोलन (1931)। इन सभी विद्रोहों और अन्यान्य जनआंदोलनों के कारण भी न्यूनाधिक वही थे, जो 1857 से पहले हुए विद्रोहों के थे। इसका एकमात्र कारण यही था कि राज की बागडोर 'कंपनी' के स्थान पर 'ताज' के हाथ में भले ही आ गई हो, लेकिन भारतीयों के प्रति अँग्रेजों की मानसिकता अब भी वही थी (पाइक विद्रोह, 2021)। अँग्रेजों के बढ़ते अत्याचारों कि खिलाफ जनता में आक्रोश दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा था। इस दृष्टि से स्वामी दयानंद की 1882 में दी गई वह चेतावनी सही सिद्ध हो रही थी, जो उन्होंने महारानी की उस घोषणा के संदर्भ में की थी, जिसमें महारानी ने 1877 में 'राज' की बागडोर सँभालते हुए कहा था, "अब प्रजा के साथ पक्षपात रहित न्याययुक्त, माता-पिता के समान दयापूर्वक शासन होगा।" स्वामी दयानंद ने चेतावनी देते हुए कहा था "कोई कितना ही करे, परंतु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतांतर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है (सरस्वती, 2019, पृ. 204)।" स्वामी दयानंद ने 'सत्यार्थ प्रकाश' के दशम् और एकादश समुल्लास व कई अन्य स्थानों पर स्वाधीनता का महत्त्व, गुलामी के कारणों और उनके निराकरण के उपायों की चर्चा भी विस्तार से की है। अँग्रेजों की दासता से मुक्त होने के लिए उन्होंने गोरक्षिणी सभा, आर्यसमाज व साप्ताहिक पत्र के माध्यम से देश में व्यापक जनजागरण किया। इसी प्रकार देश में अनेक राजनेताओं ने 'अँग्रेजी राज की कुव्यवस्थाओं और 'अँग्रेजों की लूट' पर कड़े प्रहार करने शुरू किए। इनमें 'दादा भाई नौरोजी' का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। ''आर्थिक निकासी की अवधारणा को सबसे पहले दादाभाई नौरोजी ने 2 मई, 1867 को लंदन में हुई 'ईस्ट इंडिया एसोसिएशन' की एक बैठक में पढ़े हुए अपने एक लेख 'इंग्लिश डैब्ट टू इंडिया' में प्रस्तुत किया था। उन्होंने इस लेख में बताया था कि ब्रिटेन भारत में अपने शासन की कीमत के रूप में उस देश की संपदा को उससे छीन रहा है। भारत में वसूल किए गए कुल राजस्व का लगभग एक चौथाई भाग देश से बाहर चला जाता है तथा इंग्लैंड के संसाधनों से जुड़ जाता है।''(गुप्ता,1990, पृ.309)।

यों तो भारत में ऐसे समाचार पत्रों का प्रकाशन 1857 की क्रांति से पूर्व ही प्रारंभ हो गया था और इनमें से कई पत्रों ने क्रांति की ज्वाला को प्रज्ज्वलित किए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, लेकिन 1857 की क्रांति के बाद यह सिलसिला अधिक गति से आगे बढ़ने लगा। 1885 में काँग्रेस की स्थापना के समय तक भारत की विभिन्न भाषाओं में अनेक पत्र प्रकाशित होने लगे थे। भारतीयों की भावनाओं को स्वर दोने वाले ऐसे ही कुछ समाचार पत्र हैं—सोम प्रकाश (1858, कलकत्ता, द्वारकानाथ विद्याभूषण), इंडियन मिरर (1862, कलकत्ता, देवेंद्र टैगोर), नेशनल पेपर (1865, कलकत्ता, देवेंद्र नाथ टैगोर), अमृत बाजार पत्रिका (1868, जैस्सोर, शिशिर कांत घोष व मोती लाल घोष), बंग दर्शन (1872, कलकत्ता, बंकिम चंद्र चटर्जी), द हिंदू (1878, मद्रास, जी.एस. अय्यर), स्वदेश मित्र (1880, मद्रास, जी.एस. अय्यर), द ट्रिब्यून (1881, लाहौर, दयाल सिंह मजीठिया), केसरी (1881, मराठी दैनिक, बंबई, तिलक), मराठा (1881, अँग्रेजी साप्ताहिक, बंबई, तिलक), परिदर्शक (बिपिन चंद्र पाल) आदि। राष्ट्रीय भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाले ऐसे समाचार

पत्रों के अलावा देश में कुछ ऐसे समाचार पत्रों का भी प्रकाशन प्रारंभ हुआ, जो अँग्रेज सरकार के सुर में सुर मिला कर चलते थे। ऐसे कुछ अखबार हैं : टाइम्स ऑफ इँडिया (1861, अँग्रेजी, बंबई), पायनियर (1865, अँग्रेजी, इलाहाबाद), मद्रास मेल (1868, अँग्रेजी, मद्रास), द स्टेट्मैन (1875, अँग्रेजी कलकत्ता), सिविल एंड मिलिट्री गजट (1878, अँग्रेजी, लाहौर), आदि।

जनभावनाएँ अभिव्यक्त करने वाले अखबारों पर कुठाराघात

अँग्रेज सरकार के समर्थक अखबार जहाँ सरकार की नीतियों का समर्थन करते थे, वहीं वे स्वतंत्रता की आवाज उठाने वालों की कटु आलोचना भी करते थे। इसलिए सरकार इन्हें हर प्रकार की सहायता व समर्थन देती थी। इसके विपरीत जो अखबार सरकार की नीतियों का विरोध करते थे और भारत की स्वतंत्रता की बात करते थे, उन पर सरकार की भौंहें हमेशा टेढ़ी बनी रहीं और वह ऐसे अखबारों को येन-केन-प्रकारेण कुचलने के प्रयास करती रहती थी। यद्यपि सरकार के ऐसे कदम ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया की उस घोषणा के एकदम उलट थे, जो उन्होंने 1857 की क्रांति के बाद कंपनी से भारत का शासन हस्तगत करते समय की थी कि 'अब प्रजा के साथ पक्षपात रहित न्याययुक्त, माता-पिता के समान दयापूर्वक शासन होगा।' ताज के दयापूर्वक शासन के स्थान पर अब तो भारतीयों पर और अधिक अत्याचार होने लगे थे और उनकी आवाज को कुचलने के लिए कहीं अधिक कठोर कदम उठाए जाने लगे थे। ये वैसे ही कदम थे, जो 1857 से पहले जन आंदोलनों को कुचलने के लिए उठाए जाते रहे। ऐसे ही एक कदम के सहारे अँग्रेजों ने 1878 में 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट-1878' बनाया। इस कानून का उद्देश्य देशी भाषाओं के अखबारों को कुचलना था। इन अखबारों को दबाने के प्रयास इसीलिए किए गए, क्योंकि ये सरकार की दमनकारी नीतियों के खिलाफ जन-भावनाओं को व्यक्त करते थे। लेकिन सरकार के ऐसे प्रयासों का बहुत अधिक डर भारतीयों के मन पर नहीं जम पाया।

कुछ भारतीयों ने इस काले कानून को ही धता बताने के रास्ते खोज लिए। ऐसा ही एक अनूठा रास्ता निकाला बांग्ला भाषा के समाचार पत्र 'अमृत बाजार पत्रिका' ने। जैसा कि 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट-1878' केवल भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों के लिए ही प्रभावी था, तो इस पत्र के संपादक और उच्च सिद्धांतों के धनी शिशिर कुमार घोष ने सरकार की इस दूषित चाल को भाँपते हुए 'अमृत बाजार पत्रिका' को अँग्रेजी का समाचार पत्र बना दिया। श्री घोष के इस विलक्षण कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक 'काँग्रेस के सौ वर्ष' में लिखा, "14 मार्च, 1878 को वर्नाकुलर प्रेस एक्ट के द्वारा अँग्रेजी के अलावा सभी भाषाओं के पत्रों पर रोक लगा दी गई। इसका नतीजा यह हुआ कि उस युग के कई प्रसिद्ध बांग्ला अखबार प्रकाशन बंद कर देने के लिए बाध्य हुए। इस सिलसिले में 'अमृत बाजार पत्रिका' का नाम विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि उसने करीब-करीब रातभर में अपने को एक बंगला पत्र से अँग्रेजी पत्र में परिणित कर दिया और इस प्रकार वह इस कानून के शिकंजों से बच गया। पत्रकारिता के इतिहास में यह एक अनोखी घटना है" (गुप्त, 1985, पृ. 28)। इस काल खंड में समाचार पत्र जन-जागरण का एक महत्त्वपूर्ण हथियार बनकर उभर रहे थे। यही कारण है कि भारत की सभी क्षेत्रीय भाषाओं में समाचार पत्र प्रकाशित होने लगे थे।

भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना

1857 की क्रांति के बाद महारानी विक्टोरिया द्वारा शासन की बागडोर सीधे अपने हाथ में लेने के बाद भी भारत की स्थितियों में कोई बदलाव नहीं आया। इसके विपरीत स्थितियाँ दिन-प्रतिदिन बद से बदतर होती गईं। इन बिगड़ती स्थितियों और अँग्रेजों के अत्याचारों के खिलाफ सामाजिक व राजनीतिक दृष्टि से जनजागरण के परिणाम स्वरूप लोगों में असंतोष बढ़ता ही जा रहा था। यही कारण है कि 'ताज के राज' में भी देश में विद्रोह उसी प्रकार होते रहे जिस प्रकार 'कंपनी राज' में होते रहते थे। 'ताज के राज' में स्थितियाँ किस प्रकार और अधिक बिगड़ गई थीं, इसका उल्लेख 1885 में हुए काँग्रेस के पहले अधिवेशन में सम्मेलन के भागीदार व 'द हिंदू' के संपादक जी. सुब्रह्मण्य अय्यर ने सम्मेलन का पहला प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए किया, "स्थानीय सरकार और नौकरशाही बहुत मनमानी कर रही है।...देश...कंपनी की अमलदारी से भी पिछड़ चुका है और जब से ब्रिटिश पार्लियामेंट ने शासन सूत्र अपने हाथ में लिया है, तब से देश की हालत बिगड़ती ही गई है" (गुप्त, 1985, पृ. 40)।

भारत में बढ़ते जन-आंदोलन लंदन में बैठे शासकों की नींद हराम किए हुए थे। इसका एक कारण यह भी था कि 1857 में तो लंदन ने 'सैनिक विद्रोह' का ठीकरा 'कंपनी' के सिर पर फोड़ दिया था, लेकिन 'ताज के राज' में भी चल रहे विद्रोहों के लिए 'लंदन' किसे जिम्मेवार ठहराएगा। इसलिए भारत में बैठे ब्रिटिश कारकूनों ने लंदन से दिशानिर्देश देने वाले सत्ताधीशों के परामर्श पर एक ऐसा रास्ता खोज निकाला, जिसे भारतीयों के असंतोष को समाप्त करने के लिए एक 'सेफ्टी वाल्व की तरह काम में लाया जा सके (गुप्त, 1985, पृ. 35-36)। इस काम को अंजाम तक पहुँचाया एक ब्रिटिश अधिकारी 'ए.ओ. ह्यूम' ने। काँग्रेस के गठन से पहले ए.ओ. ह्यूम ने व्यापक विचार-विमर्श किया था। वास्तव में "काँग्रेस का जन्म तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन की इच्छा से हुआ था। वे चाहते थे कि भारत के प्रधान राजनीतिज्ञ सामाजिक विषयों पर चर्चा के लिए साल में एक बार मिलें, एक-दूसरे को समझें, आपस में मित्रता करें, इससे लाभ होगा, पर वे चाहते थे कि इसमें राजनीतिक चर्चा नहीं की जाए। प्रांतीय गवर्नर ही इस सभा का सभापति बनाया जाए। मि. ह्यूम शिमला में डफरिन साहब से आशीर्वाद लेकर, इंग्लैंड जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने लार्ड रिपन, लार्ड डलहोजी, सर जेम्स, मि. रीड तथा मि. स्लेग से भी विचार विमर्श किया" (गुप्त बलदेवराज, 1988, पृ. 8-9)। ह्यूम के संबंध में काँग्रेस के पहले अध्यक्ष डब्ल्यू. सी. बनर्जी का कहना है कि "ह्यूम राजनीति पर चर्चा करने के पक्ष में अधिक नहीं थे। काँग्रेस का आधार ही था कि ब्रिटिश राज भारत में स्थायी तौर पर बना रहे" (गुप्त बलदेवराज, 1988,पृ. 8)। इससे स्पष्ट है कि भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना के लिए किस प्रकार प्रयास किए गए। इन प्रयासों का ही प्रतिफल था कि 28 दिसंबर,1885 को बंबई में काँग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ, जिसके अध्यक्ष डब्ल्यू. सी. बनर्जी बनाए गए।

संवाद समिति 'रॉयटर' और ब्रिटेन के हित

ब्रिटिश संवाद समिति 'रॉयटर' ने यों तो भारत में अपना काम 1866 में प्रारंभ कर दिया था, लेकिन तब वह केवल कपास, जूट आदि जिंसों के

बाजार भाव और अन्य आर्थिक समाचार ही ब्रिटेन भेजता था। इस प्रकार भारत में 'रॉयटर' की शुरुआत इंग्लैंड के हितों को ध्यान में रखते हुए ही की गई थी। भारत से राजनीतिक समाचार भेजे जाने की शुरुआत 'रॉयटर' द्वारा 19 वर्ष बाद 1885 में की गई। यह मात्र एक संयोग नहीं कहा जा सकता कि यह वही वर्ष है जब अँग्रेजों के खिलाफ बढ़ते हुए असंतोष के दबाव को निष्प्रभावी करने के लिए ब्रिटेन की पहल पर 'भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस' की स्थापना एक सेफ्टी वाल्व के रूप में की गई थी। वस्तुतः तब ब्रिटेन की चिंता यह थी कि वह भारत में अपने शासन को कैसे स्थायी रूप से बनाए रखे। 1857 जैसी परिस्थितियाँ यदि पुनः बनती हैं तो उसका यहाँ टिके रहना संभव नहीं होगा। इसलिए उसे एक तो इस बात की जरूरत महसूस हुई कि भारत में पनपने वाले किसी भी असंतोष को कैसे निष्प्रभावी किया जाए; दूसरे, भारत में चल रही राजनीतिक गतिविधियों के समाचार दैनिक रूप से मिलते रहें। कहीं ऐसा न हो कि '1857 के सैनिक विद्रोह' की तरह ही इस बार भी उसे किसी विद्रोह के समाचार प्राप्त होने में एक माह से भी ज्यादा का समय लग जाए। भारत से संबंधित समाचारों में अब रुचि केवल सरकार की ही नहीं, वरन् वहाँ के जनसामान्य और अखबारों की भी रहने लगी थी। इसीलिए 1885 में 'भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस' की स्थापना के समय ही 'रॉयटर' ने राजनीतिक समाचार भी भेजने शुरू किए। 'रॉयटर' को ब्रिटिश सरकार का किस प्रकार से संरक्षण प्राप्त था, यह इसी बात से पता चलता है कि उसने समाचार भेजने के लिए 'ब्रिटिश कैबल सिस्टम' का ही उपयोग किया। एक प्रकार से 'रॉयटर' ब्रिटिश योजना का ही एक हिस्सा था (श्रीवास्तव, 2007, पृ. 37)। इस प्रकार भारत में पनप रही राजनीतिक जागरूकता ने रॉयटर को राजनीतिक खबरें भेजने के लिए मजबूर किया।

काँग्रेस के जन्म से लेकर 15 अगस्त, 1947 को भारत के स्वतंत्र होने तक (अँग्रेजी राज के खिलाफ जनजागरण और संवाद समितियों की भूमिका) : भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस' की स्थापना से भारत के राजनीतिक परिदृश्य में एक बड़ा बदलाव आया। हुआ यह कि अभी तक देश के विभिन्न स्थानों पर रहने वाले जो राजनेता अपने-अपने दृष्टिकोण व अलग-अलग मंचों से ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अपनी आवाज उठाते रहते थे, उन्हें अब एक अखिल भारतीय मंच मिल गया था। काँग्रेस के सदस्य वर्ष में वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर भले ही सिर्फ एक बार सामूहिक रूप मिलते हों, लेकिन उनमें औपचारिक रूप से आपसी संवाद का क्रम प्रारंभ हो गया। इससे अभी तक क्षेत्रीय स्तर पर ही होने वाली किसी भी हलचल को राष्ट्रीय स्वरूप देने में भी बहुत सुविधा होने लगी थी। इस संबंध में प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी मन्मथनाथ गुप्त ने अपनी पुस्तक 'काँग्रेस के सौ वर्ष' में लिखा है, "1885 में काँग्रेस का जो प्रथम अधिवेशन हुआ, उससे सारे भारत में नवजीवन की थिरकन स्पंदित हुई। भारतीय इतिहास की यह एक विशिष्ट घटना थी। पहली बार राजनीतिक एकता का उद्बोधन किसी देशी या विदेशी राजशक्ति के द्वारा नहीं, बल्कि मातृभूमि की दूरदृष्टि संपन्न संतानों के द्वारा स्वतःस्फूर्त रूप में हुआ था, जो देश के विभिन्न कोनों से आए हुए थे। उन्होंने शासकों को साहसपूर्ण चुनौती देते हुए कहा कि 'भारत अब विदेशियों के इशारों पर अपने भाग्य के साथ खिलवाड़ नहीं करेगा, वह अपनी नैया आप खेने में समर्थ और कटिबद्ध है" (गुप्त, 1985, पृ. 37)। भारत में बढ़ रही राजनीतिक चेतना के फलस्वरूप देश के कोने-कोने से अधिकाधिक समाचार पत्र निकलने लगे। इनमें से बहुत से समाचार पत्र ऐसे थे, जो स्वतंत्रता आंदोलन के स्वर को और अधिक बुलंद करने के लिए स्वयं स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा प्रारंभ किए गए थे। इनमें शामिल हैं 'हिंदोस्थान' (हिंदी और अँग्रेजी में प्रकाशित यह समाचार पत्र वर्ष 1885 में कालाकाँकर के राजा रामपाल सिंह द्वारा शुरू किया गया था और 1887 में मदन मोहन मालवीय इसके संपादक बने), 'बंदे मातरम्' (1905 में अरविंद घोष ने शुरू किया), 'लीडर'व 'अभ्युदय' (1909 में महामना मदन मोहन मालवीय ने शुरू किए), 'बॉम्बे क्रॉनिकल' (1910 में फिरोजशाह मेहता ने शुरू किया), 'अल हिलाल' (1912 में अबुल कलाम आजाद ने उर्दू में किया), प्रताप (1913 में गणेश शंकर विद्यार्थी ने शुरू किया), 'इंडिपेंडेंट' (1919 में मोती लाल नेहरू ने शुरू किया), 'यंग इंडिया' (1919 में महात्मा गांधी ने शुरू क्या), 'हिंदुस्तान टाइम्स' (1920 में के.एम. पणिक्कर ने शुरू किया), 'नवजीवन' (1921 में महात्मा गांधी ने शुरू किया), 'द पीपुल' (1925 में पंजाबी) व 'वंदे मातरम्' (उर्दू में लाला लाजपत राय ने शुरू किया), 'हरिजन' (1931 में महात्मा गांधी ने शुरू किया), 'नेशनल हेराल्ड' (1938 में जवाहरलाल नेहरू ने शुरू किया) आदि।

अखबारों को कुचलने के लिए नए-नए कानून

भारत में राजनीतिक चेतना बढ़ने के साथ ही जिस प्रकार समाचार पत्रों की संख्या बढ़ रही थी, उसी तरह अँग्रेज सरकार इन समाचार पत्रों को कुचलने के लिए नए-नए कानून भी बना रही थी। अँग्रेज सरकार पहले दिन से ही भारतीयों की आवाज को कुचलने के लिए सदैव नए-नए हथकंडे अपनाती रही। यह बात विभिन्न जनआंदोलनों व विद्रोहों को कुचलने के साथ ही समाचार पत्रों को कुचलने के संबंध में भी दिखाई देती है। 1821 में जब राजा राममोहन राय ने पहला भारतीय समाचार पत्र 'संवाद कौमुदी' और उसके बाद 1822 में 'मिरात-उल-अखबार' निकाला, तो उसके तत्काल बाद अँग्रजों ने 1823 में एक नया कानून बना दिया कि "कोई भी व्यक्ति बिना इजाजत के छापखाने का मालिक नहीं हो सकता। कहना न होगा कि इस कानून से छापाखाना तथा पत्र जगत् पर कुठाराघात हुआ" (गुप्त, 1985, पृ. 14)। इसी तरह भारतीय प्रेस को कुचलने के लिए अँग्रेजों ने समय-समय पर कई कानून बनाए, जिनमें 1878 में वर्नाकुलर एक्ट, 1908 में द न्यूज पेपर एक्ट, 1910 में इंडियन प्रेस एक्ट, 1931 में इंडियन प्रेस एक्ट व 1932 में फॉरेन रिलेशन एक्ट आदि प्रमुख हैं। ऐसे सभी कानूनों का उद्देश्य किसी भी प्रकार भारतीयों की आवाज को कुचलना था। 1910 के कानून के तहत एक हजार से अधिक समाचार पत्रों के विरुद्ध कार्रवाई की गई (डीएच वेब डेस्क, 2020)। अँग्रेज सरकार का दमन यहीं नहीं रुका, इसके बाद भी दमनकारी हथकंडे अपनाए जाते रहे। 'ब्रिटिश सरकार पत्रिकाओं का चुन-चुनकर दमन कर रही थी। प्रेमचंद की पत्रिका 'हंस' एवं 'जागरण' से सन् 1932 में जमानत माँगी गई। वाराणसी से प्रकाशित समाचार पत्र 'आज' को बंद कर दिया गया। 1930 से 1934 के बीच राजद्रोह कानून के अंतर्गत 348 समाचार पत्रों का प्रकाशन बंद कर दिया गया (यादव, 1997, पृ. 35)।

भारत में संवाद समितियों का विकास

भारत में राजनीतिक समाचारों की दृष्टि से संवाद समितियों का दौर

1885 में काँग्रेस की स्थापना के बाद ही शुरू हुआ। उस समय भारत में केवल 'रॉयटर' ही कार्यरत थी, इसलिए स्वाभाविक रूप से समाचार प्रेषण में उसका एकाधिकार था। इसके बाद यहाँ 'एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया', 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' और 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया' प्रारंभ हुई। इनकी कार्य प्रणाली और भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में इनके योगदान का विश्लेषण निम्न प्रकार है :

रॉयटर व उसके एकाधिकार को चुनौती देने के प्रयास

1. **रॉयटर :** 'रॉयटर' ने 1866 में भारत में अपना कार्यालय खोला और ब्रिटेन के उद्योगों के लिए कपास और जूट आदि कच्चे माल के बाजार भाव यहाँ से भेजने शुरू किए। उसने भारत के राजनीतिक समाचार प्रेषण का कार्य 1885 में काँग्रेस की स्थापना के समय शुरू किया। तब वह देश में अकेली संवाद समिति थी, इसलिए स्वाभाविक रूप से उसका वर्चस्व बन गया।

2. **एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया (एपीआई) :** 'रॉयटर' के वर्चस्व को चुनौती देने का साहस जुटाया एक भारतीय पत्रकार केशब चंद्र राय ने। वे भारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी शिमला से कई समाचार पत्रों को समाचार भेजते थे। इसी दौरान उनके मन में एक संवाद समिति आरंभ करने का विचार आया। इस संदर्भ में उन्होंने 1910 में अपने तीन पत्रकार मित्रों ऊषा नाथ सेन, दुर्गा दास और ए. एस. अयंगर के साथ 'एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया' नाम से एक भारतीय संवाद समिति आरंभ की, परंतु आर्थिक कारणों से यह उपक्रम ज्यादा दिन नहीं टिक सका और उन्हें 1919 में इसका 'रॉयटर' से गठजोड़ करना पड़ा। इस गठजोड़ पर पूर्ण नियंत्रण 'रॉयटर' का ही था। वस्तुतः गठजोड़ बराय नाम था और समाचारों के लिए 'एपीआई' के नाम का सिर्फ उपयोग किया गया, लेकिन इस पर पूरा एकाधिकार 'रॉयटर' का हो गया था। राय इसके ब्यूरो प्रमुख के रूप में काम देखते रहे। लेकिन भारत में 'रॉयटर' की सेवाओं के लिए 'एपीआई' के नाम का ही उपयोग किया जाता रहा। 'रॉयटर' और 'एपीआई' के इस गठजोड़ का मतलब था, पूरी तरह सरकारी नियंत्रण। यह गांधीजी के आंदोलन के दौरान और अधिक स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आया (श्रीवास्तव, 2007, पृ. 37-39, 67)। स्वतंत्रता मिलने के बाद 1949 में इसका कामकाज 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया' (पीटीआई) को हस्तांतरित कर दिया गया।

3. **फ्री प्रेस ऑफ इंडिया (एफपीआई/एफपीए) :** भारतीय प्रभुत्व वाली संवाद समिति को चलाने की दृष्टि से केशब चंद्र राय द्वारा 'एपीआई' को चलाने में असफलता के बाद एक अन्य स्वराज समर्थक पत्रकार स्वामीनाथ सदानंद ने 1925 में 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' की स्थापना की। एस. सदानंद उच्च ध्येय के प्रति समर्पित, उद्यमशील, कुशाग्र, साहसी व महान् पत्रकार थे। 'एफपीआई' प्रारंभ करने से पहले एस. सदानंद 'एपीआई' में पत्रकार थे। वे और उनके सहयोगी दुर्गादास 27 दिसंबर, 1919 से अमृतसर में आयोजित काँग्रेस अधिवेशन की रिपोर्टिंग के लिए वहाँ गए थे। जानकारी हो कि उसी वर्ष 13 अप्रैल को बैसाखी के दिन 'जनरल रेजिनाल्ड एडवर्ड डायर' के नेतृत्व में अँग्रेज सिपाहियों ने गोलियाँ चलाकर, जलियाँवाला बाग में सैकड़ों निहत्थे लोगों को निर्ममतापूर्वक मार डाला था। उस दिन वहाँ अँग्रेज सरकार की दमनकारी नीतियों और 'रोलेट एक्ट' के खिलाफ जनसभा थी, जिसमें हजारों लोग शामिल हुए थे। इस जघन्य नरसंहार के विरोध में, पूरे देश में अँग्रेजों के खिलाफ आक्रोश चरम पर था और काँग्रेस का अमृतसर अधिवेशन इसी आक्रोश के माहौल में हो रहा था। दुर्गादास ने काँग्रेस अधिवेशन के दौरान एस. सदानंद की मनोस्थिति को याद करते हुए, 1970 में दिए एक साक्षात्कार में बताया, "सदानंद अधिवेशन के घटनाक्रम और इससे पूर्व हुए दुःखद कांड से बहुत ही भावुक हो गए थे। स्पष्ट रूप से एक रिपोर्टर के लिए 'एपीआई' ऐसा मंच नहीं था, जहाँ पत्रकारिता के मानदंडों के अनुरूप इस प्रकार की भावनात्मक रिपोर्टिंग के लिए कोई स्थान हो (इजराइल, 1994, पृ. 127-128)। 'रॉयटर' के एकाधिकार वाली 'एपीआई' में जिस प्रकार से समाचारों की भावनाओं का दमन होता था, उससे सदानंद भावनात्मक रूप से इतने आहत हुए कि उन्होंने 'एपीआई' को छोड़ दिया। यह प्रकरण इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि सदानंद किस प्रकार से राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत थे और इस प्रकरण के बाद ही उन्होंने एक ऐसी संवाद समिति बनाने की ठानी, जहाँ जानमानस की राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति हो सके। 'जलियाँवाला बाग नरसंहार' और अँग्रेज सरकार द्वारा इससे संबंधित समाचारों के दमन से भावनात्मक रूप से आहत होकर उन्होंने जिस संवाद समिति का गठन करने की ठानी थी, उसका नामकरण 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया'(एफपीआई) किया। एजेंसी के इस नामकरण से ही स्पष्ट होता है कि एस. सदानंद किस प्रकार भारत की स्वतंत्रता के साथ ही प्रेस की स्वतंत्रता भी चाहते थे।

'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' के गठन के संबंध में स्वयं सदानंद ने लिखा है कि इसकी रूपरेखा 1923 में बनाई गई थी और इसकी शुरुआत 1925 में की गई (श्रीवास्तव, 2007, पृ. 41)। "1924 के वसंत में काँग्रेस के वरिष्ठ नेताओं को एफपीआई के गठन की योजना बताई गई, जिसमें महात्मा गांधी ने भी अपनी रुचि दिखाई थी। इसके बाद इसके गठन का प्रारंभिक व्यय और कार्य योजना भी उनके समक्ष रखी गई थी, लेकिन एक प्रश्न, जिससे वे बहुत चिंतित थे, यह था कि क्या यह उपक्रम 'एपीआई' को मात दे सकेगा" (इजराइल, 1994, पृ.128)। इसके बाद सदानंद ने 12 सितंबर, 1924 को एक सार्वजनिक अपील जारी की जिसमें उन्होंने कहा, "लंबे समय से जनसामान्य द्वारा एक ऐसी समाचार एजेंसी की आवश्यकता महसूस की जा रही थी, जो भारतीय दृष्टिकोण से, सटीकता और निष्पक्षता के साथ समाचार एकत्र और प्रसारित करे। ...8 जनवरी, 1925 को 'बॉम्बे क्रॉनिकल' ने 'एफपीआई' कार्यालय खोलने की घोषणा प्रकाशित करते हुए लिखा, 'यह एक ऐसा मिशन है, जो मात्र भारतीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करने से कहीं ज्यादा चुनौतीपूर्ण है" (इजराइल, 1994, पृ.128)। जैसा कि 'बॉम्बे क्रानिकल' ने कहा, वस्तुतः 'एफपीआई एक मिशन' था। 'एफपीआई' देश की पहली समाचार एजेंसी थी, जिसका स्वामित्व और प्रबंधन दोनों भारतीयों के पास था। एस. सदानंद के साहस और स्वतंत्रता की लड़ाई में 'एफपीआई' के योगदान की सराहना करते हुए के. रामाराव लिखते हैं, "एफपीआई' ने, जब तक वह रही, राष्ट्रभक्तिपूर्ण कार्य बहुत अच्छी प्रकार किया। इसने कई ऐसे खुलासे किए, जो सरकार को बहुत

ही परेशानी में डालने वाले थे। इसने रुपये और पाउंड स्टर्लिंग के बीच अनुपात निश्चित करने वाले विध्वंसकारी निर्णय और ओटावा समझौते का डटकर विरोध किया" (राव, 1965, पृ. 89)। ब्रिटिश सरकार ऐसे किसी भी उपक्रम के येन-केन-प्रकारेण दमन का प्रयास करती थी, जो भारतीयों की भावनाओं को व्यक्त करता और उनमें स्वतंत्रता की भावनाएँ जाग्रत करता था। इसी क्रम में सरकार ने एफपीआई को विफल करने के लिए भी सदानंद के सहयोगी निदेशकों पर दबाव बनाना शुरू कर दिया, जिसके कारण इनमें से चार 1929 में त्यागपत्र देने के लिए मजबूर हो गए और एक का 1930 में निधन हो गया (श्रीवास्तव, 2007, पृ. 39-40)।

एफपीआई पर एक और दमनकारी कार्रवाई

साम्राज्यवादी सरकार के एस. सदानंद और 'एफपीआई' पर दबाव उसके निदेशकों पर डाले गए गए दबावों तक ही सीमित नहीं थे। "20 मार्च, 1929 को 'एफपीआई' के बंबई कार्यालय पर पुलिस ने छापा मारा और वहाँ से कई कागजात व रिकार्ड ले गई। पुलिस वहाँ से जो कागजात ले गई थी, उनमें मुख्य रूप से शामिल थे—विदेशी सेवा व विदेशी संवाददाताओं की सूची, एकाउंट बुक्स, प्रेस कटिंग बुक्स—जिनमें रूस से संबंधित 'डेली टेलीग्राफ (लंदन) की कटिंग भी थी, साम्राज्यवाद के खिलाफ लीग से प्राप्त सामग्री, हालाँकि एफपीआई ने इन्हें प्रकाशित नहीं किया था, चुनिंदा विदेशी टेलीग्राम, समाजवाद पर अमेरिकी लेखक अप्टन सिंक्लेयर की पुस्तकें आदि, एफपीआई की वार्षिक रिपोर्ट।...सरकार की नजर में एजेंसी काँग्रेस की प्रोपेगेंडा एजेंट थी।...सदानंद पर क्रिमिनल लॉ अमेंडमेंट एक्ट के तहत कार्रवाई की गई और उसके दो रिपोर्टरों को राजद्रोह के आरोप में सजा दी गई। सदानंद को तीन माह की सजा दी गई थी, जिसकी उसने उच्च न्यायालय में अपील की, सदानंद भी कुछ समय जेल में रहे।...इन सब कारणों से सदानंद काफी परेशानी में फँस गए।... टेलीग्राफ विभाग भी उनके साथ कड़ाई का व्यवहार करने लगा।...'एफपीआई' को कार्यालय से प्राप्त कागजात को आपत्तिजनक करार देकर उसकी 6 हजार रुपये की जमानत जब्त कर ली गई, इसके साथ ही बंबई सरकार ने और जमानतें भी जब्त कर लीं (इजरायल, 1994, पृ.149-150)। प्रो. के. एम. श्रीवास्तव अपनी पुस्तक 'न्यूज एजेंसीज" फ्रॉम पिजन टू इंटरनेट' में 'एफपीआई' के सामने खड़ी की गई विभिन्न बाधाओं का उल्लेख करते हुए लिखते हैं, "एपीआई' ने दबाव डाला कि जो अखबार दूसरी एजेंसी से खबरें लेते हैं, उन्हें उनकी सेवा उपलब्ध नहीं होगी।...यही नहीं 'मई 1930 का प्रेस अध्यादेश' एफपीआई के लिए एक और संकट बनकर आया। इसके चलते फ्री प्रेस के टेलीग्रामों को कड़ाई से सेंसर किया जाने लगा, जिसके कारण समाचार पत्र, प्रेस अध्यादेश और दूसरे प्रेस कानूनों के डर के कारण, एफपीआई के समाचार छापने के प्रति अनिच्छा दिखाने लगे।" इस प्रकार के अनेक दबावों के बावजूद अँग्रेज सरकार के खिलाफ अपना संघर्ष जारी रखने के लिए सदानंद ने "बंबई से अपना स्वयं का समाचार पत्र शुरू किया, पहले एक साइक्लोस्टाइल समाचार बुलेटिन के रूप में 'फ्री प्रेस बुलेटिन' और अंत में 13 जून, 1930 को 'द फ्री प्रेस जर्नल" (श्रीवास्तव, 2007, पृ. 68-69)।

प्रो. श्रीवास्तव लिखते हैं कि 7 सितंबर, 1931 को लंदन में शुरू हुए 'दूसरे गोलमेज सम्मेलन' के दौरान भी एजेंसी ने कई 'स्कूप' ब्रेक किए, लेकिन कई राष्ट्रवादी समाचार पत्रों ने भी सरकार की कार्रवाई के डर से इन्हें नहीं छापा। कई अखबारों ने तो एजेंसी को शुल्क का भुगतान किया, लेकिन खबरें छापने से इनकार कर दिया। वास्तव में अँग्रेज सरकार ने अखबारों में 'एफपीआई' को लेकर एक डर का माहौल पैदा कर दिया था, जिससे अखबार उसकी खबरें छापने से डरने लगे थे। 'फ्री प्रेस एजेंसी' और 'फ्री प्रेस जर्नल' किस प्रकार 'रॉयटर' के लिए एक चुनौती बन गए थे और कैसे सरकार निरंतर 'एफपीआई' के विरुद्ध दमनात्मक कार्रवाइयाँ करती रही, इसका उल्लेख करते हुए प्रो. के. एम. श्रीवास्तव अपनी पुस्तक में लिखते हैं, "1930 'फ्री प्रेस जनरल' की एक प्रति और 'एफपीआई' के टेलीग्राम किसी ने चोरी-छिपे 'रॉयटर' के लंदन कार्यालय को भेज दी, जिससे उजागर हुआ कि 'एफपीआई' किस प्रकार 'रॉयटर' पर भारी पड़ रही है। इससे रॉयटर के बंबई कार्यालय में हड़कंप मचा गया। खबरों के मामले में 'एफपीआई' लगातार 'रॉयटर' को पीट रहा था।...इस प्रकार के समाचारों में 'फरवरी 1933 में 'एफपीआई' का एक महत्त्वपूर्ण स्कूप 'सितंबर 1930 में हुए चटगाँव शस्त्रागार की लूट' और अन्य खबरें थीं। इस स्कूप के बारे में प्रतिष्ठित पत्रकार के. रामाराव ने जानकारी जुटाकर विस्तार से लिखा था।" जब 'एपीआई' 'एफपीआई' से मात खाने लगी तो उसने किसी एजेंसी द्वारा अपना अखबार निकाले जाने के खिलाफ मुहिम चलाई। इस संबंध में प्रो. श्रीवास्तव लिखते हैं, "जिसके कारण सदानंद 'एपीआई' से समझौता कर अपने अखबार की शृंखला को बंद करने को मजबूर हो गए।" 1935 में 'एफपीआई' को उस समय सरकारी कोप का शिकार होना पड़ा "जब 'एफपीआई' एजेंसी' के अखबार 'फ्री प्रेस जर्नल' में 'स्वराज ही एक मात्र उपाय है' शीर्षक से संपादकीय और महात्मा गांधी के एक लेख के मुख्य अंश व न्यूयॉर्क में विट्ठलभाई पटेल के भाषण की एक रिपोर्ट छापने के आरोप में अखबार पर भारी जुर्माना थोपा गया। इससे सदानंद दीवालिया हो गए और उन्हें मजबूर होकर 'एफपीआई' को बंद करना पड़ा" (श्रीवास्तव, 2007, पृ. 40)।

एफपीआई को पुनर्जीवित करने के प्रयास

एफपीआई को 1945 में पुनर्जीवित किया गया था और इसका उद्देश्य था भारतीय प्रेस को अंतरराष्ट्रीय समाचारों को उपलब्ध कराने के साथ ही वैश्विक मीडिया को भी भारतीय समाचार उपलब्ध कराना। इसके लिए बटाविया, काहिरा, लंदन, नानकिंग, न्यूयॉर्क और सिंगापुर में संवाददाताओं की नियुक्ति की गई। सदानंद को टेलीप्रिंटर लाइनें लीज पर देने का आश्वासन दिया गया था, लेकिन बाद में यह सुविधा देने से इनकार कर दिया गया। 30 अप्रैल, 1947 (उस समय पं. जवाहरलाल नेहरू अंतरिम सरकार के प्रधानमंत्री थे।) को 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' को स्पष्ट रूप से बता दिया गया कि उसे टेलीप्रिंटर की सुविधा नहीं दी जाएगी।.... एस. सदानंद टेलीप्रिंटर की सुविधा मिलने से क्यों वंचित कर दिए गए, इस तथ्य का खुलासा उनके निधन के कई वर्ष बाद हुआ। एस. सदानंद के एक सहयोगी बी.सी. दत्ता ने 'स्वर्ण जयंती' अवसर पर 'सागा ऑफ फ्री प्रेस जर्नल' के लिए लिखे एक लेख में खुलासा किया कि किस प्रकार उसने नौसेना के मूवमेंट को लेकर 'फ्री प्रेस जर्नल' में एक लेख लिखा था, जिससे नाराज होकर सरकार ने टेलीप्रिंटर के लिए लाइन देने से इनकार कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' को पुनर्जीवित नहीं किया जा सका" (श्रीवास्तव, 2007, पृ. 43-44)।

सदानंद किस प्रकार भारत की स्वतंत्रता के साथ ही 'प्रेस की स्वतंत्रता' से भी भावनात्मक रूप से जुड़े हुए थे, इस बात का उल्लेख 'एफपीआई' के गठन के संदर्भ में पहले ही किया जा चुका है, लेकिन स्वतंत्र भारत की प्रेस के संबंध में भारत सरकार का पहला निर्णय ही प्रेस की स्वतंत्रता पर कुठाराघात सिद्ध हुआ, जिसके दुष्परिणामस्वरूप 'एफपीआई' अकाल मृत्यु का शिकार हो गई। इस प्रकार भारत न केवल एक निर्भीक संवाद समिति से वंचित हो गया, वरन् अंतरराष्ट्रीय स्तर की संवाद समिति बनाने की जो उन्होंने शुरुआत की थी, उस प्रयास की भी भ्रूण हत्या हो गई और भारत आज तक भी अपनी एक विश्व स्तरीय संवाद समिति खड़ी नहीं कर पाया। स्वामीनाथ सदानंद की पत्रकारिता और भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम में उनके योगदान को याद करते हुए उनके सहयोगी और प्रतिष्ठित पत्रकार के. रामाराव ने लिखा है, ''स्वामीनाथ सदानंद और 'फ्री प्रेस जर्नल'1930-33 के स्वातंत्र्य संग्राम के सम्मान के बराबर के भागीदार हैं। अखबार ने एक महायोद्धा की भाँति सरकार के खिलाफ संग्राम किया।...इस्पात से ढले सदानंद में रंच मात्र भी भय का भाव नहीं था।... उन्होंने 1927 में 'द फ्री प्रेस न्यूज एजेंसी' की स्थापना की, जिसका उद्देश्य राष्ट्र की राजनीतिक गतिविधियों को कवर करना था, जिनको 'एसोसिएटेड प्रेस', अपनी घोषित सरकारी पूर्वाग्रह और विशिष्ट संबद्धता के चलते, नहीं कर सकी या उपेक्षा कर रही थी। एजेंसी ने, जब तक वह रही, राष्ट्रभक्तिपूर्ण कार्य बहुत अच्छी प्रकार किया'' (राव, 1965, पृ. 86-89)।

प्रो. श्रीवास्तव ने एस. सदानंद के संघर्ष और दूरदृष्टि के संबंध में लिखा, ''मोहनदास करमचंद गांधी स्वतंत्रता सेनानी पत्रकार थे, तो स्वामीनाथ सदानंद पत्रकार स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता के लिए न केवल तब संघर्ष किया जब अँग्रेज भारत पर राज कर रहे थे, वरन् स्वतंत्रता के बाद भी, जब उन्होंने कुछ संवाद समितियों के, वैश्विक समाचारों पर प्रभुत्व के, खतरों के प्रति चेतावनी दी। 'न्यू वर्ल्ड इनफॉरमेशन एंड कम्यूनिकेशन ऑर्डर' मुहावरा उनकी देन नहीं है, लेकिन उन्होंने उन खतरों को भाँप लिया था, जिनका विश्व आज सामना कर रहा है'' (श्रीवास्तव, 2007, पृ. 40)।

रॉयटर को साम्राज्य का संरक्षण और दूसरी एजेंसियों से भेदभाव

'रॉयटर' को ब्रिटिश सम्राज्य का जिस प्रकार से संरक्षण प्राप्त था और जिस प्रकार 'रॉयटर' की प्रतिद्वंद्वी एजेंसियों का दमन किया गया, ताकि 'रॉयटर' का एकाधिकार बना रहे, उसके एक-दो नहीं वरन् अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। यहाँ इनमें से कुछेक साक्ष्यों का उल्लेख करेंगे। ''एस. सदानंद ने 'रॉयटर-एपीआई' के एकाधिकार को चुनौती देते हुए 1927 में सरकार से वे सुविधाएँ 'एफपीआई' के लिए माँगी, जो सामान्य रूप से सरकार द्वारा प्रेस को दी जाती थी, लेकिन उनमें से कई सुविधाओं से 'एफपीआई' को वंचित रखा जा रहा था। ऐसी न्यूनतम सुविधाओं में से प्रेस गैलरी में प्रवेश की सुविधा सदानंद को मिल रही थी। सदानंद ने प्रेस रूम में प्रवेश व सचिवालय में सरकारी अधिकारियों से मिलने की सुविधा तथा सरकारी विज्ञप्तियों व प्रकाशनों की, समाचार प्रकाशन से पूर्व ही, उपलब्धता की माँग की थी। सदानंद की इन माँगों पर विचार करने के लिए 14 फरवरी को प्रेस कमेटी की बैठक में 'रॉयटर' के प्रतिनिधि 'एडवर्ड बक' ने इसका विरोध किया, यद्यपि गृह सचिव और डीपीआई सदानंद को प्रेस रूम में प्रवेश की सुविधा दिए जाने पर सहमत थे, इसलिए उनको यह सुविधा तो दी गई, लेकिन अन्य सुविधाओं जैसे-सरकारी प्रकाशनों को उपलब्ध कराए जाने की माँग सर्वसम्मति से निरस्त कर दी गई। सदानंद ने गृह सचिव से कहा भी कि यदि उसे समय पर सरकारी प्रकाशन नहीं मिलते तो 'एफपीआई' 'एपीआई' से प्रतियोगिता नहीं कर सकती। यद्यपि गृह सचिव उनकी बात से असहमत नहीं थे, लेकिन उनकी माँग स्वीकार नहीं की गई (इजराइल, 1994, पृ.141-142)।

मिल्टन इजराइल अपनी पुस्तक में यह भी लिखते हैं कि सदानंद के सरकार पर आरोपों के संबंध में एक नोट असेंबली के सदस्यों में वितरित किया गया। इस संबंध में 6 अप्रैल, 1929 के 'हिंदुस्तान टाइम्स' में एक समाचार भी प्रकाशित हुआ। इसके साथ ही ब्रिटिश सरकार और 'रॉयटर' के चर्चित संबंधों के बारे में भी उन्हें जानकारी दी गई, जिसमें बताया गया कि किस प्रकार सरकार ने 'रॉयटर' को अनेक विशिष्ट सुविधाएँ उपलब्ध कराई हैं, जैसे रेलवे में सफर करने के लिए प्रथम श्रेणी का फ्री-पास, टेलीफोन ट्रंक कॉल का निःशुल्क प्रयोग, घटी दरों पर टेलीग्राम की सुविधा और सरकारी प्रकाशनों व समाचारों के संबंध में पक्षपातपूर्ण व्यवहार करना। ऐसे सभी मामलों में जब 'एफपीआई' ने भी उन सभी सुविधाओं की माँग की तो उसे देने से इनकार कर दिया गया। गृह विभाग ने, इस अपेक्षा में कि असेंबली में इस बारे में प्रश्न पूछा जा सकता है इस पर विभागीय चर्चा की, जिसमें यह स्वीकार किया गया कि '74-मिसलेनिअस-बुक्स एंड पीरियोडिकल्स' मद में एक बड़ी राशि आवंटित की गई है। फ्री रेल पास के संबंध में नोट किया गया कि यह मामला रेलवे बोर्ड के अंतर्गत आता है और एफपीआई को विभागीय परामर्श पर फ्री-पास की सुविधा नहीं दी गई।''

रॉयटर को 1.27 लाख रुपये का भुगतान

अँग्रेज सरकार ने बजट में 1.72 लाख रुपये 'विविध खर्चों' के मद में 'न्यूज एजेंसी खर्च' के रूप में दर्शाए थे। इस संबंध में सदानंद ने बजट अनुमानों का एक विस्तृत विवरण तैयार कर 'पायनियर' के संपादक एफ. डब्ल्यू. विल्सन को दिया और बताया कि किस प्रकार सरकारी खर्च पर 'रॉयटर-एपीआई' का एकाधिकार स्थापित किया गया है। पायनियर के संपादक विल्सन, जो लोकतंत्रवादी विचारों के थे, ने यह समाचार 'शरारतपूर्ण एकाधिकार' शीर्षक से प्रकाशित कर दिया। इस समाचार में केंद्र और प्रांतीय सरकारों को 'एपीआई-रॉयटर' की सेवाओं के लिए किए गए खर्च की समीक्षा करते हुए प्रश्न किया गया था कि अधिकारियों को समाचार उपलब्ध कराने के लिए प्रति वर्ष 1.72 लाख रुपये खर्च करने का क्या औचित्य है और इसे वैधानिक समाचार पत्र उद्योग में सरकार का अवांछित हस्तक्षेप बताया। अंत में अखबार ने अपनी टिप्पणी की कि यह और कुछ नहीं वरन् 'रॉयटर-ईएनए' एकाधिकार पर किया गया खर्च है (इजराइल, 1994, पृ.142-143)। इसके बाद विभिन्न मंचों पर सरकार से इस बारे में सवाल किए गए, लेकिन सरकार ने जो कुछ कहा वह लीपापोती के अलावा और कुछ नहीं था। इस सब विवरण से एक बात स्पष्ट होती है कि साम्राज्यवादी सरकार किस प्रकार 'रॉयटर' पर मेहरबान थी, लेकिन भारतीय प्रेस का गला घोंटने के लिए हर तरह के हथकंडे अपना रही थी। ब्रिटिश सरकार 'रॉयटर' पर केवल मेहरबान ही नहीं थी, वरन् इस बात के लिए भी प्रयत्नशील रहती थी कि किस प्रकार भारत में 'रॉयटर' का एकाधिकार बना रहे।

अमेरिकी मूल की 'ब्रिटिश यूनाइटेड न्यूज' की सेवा में भी अडंगे

'रॉयटर' 1920 के दशक के अंतिम वर्षों में, भारत में अपना एकाधिकार बनाए रखने के लिए लगातार अधिकाधिक आक्रामक रुख अपना रहा था। 1926 में उसने भारत में अपने ग्राहक समाचार पत्रों को छह माह का समय देते हुए कहा कि वे लंदन से समाचार प्राप्त करने के लिए उससे, इस दौरान, अपने अनुबंध का नवीकरण करा लें, लेकिन इसके साथ ही यह शर्त भी लगा दी कि वे किसी अन्य एजेंसी से समाचार नहीं ले सकते।...भारत में 'रॉयटर' के तीन प्रतिद्वंद्वी थे—'आस्ट्रेलियन केबल सर्विस' जिसने अपना महत्त्वपूर्ण ग्राहक 'टाइम्स ऑफ इंडिया' खो दिया था। 'रॉयटर' की इस नई व्यवस्था से दूसरे प्रतिद्वंद्वी 'ब्रिटिश यूनाइटेड प्रेस' द्वारा 'स्टेट्समैन' को दी जा रही सर्विस भी प्रभावित होती। 'द इंडियन डेली मेल' ने 'सेंट्रल न्यूज एजेंसी' के माध्यम से लंदन की सर्विस ले रखी थी, लेकिन नई व्यवस्था से वह भी समाप्त हो जानी थी…'ब्रिटिश यूनाइटेड प्रेस' की स्थापना 1924 में अमेरिका की पेरेंट कंपनी ने की थी और भारत में यह मुख्य एजेंसी बन गई थी। 1926 में इसके भारत में दस रिपोर्टर थे और 'टाइम्स ऑफ इंडिया' इसके ग्राहकों में से एक था। कनाडा और आस्ट्रेलिया में इसकी रॉयटर से एक प्रकार से शत्रुता ही थी।...'रॉयटर' के लिए ब्रिटिश सरकार कितनी चिंतित रहती थी, यह इस बात से और पुष्ट होता है कि जब 'रॉयटर' की नई शर्तों के तहत 'स्टेट्समैन' को 'ब्रिटिश यूनाइटेड न्यूज' की सर्विस छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा तो ऐसी स्थिति में 'स्टेट्समैन' को केवल 'रॉयटर' की सर्विस हेतु ही सहमत करने के लिए गृह विभाग ने 'स्टेट्समैन' के संपादक से सम्पर्क कर उनसे 'रॉयटर' की पैरवी करते हुए कहा कि भारत में अकेली 'रॉयटर' ही पूर्ण सर्विस है।...यह भी बताया कि 'ब्रिटिश यूनाइटेड प्रेस' का उद्देश्य केवल व्यावसायिक है और यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि उसे अपने न्यूयॉर्क कार्यालय से 'रॉयटर' से राजनीतिक रूप से लड़ने के आदेश दिए गए हैं" (इजराइल, 1994, पृ.140-141)। 'रॉयटर' का एकाधिकार बनाए रखने के प्रयासों का यह अकेला मामला नहीं है। ऐसे अनेक मामले हैं, जिनमें से एक मामला 'ब्रिटिश ऑफिशियल वायरलेस मैसेज सर्विस' के भारत में उपयोग का एकाधिकार 'रॉयटर' को दिए जाने का भी है, जबकि दूसरे मीडिया घरानों (अखबारों व एजेंसियों) को इससे वंचित रखा गया था। मिल्टन इजराइल ने इस संबंध में भी विस्तृत चर्चा अपनी पुस्तक में की है।

'रॉयटर' की पक्षपातपूर्ण व असंतोषजनक खबरें

साम्राज्यवादी सरकार 'रॉयटर' के एकाधिकार के लिए भले ही जी-तोड़ प्रयत्न करती हो, लेकिन अखबार उसकी सर्विस से संतुष्ट नहीं थे, क्योंकि उसने कई बार ऐसी खबरें जारी कीं, जिन पर सवाल उठाए गए। जब गृह विभाग ने 'रॉयटर' के लिए 'स्टेट्समैन' के संपादक से संपर्क किया तो उस संदर्भ में मिल्टन इसराइल लिखते हैं कि 'स्टेट्समैन' उसकी खबरों को लेकर संतुष्ट नहीं था, क्योंकि 'रॉयटर' ने कई बार ऐसे टेलीग्राम भेजे थे, जिन पर सवाल उठाए गए, हालाँकि 'स्टेट्समैन' ने सोचा कि हो सकता है कि प्रेस कमेटी और इंडिया ऑफिस के संयुक्त प्रयासों से स्थिति सुधरेगी।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस की विमान दुर्घटना की झूठी खबर : बात 1942 के वसंत की है, जब रॉयटर ने भारी भूल करते हुए एक विमान दुर्घटना में नेताजी सुभाष चंद्र बोस की मृत्यु की काल्पनिक खबर जारी कर दी। इस झूठी खबर से पूरे देश में खलबली मच गई। गांधीजी ने और काँग्रेस के अध्यक्ष ने बोस की वृद्ध माता जी को तार भेजकर शोक व्यक्त किया। लेकिन जब कथित रूप से मृत नेताजी ने बर्लिन रेडियो से अपनी वार्ता प्रसारित की, तब रिपोर्टर ने इस बारे में अपनी जिम्मेदारी लेने से भी इनकार करने का प्रयास किया (श्रीवास्तव, 2007, पृ. 70)।

गांधीजी और नेहरू जी को भी नहीं बख्शा 'रॉयटर' ने : 'जवाहरलाल नेहरू ने 'रॉयटर' के 'रीग' रिपोर्टरों के व्यवहार को हास्यास्पद कहते हुए बताया था कि किस प्रकार वे हाल ही में अस्तित्व में आए 'सोवियत स्टेट' की आलोचना करने के लिए मनगढ़ंत खबरें जारी करते हैं। इस संबंध में प्रो. के. एम. श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक में लिखा है, "सोवियत संघ से वापस लौटने के बाद नेहरूजी ने बताया कि मुझसे प्रायः 'कथित रूप से महिलाओं के राष्ट्रीयकरण' के बारे में ही प्रश्न किए जाते रहे।" प्रो. श्रीवास्तव ने 'रॉयटर' की 1896 की एक खबर का उल्लेख करते हुए विस्तार से लिखा कि उसने किस प्रकार 'दक्षिणी अफ्रीका के नेटाल में भारतीयों की स्थिति के बारे में गांधीजी के बंबई में दिए एक बयान को पूरी तरह तरोड़ते-मरोड़ते हुए बढ़ा-चढ़ाकर पक्षपातपूर्ण व मनगढ़ंत खबर बनाई, जिससे द. अफ्रीका में गोरों में असंतोष पनपा। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि 13 जनवरी, 1897 को गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका जाने पर गोरों ने उन पर, उस समय, कई बार हमले किए, जब वे जहाज से उतर कर रुस्तम जी के घर जा रहे थे। इन हमलों के बाद गांधीजी ने अटार्नी जनरल को खेद जताते हुए पत्र लिखा कि आपने 'रॉयटर' पर विश्वास करते हुए यह मान लिया कि मैं इस 'अतिरंजित' मामले में शामिल हूँ।

इस पूरे विवरण से स्पष्ट है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार किस प्रकार भारत में 'रॉयटर' का एकाधिकार बनाए रखने के लिए तमाम तरह के हथकंडे अपना रही थी। इतना ही नहीं, वरन् प्रतिद्वंद्वी संवाद समितियों को न केवल उनके वैधानिक अधिकारों से वंचित रख रही थी, बल्कि उन पर सरकारी दमन चक्र भी अनवरत चलते रहे। ब्रिटिश सरकार ने यह सब कुछ केवल इसलिए किया, ताकि भारत का जनमानस स्वतंत्रता के प्रति अपनी भावनाओं को व्यक्त न कर सके और एकाधिकारपूर्ण 'रॉयटर' के माध्यम से लोगों को यह समझा सके कि 'ताज का राज' ही उनके लिए सर्वाधिक बेहतर है और वही उनके हितों का संरक्षण करने में समर्थ है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अँग्रेजों ने भारत में अपने साम्राज्य को बनाए रखने और जनभावनाओं के दमन के लिए इंग्लैंड की संवाद समिति 'रॉयटर' को एक हथियार के रूप में प्रयोग किया।

यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया (यूपीआई)

'यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया' की स्थापना ब्रिटिश राज में कलकत्ता के एक वरिष्ठ पत्रकार बिधू भूषण सेन गुप्त (बी.बी. सेन गुप्त) ने 1933 में की थी। इससे पहले वे 'एफपीआई' में कार्यरत थे। सेन गुप्त इसके प्रबंध निदेशक बने और बंगाल के वरिष्ठ काँग्रेस नेता डॉ. बिधान चंद्र रॉय इसके चेयरमैन थे। इसे प्रारंभ से ही 'रॉयटर' के प्रभुत्व वाली 'एपीआई' से प्रतिद्वंद्विता का सामना करना पड़ा। संसाधनों की कमी और ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियाँ भी इसके मार्ग में अवरोधक बनीं। भारत की स्वतंत्रता के बाद 1948 में डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने इसकी टेलीप्रिंटर सर्विस का उद्घाटन किया। इसके बाद समाचार प्रेषण की दृष्टि से इसमें कुछ सुधार

हुआ, लेकिन अपरिहार्य परिस्थितियों के चलते 1958 में इसकी सर्विस बंद करनी पड़ी।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जनमानस में जनचेतना और स्वतंत्रता की भावनाओं को जाग्रत करने में संचार माध्यमों की विशेष भूमिका रही है। इस दृष्टि से समाचार पत्रों व संवाद समितियों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारत में संवाद समिति की शुरुआत 1866 में ब्रिटिश संवाद समिति 'रॉयटर' द्वारा बंबई में ब्रिटेन के व्यावसायिक हितों को ध्यान में रखकर की गई थी और राजनीतिक समाचार प्रेषण का कार्य 1885 में 'भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस' की स्थापना के समय प्रारंभ किया गया। 'रॉयटर' का यह कदम भी ब्रिटेन के हितों को ध्यान में रखकर ही किया गया। उस समय भारत में केवल एक संवाद समिति 'रॉयटर' समाचार पत्रों को देश-विदेश के समाचार उपलब्ध कराती थी, इसलिए समाचारों पर उसका एकाधिकार था। काँग्रेस की स्थापना के बाद संपूर्ण देश के राजनेताओं व चिंतकों को एक मंच उपलब्ध हुआ। इसका परिणाम यह यह हुआ कि देश में अँग्रेजों के विरुद्ध जो संघर्ष क्षेत्रीय स्तर पर चल रहे थे, वे अब एक मंच पर संगठित होने लगे। इससे भारत में राजनीतिक विमर्श और चिंतन को एक नई दिशा मिली। इसका एक परिणाम यह हुआ कि जनभावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए देश में समाचार पत्रों का प्रसार और तीव्र गति से होने लगा। देश में जिस प्रकार केंद्रीय स्तर पर राजनीतिक विमर्श बढ़ रहा था, उसे देखते हुए एक ऐसे समाचार माध्यम की आवश्यकता महसूस होने लगी, जो देश के कोने-कोने के समाचारों को पूरे देश में उपलब्ध करा सके। इस दृष्टि से 'रॉयटर' कारगर नहीं थी, क्योंकि वह साम्राज्य के हितों के अनुसार काम कर रही थी, तो जाहिर है राजनीतिक चेतना की दृष्टि से उसकी कोई उपयोगिता नहीं थी। इतना ही नहीं, वह ब्रिटिश हितों को ध्यान में रखकर इस चेतना को दबाने के काम में लगी थी।

यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासांगिक न होगा कि किसी संवाद समिति का गठन और उसका सुचारु संचालन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, क्योंकि इस कार्य के लिए वैश्विक स्तर पर जितने संसाधन, तकनीकी और कुशल पत्रकार व प्रबंधन की आवश्यकता होती है, वह किसी एक व्यक्ति या सामान्य संस्था के लिए जुटाना सरल काम नहीं है। यही नहीं, इसके लिए जिस प्रकार का सहयोग समाज और शासन से चाहिए, वह सब जुटाना भी हर किसी के लिए संभव नहीं होता। इसीलिए भारत में 1885 से स्वतंत्रता प्राप्ति तक केवल तीन-चार संवाद समितियाँ ही दिखाई देती हैं। इनमें 'रॉयटर' ब्रिटिश एजेंसी थी। भारत में बढ़ रही सामाजिक चेतना को देखते हुए ही एक पत्रकार केशब चंद्र रॉय ने अपने कुछ सहयोगी पत्रकारों के साथ मिलकर 1910 में 'एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया' की स्थापना की, लेकिन संसाधनों की कमी और ब्रिटिश सरकार का अपेक्षित सहयोग न मिलने के कारण इसे 1919 में 'रॉयटर' के साथ गठबंधन करना पड़ा। 1925 में एक पत्रकार एस. सदानंद ने कुछ उद्यमियों के सहयोग से 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' (एफपीआई) की स्थापना की। 'एफपीआई' ने अपनी स्थापना के समय ही अपना ध्येय स्पष्ट करते हुए कहा था, "लंबे समय से जनसामान्य द्वारा एक ऐसी समाचार एजेंसी की आवश्यकता महसूस की जा रही थी जो भारतीय दृष्टिकोण से, सटीकता और निष्पक्षता के साथ समाचार एकत्र और प्रसारित करे।" जब तक 'एफपीआई' काम करती रही, वह अपनी घोषणा के अनुरूप कार्य करती रही। इसीलिए अँग्रेज सरकार एजेंसी के मार्ग में तरह-तरह की बाधाएँ उत्पन्न कर उसे कुचलने का काम करती रही। 'एफपीआई' ब्रिटिश एजेंसी 'रॉयटर' को गंभीर चुनौती दे रही थी।

विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि अँग्रेज सरकार ने 'एफपीआई' के दमन के लिए वे सभी तरीके अपनाए, जो वह 1757 के बाद से भारतीयों की आवाज को दबाने और जन-आंदोलनों व समाचार पत्रों को कुचलने के लिए अपनाती रही। सरकार के कुचक्रों के दबाव में 'एफपीआई' को 1935 में अपना काम बंद करने के लिए बाध्य होना पड़ा। प्रतिष्ठित पत्रकार के. रामाराव ने एस. सदानंद के प्रयासों की सराहना करते हुए लिखा, "...एफपीआई का उद्देश्य राष्ट्र की राजनीतिक गतिविधियों को कवर करना था, जिनको 'एसोसिएटेड प्रेस' अपनी घोषित सरकारी पूर्वाग्रह और विशिष्ट संबद्धता के चलते नहीं कर सकी या उपेक्षा कर रही थी। एजेंसी ने, जब तक वह रही, राष्ट्रभक्तिपूर्ण कार्य बहुत अच्छी प्रकार किया।" 'एफपीआई' की तरह ही एक पत्रकार बी. सेन गुप्त ने 1933 में 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ इंडिया' की स्थापना की, लेकिन संसाधनों की कमी के कारण यह 'रॉयटर' को चुनौती नहीं दे सकी। अँग्रेज सरकार ने एक और जहाँ 'एफपीआई' को कुचलने का काम किया, वहीं ब्रिटिश एजेंसी 'रॉयटर' को, उसके असंतोषजनक काम के बावजूद, पूरा संरक्षण प्रदान किया और उसका वर्चस्व बनाए रखने के लिए भारतीय एजेंसी के साथ ही अमेरिकी स्वामित्व वाली 'ब्रिटिश यूनाइटेड प्रेस' और आस्ट्रेलिया की 'आस्ट्रेलियन केबल सर्विस' को भी भारत छोड़ने के लिए बाध्य कर दिया। यह बात जगजाहिर है कि अँग्रेज सरकार ने 'रॉयटर' का उपयोग भारतीयों की आवाज को दबाने और समाचार पत्रों में अपने दृष्टिकोण से समाचार छपवाने के लिए एक हथियार के रूप में किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि अँग्रेजों ने भारतीयों की आवाज को दबाने व स्वाभिमान को कुचलने के हर संभव प्रयास किए। भारतीयों ने जब कभी भी और जिस भी तरीके से अपनी आवाज उठाने के प्रयास किए, चाहे वह जन-आंदोलन हों, समाचार पत्र हों या संवाद समिति, अँग्रेजों ने उसे हर तरह से कुचलने के प्रयास किए, लेकिन जनभावनाओं के ज्वार को वे अधिक दिन तक रोक नहीं सके और अंततः 15 अगस्त, 1947 को उन्हें भारत छोड़कर जाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

संदर्भ

अँग्रेजी सेना विद्रोह. (2021). अँग्रेजी सेना में हुए सैनिक विद्रोह. भारतकोश. https://m.bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%86%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%8B%E0%A4%B2%E0%A4%A8_%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B2%E0%A4%B5_%E0%A4%B8%E0%A5%88%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%8B%E0%A4%B9_(1757-1856_%E0%A4%88 से दिनांक 11 दिसंबर, 2021 को पुन:प्राप्त.

अस्थाना, एम. पी. (2002). विश्व की प्रथम रामलीला. https://web.archive.org/web/20121221011445/http://www.hindinest.com/bhaktikal/013.htm से दिनांक 25 नवंबर, 2021 को पुन:प्राप्त.

इजराइल, एम. (1994). कम्युनिकेशंस एंड पॉवर: प्रोपगंडा एंड द प्रेस इन द इंडियन नेशनल स्ट्रगल, 1920-1947. कैंब्रिज : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

उदंत मार्तंड. (2021). विकिपीडिया. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%89%E0%A4%A6%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A4_%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%A3%E0%A5%8D%E0%A4%A1 से दिनांक 28 नवंबर, 2021 को पुन:प्राप्त.

कुरुक्षेत्र. (2006). 1857 का स्वातंत्र्य समर : एक पुनरावलोकन. पृ.13

गुप्त, एम. एन. (1985). काँग्रेस के सौ वर्ष. दिल्लीः राजपाल एंड संस.

गुप्त, बी. (1988). काँग्रेस का इतिहास. वाराणसीः हिंदी प्रचारक संस्थान.

डीएच वेब डेस्क. (2020). हाउ द प्रेस पार्टिसिपेटिड इन इंडियाज फ्रीडम स्ट्रगल. डेक्कन हेराल्ड. https://www.deccanherald.com/national/how-the-press-participated-in-indias-freedom-struggle-873361.html से दिनांक 20 नवंबर, 2021 को पुन:प्राप्त.

धर्मपाल. (1988). अँग्रेजों से पहले का भारत. विदिशा : शताब्दी प्रकाशन.

धर्मपाल. (2016). भारत का स्वधर्म. बीकानेर : वाग्देवी प्रकाशन, पृ.73

गुप्ता, बी.एल. (1990). भारत का आर्थिक इतिहास. पंचकूलाः हरियाणा साहित्य अकादमी. पृ. 309.

पाईक विद्रोह. (2021). विप्लव सैनिक विद्रोह. भारतकोश. https://m.bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%AA%E0%A4%BE%E0%A4%87%E0%A4%95_%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%8B%E0%A4%B9 से दिनांक11 दिसंबर, 2021 को पुन:प्राप्त.

भट्टाचार्य, एस. (संपादक). (1967). भारतीय इतिहास कोश. लखनऊः हिंदी समिति.

मित्तल, एस. सी. (2009). 1857 : वनवासी नेतृत्व. मुंबई : भारतीय इतिहास संकलन समिति.

मुंडा, आर. (2018). आज ही के दिन प्रकाशित हुआ था पहला हिंदी अखबार 'उदंत मार्तंड'. रांचीः प्रभात खबर. https://www.prabhatkhabar.com/national/1163754 से दिनांक 28 नवंबर, 2021 को पुन:प्राप्त.

मेंडिस, जी. सी. (1952). सीलोन अंडर द ब्रिटिश. कोलंबो : एशियन एजुकेशन सर्विसेज. पृष्ठ 96.

यादव, वी. (1997). अँग्रेज सरकार द्वारा 'न्यू इंडियन लिटरेचर' की जब्ती. 'जब्तशुदा साहित्य विशेषांक'. उत्तर प्रदेश (मासिक). सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ. पृ. 35.

राणा, यू.एस. (2017). फर्स्ट बुलेटिन ऑन 1857 अपराइजिंग रीचड लंदन अ मंथ लेटर. न्यूज18.कॉम. https://www.news18.com/news/india/breaking-news-first-bulletin-on-1857-uprising-reached-london-a-month-later-1397195.html से दिनांक 24 नवंबर, 2021 को पुन:प्राप्त.

राव, के. आर. (1965). द पेन एज माय सोर्ड. बॉम्बे : भारतीय विद्या भवन.

विप्लव सैनिक विद्रोह. (2021). आंदोलन विप्लव सैनिक विद्रोह (1757-1856 ई.) भारतकोश. https://m.bharatdiscovery.org/india/%E0%A4%86%E0%A4%A8%E0%A5%8D%E0%A4%A6%E0%A5%8B%E0%A4%B2%E0%A4%A8_%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%AA%E0%A5%8D%E0%A4%B2%E0%A4%B5_%E0%A4%B8%E0%A5%88%E0%A4%A8%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B0%E0%A5%8B%E0%A4%B9_(1757-1856_%E0%A4%88 से दिनांक 11 दिसंबर, 2021 को पुन:प्राप्त.

सरस्वती, डी. (2019). सत्यार्थ प्रकाश. अजमेरः परोपकारिणी सभा. अष्टम् समुल्लास. पृ.204.

श्रीवास्तव, के. एम. (2007). न्यूज एजेंसीज : फ्रॉम पिजन तो इंटरनेट. नई दिल्ली : स्टर्लिंग पब्लिशर्स.

हॉब्सन, के. (...) ब्रिटिश प्रेस एंड इंडियन म्युटिनी. https://www.britishempire.co.uk/article/mutinypress.htm से दिनांक 24 नवंबर, 2021 को पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 51-56, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

स्वतंत्रता आंदोलन कालीन सिनेमा और गांधी

अंजना शर्मा[1] और डॉ. मीता उज्जैन[2]

सारांश

जन संचार के एक सशक्त माध्यम के रूप में सिनेमा का खास महत्व है। चलती-फिरती और बोलती आकृतियाँ लिखे हुए शब्दों से अधिक प्रभावी होती हैं। किसी भी काल का सिनेमा अपने दौर की संस्कृति और रिवाजों का परिचायक होता है। स्वतंत्रता आंदोलन के समानांतर बनी फिल्मों में गुलामी की जंजीरों को तोड़ने और कुरीतियों को खारिज करने की अकुलाहट स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। महात्मा गांधी ने अपने दौर की राजनीति को ही प्रभावित नहीं किया, बल्कि उन्होंने सामाजिक बदलावों के लिए लोगों के भीतर एक तरह की कुलबुलाहट भी पैदा की। स्वतंत्रता आंदोलन के संघर्ष में जब भारतीय सिनेमा अपने शैशव काल में था, तभी से गांधी उसे प्रभावित करने लगे थे। प्रस्तुत शोध आलेख में पाँच चुनिंदा फिल्मों—अमृत मंथन, चंडीदास, अछूत कन्या, दुनिया ना माने और नीचा नगर—के संदर्भ में स्वतंत्रता आंदोलन के समानांतर सिनेमा पर गांधी के प्रभाव का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द: स्वतंत्रता आंदोलन, हिंदी सिनेमा, गांधी, अमृत मंथन, चंडीदास, अछूत कन्या, दुनिया ना माने, नीचा नगर

प्रस्तावना

भारत में सिनेमा का आगमन 1896 से माना जाता है, जब तत्कालीन बॉम्बे के वॉटसन होटल में फ्रांस के ल्यूमियर ब्रदर्स ने छह मूक लघु फिल्मों का प्रदर्शन किया था। इसके बाद 1898 में हीरालाल सेन के निर्देशन में 'फ्लावर ऑफ परसिया' नाम से लघु फिल्म बनी। इसके बाद 1913 में दादा साहेब फाल्के की मूक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' प्रदर्शित हुई। इसे भारतीय फिल्मोद्योग की पहली पूर्ण लंबाई की फीचर फिल्म माना गया। यहीं से भारत में फिल्मों की शुरुआत मानी जाती है। आर्देशिर ईरानी के निर्देशन में 1931 में भारत की पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' प्रदर्शित हुई (हफीज व आरा, 2019)। आरंभिक काल के भारतीय सिनेमा की विषयवस्तु धार्मिक कहानियाँ थीं। दरअसल उस दौर में ईसाइयत और ईसाइयों के धार्मिक ग्रंथ 'बाइबिल' की कहानियों ने पश्चिम की फिल्मों में अपनी जगह बना ली थी। इन्हीं फिल्मों से प्रेरित शुरुआती भारतीय फिल्में पौराणिक आख्यानों पर केंद्रित दिखाई देती हैं। धार्मिक कहानियों व किंवदंतियों पर आधारित कई फिल्मों का निर्माण हुआ और उन्हें दर्शक भी मिले। धीरे-धीरे फिल्मों की कहानियों में बदलाव हुआ और नितांत धार्मिक घटनाओं पर आधारित फिल्मों की जगह तत्कालीन सामाजिक स्थितियों पर आधारित फिल्मों का भी निर्माण होने लगा। फिल्मों की कहानियाँ बदलीं और फिल्मकारों में सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध दिखाई देने लगा। भारतीय फिल्मोद्योग अपनी गति से आकार ले रहा था और लगातार विकसित हो रहा था। फिल्मों के निर्माण व प्रदर्शन की संख्या प्रति वर्ष बढ़ती जा रही थी। फिल्मोद्योग के विकास के समानांतर देश में बदलाव की बयार चल पड़ी थी। 1857 की क्रांति के बाद देश आजादी को लेकर और भी मुखर हो गया था। जनता आजादी का स्वाद चखने के लिए बेचैन होने लगी थी। दूसरी ओर स्वतंत्रता आंदोलन के वाहक राजनेता भी किसी भी तरह देश को आजादी दिलाने के लिए कमर कस चुके थे। ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ भारत में जब जन आंदोलन खड़ा हुआ तो इसने फिल्मकारों को भी आकर्षित किया। आजादी के संघर्ष और इसके नायकों की गाथाओं ने सिनेमाई कहानियों में अपनी जगह बनानी शुरू कर दी थी। इस समय जो फिल्में बनीं, उनमें सामाजिक कुरीतियों पर भी कुठाराघात किया गया।

अपनी जन्मभूमि से दो दशक तक दूर रहने के बाद वर्ष 1915-16 में महात्मा गांधी की स्वदेश वापसी हुई। गांधी द्वारा दक्षिण अफ्रीका में किए गए आंदोलनों ने उन्हें भारत में ख्याति दिला दी थी। उनकी वापसी से करीब दो वर्ष पहले ही यहाँ पहली भारतीय मूक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' का निर्माण हुआ था। स्वदेश वापसी के बाद गांधी ने अपने देश को जानना और समझना शुरू किया। धीरे-धीरे वे यहाँ के राजनीतिक व सामाजिक आंदोलनों का मुख्य चेहरा बन गए। गांधी के आंदोलन व विरोध के तरीकों, उनके आदर्शों व उनके मूल्यों ने उन्हें समाज में अन्य नायकों से इतर एक विशेष दर्जा दिलाया था। उनके व्यक्तित्व व कृतित्व ने फिल्मकारों को अपनी ओर आकर्षित किया। फिल्मकारों ने अपनी कला के माध्यम से आजादी के आंदोलन और कुप्रथाओं को दूर करने के प्रयासों में योगदान दिया। गांधी के लिए राजनीतिक स्वतंत्रता का तब तक कोई महत्व नहीं था जब तक कि इसके साथ धार्मिक सहिष्णुता, जाति आधारित व लैंगिक समानता व प्रत्येक भारतीय में आत्मसम्मान के विकास को प्राप्त न कर लिया जाए। गांधी ने भारतीयों को स्वराज के असली अर्थ से परिचित कराया था (गुहा, 2018)।

वर्ष 1931 में जब भारत में पहली बोलती फिल्म 'आलम आरा' बनी तो उसके लगभग दो वर्ष बाद गांधी ने जाति आधारित भेदभाव को मिटाने के लिए 1933 में राष्ट्रव्यापी हरिजन यात्रा की। उन्होंने मंदिरों में हरिजनों के प्रवेश के लिए प्रयत्न किए, सामाजिक सौहार्द के लिए हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल दिया, लैंगिक समानता के प्रयास किए, स्वच्छता पर बल दिया और आत्मबल विकसित करने पर जोर दिया। इस दौर में बने सिनेमा

[1]पीएच.डी. शोधार्थी, विज्ञापन एवं जनसंपर्क विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल. ईमेलः anjanaamu2013@gmail.com
[2] एसोसिएट प्रोफेसर, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मास कम्युनिकेशन, नई दिल्ली. ईमेलः ujjainmeeta@gmail.com

के नायक गांधी की तरह ही आदर्शवादी नजर आते हैं। कई फिल्मों की कहानियाँ गांधी के आदर्शों व मूल्यों के इर्द-गिर्द बुनी गई थीं। फिल्मकारों को अपनी कहानियों के लिए गांधी के कार्य व आदर्श आकर्षित कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर वे स्वयं इस कला के खिलाफ थे। गांधी का मानना था कि फिल्में युवा मस्तिष्क को अनैतिक व भ्रष्ट बनाती हैं। उन्होंने अपने जीवनकाल में केवल एक फिल्म 'राम राज्य' देखी थी (कौशिक, 2020)। फिल्मों को लेकर गांधी के विचार जो भी रहे हों, लेकिन उन्होंने फिल्मकारों के उस बड़े तबके को आकर्षित किया था, जिसे अर्थपूर्ण सिनेमा बनाने के लिए जाना जाता है। दादा साहब फाल्के, वी. शांताराम, महबूब खान, राजकपूर सहित कई फिल्मकार उनसे प्रभावित रहे। इनकी फिल्मों में गांधीवादी विचारधारा से संबंधित अहिंसा, प्रेम एवं बलिदान, हिंदू-मुस्लिम एकता, ग्रामीण-शहरी असंतुलन, मूर्खतापूर्ण व्यावसायिका की अस्वीकृति, महिलाओं की मुक्ति और नैतिक पतन का डर जैसे मूल विषय शामिल हैं। इन फिल्मकारों के सिनेमा के माध्यम से गांधी एक नैतिक शक्ति के रूप में उभरे थे। हालाँकि इन फिल्मकारों ने जानबूझकर गांधी के विचारों को अपनी फिल्मों में शामिल नहीं किया, लेकिन उनकी फिल्मों में यह प्रभाव प्रकट होता है, जो उनकी सफलता की गारंटी भी बना (किदवई, 2019)।

स्वतंत्रता पूर्व का सिनेमा और गांधी

भारतीय सिनेमा के उद्भव के बाद इसके पहले दशक में 1913 से 1922 के बीच 91 फिल्मों का निर्माण हुआ। ये सभी फिल्में पौराणिक कथाओं पर आधारित थीं। द्वारकादास संपत ने 1918 में महाभारत की कथा पर आधारित 'महात्मा विदुर' फिल्म बनाई। इसमें विदुर के किरदार को गांधी जैसा दिखाया गया था। उसके हाथ में गांधी जैसा डंडा भी था और वह गांधी की तरह ही चलता था। देबकी बोस की 'चंडीदास' (1932) पर भी गांधी का प्रभाव दिखाई देता है। यह एक ब्राह्मण और एक अस्पृश्य कन्या के बीच प्रेम की कथा है। बांग्ला कवि चंडीदास पर आधारित है। महात्मा गांधी भी जातिगत आधार पर भेदभाव के खिलाफ थे। भालाजी पेंढारकर ने 1925 में 'बाजीराव-मस्तानी' फिल्म बनाई, जो हिंदू-मुस्लिम एकता पर आधारित है। हिमांशु राय की 'अछूत कन्या' (1936) भी एक ब्राह्मण लड़के व अस्पृश्य लड़की के बीच प्रेम की कहानी है। इस फिल्म में इस कहानी के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त अस्पृश्यता की कुप्रथा पर चोट की गई है। वी. शांताराम की फिल्मों पर गांधी का काफी प्रभाव रहा। उन्होंने 1937 में 'दुनिया ना माने' फिल्म बनाई, जिसमें एक कम उम्र की लड़की का विवाह एक उम्रदराज विधुर से हो जाता है। फिल्म तत्कालीन समाज में महिलाओं की स्थिति को उजागर करती है। शांताराम की 1934 में प्रदर्शित फिल्म 'अमृत मंथन' धार्मिक कट्टरता और रूढ़ियों पर आधारित है। स्वयं गांधी भी हिंदू समाज में मौजूद कुरीतियों के विरोधी थे। वर्ष 1941 में आई शांताराम की 'पड़ोसी', हिंदू-मुस्लिम एकता पर आधारित थी। चेतन आनंद ने 1946 में मक्सिम गोर्की के उपन्यास 'लोअर डेप्थ' से प्रेरित 'नीचा नगर' फिल्म बनाई, जिस पर गांधीवादी विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। इनके अतिरिक्त भी स्वतंत्रता पूर्व की अन्य फिल्मों पर भी गांधी का प्रभाव रहा। आजादी के बाद भी गांधी के विचारों से प्रेरित कई फिल्में बनीं। बाद के वर्षों में भी समय-समय पर फिल्मकारों ने उनसे प्रेरित फिल्में बनाई।

साहित्य पुनरावलोकन

गांधी के जीवन पर बनी फिल्में तो गिनी-चुनी हैं, लेकिन फिल्मों की कहानियों और उनके नायकों ने गांधीवादी मूल्यों से प्रेरणा ग्रहण की है। गांधी मानवतावाद के पक्षधर थे, जो फिल्मों में सीधे दिखाई देता है। रुपहले पर्दे के नायक भी उनके दिखाए पथ पर चलते दिखते हैं। वे भले ही फिल्मों का हिस्सा नहीं होते, लेकिन कहानियों में पोर्ट्रेट के रूप में दीवार पर टँगे गांधी की लाक्षणिक उपस्थिति में नायक नया मोड़ लेते दिखाई देते हैं। वे अन्याय और उत्पीड़न को अस्वीकार करते और कभी-कभी उससे निपटने के लिए गांधी द्वारा दिखाए सत्याग्रह के मार्ग को अपनाते दिखते हैं (सूरी, 2019)। सिनेमा के प्रारंभ में ही उसके गांधीवादी मूल्य स्थापित हो गए थे और वे अब तक कायम हैं। हिंदुस्तानी सिनेमा की शुरुआती फिल्में पौराणिक व धार्मिक कथाओं पर आधारित थीं। गांधी की सभाओं की शुरुआत भी धार्मिक प्रार्थनाओं के साथ ही होती थी। दादा साहब फाल्के वी. शांताराम की फिल्मों पर गांधीवादी मूल्यों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। बाद के दौर में महबूब खान, राजकपूर से लेकर राजकुमार हीरानी तक की फिल्मों पर गांधीवादी विचारों का प्रभाव दिखाई दिया (चौकसे, 2012)। महात्मा गांधी भारतीय सिनेमा के लिए प्रेरणास्रोत रहे हैं। एक व्यक्ति के रूप में वे स्वयं और उनकी शिक्षाएँ सिनेमा का एक प्रिय विषय रहे हैं। उनकी धर्मनिरपेक्षता भारतीय सिनेमा और समाज, दोनों के लिए प्रेरक रही है (जॉन, 2017)। जब देश का पहला कॉरपोरेट स्टूडियो बॉम्बे टॉकीज (1934) बना, उस समय देश में आजादी का आंदोलन चल रहा था। महात्मा गांधी उस समय महत्वपूर्ण भूमिका में थे। उनकी ओर से चलाए जा रहे आंदोलन और समाचार पत्रों में लिखे जा रहे उनके लेख तत्कालीन जन मानस को प्रभावित कर ही रहे थे, इसलिए बॉम्बे टॉकीज भी उनसे अछूता नहीं रहा। 1930 के दशक में जब गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाया और अपने भाषणों, लेखों सामाजिक कार्यों के माध्यम से छूआ-छूत की कुरीति के उन्मूलन का आह्वान किया तो बॉम्बे टॉकीज ने भी इस समस्या को केंद्र में रखकर गढ़ी गई कहानी पर 'अछूत कन्या' फिल्म बनाई, जिस पर गांधीवादी विचारों का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। जिस तरह गांधीवादी आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी दिखाई देती थी, उसी तरह फिल्म 'जन्मभूमि' (1936) में सामाजिक सुधारों में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित किया गया। गांधी ग्राम सुधार की बात करते थे और बॉम्बे टॉकीज की 'अछूत कन्या', 'जन्मभूमि', 'कंगन', 'बंधन' व ऐसी ही अन्य फिल्में ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित हैं (सिंह, 2014)।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों का इस्तेमाल किया गया है। द्वितीयक आँकड़ों के लिए विभिन्न पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री व इंटरनेट पर विभिन्न वेबसाइटों के माध्यम से उपलब्ध जानकारी का उपयोग किया गया है।

शोध उद्देश्य

- फिल्मों में गांधी के मूल्यों व आदर्शों का अध्ययन करना।
- फिल्मों के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक स्थितियों का अध्ययन करना।

शोध की प्रासंगिकता

सिनेमा जन संचार का सशक्त माध्यम है। यह केवल मनोरंजन का साधन नहीं है, अपितु इसके माध्यम से दर्शकों को सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरित किया जा सकता है। वर्तमान सामाजिक स्थितियों में संपूर्ण विश्व ही वैचारिक व स्थूल (शारीरिक) हिंसा के दौर से गुजर रहा है। विश्व पर तृतीय विश्व युद्ध का खतरा मँडरा रहा है। समय-समय पर त्वचा के रंग व जाति के आधार भेदभाव की खबरें आती रहती हैं। ऐसे समय में एक बार फिर गांधी के विचार, उनके आदर्श व उनके मूल्य प्रासंगिक बन जाते हैं। देश ही नहीं संपूर्ण विश्व को हिंसा से दूर करने, एकता में पिरोने और सामाजिक समानता के लिए गांधी के विचारों व आदर्शों की आवश्यकता है। फिल्में उनके विचारों को प्रसारित करने का एक जरिया बन सकती हैं, जैसा कि स्वतंत्रता संग्राम के काल में हुआ था। शांति व अहिंसा की राह से विमुख हो चुके समाज को एक बार फिर इस राह की ओर उन्मुख करने के लिए गांधी के आदर्शों पर आधारित सिनेमा का निर्माण व प्रदर्शन एक अच्छा विकल्प हो सकता है।

'अमृत मंथन'

अध्ययन हेतु सबसे पहले 'अमृत मंथन' (1934) फिल्म को लिया गया, इसके निर्देशक वी. शांताराम थे। फिल्म की कहानी अठावले ने लिखी और पटकथा लेखन नारायण हरि आप्टे ने किया। संवाद वी. शांताराम ने स्वयं लिखे। फिल्म का कथानक इस प्रकार है : अवंतीपुर की जनता देवी माँ चंडिका की उपासक है। देवी को नर बलि व पशु बलि दी जाती है। जब राजा क्रांतिवर्मा इस बलि की परंपरा पर प्रतिबंध लगाना चाहते हैं तो राजगुरु उनके खिलाफ हो जाते हैं। राजगुरु धार्मिक अतिवादियों के एक समूह को राजा की हत्या के लिए उकसाते हैं। हत्या के लिए यशोधर्मा को चुना जाता है। राजगुरु इसे देवि चंडिका की आज्ञा बताते हैं। यशोधर्मा राजगुरु की इच्छानुसार राजा की हत्या कर देते हैं, लेकिन शीघ्र ही राजगुरु के लोगों द्वारा ही उसे गिरफ्तार कर लिया जाता है। राजकुमारी मोहिनी के राज्याभिषेक के बाद यशोधर्मा की हत्या का आदेश दे दिया जाता है। राजकुमारी स्वयं भी यशोधर्मा व उसके बच्चों, बेटे माधवगुप्त व बेटी सुमित्रा, की हत्या का आदेश दे देती है। माधवगुप्त को गिरफ्तार कर लिया जाता है, जबकि सुमित्रा एक मठ में आश्रय लेने के लिए चली जाती है। हिंदुओं और बौद्धों के बीच बढ़ती दुश्मनी के बीच राजगुरु के कहने पर महारानी मोहिनी आदेश देती हैं कि अगली नर बलि माधवगुप्त की दी जाएगी।

विश्लेषणः फिल्म में ऐसे कई संवाद हैं, जो तत्कालीन सामाजिक स्थितियों से परिचित कराते हैं। माधवगुप्त की बहन स्वयं को औरत व इनसान कहती है, तब वह कहता है, 'इनसान... औरत की भी इनसानों में गिनती है। मैं बेटा हूँ, मेरे सामने तेरी क्या हस्ती!' यह संवाद उस काल में महिलाओं की सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करता है। फिल्म हिंदू समाज की कुरीतियों व कट्टरता पर आधारित है। कहानी में राजा व राजकुमारी के प्रगतिशील विचारों के होने के बावजूद राजगुरु और मंत्री रूढ़ियों को बढ़ावा देते हैं। नर बलि व पशु बलि पर प्रतिबंध लगाने के लिए राजगुरु राजा की हत्या करा देता है और एक निरपराध परिवार को इसका परिणाम भोगना पड़ता है। राजगुरु का संवाद है, 'धर्म को बचाने (बलि को देवी चंडिका की इच्छा बताने) के लिए समुद्र मंथन जैसा मंथन करना पड़ता है'। वहीं महारानी मोहिनी का संवाद है, 'बेकसूर को सजा दिलाने वाले शास्त्र के मत और रिवाज को भाड़ में झोंक दो'। एक जगह जनता का संवाद है, 'राक्षसी रिवाजों का खात्मा होना चाहिए, नहीं तो सारे समाज का खात्मा हो जाएगा।' माधवगुप्त की नर बलि न दे पाने पर राजगुरु अंत में स्वयं की ही बलि दे देता। तब मोहिनी उसे देख कहती है, 'रिवाजों का सच्चा गुलाम....'। अवंतीपुर में यह अंतिम बलि होती है, महारानी इसे प्रतिबंधित कर देती है। महात्मा गांधी भी हिंदू समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरोधी थे। वे छुआछूत के खिलाफ थे और कुरीतियों को दूर करना चाहते थे। उन्होंने भारत की एकता और अस्पृश्यों के प्रति अन्याय समाप्त कराने के लिए उपवास भी किया। उन्होंने कहा था कि 'धर्म के पवित्र नाम पर मनुष्य को उत्पीड़ित करते जाना कट्टर हठ धर्म के अलावा और कुछ नहीं है' (यंग इंडिया, 11-3-1926, पृ. 95)।

'चंडीदास'

दूसरी फिल्म है 'चंडीदास', जो 1934 में रिलीज हुई। इस फिल्म का निर्माण न्यू थिएटर्स ने किया। इसके निर्देशक थे नितिन बोस। संवाद आगा हश्र कश्मीरी ने लिखे। फिल्म का कथानक इस प्रकार है : फिल्म बांग्ला वैष्णव कवि चंडीदास की कहानी है। चंडीदास एक मंदिर में अपने गुरु के साथ पुजारी है। फिल्म नीची जाति की धोबन रामी और चंडीदास के प्रेम की कहानी है। ऊँची जाति का व्यापारी बिजॉयनारायण, रामी के नजदीक आना चाहता है, लेकिन जब वह इससे इनकार कर देती है, तो वह मंदिर के मुख्य पुजारी से कहता है कि चंडीदास का एक नीची जाति की कन्या से संबंध है, इसलिए वह या तो प्रायश्चित्त करे या फिर उसे दंड दिया जाए। चंडीदास प्रायश्चित्त के लिए तैयार हो जाता है, लेकिन जब वह व्यापारी के आदमियों को रामी को नुकसान पहुँचाते देखता है तो वह संस्थागत धर्म को त्यागते हुए रामी के साथ उस गाँव को छोड़ देता है।

विश्लेषणः कहानी की शुरुआत में जब चंडीदास मंदिर के प्रांगण में झाड़ू लगाने वाली धोबन रामी को प्रसाद का फूल देता है, तो बिजॉयनारायण इस पर कटाक्ष करता है। तब चंडीदास का संवाद है, 'देवताओं की दया के समान ये प्रसाद रूपी फूल सभी के लिए हैं'। चंडीदास जब रामी के समक्ष प्रेम की बात स्वीकार करता है, तब रामी स्वयं को अछूत बताती है। इस पर चंडीदास का संवाद है, 'किसी का बड़े और किसी का छोटे घर में जन्म लेना... यह मनुष्य की इच्छा और अधिकार में नहीं है। बड़ा, छोटा, उच्च और नीच ये सब समाज के बनाए हुए शब्द हैं। मगर मेरा विचार सबसे अलग है, मैं ईश्वर को जग पिता और जग के प्राणियों को उसकी संतान समझता हूँ। अगर मेरा यह समझना मेरी भूल है, तो मैं इस भूल के स्वप्न से कभी जागना नहीं चाहता।' रामी का मंदिर में प्रवेश ऊँची जाति के लोगों को अनुचित लगता है और एक महिला इसका विरोध करती है। तब चंडीदास कहता है, 'शूद्र भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की तरह मनुष्य ही हैं'। स्वयं अपने गुरु और उच्च समाज के दबाव में चंडीदास को रामी से दूर होना पड़ता है। ऊँची जाति का व्यापारी बिजॉयनारायण जब किसी भी तरह रामी को अपने नजदीक नहीं ला पाता तो उसके लोग उसके घर में आग लगा देते हैं। खबर मिलने पर चंडीदास भी वहाँ पहुँचता है। रामी के भाई और भाभी को तो वहाँ इकट्ठे हुए लोग आग के बीच से निकालकर ले

आते हैं, लेकिन रामी नहीं मिलती। चंडीदास स्वयं जाकर रामी को बचाता है। बिजॉयनारायण के आदमी यह बात फैला देते हैं कि चंडीदास और रामी रात में साथ थे। बिजॉयनारायण प्रश्न उठाता है कि चंडीदास का यह काम क्या धर्मानुसार था.... उसे प्रायश्चित्त करना होगा, नहीं तो उसे जाति और समाज से बाहर कर दिया जाएगा। चंडीदास के गुरु भी उसे प्रायश्चित्त करने के लिए कहते हैं। चंडीदास रामी को आग से बाहर निकालने पर कहता है, 'सारे सिद्धांतों और नियमों को एक पल के लिए भुलाकर मैं इस सच्चाई पर पहुँचा कि संसार में मनुष्यता से बढ़कर और कोई चीज नहीं'। वहीं चंडीदास के गुरु इसका विरोध करते हैं और कहते हैं कि 'धर्म से बढ़कर कोई चीज नहीं... कुछ नहीं... कुछ नहीं।' चंडीदास अंत में रामी को अपना लेता है और कहता है, 'मनुष्यता की पुकार से बड़ी कोई पुकार नहीं है।' चंडीदास को रामी धोबन सहित धर्म और समाज से बाहर होने के लिए कह दिया जाता है।

महात्मा गांधी ने भी धर्म में विद्यमान रूढ़ियों और छुआछूत का विरोध किया था। उनका कहना था कि हिंदू समाज के सुधार और उसके वास्तविक संरक्षण के लिए छुआछूत को मिटाना सबसे आवश्यक बात है। छुआछूत को मिटाना एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है (यंग इंडिया, 6-1-1927, पृ. 2)। छुआछूत को दूर करने व अस्पृश्य जातियों के मंदिर में प्रवेश के लिए गांधी की ओर से किए गए प्रयासों की वजह से ही 1936 में त्रावणकोर मंदिरों के द्वार हरिजनों के लिए खोल दिए गए थे।

'अछूत कन्या'

तीसरी फिल्म है 'अछूत कन्या', जिसे बॉम्बे टॉकीज ने 1936 में बनाया। इसके निर्देशक फ्रांज ओस्टेन थे। फिल्म की कहानी हिमांशु राय और निरंजन पाल ने लिखी थी। पटकथा लेखन हिमांशु राय, निरंजन पाल और जे.एस. कश्यप ने किया था। फिल्म का कथानक इस प्रकार है : फिल्म एक ब्राह्मण लड़के प्रताप व एक अछूत कन्या कस्तूरी के बीच प्रेम की कहानी है। कस्तूरी के पिता दुखिया रेलवे क्रॉसिंग गार्ड हैं। प्रताप के पिता मोहन गाँव में रोजमर्रा की जरूरतों के सामान की एक दुकान चलाते हैं और जरूरतमंदों की मदद करते हैं। एक बार साँप के काट लेने पर दुखिया उनकी जान बचाता है और यहीं से दोनों की गहरी मित्रता हो जाती है। दोनों के बच्चे साथ खेलते हुए बड़े होते हैं और एक-दूसरे से प्रेम करने लगते हैं, लेकिन जातिगत विवशताओं के कारण दोनों का अलग-अलग विवाह कर दिया जाता है। दोनों अपने-अपने विवाह के साथ न्याय करने की पूरी कोशिश करते हैं, लेकिन अपने पहले प्रेम को भूलना उनके लिए कठिन होता है। कहानी में कुछ मोड़ आते हैं और प्रताप व कस्तूरी के पति के बीच झगड़ा होता है, इस बीच रेलवे क्रॉसिंग पर यात्रियों की जान बचाने के लिए कस्तूरी चलती ट्रेन को रोकने आगे बढ़ जाती है, जिसमें उसकी जान चली जाती है।

विश्लेषणः जब दुखिया मोहन की जान बचाता है, तो इतना बड़ा काम करने पर भी वह क्षमा माँगते हुए कहता है, 'मुझे क्षमा करना पंडित जी, मैंने तुम्हें छू लिया, क्या करूँ तुम्हारी जान जोखिम में थी।' यह संवाद उस समय की सामाजिक स्थितियों की तस्वीर स्पष्ट करता है। हालाँकि मोहन उसे गले लगा लेता है और दोनों के बीच मित्रता हो जाती है। कालांतर में जब दोनों के बच्चे बड़े हो जाते हैं और गाँव वाले उनकी मित्रता के खिलाफ होने लगते हैं, तब दुखिया मोहन लाल से कहता है, 'अब तुम हमारे घर आना-जाना छोड़ दो, तुम ऊँच जात हो, हम नीच... इस बात से सारा गाँव तुम्हारा बैरी हो गया है।' लेकिन मोहन गाँव वालों के विरोध के बाद भी दुखिया से मित्रता नहीं छोड़ता है। उसका किरदार गांधी से प्रेरणा लेता दिखता है। मोहनलाल ग्रामीणों को मलेरिया की दवा दे देता है। इस बात से गाँव का बाबूलाल वैद्य उससे चिढ़ने लगता है और लोगों को उसके खिलाफ उकसाता है। मोहन की कोई गलती न होने पर भी ग्रामीण उसके विरोधी हो जाते हैं। प्रताप की माँ भी कस्तूरी की जाति की वजह से उसे पसंद नहीं करती। दुखिया और मोहन दोनों जानते हैं कि उनके बच्चे एक-दूसरे के साथ के बिना नहीं रह सकते, लेकिन फिर भी जाति की अड़चनों की वजह से वे अपने-अपने बच्चों का विवाह दूसरी जगह तय कर देते हैं। बीच में दुखिया काफी बीमार हो जाता है, तब मोहन उसकी देखभाल के लिए उसे अपने घर ले जाता है। लेकिन गाँव वालों को एक ब्राह्मण के घर में एक अछूत का रहना गवारा नहीं होता। गाँव वाले उसके घर के बाहर विरोध करते हैं और कहते हैं, 'मोहन ने अपना धर्म भ्रष्ट कर लिया, अब हम उसको गाँव में नहीं रहने देंगे।' मोहन कहता है, 'क्या अछूत आदमी नहीं, क्या हमारी तरह उनमें जान और उन्हें सुख-दुख का ज्ञान नहीं... क्या ब्राह्मण, क्या भंगी... सब एक पिता की संतान हैं.... जब प्राकृतिक चीजें धूप, पानी, हवा और धरती सबके लिए खुली हुई हैं... जब भगवान कोई भेद नहीं करते.. तो हम मनुष्यों को क्या अधिकार है कि जात-पाँत का भेद करें।' वह गाँव के वैद्य से कहता है, 'तुम्हीं बताओ तुम वैद्य हो, क्या वैद्यक में ब्राह्मणों का बुखार अलग होता है और अछूतों का अलग, ब्राह्मणों का हैजा एक और भंगियों का दूसरा.. सेवा करना आदमी का धर्म है, दुखिया बीमार है उसको मेरी सेवा और देखभाल की जरूरत है।' इसके बाद भी गाँव वालों पर कोई असर नहीं होता, वे उस पर हमला कर देते हैं, दुखिया बीमारी की हालत में भी उसे बचाने का प्रयास करता है और घर से चले जाने की बात कहता है। लेकिन गाँव वाले उसके घर को आग लगा देते हैं। जब पुलिस जाँच के लिए पहुँचती है और मोहन से मामले की शिकायत करने व हमलावरों की शिनाख्त करने के लिए कहती है तो मोहन इतना कुछ होने के बाद भी कहता है, 'सरकार, न मुझे किसी से शिकायत है और न मैं किसी की शिनाख्त कर सकता हूँ।' मोहन का यह व्यवहार भी उसे गांधी के करीब खड़ा करता है। गांधी पर भी कई बार हमले हुए, लेकिन उन्होंने कभी भी हमलावरों के खिलाफ कहीं कोई शिकायत नहीं की और न ही दोषियों को दंड दिलवाने का प्रयास किया। 'अस्पृश्यता ने पूरी दुनिया में भारत को अछूत बना दिया है, और जो लोग अछूत भारतीयों की स्थिति देखना चाहते हैं उन्हें दक्षिण अफ्रीका जाना चाहिए और समझना चाहिए कि अस्पृश्यता का क्या मतलब है' (रांची में दिए गांधी के भाषण का अंश, 17-9-1925)। अंतरजातीय विवाह और अंतरजातीय भोज पर गांधी का कहना था, 'यद्यपि वर्णाश्रम श्रम में अंतरजातीय विवाह और अंतरजातीय भोज पर कोई पाबंदी नहीं है, पर इसमें कोई बाध्यता लागू नहीं की जा सकती। आदमी कहाँ शादी करे और किसके साथ भोजन करे, इसका फैसला करने के लिए उसे आजाद छोड़ देना चाहिए' (हरिजन, 16-11-1935, पृ. 316)।

'दुनिया ना माने'

चौथी फिल्म है 'दुनिया ना माने'। इसका निर्माण निर्देशक वी. शांताराम

ने 1937 में किया था। फिल्म की कहानी नारायण हरि आप्टे ने लिखी और संवाद मुंशी अजीज ने। फिल्म का कथानक इस प्रकार है : एक अनाथ अबोध कन्या निर्मला का विवाह उसके रिश्तेदार एक उम्रदारज विधुर से करा देते हैं। लेकिन निर्मला इस विवाह को मानने से इनकार कर देती है। वह बार-बार कहती है कि उसे चाहे कितनी ही तकलीफें क्यों न उठानी पड़ें, लेकिन वह इस अन्याय को स्वीकार नहीं करेगी। विधुर की बेटी गांधी आंदोलन में सक्रिय रहती है, जब वह कुछ समय के लिए घर लौटती है, तो वहाँ उसे खुद से कम उम्र की अपनी नई माँ मिलती है। निर्मला के अन्याय के खिलाफ विरोध और उसके व अपनी बेटी के मध्य के वार्तालाप को सुनने के बाद विधुर आत्मग्लानि से भरकर आत्महत्या कर निर्मला को मुक्त करते हुए उसे योग्य वर से विवाह करने के लिए कहता है।

विश्लेषणः फिल्म समाज में महिलाओं की स्थिति व पूर्व में प्रचलित बेमेल विवाह की कुरीति पर आधारित है। कहानी में सुशिक्षित कन्या निर्मला का विवाह धोखे से एक बूढ़े से कर दिया जाता है। निर्मला इस बात से दुखी और नाराज है। वह अपने मामा और बूढ़े पति केशव से इसके लिए झगड़ा करती है, लेकिन इसका कोई नतीजा नहीं होता और वह ससुराल चली जाती है। फिल्म में बहुत ही सुंदर ढंग से पुरानी दीवार घड़ी को बुढ़ापे के बिंब के रूप में उपयोग किया गया है। घड़ी बार-बार चलते-चलते बंद हो जाती है। बूढ़े पति की जब भी उस पर नजर पड़ती है, तो उसे अपने बुढ़ापे का खयाल हो आता है और वह तुरंत उसमें चाबी भरता है। बूढ़े की बेटी सुशीला को जब पता चलता है कि वह शादी करने जा रहा है तो वह उसे पत्र लिखती है और कहती है कि इस उम्र में विवाह करना शोभा नहीं देता। उसका बेटा जुगल भी पत्र लिखकर कहता है कि जब उनका बेटा शादी की उम्र का हो गया है, तब वे स्वयं का विवाह कर रहे हैं। निर्मला बूढ़े के आगे हार नहीं मानती और इस बेमेल विवाह के खिलाफ अपना प्रतिरोध जारी रखती है। एक जगह उसका संवाद है, 'आफत से लड़ूँगी, मुसीबत से खेलूँगी, मगर जिससे इंसाफ का खून हो, वो बात न कबूल की है न करूँगी।' एक और जगह वह कहती है, 'जरूर दुख सहूँगी, लेकिन अन्याय नहीं बर्दाश्त करूँगी।' सुशीला देवी के घर आने पर निर्मला उसके साथ हुई बातचीत में एक जगह कहती है, 'दुख कितना ही बढ़े, मैं बर्दाश्त करूँगी, मगर अन्याय नहीं सहन करूँगी। मुसीबतों के पहाड़ सर पर टूटें, मैं अपनी तपस्या नहीं छोड़ूँगी।' वह कहती है, 'ये मेरी लापरवाही, ये मेरा बर्ताव.. सारी दुनिया पर जाहिर हो और जो बूढ़े दिल में शादी की इच्छा रखते हैं, उनके दिल दहशत से थर्राएँ, निर्मला जैसी डायन उनके पल्ले पड़ेगी क्या इस खौफ से वो धरती में समा जाएँ... और मेरे इस काम से एक भी कुँवारी कन्या का गला कटते-कटते बच जाए तो मैं समझूँगी कि मेरी तपस्या का फल मिला।' महात्मा गांधी समाज में स्त्री व पुरुष को समान अधिकार दिए जाने के पक्षधर थे। वे स्त्रियों के विरुद्ध होते आए अन्याय के खिलाफ थे। विवाह को लेकर उनका कहना था, 'मात-पिताओं का अपनी बेटियों का जबरन विवाह करना सरासर गलत है। उनका अपनी बेटियों को जीविकोपार्जन के योग्य न बनाना भी गलत है। किसी पिता को इस बात का अधिकार नहीं है कि बेटी द्वारा विवाह से इनकार कर देने पर उसे घर से निकाल दे' (हरिजन, 15-9-1946, पृ. 311-12)। गांधी ने कहा था, 'मेरी स्त्रियों को सलाह है कि वे सभी अवांछनीय और निकम्मी बंदिशों के खिलाफ सविनय विद्रोह करें। बंदिशें वे ही फायदा पहुँचा सकती हैं, जो स्वैच्छिक हों। सविनय विद्रोह से कोई हानि होने की आशंका नहीं है, चूँकि उसके मूल में शुद्धता और सुविवेचित प्रतिरोध होते हैं' (हरिजन, 23-3-1947, पृ. 80)।

'नीचा नगर'

पाँचवीं फिल्म है 'नीचा नगर', जिसका निर्माण 1946 में हुआ। फिल्म के निर्देशक चेतन आनंद थे। कहानी हयातुल्ला अंसारी ने लिखी और पटकथा ख्वाजा अहमद अब्बास ने। फिल्म का कथानक इस प्रकार है : फिल्म अमीरों द्वारा गरीबों के शोषण की कहानी है। समृद्ध और प्रभावशाली जमींदार सरकार ऊँचा नगर (पहाड़ी पर बसा) में रहता है और गरीब लोग नीचा नगर में (पहाड़ी से नीचे) रहते हैं। सरकार ऊँचा नगर से खाई की ओर बहने वाले एक नाले की जमीन के लालच में नाले का रुख नीचा नगर की बस्ती की ओर मोड़ देता है। नीचा नगर वासियों में इसके प्रति आक्रोश जन्म लेता है, लेकिन सरकार उनके बीच से कुछ लोगों को फायदे पहुँचाकर अपनी ओर कर लेता है और वे लोग अपने ही लोगों के खिलाफ सरकार की मदद करते हैं। ऊँचा नगर से बहने वाले नाले का पानी नीचा नगर में पहुँचने पर लोग बीमार होने लगते हैं, बाद में उनकी बस्ती की जल आपूर्ति भी रोक दी जाती है। बीमारी व पानी की कमी से लोग मरने लगते हैं।

विश्लेषणः नगरपालिका अध्यक्ष मतलब सरकार की ओर से नाले को नीचा नगर से निकाले जाने पर वहाँ के लोगों में रोष है। बलराज, याकूब चाचा व अन्य इस मामले में बातचीत के लिए सरकार से मिलने के बारे में सोचते हैं। सरकार शहर को बीमारियों से बचाने के लिए नाले का रुख मोड़े जाने की बात कहता है। बाद में नीचा नगर के कुछ लोग सरकार से फायदे उठाकर उसके इस काम में उसका साथ देने लगते हैं। सरकार और उसका साथ देने वाले नाले को नहर बता कर उसे नीचा नगर की ओर मोड़ देते हैं। बलराज सरकार से कहता है कि जब तक नीचा नगर का एक भी आदमी जिंदा है, तब तक नाला वहाँ से नहीं गुजर सकता। बलराज और उसके साथी नीचा नगर के लोगों को इस अन्याय के खिलाफ आंदोलित करते हैं। सरकार इस आंदोलन से बेचैन हो उठता है और फिर नीचा नगर की जलापूर्ति रोक दी जाती है। नाले का रुख मोड़े जाने से बीमार हो रहे लोग अब पानी की कमी से मरने लगते हैं। बाद में सरकार की ओर से नीचा नगर में बीमारों के इलाज के लिए एक अस्पताल खोल दिया जाता है। एक ओर तो उसी के कारण लोग बीमार हो रहे थे, दूसरी ओर वह अस्पताल खोलकर और वहाँ मुफ्त इलाज की व्यवस्था देकर खुद को जनता का हितैषी बताता है। बलराज और उसके साथी लोगों के अस्पताल जाने के पक्ष में नहीं होते और उनके लिए एक सेवाघर बनाते हैं, जहाँ मरीजों की सेवा की जाती है। लेकिन इलाज नहीं हो सकता। याकूब चाचा कहते हैं कि नाले का विरोध इसी तरह किया जा सकता है कि मर जाओ पर अस्पताल न जाओ। बलराज को खुद बुखार हो जाता है, लेकिन वह अस्पताल नहीं जाता। उसकी बहन रूपा सेवाघर में मरीजों की खूब सेवा करती है और वह खुद भी बीमार हो जाती है, उसकी हालत एकदम खराब हो जाती है, लेकिन व अस्पताल जाने के बजाय मौत को गले लगा लेती है। रूपा की कुर्बानी के बाद नीचा नगर के जो लोग अस्पताल में इलाज करा रहे थे, वे भी अस्पताल छोड़ देते हैं और अपनी जान देने के लिए तैयार हो

जाते हैं। कहानी में बलराज, याकूब चाचा, रूपा और उनके साथी अन्याय के खिलाफ विरोध के जिन तरीकों का इस्तेमाल करते हैं, वे गांधी के अहिंसक और सत्याग्रह के मार्ग ही हैं।

निष्कर्ष

किसी कालखंड का सिनेमा देखकर, उस कालखंड की सामाजिक स्थितियों का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है। स्वतंत्रता पूर्व का सिनेमा हमारे समक्ष उस काल की तस्वीरें उकेरता है। यह वह दौर था, जब समाज में कई विषमताएँ और चुनौतियाँ अपना अस्तित्व मजबूत कर चुकी थीं। देश में चला आजादी का आंदोलन केवल राजनीतिक आंदोलन न होकर सामाजिक आंदोलन भी बना। उस काल के राष्ट्रीय नायकों ने केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए ही कार्य नहीं किया, बल्कि कुरीतियों व जातिगत असमानता को दूर करने, धार्मिक सद्भाव व लैंगिक समानता लाने के लिए भी जनता को जागरूक करने के प्रयास किए। गांधी ने राजनीतिक आंदोलनों के साथ सामाजिक आंदोलनों में भी गहरी दिलचस्पी दिखाई। उनके आंदोलनों ने ही नहीं, उनके प्रकाशित लेखों व उनके स्वयं के जीवन आदर्शों ने भी लोगों का मार्ग प्रशस्त किया। गांधी अपने विचारों को सामान्य जन तक पहुँचाने के लिए लगातार अखबारों में लेख लिखते रहते थे।

उपर्युक्त फिल्में तत्कालीन सिनेमा में गांधी के विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करती हैं। उन्होंने हरिजनों के उत्थान के लिए वर्ष 1932 में हरिजन सेवक संघ की स्थापना की थी। बाद में 1933 में 'हरिजन' नाम से समाचार पत्र भी प्रकाशित किया। इसी वर्ष उन्होंने राष्ट्रव्यापी हरिजन यात्रा भी शुरू की थी। उनके प्रयासों से हरिजनों को मंदिरों में प्रवेश भी दिया जाने लगा था। उन्होंने लैंगिक समानता पर भी समय-समय पर अपने विचार स्पष्ट किए थे। धार्मिक सहिष्णुता उनका आग्रह था। इन सबसे अधिक गांधी के काम करने के तरीके की विशेषता यह थी कि वे बदलाव की शुरुआत ऊपर से न कर जमीनी स्तर से करते थे। उनके विचारों में बदलाव का वाहक आम इनसान था। 'अमृत मंथन', 'चंडीदास', 'अछूत कन्या', 'दुनिया ना माने' और 'नीचा नगर' गांधी के जीवनकाल में बनी ऐसी फिल्में हैं, जो छुआछूत की समस्या, बेमेल विवाह, अमीर-गरीब के भेद और इन समस्याओं पर गांधीवादी विचारों, इनके निदान के गांधीवादी तरीकों को सशक्तता के साथ प्रस्तुत करती हैं। इन फिल्मों के किरदार इन समस्याओं से जूझते हुए खुद ही इनसे उबरने के उपाय खोजते दिखते हैं। इन अर्थों में ये फिल्में गांधी के विचारों, मूल्यों व बदलाव की उनकी कार्यप्रणाली के बेहद नजदीक महसूस की जा सकती हैं। ये अपने दौर की गांधी के प्रभाव वाली उम्दा फिल्में रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ

आनंद, सी. (निर्देशक). (1946). नीचा नगर (चलचित्र).

ओस्टेन, ऍफ़. (निर्देशक). (1936). अछूत कन्या (चलचित्र).

किदवई, आर. (2019, अक्टूबर 2). गांधीः ग्रेट इंफ्लूएंसर ऑन हिंदी सिनेमा डेस्पाइट सेल्यूलाइड एवरजन. ओब्सर्वर रिसर्च फाउंडेशन. https://www.orfonline.org/expert-speak/gandhi-great-influencer-on-hindi-cinema-despite-his-celluloid-aversion-56035/ से, 22 अप्रैल 2022 को पुन:प्राप्त.

कौशिक, एन. (2020). महात्मा गांधी इन सिनेमा. न्यूकैसल अपॉन टायने : कैंब्रिज स्कॉलर्स पब्लिशिंग.

गांधी, एम. (1958). मंगल-प्रभात. अहमदाबाद : नवजीवन ट्रस्ट.

गांधी, एम. (1994, October 2). महात्मा गांधी के विचार. MKGandhi.org: https://www.mkgandhi.org/ebks/hindi/Mahatma-Gandhi-ke-Vichaar.pdf से, 24 अप्रैल 2022 को पुन:प्राप्त.

गुहा, आर. (2018). गांधी: द ईयर्स देट चेंज्ड द वर्ल्ड 1914-1948. गुडगांव : पेंग्विन रेंडम हाउस इंडिया.

ड्वेयर, आर. (2006). फिल्मिंग द गॉड्सः रिलिजिन एंड इंडियन सिनेमा. न्यूयार्क : रुटलेज.

चौकसे, जे. (2012). महात्मा गांधी और सिनेमा. मुंबई : मौर्य आर्ट्स प्रा. लि.

जॉन, ई. (2017). सिनेमाः गांधीयन थॉट, नेहरूवियन विजन एंड प्रोलिटेरिएट ड्रीम. द क्राइटीरियॉनः एन इंटरनेशनल जर्नल इन इंग्लिश, पृ. 820-826.

बोस, एन. (निर्देशक). (1934). चंडीदास (चलचित्र).

शांताराम, वी. (निर्देशक). (1934). अमृत मंथन (चलचित्र).

शांताराम, वी. (निर्देशक). (1937). दुनिया ना माने (चलचित्र).

सिंह, यू. (2014). सिनेमा एंड द इंडियन नेशन. इलाहबादः इलाहबाद विश्वविद्यालय.

सूरी, एस. (2019). ए गांधीयन अफेयरः इंडियाज क्यूरियस पोटीरियल ऑफ लव इन सिनेमा. नोएडाः हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स इंडिया.

हफीज, डी. ई. व आरा, डी. ए. (2019, मई 3). हिस्ट्री एंड इवोल्यूशन ऑफ इंडियन फिल्म इंडस्ट्री. रिसर्चगेट : https://www.researchgate.net/publication/332751636_History_and_Evolution_of_Indian_Film_Industry से, 22 अप्रैल 2022 को पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 57-64, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

सिनेमॅटोग्राफी तकनीक के स्वदेशीकरण पर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव

डॉ. श्रीकांत सिंह[1] और आशीष भवालकर[2]

सारांश

स्वदेशी आंदोलन, महात्मा गांधी के भारत में पदार्पण से पूर्व भारत के सफल आंदोलनों में से एक था। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तथा भारत में बनी सामग्री का अधिकाधिक प्रयोग करके साम्राज्यवादी ब्रिटेन को आर्थिक हानि पहुँचाते हुए भारतीयों को स्वावलंबी बनाकर ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने और अपनी राष्ट्रीय पहचान को परिभाषित करने के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना के जागरण हेतु स्वदेशी आंदोलन सफल साधन था। वर्ष 1905 के बंग-भंग विरोधी जनजागरण से स्वदेशी आंदोलन को बहुत बल मिला और 1915 में महात्मा गांधी के भारत आगमन के बाद धीरे-धीरे स्वतंत्रता आंदोलन में परिणित हो गया। भारतीय फिल्म उद्योग भी इसी कालखंड में उभर रहा था, इसलिए भारतीय सिनेमा की मौलिक राष्ट्रीय पहचान बनाने और स्वावलंबन के सरोकार भारतीय फिल्मकारों के अवचेतन मन में सदैव विद्यमान थे। 1914 से 1918 के बीच प्रथम विश्व युद्ध, 1939 से 1945 तक द्वितीय विश्वयुद्ध और 1943 में बंगाल में भीषण अकाल के समय भारी पूँजी निवेश के साथ तकनीकी संसाधनों पर आश्रित एक कलात्मक माध्यम के रूप में सिनेमा को विकसित होने के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थीं। इसके बावजूद भारतीय सिनेमा न केवल पल्लवित-पुष्पित हुआ, बल्कि उसने स्वतंत्रता संग्राम एवं सामाजिक सरोकारों के प्रति अपनी रचनात्मक भागीदारी सुनिश्चित कर भारतीय सिने-जगत के स्वर्ण युग की आधारशिला भी तैयार की। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में स्वदेशी के आग्रह का जनमानस पर गहरा प्रभाव था, अतः सिनेमा की आधारशिला में भी आत्मनिर्भरता का तत्व स्वाभाविक रूप से जुड़ना ही था। सिनेमा में आत्मनिर्भरता की दृष्टि से विशुद्ध भारतीय तकनीकी नवाचारों एवं उपलब्धियों का महत्वपूर्ण योगदान था, किंतु इसकी व्यापक चर्चा अपेक्षाकृत उपेक्षित ही रही। निःसंदेह स्वतंत्रता पूर्व भारतीय सिनेमा जगत के निर्माता एवं निर्देशकों का योगदान अतुलनीय और असंदिग्ध है, जिसके लिए उन्हें पर्याप्त सम्मान भी प्राप्त है, किंतु कैमरे की नजर से भारतीय सिनेमा के स्वर्ण युग की स्वदेशी आधारशिला रखने वाले सिनेमॅटोग्राफरों एवं अन्य तकनीकी रचनाकारों का योगदान विस्मृत है। स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव के अवसर पर स्वतंत्रता पूर्व भारतीय सिनेमा की स्वदेशी आधारशिला की स्थापना में 'भारतीय सिनेमॅटोग्राफी' एवं 'सिनेमॅटोग्राफर' के योगदान को स्मरण करते हुए यह शोध आलेख प्रस्तुत है।

संकेत शब्द : स्वदेशी सिनेमा तकनीक, स्वदेशी आंदोलन, भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, सिनेमॅटोग्राफी, सिनेमॅटोग्राफर

प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में भारत के हर क्षेत्र, समाज के हर वर्ग ने भागीदारी की थी। इस विराट राष्ट्रीय यज्ञ में कला जगत ने भी अपनी रचनात्मक आहुति से एक विशिष्ट भूमिका निभाई। 1896 से 1905 तक कलकत्ता के शासकीय कला महाविद्यालय के प्राचार्य एवं रबींद्रनाथ टैगोर के भतीजे श्री अवनींद्र टैगोर ने राष्ट्रीय आकांक्षाओं के प्रतीक चार भुजाओं वाली 'भारत माता' का चित्र बनाकर अपने छात्रों को भारतीयता से ओतप्रोत ऐतिहासिक विषयों और दैनिक ग्रामीण जीवन के दृश्यों के चित्रांकन के लिए प्रोत्साहित किया। इसी दौर में टैगोर के शिष्य असित कुमार हाल्दार और नंदलाल बोस जैसे चित्रकारों का विशेष योगदान रहा। इसी कालखंड में भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने स्वदेशी की अवधारणा को बढ़ावा दिया। स्वदेशी आंदोलन की जड़ें लॉर्ड कर्जन के बंगाल प्रांत को विभाजित करने के फैसले का विरोध करने के लिये शुरू किए गए विभाजन विरोधी आंदोलन में थीं। अगस्त 1905 में कलकत्ता के टाउन हॉल में एक विशाल सभा आयोजित की गई, जिसमें स्वदेशी आंदोलन की औपचारिक घोषणा की गई। यह ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध आत्मनिर्भर बनने का एक आंदोलन था, जो मुख्यतः बंगाल से प्रारंभ हुआ। स्वदेशी के आग्रह का प्रमुख उद्देश्य ब्रिटेन से आ रही सामग्री का बहिष्कार करने के साथ-साथ पश्चिमी संस्कृति, साहित्य एवं कला आस्वादन के बजाय घरेलू और स्थानीय उत्पादों, उद्योगों, कला और संस्कृति को बढ़ावा देना था। महात्मा गांधी ने 14 फरवरी, 1916 को मद्रास में दिए अपने भाषण में स्वदेशी का आह्वान करते हुए कहा था, "आर्थिक क्षेत्र में हम आसपास के लोगों तथा स्वदेशी परंपरा और कौशल द्वारा उत्पादित वस्तुओं का ही उपयोग करेंगे और उन्हें ही सक्षम तथा श्रेष्ठ बनाएँगे" (धर्मपाल, 2002)।

यद्यपि इस आंदोलन का सर्वाधिक प्रभाव बंगाल में था, किंतु भारत के अन्य बड़े शहरों जैसे मद्रास में चिदंबरम पिल्लई के नेतृत्व में, सैयद हैदर रजा के नेतृत्व में दिल्ली में, लाला लाजपत राय के नेतृत्व में पंजाब में और बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व में पुणे और मुंबई में भी इसका प्रसार और प्रभाव देखा गया। लोकमान्य तिलक के स्वराज्य के नारे की गूँज और स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव धुंडिराज गोविंद फाळके उपाख्य दादासाहब फाळके पर बहुत गहरा था, जिसकी प्रेरणा से वे स्वदेशी फिल्म उद्योग की स्थापना के लिए उन्मुख हुए। 'राजा हरिश्चंद्र', स्वदेशी फिल्म उद्योग की स्थापना का शंखनाद करती हुई फिल्म थी। बाल गंगाधर तिलक के संपादन में छपने वाले अखबार 'केसरी' ने पहली बार इस फिल्म की समीक्षा छापी और इसे भारतीय इतिहास की सर्वप्रथम राष्ट्रवादी फिल्म भी घोषित किया। दादासाहब फाळके ने सिनेमा के जरिये स्वदेशी आंदोलन को आगे बढ़ाने का संकल्प कर रखा था। यही कारण था कि उन्होंने अँग्रेजों द्वारा बंगाल विभाजन के विरोध में सन 1905 में अपनी आर्कियोलोजिकल सर्वे

[1]विभागाध्यक्ष, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल. electronicmedia@mcu.ac.in
[2]शोधार्थी, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल. ashishbhawalkar.in@gmail.com

ऑफ इंडिया की नौकरी छोड़ दी और लोकमान्य तिलक के आंदोलनों में शामिल हो गए। फाळके जब अपनी तीन फिल्मों 'राजा हरिश्चंद्र', 'मोहिनी भस्मासुर' और 'सत्यवान सावित्री' को लंदन में प्रदर्शन के लिए ले गए तो अँग्रेज उनकी कम लागत में निर्मित गुणवत्तापूर्ण फिल्मों को देखकर अचंभित रह गए थे। जब उन्हें लंदन में रहकर भरपूर संसाधनों के साथ फिल्में बनाने और लाभ में हिस्सेदारी का प्रस्ताव प्राप्त हुआ तो उन्होंने इसे भी स्वदेशी के संकल्प के चलते ठुकरा दिया।

तकनीक की दृष्टि से 'पुंडलिक' और 'राजा हरिश्चंद्र' में अंतर

यद्यपि आयातित सिनेमॅटोग्राफिक तकनीक की मदद से भारतीय फिल्मकारों ने भारत में सिनेमा का श्रीगणेश किया, किंतु पहली कथात्मक फिल्म के लिए विशुद्ध रूप से भारतीय, ऐतिहासिक एवं पौराणिक परिवेश आधारित कथावस्तु का चुनाव, प्रारंभ से ही आत्मनिर्भरता की प्रतिबद्धता को उजागर करता है। भारत की पहली कथा फिल्म रामचंद्र गोपाळ 'दादासाहेब' तोरणे द्वारा प्रस्तुत 'पुंडलिक' थी या दादासाहब फाळके द्वारा प्रस्तुत 'राजा हरिश्चंद्र', इस चर्चित बहस का भी समाधान इस दृष्टि से किया जाता है कि यद्यपि 'पुंडलिक' फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' से एक वर्ष पूर्व प्रदर्शित हो गई थी, किंतु उसका कैमरामैन विदेशी था, ठीक इसके विपरीत राजा हरिश्चंद्र फिल्म के सभी तकनीशियन भारतीय थे। अतः भारत की पहली फिल्म निसंदेह रूप से 'राजा हरिश्चंद्र' ही मानी जानी चाहिए, यह आत्मनिर्भरता के तत्व का महत्व बताता है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में स्वदेशी के आग्रह का जनमानस पर गहरा प्रभाव था, अतः सिनेमा की आधारशिला में भी आत्मनिर्भरता का तत्व स्वाभाविक रूप से जुड़ना ही था। आत्मनिर्भरता की दृष्टि से विशुद्ध भारतीय तकनीकी नवाचारों एवं उपलब्धियों का महत्वपूर्ण योगदान था, किंतु इसकी व्यापक चर्चा अपेक्षाकृत उपेक्षित ही रही। परतंत्रता की विपरीत परिस्थितियों में भारत में स्वदेशी सिनेमा जन्म ले रहा था तो उसे वैश्विक उथल-पुथल और प्राकृतिक आपदाओं की दोहरी मार भी झेलनी पड़ रही थी। 1914 से 1918 के बीच प्रथम विश्व युद्ध, 1939 से 1945 तक द्वितीय विश्वयुद्ध और 1943 में बंगाल में भीषण अकाल के कारण भरपूर पूँजी निवेश के साथ तकनीकी संसाधनों पर आश्रित सिनेमा उद्योग के विकसित होने के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं थी, किंतु दादासाहब फाळके द्वारा दिखाए गए साहस ने फिल्म निर्माण की ओर आकर्षित युवाओं को एक कलात्मक माध्यम के रूप में सिनेमा की साधना के लिए प्रेरित किया।

प्रस्तुत शोधपत्र दादासाहब फाळके के पूर्ववर्ती, समकालीन एवं स्वतंत्रता पूर्व भारतीय व्यक्तिगत प्रेरणाओं एवं योगदान से सिनेमा के विकास क्रम, इसकी विशिष्टता और विशेष अवधारणाओं को समझते हुए भारतीय फिल्मों को आकार देने वाली सिनेमॅटोग्राफी तकनीक के स्वदेशीकरण पर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के प्रभाव का अध्ययन करता है।

शोध उद्देश्य

1. सिनेमॅटोग्राफी तकनीक के स्वदेशीकरण पर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के प्रभाव का अध्ययन करना।
2. भारतीय स्वदेशी सिनेमा की संकल्पना को आकार देने में भारतीय फिल्मकारों की भूमिका का अध्ययन करना।

शोध प्रश्न

1. स्वतंत्रता पूर्व भारत में सिनेमॅटोग्राफी तकनीक के स्वदेशीकरण की तकनीकी आधारभूत संरचना किस प्रकार विकसित हुई?
2. स्वतंत्रता पूर्व भारत में ऐसे कौन से सिनेमॅटोग्राफिक नवाचार थे, जिन्होंने भारतीय सिनेमा के स्वर्ण युग की आधारशिला रखी?

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र के लिए विषयानुकूल ऐतिहासिक अनुसंधान पद्धति का चुनाव किया गया है। करलिंगर ने 'ऐतिहासिक अनुसंधान को अतीत की घटनाओं, विकास क्रमों और विगत अनुभवों के संबंध में प्रमाणों की वैधता का सावधानीपूर्वक परीक्षण एवं व्याख्या' कहा है (करलिंगर, 1972, पृष्ठ 673)। प्रस्तुत अध्ययन भारतीय सिनेमा के अतीत की घटनाओं, तकनीकी विकास क्रम तथा विगत अनुभूतियों का अध्ययन है।

सैद्धांतिक रूपरेखा

प्रोफेसर चार्ल्स ऑल्टमैन द्वारा संशोधित एवं प्रस्तुत की गई सूची के अनुसार सिनेमा का अध्ययन विविध दृष्टिकोणों से किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में सूची में वर्णित प्रथम तीन दृष्टिकोण के अनुसार तथ्यों का प्रस्तुतीकरण किया गया है :

1. सिनेमा के तकनीकी इतिहास के प्रथम अन्वेषक एवं तकनीकी नवाचारों का अध्ययन।
2. सिनेमाई तकनीकों का ऐतिहासिक रूप से अध्ययन जैसे क्लोज-अप का प्रथम प्रयोग, किसी काल खंड में फिल्म-निर्माताओं के लिए क्या तकनीकी विकल्प उपलब्ध थे?...इत्यादि।
3. व्यक्तित्व का अध्ययन (स्टूडियो दिग्गज या प्रमुख हस्ती, सितारे, आदि) (ऑल्टमैन, 1977, पृष्ठ 3 से 6)।

तथ्य संकलन

इस शोध पत्र में प्रस्तुत विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों के संकलन एवं विश्लेषण करने के लिए टेक्सास ए. एंड एम. विश्वविद्यालय पुस्तकालय की वेबसाइट पर उपलब्ध संदर्भ को आधार बनाया गया है, जिसके अनुसार सिनेमा अध्ययन में, स्वयं फिल्म या अन्य सहायक सामग्री जैसे प्रचार हेतु विज्ञापन, पोस्टर, पैंफलेट, स्थिर छायाचित्र, पांडुलिपियाँ, छायाकारों के सर्वेक्षण, समकालीन पत्रिकाओं के लेख, समाचार पत्रों या पत्रिकाओं द्वारा आयोजित निर्देशकों एवं अन्य सहायकों के साथ साक्षात्कार इत्यादि जो उस युग के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं, प्राथमिक स्रोत हो सकते हैं। द्वितीयक स्त्रोत के रूप में पुस्तकें, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ एवं वेबसाइट से प्राप्त सामग्री शामिल है। इस प्रकार इस शोध पत्र में तथ्यों का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों पर आधारित है।

संकलित तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या

(1). चलचित्र का स्वदेशी आधार

वर्ष 1885 में जब पहली बार अँधेरे कक्ष में एक शक्तिशाली प्रकाश स्त्रोत के समक्ष काँच की स्लाइडों पर चित्रित छवियों को महादेव गोपाल

पटवर्धन ने अपने एक इंजीनियर मित्र मदनराव पितळे की मदद से एक उत्तल लेंस के सहारे किसी दीवार या पर्दे पर प्रक्षेपित किया तो पास-पड़ोस के अन्य मित्रगण मंत्रमुग्ध हो गए। मराठी रामायण में वर्णित एक असुर (राक्षस), जिसका बल 100 असुरों के बराबर था, अर्थात् 'शंभरासुर' और दीपक के एक पर्यायवाची शब्द 'खरोलिका' को मिलाने से इस यंत्र का भारतीय नाम 'शांबरिक खरोलिका' पड़ा। यूरोप और अमेरिका में यह मैजिक लैंटर्न अर्थात् जादुई लालटेन के नाम से प्रचलित था। "भारतीय दर्शकों की रुचि को ध्यान में रखते हुए भारतीय पौराणिक व्यक्तित्वों को काँच की पट्टियों पर हाथ से खींची गई रेखाओं द्वारा दिखाना शुरू किया गया।" (पेटकर, 2014, पृष्ठ 18)। पटवर्धन बंधुओं द्वारा पर्याप्त तैयारियों के बाद 'शांबरिक खरोलिका' का आम जनता के लिए पहला शो 30 सितंबर, 1892 को आयोजित किया गया। 'शांबरिक खरोलिका' में प्रयोग की गई स्लाइडों के बारे में जानकारी देते हुए पटवर्धन परिवार के वंशज सुनील पटवर्धन बताते हैं, 'शांबरिक खरोलिका' में प्रयुक्त की गई स्लाइडें, यूरोप और अमेरिका में प्रचलित मैजिक लैंटर्न में प्रयोग की जाने वाली स्लाइडों से भिन्न प्रकार की थीं। विदेशी स्लाइडों में केवल एक काँच की सतह पर चित्रण किया जाता था, वहीं 'शांबरिक खरोलिका' में एक स्लाइड में ही 2 या 3 पतले काँच की मिनिएचर पेंटिंग युक्त सतह हुआ करती थी। एक ही स्लाइड की इन अलग-अलग सतहों को जब परस्पर सरकाया जाता था तो निर्जीव चित्रों में गति का आभास होता था। यह बहुत कुछ एनिमेशन के प्रभाव जैसा था। अर्थात् 'शांबरिक खरोलिका' यूरोप और अमेरिका में प्रचलित मैजिक लैंटर्न की तुलना में अधिक विकसित था।

(2.) विश्व एवं भारत में पहली बार चलचित्र का प्रदर्शन एवं भारतीय कलाकारों की चलचित्र से प्रथम अनुभूति

विश्व में जब पहली बार चलचित्र का प्रदर्शन हुआ तो उसमें भारत का नाम भी शामिल था। फ्रांस के ल्यूमियर ब्रदर्स ने 'सिनेमॅटोग्राफ' का आविष्कार किया और उससे तैयार की गई दस लघु फिल्मों को 28 दिसंबर, 1895 को पेरिस के बुलवर्ड डेस क्यूकिंस के पास ग्रांड कैफे के तहखाने के एक बड़े कमरे में प्रदर्शित किया गया। उसका नाम था 'सालो दे इंडिस' अर्थात् भारतीय सभागार। ऐसे संयोग का क्रम निरंतर बना रहा (जगमोहन, 1995, 16)। कुछ ही महीनों के बाद व्यापारिक वर्चस्व की दृष्टि से ल्यूमियर बंधुओं ने अपने तकनीशियन मारियस सेस्टियर के जरिये ऑस्ट्रेलिया के लिए फिल्म पैकेज रवाना किया। हवाई जहाज को ईंधन लेने के लिए बंबई रुकना था। सेस्टियर को बंबई आने पर पता चला कि ऑस्ट्रेलिया जाने वाले हवाई जहाज में खराबी के चलते उन्हें कुछ दिन बंबई में ठहरना होगा। मॉरिस के मन में विचार आया कि जो काम ऑस्ट्रेलिया जाकर करना है, उसे बंबई में भी किया जा सकता है। लिहाजा वह अगले दिन 6 जुलाई, 1896 को एक विज्ञापन छपवाने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के दफ्तर गया। 'दुनिया का अजूबा' नाम से प्रचारित इस विज्ञापन को पढ़कर बंबई के कोने-कोने से दर्शकों का हुजूम वॉटसन होटल के लिए उमड़ पड़ा। एक रुपये की प्रवेश दर से लगभग 200 दर्शकों ने 7 जुलाई, 1896 की शाम 20वीं सदी के इस चमत्कार से साक्षात्कार किया। इस तरह संयोगवश शीघ्र ही 'सिनेमॅटोग्राफ' के आविष्कार का लाभ भारत को प्राप्त हो गया। संपूर्ण विश्व और भारत के लिए चलचित्र एक नई तकनीकी विधा थी। अतः इसे विकसित करने में सर्वप्रथम व्यक्तिगत प्रयास ही आरंभ हुए। इसमें संस्थागत या शासन प्रायोजित व्यवस्थाओं की कोई भूमिका नहीं थी। धीरे-धीरे जब इसका व्यापारिक एवं जनसंचार में उपयोग उजागर होने लगा, तब बड़े स्तर पर संगठित, व्यापारिक एवं राज्याश्रय आधारित समर्थन प्राप्त होने लगा।

परतंत्र भारत में विदेशी शासकों के संकुचित दृष्टिकोण और स्वतंत्रता के बाद प्रारंभ के कुछ वर्षों तक अन्य महत्वपूर्ण प्राथमिकताओं के कारण सिनेमा का विकास केवल निजी व्यक्तिगत प्रयासों पर ही आश्रित रहा। अतः उन भारतीय महापुरुषों के व्यक्तिगत प्रयासों को जानना अत्यंत आवश्यक है, जिन्होंने विपरीत परिस्थियों में इस नवीन कला और तकनीक को निरंतर नवाचारों के बल पर समृद्ध किया। इन्हें हम श्वेत-श्याम मूक युग की नींव के पत्थर कहकर सम्मानित करते हैं।

हरिश्चंद्र सखाराम भाटवड़ेकर : ल्यूमियर बंधुओं की लघु फिल्मों के दर्शकों में अनुभवी छायाकार सावेदादा भी शामिल थे, जिनका पूरा नाम हरिश्चंद्र सखाराम भाटवड़ेकर था। वे इस अद्भुत कला माध्यम के बारे में जानने के बहुत उत्सुक हो गए। उन्होंने सन् 1898 में इंग्लैंड के रिले भाइयों से 21 गिनी की कीमत का एक कैमरा यानी 'सिनेमॅटोग्राफ' खरीदा और स्थानीय दृश्यों को फिल्माने लगे। सावेदादा ने नवंबर 1899 में मुंबई के प्रसिद्ध हैंगिंग-गार्डन में उस समय के दो मशहूर पहलवानों पुंडलीक दादा और कृष्णा नाहवी के बीच हुए कुश्ती के मुकाबले को फिल्माया। उनकी दूसरी फिल्म सर्कस के बंदरों की ट्रेनिंग पर आधारित थी। इन दोनों फिल्मों को उन्होंने डेवलपिंग के लिए लंदन भेजा। सन् 1899 में विदेशी फिल्मों के साथ जोड़कर उनका प्रदर्शन किया। इस प्रकार सावेदादा पहले भारतीय हैं, जिन्होंने अपने बुद्धि कौशल से स्वदेशी लघु फिल्मों का निर्माण कर प्रथम चलचित्र निर्माता-निर्देशक तथा प्रदर्शक होने का श्रेय प्राप्त किया। भाटवड़ेकर के करिश्मों का सिलसिला यहाँ आकर ठहरता नहीं है। दिसंबर 1901 में, गणित में विशेष योगदान के लिए प्रशंसित छात्र आर.पी. परांजपे की कैंब्रिज से भारत वापसी पर भव्य स्वागत एवं 1902 में दिल्ली दरबार में एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के जश्न का फिल्मांकन करते हुए भाटवड़ेकर ने भारतीय डॉक्युमेंट्री फिल्म शैली की आधारशिला रखी। भाटवड़ेकर को हमेशा भारत के अग्रणी और प्रथम वृत्तचित्र फिल्म निर्माता के रूप में याद किया जाएगा। जगमोहन लिखते हैं, "भारत में तथ्यपरक फिल्मों का जनक होने का श्रेय इन्हीं अग्रदूत हरिश्चंद्र सखाराम भाटवड़ेकर को दिया जाना चाहिए, क्योंकि यही तथ्यपरक फिल्में और न्यूजरील, वृत्तचित्रों (डॉक्यूमेंट्री) की पूर्वज थीं। ये फिल्में कल्पना पर नहीं, तथ्यों पर आधारित थीं" (जगमोहन, 1995, पृष्ठ16)।

हीरालाल सेन: जब भाटवड़ेकर मुंबई में चलचित्र के कौशल दिखा रहे थे, उन्हीं दिनों लगभग दो हजार किमी दूर हीरालाल सेन भी भारतीय चलचित्र की नींव रख रहे थे। 1897 में प्रोफेसर स्टीवेंसन ने कोलकाता के स्टार थियेटर में एक ओपेरा फिल्म 'द फ्लावर ऑफ पर्शिया' का प्रदर्शन किया। इस फिल्म से प्रेरित होकर 1898 में फोटोग्राफर हीरालाल सेन ने उस शो के दृश्यों की एक फिल्म बनाई और इसका शीर्षक 'द डांसिंग सीन' रखा (रॉय, 2021)। लेकिन सेन केवल मंचित नाटकों पर फिल्में बनाकर संतुष्ट नहीं थे। 1904 में उन्होंने बंगाल के विभाजन के विरोध में एक सार्वजनिक रैली की विशालता को सेलुलॉइड पर उतारने का फैसला किया। कोलकाता के टाउन हॉल में 22 सितंबर, 1905 को स्वदेशी के

प्रचार हेतु और बंगाल विभाजन के विरुद्ध एक जोरदार प्रदर्शन हुआ। इसे हीरालाल सेन ने फिल्मांकित करके एक डॉक्यूमेंट्री फिल्म बनाई। आज, इसे व्यापक रूप से भारत का पहला राजनीतिक वृत्तचित्र माना जाता है और यह सेन के करियर का उच्च बिंदु था। अब तक छोटी-मोटी घटनाओं एवं थियेटर के मंचन का फिल्मांकन तो हो रहा था पर मौलिक कथाचित्र बनाने की कोई कोशिश नहीं की गई थी।

रामचंद्र गोपाल 'दादासाहेब तोरणे: 18 अगस्त, 1890 को एक मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मे रामचंद्र गोपाल तोरणे मुंबई में लगने वाली हर विदेशी फिल्में को देखने अवश्य जाते थे। उन्हें हमेशा लगता कि ऐसी कोई फिल्म भारत में क्यों नहीं बनती? यही उनकी प्रेरणा बनी। 21 साल की उम्र में, तोरणे ने अपनी खुद की फीचर फिल्म बनाने का विचार किया। उन्होंने अपने एक दोस्त 'नानासाहब चित्रे' को पैसे देने के लिए तैयार कर लिया। 'रामराव कीर्तिकार' द्वारा एक हिंदू संत पर रचित मराठी नाटक 'श्री पुंडलिक' की एक जगह कैमरा लगाकर नॉनस्टॉप रिकार्डिंग की योजना बनी। जब चित्रे को पता चला कि मैसर्स बॉर्न एंड शेफर्ड कंपनी के पास एक सिने कैमरा है, तो वे व्यक्तिगत रूप से उनसे मिलने गए और उन्हें विलियमसन कैमरा, कच्ची फिल्म और एक फोटोग्राफर की सेवाएँ प्रदान करने के लिए राजी कर लिया। कंपनी द्वारा ब्रिटिश कैमरामैन, जिनका नाम जानसन था, उपलब्ध कराया गया। एक स्थान पर कैमरा स्थिर करते हुए नॉनस्टॉप रिकार्डिंग की गई, किंतु तोरणे इस तरीके से संतुष्ट नहीं थे। अतः उन्होंने नाटक के प्रत्येक दृश्य को अलग-अलग रिकॉर्ड करते हुए बाद में उसे आपस में जोड़ देने की योजना बनाई और वे सफल भी हुए (रंगूनवाला, 1975, पृष्ठ 28)। अतः कहा जा सकता है कि ये भारत में फिल्म संपादन का प्रथम प्रयास था। 18 मई, 1912 को रिलीज हुई फिल्म 'श्री पुंडलिक', गिरगाँव के कोरोनेशन सिनेमैटोग्राफ थियेटर में दो हफ्ते तक चलती रही, किंतु अभी भी भारत को सिनेमा के तत्कालीन वैश्विक तकनीकी मापदंडों के अनुरूप कथा फिल्म का इंतजार था।

भारतीय सिनेमा के जनक-धुंडिराज गोविंद फाळके : चलचित्र के मोहपाश में बँधने से पूर्व धुंडिराज गोविंद फाळके उपाख्य दादासाहेब फाळके को शिल्पकला, चित्रकला, छपाई, शौकिया जादूगरी एवं मुद्रण कला के साथ-साथ स्थिर छायांकन का विधिवत अध्ययन एवं अनुभव प्राप्त था। अतः वे इस तथ्य से पर्याप्त जागरूक थे कि 'सिनेमैटोग्राफी की कला फोटोग्राफिक कला का अगला चरण है'। दादासाहब फाळके के 9 अगस्त, 1913 को 'केसरी' में छपे साक्षात्कार से संकेत मिलता है कि वे इस बात को जान चुके थे कि वह किसी तरह का इतिहास रचने जा रहे हैं। 1910 में मुंबई में 1902 में निर्मित फ्रेंच निर्देशक फर्डिनेंड जेका की मूक फिल्म 'द लाइफ ऑफ क्राइस्ट' देखने के बाद बहुमुखी प्रतिभा के धनी दादासाहेब फाळके ने कई अन्य व्यवसायों जैसे फोटोग्राफी, प्रिंटिंग, मेकअप और जादू के अनुभव को इस नई कलात्मक विधा में आजमाने का संकल्प ले लिया। फाळके खुद स्वदेशी आंदोलन का हिस्सा थे और तिलक के जीवन से प्रभावित थे। जब उन्होंने 'द लाइफ ऑफ क्राइस्ट' देखी तो उन्हें लगा कि हम अपने भारतीय बिंब कब परदे पर देखेंगे, अन्यथा ये विदेशी कल्पनाएँ हमारी चेतना को धीरे-धीरे नष्ट कर देंगी। दादासाहब फाळके के लिए भारतीय सिनेमा की परिभाषा स्पष्ट थी। वे आत्मनिर्भरता के तत्व के साथ राजा रवि वर्मा के संदर्भ को सामने रखते हुए विशुद्ध 'परंपरागत भारतीय छवियों' के अनुरूप फिल्म उद्योग की स्थापना और विकसित करने का स्वप्न देखते थे।

यांत्रिक उपकरणों के प्रति जिज्ञासा का तत्व तो उनके व्यक्तित्व में प्रारंभ से ही था। वे अपना पहला स्टिल-कैमरा 1890 में खरीद चुके थे। परेश मोकाशी अपनी फिल्म में दिखाते हैं कि फाळके 1912 में उपकरण खरीदने के लिए लंदन गए। साथ ही फ्रांस, जर्मनी और संयुक्त राज्य अमेरिका से फिल्म निर्माण और प्रदर्शन के लिए आवश्यक उपकरण तत्कालीन ह्यूटन बुचर, जीस टेसर और पाथे सहित निर्माताओं से आयात किए। इसमें कैमरा, नेगेटिव और पाजिटिव फिल्म स्टॉक, संपादन मशीन और फिल्म प्रोजेक्टर शामिल थे। कैबाउर्न ने विलियमसन कैमरा, एक फिल्म परफोरेटर, प्रोसेसिंग और प्रिंटिंग मशीन जैसे यंत्रों तथा कच्चा माल का चुनाव करने में मदद की (मोकाशी, 2009)। लोकमान्य तिलक की राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रभावित दादासाहब फाळके ने सिनेमा के जरिये स्वदेशी आंदोलन को आगे बढ़ाने का संकल्प कर लिया था। विचारधारा की कीमत पर लाभ प्राप्ति के संकुचित मार्गों की अपेक्षा नुकसान भी उठाते हुए स्वदेशी का आग्रह सर्वोपरि रखा। 'नवयुग' पत्रिका में वे लिखते हैं, 'उन दिनों हिंदुस्तान के कस्बों और गाँवों में कई उद्योग-धंधे चौपट हो रहे थे। लेकिन यदि मेरा स्वदेशी चित्रपट का उपक्रम इस तरह दम तोड़ देता तो यह लंदन के अँग्रेजों की नजरों में स्वदेशी आंदोलन की हमेशा के लिए फजीहत हो जाती।' फाळके ने नासिक के अपने बचपन के दोस्त त्र्यंबक बी. तेलंग को स्टिल फोटोग्राफी और विलियमसन कैमरे के संचालन में प्रशिक्षित किया और उन्हें फिल्म का छायाकार बनाया। फाळके ने मुंबई के दादर में एक स्टूडियो स्थापित किया, जहाँ उन्होंने 'राजा हरिश्चंद्र' के एक हिस्से की शूटिंग की। फिल्म के आउटडोर सीन पुणे के पास एक गाँव में शूट किए गए। फिल्म को पूरा करने में फाळके को सात महीने और 21 दिन लगे, इस दौरान उनकी पत्नी ने कलाकारों और तकनीकी कर्मियों की सभी जरूरतों को पूरा किया। 'राजा हरिश्चंद्र' का वास्तव में प्रीमियर 21 अप्रैल, 1913 को ओलंपिया थियेटर, ग्रांट रोड में प्रेस और आमंत्रित दर्शकों के लिए हुआ था, जिसके बाद 3 मई को सार्वजनिक प्रीमियर हुआ।

मराठी पत्रिका 'नवयुग' में वे लिखते हैं, "बिलकुल नए लोगों द्वारा हाथ से चलनेवाले यंत्र, बिना स्टूडियो के इतनी कम लागत से बनाई गई फिल्म ने विलायत में पूँजी वाले और प्रशिक्षित लोगों को चकित कर दिया। वहाँ के विशेषज्ञ फिल्मी पत्रिकाओं ने उसे अद्भुत करार दिया। इससे अधिक मेरे कारखाने के कर्मचारियों-भारतपुत्रों को और क्या चाहिए था?" दादासाहेब फाळके की 1917 में रामायण के सुंदर कांड पर आधारित फिल्म 'लंका दहन' में मुख्य कलाकार अन्ना सालुंके ने राम और सीता दोनों के किरदार निभाए। अर्थात् डबल रोल का सफल प्रयोग किया गया। ब्रिगिट शुल्ज लिखते हैं : "फिल्म 'श्री कृष्ण जन्म' (1918) में जब कंस का सिर धड़ से अलग होकर उड़ते हुए गायब हो जाता है, तो दर्शक सहमते हुए विस्मय में पड़ जाते हैं।" चलचित्र में यह मायावी उपलब्धि उन दिनों में हासिल की गई थी जब क्रोमा-की (हरे रंग की मैट) और कंप्यूटर ग्राफिक्स का जन्म ही नहीं हुआ था (शुल्ज, 1995, पृष्ठ 184)। मूक युग से ही फिल्मों में ट्रिक फोटोग्राफी की शुरुआत हुई। उस दौर में ज्यादातर पौराणिक कहानियों पर आधारित फिल्में बन रही थीं, जिनके दृश्यों की माँग के अनुसार ट्रिक सिनेमॅटोग्राफी को पनपने के लिए सकारात्मक वातावरण प्राप्त हुआ।

सवाक् युग तक आते-आते कैमरे भी उन्नत हो गए थे। सहयोगी उपकरणों, लेंस और फिल्टर में नवीनता और वजन में हल्के होने के कारण ट्रिक सिनेमॅटोग्राफी ने गति पकड़ी और अपना महत्व स्थापित किया। त्र्यंबक बी. तेलंग, बाबूराव पेंटर, बाबूभाई मिस्त्री और विदेशी फिल्म संस्थानों से प्रशिक्षित प्रमथेश चंद्र बरुआ, सुचेत सिंह और दिलीप गुप्ता जैसे अनेक सिनेमॅटोग्राफरों ने अपने दृढ़ संकल्प और रचनात्मकता के माध्यम से जो असंभव लग रहा था, उसे पर्दे पर जीवंत कर दिया और कई सेलुलॉइड चमत्कार संभव किए (सिंह एवं भवालकर, 2022)। दादासाहेब फाळके ने अपनी फिल्मों में एक नए प्रगतिशील भारत के निर्माण का संदेश दिया। भले ही उनकी अधिकांश फिल्में जैसे 'राजा हरिश्चंद्र', 'लंका दहन' और 'सत्यवान सावित्री' हिंदू पौराणिक कथाओं में निहित थीं, किंतु फाळके ने सूक्ष्मता से राष्ट्रवादी सिनेमा का सशक्त आधार तैयार किया।

भारतीय फिल्म कला के जनक-बाबूराव कृष्ण राव मिस्त्री बाबूराव पेंटर : एक उत्कृष्ठ चित्रकार और मूर्तिकार के रूप में अपने गुणों और अनुभवों के निचोड़ से भारतीय सिनेमा में कला और तकनीक का स्वदेशी आधार तैयार करने वाले बाबूराव कृष्ण राव मिस्त्री को 'भारतीय फिल्म कला के जनक' के नाम से जाना जाता है। सौंदर्य दृष्टि और तकनीकी कौशल के उत्कृष्ट समन्वय के प्रतिनिधि बाबूराव कृष्ण राव मिस्त्री, 'बाबूराव पेंटर' के नाम से अधिक प्रसिद्ध थे, क्योंकि वे कई थियेटर कंपनियों के साथ एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चित्रकार थे। सूर्यकांत मांढरे लिखते हैं कि "बाबूराव पेंटर और उनके भाई आनंदराव ने भारतीय सिनेमा में फिल्म निर्माण प्रौद्योगिकी में कई तकनीकी नवाचार किए। मात्र बीस साल की आयु में 'पहला भारतीय फिल्म कैमरा' बनाया था" (मांढरे, 1993, पृष्ठ 185)। आनंदराव, जो पहले से ही जानते थे कि एक स्थिर कैमरा कैसे काम करता है, ने मुंबई में खरीदे गए एक सेकेंड-हैंड प्रोजेक्टर को यह जानने के लिए एक-एक पुर्जे को अलग कर दिया कि चलती छवियों को स्क्रीन पर कैसे पेश किया जाता है, ताकि वे प्रक्रिया को रिवर्स-इंजीनियर कर सकें और चलती छवियों को फिल्म पर कैप्चर करने का प्रयास कर सकें। 1914 में एक बढ़ई मित्र ज्ञानबा सुतार की मदद से बाबूराव और आनंदराव ने अपने कैमरे पर काम करना शुरू किया। 1916 में आनंदराव की मृत्यु हो गई, किंतु इस आघात को सह कर भी बाबूराव ने अपना काम जारी रखा और बड़े समर्पण के साथ वे अंततः 1918 में पहला स्वदेशी फिल्म कैमरा बनाने में सफल हुए। वीरेंद्र वळसंगकर अपनी डॉक्यूड्रामा फिल्म में दिखाते हैं कि कैमरे के पुर्जों के लिए गणितीय गणनाओं में विष्णु गोविंद दामले ने सहयोग किया (वळसंगकर, 2011)। दादा मिस्त्री की मदद से एक लेथ मशीन पर कई प्रयोग करके स्वदेशी रूप से बना कैमरा बनाने में बाबूराव को दो साल लग गए। उन्होंने इस स्वदेशी कैमरे से कई सीन कैद किए।

ऑलराउंडर प्रमथेश चंद्र बरुआ: प्रमथेश चंद्र बरुआ की पहचान एक ऑलराउंडर अर्थात् अभिनेता, फिल्म निर्माता, निर्देशक, संगीतकार, पटकथा-लेखक के रूप में अक्सर की जाती है, किंतु एक दक्ष सिनेमॅटोग्राफर के रूप में पहचान से कुछ लोग ही परिचित हैं। पी. सी. बरुआ ने ऐसे समय में फिल्मों में प्रवेश किया, जब भारतीय सिनेमा और फिल्म निर्माता इसकी मौलिक पहचान को आकार दे रहे थे। सिनेमा में नई तकनीकों को सीखने के लिए उत्सुक बरुआ ने यूरोप की यात्रा की और लंदन में एलस्ट्री स्टूडियो में फिल्म निर्माण की प्रक्रिया देखी। पेरिस में उन्हें सिनेमॅटोग्राफी सीखने का अवसर मिला। उन्होंने फॉक्स स्टूडियो में फिल्मों के लिए प्रकाश व्यवस्था के बारे में सीखा। उन्होंने अपनी वापसी से पहले प्रकाश व्यवस्था के उपकरण खरीदे और भारत में एक स्टूडियो बनाया। इस गहन अनुभव का उपयोग उन्होंने श्वेत श्याम मूक फिल्म 'अपराधी' (1931) में किया, जिसे 'अपराधी', 'अबला' और 'द कल्प्रिट' के नाम से भी रिलीज किया गया। स्वयं अभिनेता के रूप में काम करते हुए देबकी बोस को निर्देशन और कृष्ण गोपाल को सिनेमॅटोग्राफी की जिम्मेदारी सौंपी गई। फिल्म के दृश्यांकन के लिए स्टूडियो के अंदर कृत्रिम अंतःप्रकाश व्यवस्था (इंडोर लाइटिंग) का पहली बार उपयोग किया गया। 'अपराधी' (1931) के फिल्मांकन के लिए बालीगंज सर्कुलर रोड स्थित गौरीपुर हाउस में बिजली मीटर की बिजली क्षमता बढ़ानी पड़ी। 400 एंपीयर की क्षमता वाले दो और मीटर लगाए गए थे। पहली बार फिल्म को 10,000 वॉट के साथ शूट किया गया था और जब नैगेटिव विकसित किए गए तो स्पष्ट छवि अंकित नहीं थी। प्रमथेश ने फिर से प्रयोग करना शुरू किया, इस बार 20,000 वॉट के साथ, किंतु परिणाम ज्यादा नहीं बदले। अब अधिक वॉट क्षमता जोड़ी गई, जो आश्चर्यजनक रूप से कुल 40,000 वॉट थी। इस बार प्रयोग सफल रहा। इस प्रयोग के कारण 50,000 फीट की 'पिक्चर नेगेटिव' की बर्बादी हुई। मेकअप के साथ प्रयोग ने भी 1,000 फीट अतिरिक्त नेगेटिव खर्च किया (चटर्जी, 2008, पृष्ठ 46)। अंततः छह महीने की शूटिंग के बाद फिल्म पूर्ण हुई। इसे 28 नवंबर, 1931 को चित्रा टॉकीज में जारी किया गया था। पी.सी. बरुआ द्वारा इस जोखिम को उठाने से इस फिल्म के साथ बंगाल में फिल्म निर्माण के तकनीकी परिदृश्य में आमूल-चूल परिवर्तन आया। निर्देशकों को अब शूटिंग के लिए प्राकृतिक प्रकाश की अवधि पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था। स्टूडियो के अंदरूनी हिस्सों में शूटिंग करना एक आम बात हो गई।

ट्रिक फोटोग्राफी के जनक अब्दुस समद बाबूभाई मिस्त्री : अब्दुस समद, जो बाबूभाई मिस्त्री के नाम से प्रसिद्ध हुए, को भारत में ट्रिक फोटोग्राफी का जनक और विशेष प्रभाव निर्देशक के रूप में जाना जाता है। बाबूभाई मिस्त्री गुजरात के सूरत शहर से मुंबई पहुँचे और पुराने अनुभव के कारण फिल्मों के सेट बनाने और पोस्टर तैयार करने का काम प्राप्त कर लिया। सिनेमा की तकनीक विशेष रूप से कैमरा उन्हें अधिक आकर्षित करता था। देखते-ही-देखते वे कैमरे के अधिकांश तकनीकी पहलुओं के जानकार बन जाते हैं। 1933 की 'हातिम ताई' के लिए एक सहायक कला निर्देशक के रूप में अपना करियर शुरू करने के बाद, उन्होंने 1937 में रिलीज हुई फिल्म 'ख्वाब की दुनिया' के लिए स्क्रीन पर विशेष प्रभाव पैदा करने के लिए नवीन तकनीक का उपयोग किया। उन्होंने मंद रोशनी और काले पर्दे की पृष्ठभूमि पर काले धागे की सहायता से निर्जीव वस्तुओं में भी गतिशीलता का भ्रम उत्पन्न कर दिया। इस तरह बाबूभाई मिस्त्री की तकनीकी कौशलयुक्त रचनात्मकता से वर्ष 1937 में स्पेशल इफेक्ट वाली पहली भारतीय फिल्म देखी गई।

(3.) भारतीय सवाक् फिल्मों की शुरुआत

भारतीय सिनेमा की दुनिया को ध्वनि से सुसज्जित और शृंगारित करने वाली पहली स्वदेशी संवाद युक्त बोलती फिल्म 'आलम-आरा' 14 मार्च, 1931 को बॉम्बे की इंपीरियल फिल्म कंपनी ने रिलीज की तो फिल्मी दुनिया में एक बड़ी हलचल होना स्वाभाविक ही था। ध्वनि के आगमन के कारण भारतीय प्रोडक्शन में अचानक तेजी आई और कई नए निर्माताओं

के उदय के लिए एक स्वर्णिम अवसर उत्पन्न हुआ। फिल्म 'आलम-आरा' के निर्माण कालखंड में ही एक दूसरी बोलती फिल्म 'शीरीं-फरहाद' का भी फिल्मांकन चल रहा था, जिसके लिए तकनीशियन यूरोप से बुलवाए गए थे। यद्यपि 'आलम-आरा' के निर्माण में भी उपकरण तो विदेशी थे, किंतु तकनीशियन भारतीय थे। मूक फिल्मों की तुलना में सवाक् फिल्मों का उत्पादन पूर्णतया नवीन कार्य था, जिसने फिल्म उत्पादन और प्रदर्शन की मौजूदा प्रणालियों में आधारभूत तकनीकी बदलाव की माँग की थी। इन वर्षों में शिक्षित युवा पेशेवरों का एक नया वर्ग उभरा जिसने विशेषज्ञताओं की माँग स्थापित करते हुए संवाद लेखन, संगीत संयोजन, ध्वनि मुद्रण और कृत्रिम प्रकाश में फिल्मांकन आदि जटिलतापूर्ण विशिष्ट कार्यों के सफल क्रियान्वयन से स्वदेशी भारतीय फिल्म उद्योग को समग्र रूप से उन्नत किया।

भारतीय टॉकीज का स्वप्न साकार करने वाली जोड़ी आर्देशिर ईरानी और आदि एम. ईरानी: चित्र के साथ ध्वनि के जुड़ने की शुरुआत ने फिल्मों के उत्पादन और प्रदर्शन के तौर-तरीकों को बदल दिया। इसने नए उपकरणों के तकनीकी विकास की गति को तीव्र कर दिया। ध्वनि इंजीनियरिंग के साथ-साथ कैमरे के डिजाइन में भी परिवर्तन हुए। कैमरे की मैगजीन में सैकड़ों फीट फिल्म रोल और इंटरमिटेंट सिस्टम को गतिमान रखने के लिए मोटर के शोर को ब्लिंप या कवर का उपयोग करके नियंत्रित करने की युक्ति प्रयोग की गई। शुरुआती कई वर्षों तक भारत में साइलेंट कैमरे दुर्लभ थे। फिल्म 'आलम आरा' को अर्देशिर ईरानी के करियर का एक महत्वपूर्ण मोड़ भी माना जाता है और उन्हें 'भारतीय टॉकीज के जनक' के रूप में प्रतिष्ठा मिली। आदि एम. ईरानी द्वारा बेल एंड हॉवेल से खरीदे गए उपकरणों का उपयोग करके मुंबई के ज्योति स्टूडियो में लगभग चार महीने तक फिल्मांकन कार्य किया गया। शूटिंग शुरू होने से पहले, उन्होंने अमेरिकी विशेषज्ञ विल्फोर्ड डेमिंग से ध्वनि रिकॉर्डिंग की मूल बातें सीखीं। इंपीरियल स्टूडियो का संचालन कर रहे ईरानी ने टैनोर सिंगल सिस्टम कैमरा विदेश से आयात किया, जो एक एकल-प्रणाली रिकॉर्डिंग है, जिसके द्वारा शूटिंग के एक ही समय में ध्वनि रिकॉर्ड की जाती है (गर्ग, 1980)। इसी कालखंड में दक्षिण भारत में, पहली तमिल बोलती फिल्म 'कालिदास' को 31 अक्टूबर, 1931 को रिलीज किया गया था। ज्ञानेश उपाध्याय अपने निबंध में लिखते हैं, "कई फिल्में तो 1934 तक मूक ही बनती रहीं। जैसे एक शिशु धीरे-धीरे बोलना शुरू करता है और धीरे-धीरे उसकी आवाज साफ होती जाती है, ठीक उसी प्रकार से 1930 का दशक भारतीय फिल्मों की आवाज साफ होने का दौर है" (उपाध्याय, 2013, पृष्ठ 12)।

विष्णु गोविंद दामले: प्रतिष्ठित प्रभात फिल्म कंपनी के संस्थापक सदस्यों में से एक, प्रारंभिक भारतीय सिनेमा के अग्रणी सेट डिजाइनर, उत्कृष्ट छायाकार, निर्देशन जैसी अनेक कलाओं में पारंगत विष्णुपंत गोविंद दामले एक दूरदर्शी साउंड इंजीनियर भी थे, इसका परिचय तब मिला जब 6 फरवरी, 1932 को मराठी फिल्म 'अयोध्येचा राजा' रिलीज हुई तो सिनेमा का तंत्र ज्ञानी समुदाय आश्चर्यचकित रह गया। यह फिल्म न केवल ध्वनि और गीत की दृष्टि से उत्कृष्ट थी, बल्कि संवाद रिकॉर्डिंग गुणवत्ता में भी सर्वोत्तम थी (वळसंगकर, 2011)। फिल्म को हिंदी में 'अयोध्या का राजा' (1932) के दोहरे संस्करण के रूप में भी बनाया गया था, जिससे यह भारतीय सिनेमा का पहला डबल टॉकी वर्जन बन गया।

मुकुल बोस : हिंदी और बांग्ला फिल्मों में भारतीय परिवेश के सजीव चित्रण के लिए प्रसिद्ध फिल्मकारों में से एक नितिन बोस बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। नितिन बोस की बांग्ला फिल्म 'भाग्य चक्र' (1935) का हिंदी संस्करण 'धूप छाँव' नाम से बनाया गया। नितिन बोस के छोटे भाई मुकुल बोस ने, जो न्यू थियेटर्स में साउंड रिकॉर्डिस्ट थे, सलाह दी कि क्यों न पहले ही गीत रिकॉर्ड कर लिया जाए और फिल्मांकन के समय इस गीत के अनुरूप अभिनेता अपने होंठ चलाते जाएँ। इस पद्धति से कैमरे तथा अभिनेताओं की गतिशीलता में बाधा नहीं पड़ेगी (चड्ढा, 2021, पृष्ठ 101)। इस तरह निर्देशक नितिन बोस ने साउंड रिकॉर्डिस्ट मुकुल बोस की सहायता से सुप्रभा सरकार, पारुल घोष एवं हरिमती के स्वरों में एक गीत रिकॉर्ड करके पार्श्वगायन का पहला नवाचार किया था।

(4.) रंगीन फिल्मों का पदार्पण एवं भारतीय प्रयास

सेल्युलाइड फिल्म की छवियों को रंगमय करने के प्रयास निरंतर जारी थे। संसार में पहली रंगीन फीचर फिल्म 1910 में बनाई गई थी। इन प्रारंभिक वर्षों में ही पुनः भारत को 1912 में ही रंगीन फिल्मांकन का साक्षी बनने का अवसर प्राप्त हुआ। चार्ल्स अर्बन कलर तकनीक के प्रारंभिक उपयोगकर्ताओं में से एक थे। उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि 1911 के दिल्ली दरबार का 'किनेमाकलर' तकनीक से फिल्मांकन था, जिसे देश का पहला रंगीन वृत्तचित्र 'विद् अवर किंग थ्रू इंडिया' एवं 'द दरबार एट दिल्ली, 1912' के नाम से भी जाना जाता है। भारत के सम्राट के रूप में नव-ताज पहनाए गए राजा जॉर्ज पंचम को मान्यता देने के लिए दिल्ली, भारत, में यह शानदार समारोह आयोजित किया गया था। कुल पाँच फिल्म कंपनियों ने समारोहों को फिल्माया। इनमें से रंगीन शूटिंग करने वाली अर्बन की ही टीम थी। हर्बर्ट लिखते हैं—चार्ल्स अर्बन अपने साथ चार या पाँच कैमरामैन को किनेमाकलर प्रक्रिया से भारत की संपूर्ण शाही यात्रा को फिल्माने के लिए साथ लाए थे (हर्बर्ट,1996,135)। 1941 से पहले भारत में कोई भी रंगीन स्टॉक उपलब्ध नहीं था, केवल मोनोक्रोम फिल्म स्टॉक और फुटेज के साथ रंग प्रक्रियाएँ जैसे किनेमाकलर (1908-1914), टेक्नीकलर प्रक्रिया (1917-1954), और सिनेकलर ही विकल्प थे। भारतीयों के प्रयासों में, शांताराम वणकुद्रे द्वारा निर्मित और सहयोगी वी. अवधूत के साथ केशवराव ढैबर की सिनेमॅटोग्राफी से अग्फा (Agfa B&W 35-mm) नेगेटिव पर शूट मराठी में पुनः निर्मित 'सैरंधरी' (1933), भारत की पहली रंगीन फिल्म होती, किंतु जर्मनी में इसकी प्रोसेसिंग सफल नहीं रही। रिलीज प्रिंट बाई-पैक कलर प्रिंटिंग द्वारा बनाए गए थे (जसराज, 2015, पृ. 85)।

एक बार पुनः इंपीरियल पिक्चर्स के बैनर तले अर्देशिर ईरानी ने बाजी जीत ली गई और 'किसान कन्या' (1937) को भारत की पहली स्वदेशी रूप से निर्मित रंगीन फिल्म का श्रेय प्राप्त हुआ। मोती गिडवानी द्वारा निर्देशित और रुस्तम एम. ईरानी की सिनेमॅटोग्राफी से इसे 'सिनेकलर प्रक्रिया' से बनाया गया था। 'किसान कन्या' को बॉक्स ऑफिस पर मिली औसत सफलता के बावजूद इसने टेक्नोलॉजी में इतिहास रचकर भारत को गौरवान्वित किया। साथ ही इस फिल्म के जरिये सिने इंडस्ट्री में नवाचार के रास्ते खुले। फ्रेम को रँगने और दिखाने की प्रक्रिया सरल नहीं थी। यह

भी क्रमिक विकास के द्वारा परिपक्व हुई। फिल्म उद्योग में रंग प्रौद्योगिकी का व्यावहारिक और वास्तविक विकास 1950 के दशक से प्रारंभ हुआ, जब भारत में टेक्नीकलर की शुरुआत हुई। फिल्मों के पोस्टर पर प्रमुखता से 'कलर बाय टेक्नीकलर' छापा जाने लगा। स्वतंत्रता पूर्व की भारतीय रंगीन फिल्में गुणवत्ता के मामले में न्याय नहीं कर सकी थीं, किंतु उन्होंने भविष्य की रूपरेखा सामने रख दी थी। यह निर्विवाद सत्य है कि इस कालखंड के सिनेमॅटोग्राफर एवं तकनीशियनों के महत्वपूर्ण योगदान के कारण ही रंगीन सिनेमा के लिए भूमि तैयार हुई। इसी दौर में विवेकशील व्यवसायी अंबालाल झावेरभाई पटेल उभर कर सामने आए। 1946 में पटेल ने ब्लैक एंड व्हाइट फिल्म फुटेज के लिए एक प्रोसेसिंग लैब मुंबई में फिल्म सेंटर की स्थापना की। एक अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तित्व दिलीप गुप्ता फिल्म, जो फिल्म 'मधुमति' की सिनेमैटोग्राफी के लिए चर्चित हैं, ने 1948 में पहली 'कोडाक्रोम' रंगीन फिल्म 'अजीत' की फोटोग्राफी की। भारत की स्वतंत्रता से कई वर्षों पूर्व से ही तकनीशियनों के अथक परिश्रम एवं सिनेमॅटोग्राफरों के बहुमूल्य अनुभव के समर्पण के कारण ही स्वतंत्र भारत में रंगीन सिनेमा की आधारभूत संरचना खड़ी हो सकी (सिंह, श्री., एवं भवालकर, 2022)।

(5.) स्वदेशी नवाचारों का कारखाना : प्रभात स्टूडियो

स्वतंत्रता पूर्व भारत में फिल्म निर्माण कार्य बॉम्बे, कोल्हापुर, पुणे, कलकत्ता, लाहौर और मद्रास जैसे शहरों में स्थित स्टूडियो द्वारा संचालित किए जाते थे। स्टूडियो ऐसे स्थान थे, जिन्होंने भारतीय फिल्म उद्योग को आकार दिया। इन स्टूडियो ने न केवल कई रचनात्मक व्यक्तियों को किसी एक सामूहिक रचनाकर्म के लिए एक छत के नीचे लाकर महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक फिल्मों के निर्माण का मंच दिया, बल्कि फिल्म उद्योग के लिए नवीनतम तकनीक, साधन और संसाधनों की भी पूर्ति की। इस तथ्य पर प्रकाश डालने की दृष्टि से शोध पत्र की सीमित शब्द सीमा को ध्यान में रखते हुए केवल प्रभात फिल्म कंपनी में तकनीकी नवाचारों को अत्यंत संक्षेप में स्थान दिया है। बाबूराव पेंटर के शिष्यों शांताराम राजाराम वणकुद्रे, केशवराव ढैबर, विष्णु गोविंद दामले, शेख फत्तेलाल और सीताराम बाबू कुलकर्णी ने प्रभात स्टूडियो की स्थापना 1929 में कोल्हापुर में की और 1933 में वी. शांताराम ने इसे पुणे स्थानांतरित कर दिया था। शांताराम के ये चारों साथी तकनीकी क्षेत्र के उत्कृष्ट तकनीक विशेषज्ञ थे। उन्होंने हिंदी फिल्मों में पहली बार मूविंग शॉट्स का इस्तेमाल किया था। उनकी पहली मूक फिल्म 'गोपाल कृष्ण' (1929) में बैलगाड़ियों की दौड़ को पहली बार दिखाया गया था। वर्ष 1933 में उन्होंने अपने गुरु बाबूराव पेंटर द्वारा बनाई गई ब्लैक एंड व्हाइट फिल्म 'सैरंध्री' का रीमेक पहली रंगीन हिंदी फिल्म के रूप में बनाने का प्रयास किया था, जो तकनीकी कारणों से सफल नहीं हो सका। 'सैरंध्री' के काम के दौरान शांताराम जब जर्मनी के उफा स्टुडियो में थे, उन्हीं दिनों उन्होंने जर्मन एक्सप्रेशनिस्ट फिल्मकारों की कलाकृतियों का अध्ययन किया, जिससे प्रभावित होकर 'अमृत मंथन' (1933) में उन्होंने छाया-प्रकाश के नए प्रयोग किए। 'अमृत मंथन' में पहली बार आँख का बिग क्लोजअप फिल्माने के लिए टेलीफोटो लेंस का इस्तेमाल किया। 'चंद्रसेना' (1935) फिल्म में ही उन्होंने पहली बार ट्राली का इस्तेमाल किया था। साथ ही वर्ष 1935 में प्रदर्शित फिल्म 'जंबू काका' (1935) में एनिमेशन का इस्तेमाल भी उन्होंने ही किया था।

फिल्म इतिहासकार आशीष राजाध्यक्ष और विलेमेन निर्देशक वी. शांताराम को '1930 के दशक के सबसे प्रसिद्ध भारतीय निर्देशकों में से एक' के रूप में वर्णित करते हैं। देश के दूसरे सर्वोच्च सम्मान 'पद्मविभूषण' से सम्मानित शांताराम राजाराम वणकुद्रे को अंतरराष्ट्रीय स्तर के महान निर्देशक के रूप में जो ख्याति मिली, वह इसीलिए मिली क्योंकि वे सिनेमा के महान शिल्पकार और एक प्रौद्योगिकीविद् भी थे। प्रभात स्टूडियो के दामले एवं फत्तेलाल भी भारत के फिल्म इतिहास में एक उल्लेखनीय बौद्धिक एवं तकनीकी योगदान देने वाले व्यक्ति थे। दोनों की जोड़ी ऐतिहासिक फिल्म 'संत तुकाराम' (1936) के लिए जानी जाती है। 'संत तुकाराम' न केवल एक बड़ी हिट फिल्म थी, बल्कि 1937 में 5वें वेनिस अंतरराष्ट्रीय फिल्म समारोह में एक पुरस्कार भी जीता था और अभी भी फिल्म आस्वादन पाठ्यक्रमों का एक हिस्सा है। अभिनय में यथार्थवाद के स्पर्श के साथ उनकी फिल्में सामाजिक रूप से प्रासंगिक थीं। ये ऐसे पहलू थे, जो उस समय दुर्लभ थे। 'द इंडियन एक्सप्रेस' में अपने लेख में घोष लिखते हैं—अमेरिकी फिल्म निर्देशक फ्रैंक कैपरा ने दामले-फत्तेलाल द्वारा निर्देशित 'संत ज्ञानेश्वर' (1940) को अब तक देखी गई फिल्मों में तकनीकी रूप से परिपूर्ण भारतीय फिल्म के रूप में वर्णित किया (घोष, 2014)।

निष्कर्ष

भारतीयों के पास प्रकाशिकी, ध्वनि, प्रतिबिंब निर्माण एवं अन्य महत्वपूर्ण भौतिक सिद्धांतों की गहरी समझ कई शताब्दियों पूर्व से थी। विरुपाक्ष मंदिर की पिनहोल फोटोग्राफी प्रणाली इसका प्रत्यक्ष प्राचीन उदाहरण हैं। भारत की समृद्ध विरासत की लूटपाट करने के उद्देश्य से विदेशी आक्रांताओं के निरंतर आक्रमणों के कारण भारतीय वैज्ञानिक अनुसंधानों की परंपरा में बाधा पड़ी, जो ब्रिटिश गुलामी में लगभग समाप्त हो गई थी। स्वदेशी आंदोलन से भारतीयों का सुप्त आत्मविश्वास लौटा, जिसका प्रभाव सभी क्षेत्रों के साथ नवीन उभर रहे सिनेमा उद्योग पर भी पड़ा। स्वतंत्रता प्राप्ति के वर्ष 1947 तक की फिल्मों के निर्माण से जुड़े व्यक्तित्वों के अध्ययन से पता चलता है कि भारतीय फिल्मकारों के अग्रज दादासाहब फाळके स्वदेशी आंदोलन से प्रेरित थे। अतः उन्होंने ब्रिटिश उद्योगपतियों के साथ हाथ मिलाने की बजाय आत्मनिर्भरता का रास्ता चुना। इसका प्रत्यक्ष लाभ यह हुआ कि वे ब्रिटिश शासन की सेंसरशिप को चुनौती देने के साथ हिंदू पौराणिक कथाओं के फिल्मांकन द्वारा दर्शकों को जाग्रत और प्रेरित करते हुए उनमें राष्ट्रीय चेतना के साथ स्वतंत्रता की भावना पर आधारित फिल्में बनाने में सफल हो सके। दादासाहब फाळके के अधिकांश समकालीन एवं बाद के फिल्मकारों ने इस धारा का अनुसरण किया। इसका एक दूसरा अप्रत्यक्ष लाभ यह हुआ कि हिंदू पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं के कुछ विशेष प्रसंगों अथवा कुछ विशेष चरित्रों की माँग के अनुसार विविध तकनीकी सिनेमैटिक उपाय खोजने के लिए भारतीय फिल्मकारों के समक्ष सदैव चुनौती रही। विशेष वरदानों से युक्त देवता अथवा मायावी राक्षसों की संकल्पना को पर्दे पर जीवंत करने के लिए विशेष प्रभाव उत्पन्न करने के साधन, दक्ष कैमरा प्रचालन, प्रकाश व्यवस्था एवं संपादन में निरंतर नवाचार होते रहे। अतः सिनेमॅटोग्राफी तकनीक के स्वदेशीकरण पर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। स्वतंत्रता पूर्व भारत में फिल्म निर्माण की

तकनीकी की आधारभूत संरचना प्रारंभ में व्यक्तिगत प्रयासों से विकसित हुई, जिसने अगले कुछ दशकों के बाद एक व्यवस्थित स्टूडियो सिस्टम का रूप लेना प्रारंभ कर दिया। इस दौरान भी स्वदेशीकरण की भावना से ऐसे बहुत से स्वदेशी तकनीकी नवाचार हुए, जिन्होंने भारतीय सिनेमा के स्वर्ण युग की स्थापना की बुनियाद रखी। बाबूराव पेंटर द्वारा रोपित स्वदेशी कैमरा निर्माण का बीज अंकुरित होकर एक वटवृक्ष के रूप में हमें तब दिखता है, जब एक भारतीय डॉ. वेदव्रत पेन CMOS इमेज सेंसर के रूप में डिजिटल इमेजिंग तकनीक आविष्कार करते हुए स्वयं भी उस चिप से निर्मित रेड वन कैमरा की मदद से 2012 में फिल्म निर्माण में उतर कर फिल्म 'चटगाँव' की शूटिंग करते हैं। भारतीय सिनेमा जगत में वर्तमान काल में हो रहे तकनीकी नवाचारों की प्रेरणा का मूल स्रोत निश्चित रूप से स्वतंत्रता पूर्व भारत में रखी गई स्वदेशी की ठोस आधारशिला ही है, जो भविष्य में भी भारतीय सिनेमॅटोग्राफरों को जोखिम उठाने की इच्छाशक्ति, साहस और अथक श्रम के लिए प्रेरित करती रहेगी, जिससे भारतीय सिनेमा निरंतर समृद्ध होता रहेगा।

संदर्भ

ऑल्टमैन, सी.एफ. (1977). टूवर्ड्स अ हिस्टोरियोग्राफी ऑफ अमेरिकन फिल्म. सिनेमा जर्नल, 16, 1.

उपाध्याय, जे. (2013, अक्टूबर-दिसंबर). बदलता देश, दशक और फिल्मी नायक. (अ. मिश्र & महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, सं.). बहुवचन, 39, 10-24.

कर्लिंगर, एफ.एन. (1972). फाउंडेशन ऑफ बीहैव्यरल रिसर्च : एजुकेशन एंड सायक्लोजिकल इंक्वायरी. लंदन : होल्ट, राइनहार्ट एण्ड विंस्टन.

कजिंस, एम. (2015). द स्टोरी ऑफ फिल्म. लंदन : पवेलियन.

गर्ग, बी.डी. (1980). मेकिंग ऑफ आलम आरा : एन इंटरव्यू विथ अर्देशिर ईरानी. The Garga Archives. https://garga-archives.com/writings/the-making-of-alamara-interview-with-ardeshir-irani/ से पुनःप्राप्त.

घोष, एस. (2014, फरवरी 6). द अनसंग हीरो. द इंडियन एक्सप्रेस. https://indianexpress.com/article/cities/mumbai/the-unsung-hero/ से पुनःप्राप्त.

चटर्जी, ए. एस. (2008). पीसी बरुआ : लीजेंड्स ऑफ इंडियन सिनेमा. एससीबी डिस्ट्रीब्यूटर.

चड्डा, एम. (2021). हिंदी सिनेमा का इतिहास. भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी.

जगमोहन. (1995, अगस्त). भारतीय सिनेमा के अग्रदूत (द. भारद्वाज, सं.) योजना, सिनेमा और समाज, नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय. 8, 15-20.

जसराज, एम.पी. (2015). वी. शांताराम - द मैन हू चेंज्ड इंडियन सिनेमा. पेंगुइन इंडिया.

धर्मपाल. (2002), स्वदेशी और भारतीयता. वर्धा : भारत पीठम.

पेटकर, एस. (2014). शांबरिक खरोलिका. मुंबई : ग्रंथाली प्रकाशन माटुंगा (पश्चिम).

मांढरे, एस. (1993). कोल्हापुरी साज. पुणे : पुरंदरे प्रकाशन.

मोकाशी, पी. (2009). हरिश्चंद्राची फैक्ट्री [मराठी]. यूटीवी मोशन पिक्चर्स.

राजाध्यक्ष, ए. (1993). द फाल्के एरा: कॉन्फ्लिक्ट ऑफ ट्रेडिशनल फॉर्म एंड मॉडर्न टेक्नोलॉजी. टी. निरंजना, (सं.) में, इंटरोगेटिंग मॉडर्निटी : कल्चर एंड कॉलोनियलिज्म इन इंडिया (पृष्ठ. 47-82). कलकत्ता : सीगल.

रंगूनवाला, एफ. (1975). 75 ईयर्स ऑफ इंडियन सिनेमा. इंडियन बुक कंपनी.

रॉय, ए. (2021). हीरालाल [बंगाली]. ईजल मूवीज.

वळसंगकर, वी. (2011). विष्णुपंत दामले - बोलपटांचा मूकनायक [मराठी]. ए. वी दामले.

शुल्ज, बी. (1995). डी.जी. फाल्केज राजा हरिश्चंद्र इन ब्रिटिश इंडिया ऑफ 1913. पायोनियरिंग अ नेशनल सिनेमा अंडर कॉलोनियल रूल. इन ऑस्कर मेस्टर, एरफिंडर एंड गेस्चफ्त्समान (पृष्ठ 173–189). फ्रैंकफर्ट एम मेन. http://dx.doi.org/10.25969/mediarep/16074 से पुनःप्राप्त.

सिंह, एस., & भवालकर, ए. (2022, मार्च). स्वतंत्रता पूर्व भारतीय सिनेमा की आधारशिला स्थापना में सिनेमॅटोग्राफी का योगदान (1896-1947). मीडिया मीमांसा, 16 (जनवरी - मार्च 2022), 5-13.

हर्बर्ट, एस., मैककर्नन, एल., एवं ब्रिटिश फिल्म इंस्टिट्यूट.(1996). हूज़ हू ऑफ विक्टोरियन सिनेमा: अ वर्ल्डवाइड सर्वे. लंदन : बीएफआई.

वेबसाइट्स

https://tamu.libguides.com/c.php?g=639764
https://www.victorian-cinema.net/sestier
https://www.victorian-cinema.net/bhatvadekar
http://www.udayindiahindi.in
http://charlesurban.com/documents_gallery.html
https://dastaktimes.org/charlie-chaplin-was-also-a-fan-of-v-shantaram/
https://artsandculture.google.com/exhibit/-v-shantaram-motion-picture-scientific-research-and-cultural-foundation/IAICzUD0r80sKQ?hl=hi
https://www.youtube.com/watch?v=_4iENx7xjB

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 65-69, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

स्वतंत्रता संग्राम में लोकगीतों की भूमिका : बिहार के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ. अर्चना भारती[1]

सारांश

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में लोकगीतों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के भोजपुरी, मैथिली, अवधी लोकगीतों में आज भी स्वतंत्रता संग्राम की झलक साफ दिखाई देती है। इन क्षेत्रों में स्वतंत्रता संग्राम का जनमानस पर प्रभाव देश के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक था। इसलिए हिंदी और उसकी विभिन्न बोलियों में अनेक ऐसे लोकगीतों की रचना हुई, जिनसे जन सामान्य स्वतंत्रता के लिए उठ खड़ा हुआ। पहले से जल रही स्वतंत्रता संग्राम की ज्वाला में लोकगीतों ने घी का काम किया। लोकगीत हमारे राष्ट्रीय मूल्यों और क्रांतिकारी चेतना के संवाहक रहे हैं। स्वाधीनता संग्राम की लड़ाई केवल अँग्रेजों के खिलाफ नहीं थी, बल्कि आम जन के स्वाधीन होने की माँग थी। यह आंदोलन किसानों और मजदूरों के स्वाधीन होने की आस थी, जो लोकगीतों में मुखर हो उठी थी। भोजपुरी लोकगीत हों या अवधी लोकगीत, इनमें लंबे समय तक ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनता में क्रांतिकारी चेतना और विद्रोह का भाव सुनाई देता है। लोकगीत लोगों के जीवन का आईना है, जिसमें लोक की भाषा, इतिहास, धर्म, परंपरा, अर्थव्यवस्था आदि से लेकर रहन-सहन, खान-पान, पर्व-त्योहार, रास रंग आदि का चित्रण दिखाई देता है। सन् 1857 की क्रांति में गीतकारों की प्रमुख भूमिका रही। भारत के लोकगीतों में स्वाभिमान और बलिदान की सुगंध है, एक उत्साह है और मर-मिटने की उमंग है। आजादी के लिए संघर्षरत समाज ने लोकगीतों को रचकर भारतीय आत्मसम्मान को झकझोरने का काम किया। प्रस्तुत अध्ययन में स्वतंत्रता संग्राम में जनचेतना को जाग्रत करने में बिहार के प्रमुख लोकगीतों की भूमिका और उनके स्वरूप को जानने का प्रयास किया गया है।

संकेत शब्द : स्वतंत्रता संग्राम, लोकगीत, जन आंदोलन, जनचेतना

प्रस्तावना

स्वतंत्रता संग्राम ब्रिटिश शासन से देश को मुक्त कराने के लिए देशवासियों द्वारा चलाया गया आंदोलन था। उस संग्राम की बड़ी अभिव्यक्ति 10 मई, 1857 को हुई, जिसे अँग्रेजों ने 'सैनिक विद्रोह' की संज्ञा देकर नजरंदाज करने का प्रयास किया। परंतु, वीर विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी पुस्तक '1857 का स्वातंत्र्य समर' में प्रमाणित किया कि 1857 का संग्राम सिपाही बगावत नहीं, बल्कि स्वाधीनता के लिए एक राष्ट्रीय संघर्ष था। वह संग्राम अनेकों घटनाओं और व्यक्तियों के बलिदान से भरा है (चतुर्वेदी, 2016, पृष्ठ 7)। इस विद्रोह ने जनसामान्य के मन में आजादी के लिए एक ऐसी चिंगारी सुलगाने का काम किया, जो बाद में ज्वाला बनकर फूट पड़ी। इस क्रांति की ज्वाला में कानपुर, लखनऊ, बरेली, झाँसी, दिल्ली, इलाहाबाद, बनारस, अवध, बिहार आदि क्षेत्र भी शामिल थे। ब्रिटिश शासन की दमनकारी नीतियों ने भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग पर ऐसा प्रतिकूल प्रभाव डाला कि लोगों के मन में असंतोष की भावना उत्पन्न होने लगी और इसी असंतोष ने अंत में विद्रोह का रूप धारण कर लिया। स्वाधीनता आंदोलन की यह लड़ाई केवल अँग्रेजों के खिलाफ नहीं थी, बल्कि आम जन के स्वाधीन होने की माँग थी। यह लड़ाई किसानों, मजदूरों की स्वाधीनता की माँग थी, जो लोकगीतों में मुखर हो उठी थी (मिश्र, 2020)। बिहार भी इस क्रांति से अछूता नहीं रहा। स्वाधीनता आंदोलन में बिहार का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। इस संग्राम में बिहार के लोकगीतों ने हथियार-औजार की भूमिका निभाई। लोकगीतों के द्वारा अनेक घटनाओं, प्रसंगों का जीवंत रूप प्रदर्शित हुआ, जिसने राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

शोध उद्देश्य

- बिहार के प्रमुख लोकगीतों का परिचय और उसके स्वरूप का अध्ययन करना।
- स्वाधीनता संग्राम के दौरान जनचेतना जाग्रत करने में बिहार के प्रमुख लोकगीतों की भूमिका का अध्ययन करना।

शोध की आवश्यकता और महत्त्व

आज जब देश आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है तो यह समझना आवश्यक है कि स्वतंत्रता के लिए जनमानस को खड़ा करने में उस समय के लोकगीतों की क्या भूमिका थी। उस समय समाचार पत्र तो आज की भाँति प्रभावी भूमिका में नहीं थे, इसलिए उस समय के लोक संचार माध्यम ही जन सामान्य को आजादी के उस आंदोलन में शामिल होने के लिए जाग्रत कर रहे थे। ऐसे में, आज इन लोक संचार माध्यमों को समझना जरूरी है और साथ ही देश की वर्तमान पीढ़ी को उन लोक संचार माध्यमों से परिचित कराना भी जरूरी है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध ऐतिहासिक प्रकृति का है। इसलिए इस अध्ययन में तथ्यों के संग्रहण हेतु मुख्य रूप से द्वितीयक स्रोतों का इस्तेमाल किया गया है, जिनमें पुस्तकें, जर्नल में प्रकाशित शोध पत्र, समाचार पत्रों में प्रकाशित आलेख, पत्रिकाएँ, लेखकों के ब्लॉग और इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्री मुख्य रूप से शामिल हैं।

[1]स्वतंत्र शोधकर्ता, मुजफ्फरपुर, बिहार. ईमेल : bhartimediaster@gmail.com

लोकगीत से आशय

लोकगीत 'लोक' तथा 'गीत' दो शब्दों के संयोग से बना है, जिसका अर्थ है लोक के गीत। अँग्रेजी के 'फोक' शब्द को हिंदी में लोक, राष्ट्र, जाति सर्वसाधारण या वर्ग विशेष कहते हैं। 'फोक' के लिए हिंदी में जन या ग्राम शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। 'फोक' शब्द के संबंध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि 'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई समस्त जनता से है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पुस्तक और पोथियाँ नहीं हैं (चौहान, 1972, पृष्ठ 41)। वहीं 'गीत' शब्द का अर्थ प्रायः उस कृति अथवा रचना से है, जो गेय हो। लोकगीत हमारे मन के भावों की वाणी है। मानव की उपलब्धियों में गीत का महत्वपूर्ण स्थान होता है। मानव जब अपने सुख-दुःख की अभिव्यक्ति के लिए विवश होकर शब्द का आश्रय लेता है तो यही सुख-दुःख गीत के रूप में फूट पड़ता है। लोकगीत का तात्पर्य लोक में प्रचलित गीत है, जिसके दो अर्थ हैं—एक अवसर विशेष के प्रचलित गीत और दूसरा परंपरागत गीत। यह समाज में कई वर्षों से परंपरागत रूप में प्रचलित है। लोकगीत वे गीत होते हैं, जो गाँवों और देहातों में जनसाधारण द्वारा सामूहिक रूप से गाए जाने वाले लय-प्रधान गीत होते हैं। लोकगीतों में लौकिक सभ्यता, आचार, व्यवहार, रीति-रिवाज एवं परंपराओं का प्रतिबिंब झलकता है (चौहान, 1972, पृष्ठ 76)। लोकगीत लोगों के जीवन की वास्तविक भावनाओं को प्रस्तुत करता है। इसमें मनुष्य के सामाजिक जीवन का भावनात्मक चित्रण रहता है। लोकगीत में सामूहिक चेतना की पुकार मिलती है। इसके माध्यम से ही हम जनजीवन के सभी पक्ष का दर्शन करते हैं। लोकगीत में जीवन के सुख-दुख, आशा-निराशा सभी की अभिव्यक्ति होती है। सामान्यतः लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित और लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा गया। महात्मा गांधी ने लोकगीत के संबंध में कहा था, 'लोकगीतों में धरती गाती है, पर्वत गाते हैं, नदियाँ गाती हैं, फसलें गाती हैं। उत्सव, मेले और अन्य अवसरों पर मधुर कंठों में लोक समूह लोकगीत गाते हैं (चौधरी, 2014, पृष्ठ 3)। लोकगीत की परंपरा भारत में अत्यंत प्राचीन है। सृष्टि के आदिकाल में सामाजिक चेतना के साथ लोकगीत का उदय हुआ, जिसका संबंध जन जीवन से था। धीरे-धीरे मानव में ज्ञान का विकास हुआ और उसने लयबद्ध वाणी में अपने सुख-दुख की कहानी को कहना प्रारंभ किया। यह लयबद्ध वाणी लोककंठ का आश्रय पाकर लोकगीत बनी। मानव में संगठन और सामाजिकता की भावना के उदय के साथ लोकगीतों का भी विकास हुआ। लोकगीतों का बीज भारत के प्राचीनतम ग्रंथ 'ऋग्वेद' में भी उपलब्ध है (जैन, 1964, पृष्ठ 1-4)। लोकगीत सहजता, मधुरता आदि गुणों के लिए भी जाना जाता है। इस प्रकार के गीतों में कोई साज-सँवार नहीं होती। देवेंद्र सत्यार्थी ने लोकगीतों के विषय में कहा था कि लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं (युनिवर्सिटी, पृष्ठ 31)। भारत में क्षेत्रीयता के आधार पर लोकगीतों का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक राज्य में लोकगीतों की अलग-अलग परंपरा रही है। बिहार में भोजपुरी और मैथिली लोकगीतों को जो स्थान प्राप्त है, उतना स्थान अन्य लोकगीतों का नहीं है।

बिहार के प्रमुख लोकगीत और उनका स्वरूप

भारत में विभिन्न प्रांतों की अपनी लोक-भाषा है और हर भाषा अपने आप में बहुत ही पारंपरिक और लोकप्रिय है, जिसमें कई पारंपरिक लोकगीत गाए जाते हैं (सिंह, 2018, पृष्ठ 23)। बिहार भारत का एक प्राचीन राज्य है और यहाँ की संस्कृति बहुत ही निराली है। यहाँ की संस्कृति का आधार है बिहारी लोकगीत। शास्त्रीय संगीत की तरह पौराणिक लोकगीत भी यहाँ बहुत प्रसिद्ध हैं, जो एक साधारण व्यक्ति के जीवन की विभिन्न घटनाओं के साथ जुड़े हुए हैं। यहाँ की माटी की अपनी सुगंध है और यहाँ के लोकगीतों की आवाज की गूँज विदेशों तक है। यहाँ मैथिली, बज्जिका, भोजपुरी, मगही, अंगिका आदि सुंदर भाषाएँ हैं (चौधरी, 2014, पृष्ठ 3-6)। बिहार में जहाँ पूरब में अंगिका लोकगीत प्रसिद्ध है, वहीं पश्चिम में भोजपुरी लोकगीत। पटना, गया का जो क्षेत्र है, वहाँ मगही लोकगीत और मिथिलांचल में मैथिली लोकगीतों की गूँज सुनाई पड़ती है। विभिन्न अवसरों पर अलग-अलग प्रकार के गीत गाए जाते हैं, जैसे कि धार्मिक लोकगीत, प्रेम गीत, विवाह गीत, ऋतु संबंधी गीत, संस्कार गीत, व्रत संबंधी लोकगीत, जाति संबंधी लोकगीत, श्रम गीत आदि। बिहार के लोगों में लोक देवताओं की पूजा-अर्चना में लोकगीतों का अपना महत्व है (कुमारी, 2020, पृष्ठ 56)। लोकगीतों की व्यापक परंपरा यहाँ के स्थानीय लोकगीतों में प्रचलित है। सोहर, होरी या जोगीरा या फगुआ, कजरी, चैती, बिरहा, लगनी, रोपनी, नचारी आदि लोकगीत बहुत प्रसिद्ध हैं। लोकगीत के इन विभिन्न श्रेणियों के अलावा कुछ विशिष्ट लोकगीत भी हैं, जो विशेष अवसरों पर गाए जाते हैं, जैसे कि समाज सुधार के गीत, नारी स्वतंत्रता के गीत, झूमर, विदेशिया आंदोलन से जुड़े गीत और राष्ट्रीय आंदोलन के गीत आदि (सिन्हा, 2020)।

स्वाधीनता संग्राम में बिहार के लोकगीतों का योगदान

भारतीय सभ्यता, संस्कृति और स्वाधीनता संग्राम में बिहार का महत्त्वपूर्ण योगदान है। यहाँ की विभिन्न भाषाओं के लोकगीत, चाहे वे मैथिली लोकगीत हों अथवा भोजपुरी, मगही और बज्जिका, हमारी सभ्यता और संस्कृति की अमूल्य धरोहर हैं। स्वाधीनता संग्राम में यहाँ के लोकगीत ऐसे माध्यम बने, जो जनमानस में एक कंठ से दूसरे कंठ में समाते गए। लोगों के मन में जो भावनाएँ और पीड़ा रहती थी, वह लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त होती थी (झा, 2014)। 1857 से 1947 तक के दौर में गहरे सरोकार और व्यापक विस्तार के साथ बिहार के लोकगीतों ने प्रभावी औजार की भूमिका निभाई। इसी दौर के नायक बाबू कुँवर सिंह लोकगीतों का हिस्सा बन गए। होली-फाग से लेकर चैती तक कुँवर सिंह के रंग में रँग गए थे। बाद में मंगल पांडेय, कुँवर सिंह की लड़ाई और उनके पराक्रम पर अनेक कालजयी लोकगीत रचे गए। वीर कुँवर सिंह ने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में जिस तरह से राष्ट्रभक्ति का परिचय दिया, वह लोगों के जीवन में समा गया। आज भी बिहार में फाग गीत के बिना फगुआ का त्योहार पूरा नहीं होता। इस तरह 1857 से गीतों का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह बाद में व्यापक रूप से विस्तारित हुआ (तिवारी, 2021)। आजादी के आंदोलन में गांधीजी का प्रवेश जिस आंदोलन के जरिये हुआ, वह इतिहास में 'चंपारण सत्याग्रह' के नाम से विख्यात है। चंपारण आंदोलन का जो असर जनमानस पर पड़ा, वह लोकगीतों में ढलकर भोजपुरी, मैथिली, मगही, बज्जिका आदि बोलियों के क्षेत्रों में गूँजने लगा। सिर्फ चंपारण सत्याग्रह ही नहीं, उसके बाद होने वाले असहयोग आंदोलन, दांडी यात्रा, सविनय अवज्ञा आंदोलन, भगत सिंह की कीर्तिगाथा आदि ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ

और बातें हैं, जिन पर भोजपुरी सहित अन्यान्य बोलियों में बहुत से गीत रचे गए। अगर हम भोजपुरी की बात करें तो समझ सकते हैं कि बिहार के चंपारण का जो क्षेत्र है, वह भोजपुरी भाषी क्षेत्र है। यह अंगिका और बज्जिका के क्षेत्रों से मिला हुआ है। इन बोलियों में 1857 के बिहार के महानायकों में मंगल पांडेय और वीर कुँवर सिंह की वीरता के बखान का एक समृद्ध इतिहास है (सिंह, 2021)। बिहार के चंपारण में जब गांधीजी पहुँचे तो वहाँ के लोगों ने अँग्रेजों या उनके दलालों को देखकर जो गीत गाए, वे कुछ यों थे :

गांधी के लड़ाई नाही, जितने फिरंगिया, चाहे करूँ केतनो उपाय
भल भल मजवा उड़वले हमर देसवा में, अब जइहें कोठिया बिकाय...

इस गीत का अर्थ है कि गांधी आ गए हैं तो अँग्रेजों की नील कोठी बिक जाएगी। उस दौर में गांधीजी पर अनेक गीत रचे गए। सोहर, कजरी, फाग से लेकर झूमर और विवाह के गीत तक गांधीजी के रंग में रँग गए थे। गांधीजी ने चरखे को लेकर अनेक प्रयोग किए। उन्होंने जनता का आह्वान किया कि चरखा आजादी दिलाएगा, रोजगार देगा। यह जाति, संप्रदाय से मुक्त मनुष्यता का निर्माण करेगा। बिहार में चरखे की एक लहर चल पड़ी थी। इससे महिलाओं को विशेष रूप से लगाव हो गया। इस प्रसंग पर उस समय अनेक गीत रचे गए और गांधीजी के चरखे को एक हथियार के तौर पर प्रचारित किया गया। उस दौर में रोजगार के लिए बिहार के लोगों का सबसे ज्यादा पलायन बंगाल या पूरब के इलाके में होता था, जिसे लोकगीतों में पूरब देश कहा गया है। महिलाएँ अपने पतियों को रोकने के लिए गीत बनाकर गाती थीं, जैसे :

कातब चरखा, सजन तुहूँ कातअ
अइहै एही से सुरजा नु हो
पिया मत जा पुरुबवा के देसवा नु हो।

इस प्रकार ऐसे गीतों के जरिये वे अपने पतियों से आग्रह करती थीं कि हम चरखा सीख गए हैं, तुम्हें भी सिखा देंगे। यहीं रहो, चरखा कातो, इससे आमदनी भी होगी। सिर्फ भोजपुरी क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि पूरे बिहार में और बिहार की सभी भाषाओं के लोकगीत आजादी के रंग में रँग गए। उस दौर में जब गांधीजी देश की आजादी के लिए धन जुटाने के उद्देश्य से पूरे देश में घूमे, तब बिहार के बज्जिका क्षेत्र में कजरी गीत बहुत ही मशहूर था। गांधीजी ने काशी पहुँचकर उस समय की मशहूर गायिका विद्याधरी बाई से मिलकर उसे राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान देने को कहा। ऐसा ही आग्रह उन्होंने कलकत्ता में मशहूर कलाकार गौहर जान से भी किया। बिहार में जब गांधीजी ने ऐसी अपील की तो गाँव की साधारण महिलाएँ धन जुटाने निकलीं। इस पर एक बहुत ही मशहूर गीत बना। वह गीत है :

सइयाँ बुलकी देबई, नथिया देबई, हार देबई ना
अपने देस के संकट से उबार देबई ना।

बिहार के लोकगीतों में आजादी की लड़ाई अलग-अलग आयाम के साथ आती है। अनेक लोक रचनाकार ऐसे हैं, जिन्होंने आजादी के गीत रचकर उसे लड़ाई का धारदार हथियार बना दिया। इनमें एक बड़ा नाम बाबू रघुवीर नारायण का है, जो मूल रूप से अँग्रेजी के कवि थे। आजादी की लड़ाई के दौरान वे मातृभाषा की ओर लौटे और लोगों में स्वाभिमान जगाने के लिए 'बटोहिया' गीत लिखा, जो उत्तर भारत के गाँव-गाँव तक पहुँचा। बिहार के छपरा जिले के अँग्रेजी के प्राध्यापक प्रो. मनोरंजन प्रसाद सिन्हा द्वारा रचित 'फिरंगिया' गीत इतना अधिक लोकप्रिय हुआ कि इस गीत को गाने वालों को तुरंत कैद कर लिया जाता था। यह गीत प्रवासी भारतीयों में भी बहुत लोकप्रिय हुआ था। इस गीत में उन्होंने अँग्रेजों के शासन-काल में भारत की बिगड़ती आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति का उल्लेख किया। इस गीत पर बाद में अँग्रेजों ने पाबंदी लगा दी थी। यह गीत है :

सुंदर सुघर भूमि भारत के रहे रामा
आज इहे भइल मसान रे फिरंगिया,
अन्न, धन, जन, बल, बुद्धि सब नास भइल,
कौनौ के ना रहल निसान रे फिरंगिया।

इस गीत में देश के लुट जाने की व्यथा से भरा उपनिवेशवाद का दारुण चित्रण किया गया है (सिंह, 2021)।

बिहार के गोपालगंज के रसूल मियाँ के भी लोकगीत काफी लोकप्रिय हुए। उनका एक गीत कलकत्ता का है। उन्होंने वहाँ विशेषकर बिहार के रहनेवाले सिपाही को खराब हालात में देखकर तुरंत गीत रचा था, जो इस प्रकार है :

छोड़ी द गोरकी के करबअ गुलामी बालमा
एकर कहिया ले करबअ खुशामी बालमा
रोपेया हमार बनल ई आ के रानी
करेले हमनी पर ई हुकुमरानी
छोड़ी द एकर तू अब दिहल सलामी बालमा
एकर कहिया ले करबए गुलामी बालमा...

कहा जाता है कि इस गीत के बाद वहाँ अनेक सिपाहियों ने तुरंत नौकरी छोड़ने का फैसला कर लिया था। जब अँग्रेजों को इस बात की भनक लगी तो रसूल मियाँ को गिरफ्तार कर लिया गया। बिहार के लोकगीतों में समृद्धि और विस्तार देखने को मिलता है। इन लोकगीतों का एक अपना समृद्ध इतिहास है, उसकी मजबूत परंपरा रही है (तिवारी, 2021)। बिहार के लोकगीतों में देशप्रेम की भावना बहुत अधिक है। जब हमारा देश गुलाम था तब यहाँ एक लोकगीत होली के समय बहुत ही उत्साह के साथ गाया जाता था। यह गीत है :

चुनड़ी न रँगबे हम केसर रंग में,
जाबैत रहते फिरंगी कै राज।

उस समय लोगों के मन में यह भावना रहती थी कि हमारा देश जल्द ही स्वाधीन हो। उस समय वीर कुँवर सिंह के साथ कंधा से कंधा मिलाकर आजादी की लड़ाई में शामिल होने वाले दलमंजन सिंह भी थे। आजादी के लिए इनके भीतर लोक चेतना जाग चुकी थी। जब कुँवर सिंह ने आजादी की बलिवेदी पर अपने आप को कुर्बान किया तो गाय, भैंस चराने वाले चरवाहे भी मैथिली भाषा में जो गीत गाते थे, उनसे जनमानस की मानसिकता का पता चलता है :

पूछिओ न ग दलभंजन सिंह स
आब लड़तैन कि नय (कुमारी, 2020, पृष्ठ 57)।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय अनेक ऐसे लोकगीतों की रचना बिहार में हुई, जो देशभक्ति की आवाज को बुलंद करते थे और इससे स्वतंत्रता सेनानियों व जनसामान्य को काफी प्रेरणा मिलती थी। श्री रघुवीर नारायण का देशप्रेम से भरा 'बटोहिया गीत' भोजपुरी क्षेत्र के घर-घर में गाया जाता है। इस गीत में मातृभूमि की वंदना की गई है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में किए गए राष्ट्रीय आंदोलन का वर्णन भी भोजपुरी लोकगीतों में प्रचुर मात्रा में हुआ है। गांधीजी के चरखे में इतना जादू था कि भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक नर-नारी स्वदेशी आंदोलन में जुट गए थे। अँग्रेजी शासन के विरुद्ध वीरों ने भारतीय जनता के हित के लिए जिस तरह से अपने प्राणों की बाजी लगाई, उसका ऐतिहासिक वर्णन भोजपुरी लोक-साहित्य में मिलता है। भोजपुरी लोकगीतों में समकालीन राजनीतिक घटनाओं का भी वर्णन मिलता है। लोकगीतकारों ने अपने गीतों के माध्यम से संपूर्ण राष्ट्र में एक राष्ट्रीय लोक चेतना स्थापित करने का प्रयास किया। बिहार के मिथिला क्षेत्र की भाषा मैथिली लोकगीत में भी क्रांतिकारियों का भाव व्यक्त किया गया है। यह गीत है :

गरजब हम मेघ जेंका
बरसब हम पानी जेंका
उड़ाय देब लंदन के हुंकार में
बिजली जेंका कड़कि-कड़कि
आन्हीं जेंका तड़कि-तड़कि
भगा देव गोरा के टंकार में
कुहुकब हम कोइली जेंका
नाचब हम मोर जेंका
मना लेब माता के वीणा के झंकार में।

अर्थात् हम बिजली के समान कड़ककर और जोरदार हुंकार करके लंदन को उड़ा देंगे और अँग्रेजों को भारत से भगा देंगे (झा, 2014)। भोजपुरी कवियों में मनोरंजन प्रसाद सिन्हा के 'फिरंगिया' लोकगीत में अँग्रेजी शासन के शोषण के विरोध में भारतीय जनता द्वारा अँग्रजों को चेतावनी दी गई है। इसे सुनकर हजारों व्यक्ति राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हुए थे। इस तरह भारत के स्वतंत्रता संग्राम में न सिर्फ सशक्त महिलाएँ, बल्कि ग्रामीण महिलाएँ भी अपना घरेलू कार्य करते हुए क्रांति के गीत गाती थीं। इसी तरह बिहार की मगही भाषा में भी अँग्रेजी राज के जुल्म पर बहुत कुछ लिखा गया, लेकिन कुछ लोकगीत ऐसे भी थे, जो कभी लिखित रूप में नहीं मिले, बल्कि इसे लोग गाकर सुनाते थे। ये गीत एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ते रहे। ब्रिटिश राज के खिलाफ विद्रोह को सुर देने वाली भोजपुरी और मगही भाषा में बहुत-सी कविताएँ हैं। 1857 के विद्रोह के नायकों में से एक बाबू कुँवर सिंह के बारे में भोजपुरी और मगही में बहुत कुछ कहा गया है। ब्रिटिश राज के खिलाफ सबसे बड़ा संगठित विद्रोह, जिसे सिपाही विद्रोह कहा गया, का एक केंद्र बिहार का भोजपुर क्षेत्र भी था। उस दौर में लोगों की चेतना को जाग्रत करने में जनसंचार माध्यम के रूप में भोजपुरी लोकगीत ही हुआ करता था। बाबू कुँवर सिंह की वीर गाथा आज भी भोजपुरी क्षेत्र में गाई जाती है। यह गीत लोगों में उत्साह का संचार करता है। भोजपुरी लोकगीतों के हिसाब से देखें तो गांधीजी और उनके द्वारा संचालित स्वतंत्रता-संग्राम का प्रभाव भोजपुरी क्षेत्र में देश के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक रहा, क्योंकि इस आंदोलन का प्रारंभ गांधीजी ने स्वयं वर्ष 1917 में चंपारण से किया था। उत्तर बिहार के चंपारण निवासी शिवशरण पाठक के वर्ष 1900 में रचित गीत में नील की खेती और ब्रिटिश जुल्म का चित्रण मिलता है। यह गीत गांधीजी के चंपारण आने से पहले का है। बापू के चरखा चलाने पर भी भोजपुरी में कई गीत रचे गए। इन गीतों के माध्यम से स्वदेशी का संदेश गाँव-गाँव में पहुँचा। यह गीत है :

देसवा के लाज रहि है चरखा से,
गांधीजी के मान सनेसवा
पिया जनि जा हो विदेसवा।

भोजपुरी क्रांति गीतों की शृंखला में हिंदी साहित्यकार और स्वतंत्रता संग्राम सेनानी रघुवीर नारायण ने जिस गीत की रचना की थी, उसे भोजपुरी में 'वंदे मातरम्' जैसा सम्मान मिला। उनके द्वारा रचित 'बटोहिया' नामक भोजपुरी राष्ट्रीय गीत पूर्वी लोकधुन में लिखा गया था। 'बटोहिया' की लोकप्रियता सिर्फ बिहार ही नहीं, बल्कि विदेशों तक पहुँची। बटोहिया गीत को अगर समग्र रूप से सुनें तो इसमें जिस तरह से राष्ट्रीय गौरव का चित्रण हुआ है, वह समकालीन दूसरी भाषाओं के राष्ट्रीय गीतों में नजर नहीं आता। इस गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

सुंदर सुभूमि भैया भारत के देसवा से
मोरे प्रण बसे हिम-खोह रे बटोहिया
एक द्वार घेरे रामा हिम-कोतवलवा से
तीन द्वार सिंधु घहरावे रे बटोहिया (मौर्या, 2018)।

इस प्रकार लंबे समय से चली आ रही पराधीनता और ब्रिटिश सरकार की नीतियों के कारण जनता की आर्थिक स्थिति जिस तरह से जर्जर हो गई थी, किसानों की वह दशा और उनकी पीड़ा हमें लोकगीतों में दिखाई दी। स्वाधीनता के लिए संघर्षरत समाज ने इन लोकगीतों को रचकर भारतीय आत्मसम्मान को झकझोरने और जगाने का काम किया। इस संग्राम के नायक-नायिकाओं की वीरगाथा लोकगीतों के माध्यम से फूट पड़ती थी। बाबू कुँवर सिंह, मंगल पांडेय, रानी लक्ष्मीबाई आदि तमाम नायकों पर जनमानस में रचे-बसे लोकगीत हम सुनते रहे हैं। वीर कुँवर सिंह की वीरता के बारे में भोजपुरी में बहुत सारे लोकगीत मिलते हैं। इसी तरह महात्मा गांधी स्वतंत्रता आंदोलन के ऐसे जननायक बनकर उभरे, जिनका प्रभाव गाँव-गाँव में फैल गया और घर-घर में आजादी के गीत गाए जाने लगे। उनका चरखा आत्मनिर्भर भारत का प्रतीक बन गया। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने हमारे पूर्वजों पर किस तरह से जुल्म ढाए, उनकी वह पीड़ा हमें लोकगीतों में दिखाई देती है।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अँग्रेजी उपनिवेशवाद की लूट, दमन और तबाही के प्रतिरोध की जो भावना थी, उसकी झलक बिहार की विभिन्न भाषाओं के लोकगीतों में दिखाई देती है। इन गीतों में अँग्रेजी हुकूमत से मुक्ति के लिए जो संघर्ष है, उसकी ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं। जनमानस के प्रति जो राष्ट्रीय चेतना है वह सभी जगह दिखाई देती है, जो देशप्रेम की भावना उत्पन्न करती है। लोकगीतों द्वारा समय-समय पर

जनमानस आंदोलित होता रहा है। 1857 का युद्ध एक ऐसा जन युद्ध था, जिसमें सभी तरह के लोगों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था और भारत के हिंदू-मुसलमान, पुरुषों और स्त्रियों, सभी ने अँग्रेजी राज की दमनकारी नीति के विरुद्ध संघर्ष किया था। इन लोकगीतों में अँग्रेजों द्वारा की गई तबाही के अनुभवों की स्मृतियाँ हमें मिलती हैं। बिहार की विभिन्न भाषाओं के लोकगीतों में, विशेषकर भोजपुरी और मैथिली गीतों में, स्वाभिमान, शौर्य और बलिदान की दिव्य सुगंध है, उत्साह है और मर मिटने की उमंग है। 1857 का आंदोलन हो या फिर चंपारण आंदोलन के बाद भारतीय राजनीति का गांधी युग, इन लोकगीतों ने समाज में जन चेतना जाग्रत करने में जनसंचार माध्यम के रूप में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। इसलिए यहाँ के लोकगीतों में 1857 की क्रांति से लेकर आज तक की स्वाधीनता की चेतना का स्वर सुनाई देता है। इसमें प्रमुख लोकगीतकारों ने आजादी की लड़ाई से संबंधित तमाम घटनाओं को पिरोकर लोकगीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया। इन्होंने अपने गीतों के जरिये संपूर्ण राष्ट्र में एक राष्ट्रीय लोक चेतना स्थापित करने का प्रयास किया। लोकगीत कभी शीतल फुहारों से हमारे मन को गुदगुदाते हैं, तो कभी गुलामी, अन्याय, अत्याचार और बुराइयों के खिलाफ चिंगारियाँ जगाते हैं। इसलिए वे राजनीतिक-सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक का काम करते हैं। हम आधुनिकता के नशे में अपने पुरखों की इस धरोहर को भुलाते जा रहे हैं। इसे बचाना और बढ़ाना साहित्य, समाज और राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा है। पद्मश्री से अलंकृत, सुप्रसिद्ध लोक गायिका मालिनी अवस्थी के अनुसार, "हम आज एक ऐसे समय में जी रहे हैं, जहाँ सामाजिक लोकचेतना का संदेश आगे लेकर आने की सबसे अधिक आवश्यकता है। और हमारे लोकगीतों से बड़ी लोकचेतना और कहाँ दिखाई पड़ती है!"

संदर्भ

कुमारी. डी. के. (2020). बिहार के लोकगीतों में दार्शनिक पुट, रिसर्च क्रोनिक्लेर. 8 (2). पृष्ठ-56.

चतुर्वेदी. टी.एन. (2016). भारतीय स्वाधीनता संग्राम एक विहंगम दृष्टि. नई दिल्ली : साहित्य अमृत, पृष्ठ-7.

चौहान, वी. (1972). लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि. आगरा : प्रगति प्रकाशन. पृष्ठ-41.

चौधरी, यू.के. (2014). बिहार के लोकगीतों का संकलन एवं उसके समजीत एवं सांस्कृतिक महत्व. http://indianculture.gov.in/research-papers/bihar-ke-lokgeeton-ka-sankalan-evam-samjeet-evam-sanskritic-mahatva से पुन:प्राप्त.

जैन, डी.एस. (1964). लोकगीतों के संदर्भ और आयाम, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन. पृष्ठ-1-4.

झा, के. (2014). भारत के स्वाधीनता संग्राम में मैथिली लोकगीतों की भूमिका. http://kumkumjha.blogspot.com/2014/10/blog-post_71.html से पुनःप्राप्त.

झा, के. (2014). भारत के स्वाधीनता संग्राम में मैथिली लोकगीतों की भूमिका. http://kumkumjha.blogspot.com/2014/10/blog-post_71.html से पुन:प्राप्त.

तिवारी, सी. (2021). गांधी जयंती विशेष : लोकगीतों में गांधी. http://www.outlookhindi.com/story/gandhi-jayanti-special-gandhi-in-folk-songs-by-chandan-tiwari-3194 से पुन:प्राप्त.

तिवारी, सी. (2021). गांधी जयंती विशेष : लोकगीतों में गांधी. http://www.outlookhindi.com/story/gandhi-jayanti-special-gandhi-in-folk-songs-by-chandan-tiwari-3194 से पुन:प्राप्त.

मिश्र, एस. (2019). स्वाधीनता आंदोलन में अवधी लोकगीतों की भूमिका. पृष्ठ-भूमिका से. उत्तर प्रदेश : अनामिका प्रकाशन.

मौर्य, वी. पी. (2018). स्वतंत्रता आंदोलन और भोजपुरी में जनसंचार. http://www.academia.edu/43804849/Mass_communication_through_Bhojpuri_Folk_songs_in_Indian_Freedom_Movement से पुन:प्राप्त.

यूनिवर्सिटी, आर.जी. (2021). लोक साहित्य. http://rgu.ac.in/wp-content/uploads/2021/02/Download_600.pdf से पुनःप्राप्त.

सिंह, डी.ए. (2018). लोक साहित्य का महत्व बिहार के संदर्भ में. वैश्विक लोकसंस्कृति : परंपरा और प्रतिबिंब, पृष्ठ-23.

सिन्हा, पी. (2020). बिहार लोकगीत. http://biharlokgeet.com/2020/04/major-folksong-of-bihar से पुन:प्राप्त.

सिंह, वी. (2021). चरखे से आजादी नहीं मिली. http://tribunehindi.com/those-who-say-freedom-from-spinning-wheel-must-read-this/ से पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 70-75, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

स्वाधीनता आंदोलन, जनजातीय महिलाएँ और लोक माध्यम : बैतूल जिले के विशेष संदर्भ में अध्ययन

डॉ. संदीप भट्ट[1] और प्रमोद कुमार सिन्हा[2]

सारांश

भारतीय स्वाधीनता संग्राम एक राष्ट्रव्यापी जन आंदोलन था। इसमें लाखों ज्ञात और अज्ञात बलिदानियों ने अपना योगदान दिया। क्रूर ब्रिटिश सत्ता की पराधीनता के दौर में स्वराज्य के लिए भारत के छोटे से छोटे गाँवों और कस्बों से भी आम लोगों ने आजादी के आंदोलन का नेतृत्व कर रहे सेनानियों के साथ कदमताल की। मध्य भारत के आदिवासी अंचलों के पुरुषों और महिलाओं ने भी इस संघर्ष में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। क्रांतिकारी टंट्या भील, रघुनाथ शाह, शंकर शाह, भीमा नायक और बिरसा मुंडा जैसे जनजातीय नायकों का आजादी के आंदोलन में अमूल्य योगदान है। इनके जैसे और भी जनजातीय क्रांतिकारी थे, जिन्होंने आजादी के संघर्ष में अँग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा खोला। इनमें बड़ी संख्या में जनजातीय महिलाएँ भी शामिल थीं। स्वाधीनता की लड़ाई में बड़े और चर्चित नायकों ने जितना संघर्ष किया, उतना ही संघर्ष लँगोटी पहनकर तीर-कमान और हसिया चलाने वाले जनजातीय लोगों ने भी किया। जनजातीय लोकगीतों और वाचिक जन श्रुतियों में आदिवासी सेनानायकों की वीरता से भरे हुए लोकगीत और सूक्तियाँ आज भी सुनाई देती हैं। मध्यप्रांत के प्रमुख आंदोलनों में से एक जंगल सत्याग्रह के दौरान जनजाति क्रांतिकारियों ने न केवल मुख्यधारा के राजनीतिक क्रांतिकारियों को जंगल के रास्ते एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने और अँग्रेजों से छिपाकर रखने में मदद की, बल्कि अँग्रेजी टुकड़ियों को लूटने और हमला करके उन्हें कमजोर करने में भी अपनी भूमिका निभाई। मध्य भारत में कई स्थानों पर तो जंगल सत्याग्रह का नेतृत्व महिलाओं ने किया था। रामको बाई, मन्ना बाई, सुमित्रा बाई, बाना बाई, मनकी बाई, राधा बाई जैसी अनेक जनजातीय महिलाएँ हैं, जिन्होंने अपने पति और पिता के साथ या उनके स्थान पर आजादी की लड़ाई में नेतृत्व किया। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान न तो संचार के इतने साधन थे और न ही आवागमन के संसाधन, इसके बावजूद घने जंगलों के बीच रहकर अँग्रेजी हुकूमत से लोहा लेने के लिए इन जनजातीय लोगों ने अपने परंपरागत संचार माध्यमों का अपनी बोली, भाषा और लोकगीतों में इस्तेमाल किया। प्रस्तुत शोध भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में जनजातीय महिलाओं और लोक माध्यम की भूमिका को बैतूल जिले की जनजातियों के विशेष संदर्भ में समझने का एक प्रयास है। ऐतिहासिक अध्ययन की प्रकृति का यह शोध पत्र द्वितीयक आँकड़ों और विश्लेषणात्मक प्रविधि पर आधारित है। इसे तत्कालीन ऐतिहासिक साहित्य, संदर्भों आदि पर आधारित विभिन्न ग्रंथों, पुस्तकों, शासकीय दस्तावेजों और जनजातीय क्षेत्रों में उपलब्ध लोकगीतों और वाचक जनश्रुतियों के अध्ययन के आधार पर तैयार किया गया है।

संकेत शब्द : लोकमाध्यम, स्वाधीनता संग्राम, जनजाति, जनमत

प्रस्तावना

मशहूर लेखिका कृष्णा सोबती ने लिखा है कि इतिहास सिर्फ वह नहीं है, जो प्रमाण पत्रों के साथ दस्तावेजी जिल्दों में दर्ज है। इतिहास वह भी है जो लोकमानस की भागीरथी के साथ-साथ बढ़ता है, पनपता है और जनसामान्य के सांस्कृतिक व्यवहार में जिंदा रहता है (सिंह, 2016, पृष्ठ 73)। भारत जैसे विशाल देश के ऐतिहासिक संदर्भों में भी यह कथन सटीक बैठता है। हमारे देश का स्वाधीनता आंदोलन करोड़ों भारतीयों के सामूहिक बलिदान, त्याग और तपस्या की परीक्षा थी। सभी लोगों के सामूहिक प्रयत्नों से आजादी मिली। विशिष्ट संस्कृति, भाषा और कला संसार से समृद्ध जनजातीय समुदायों का भी आजादी में योगदान है। इन समुदायों की महिलाओं ने भी आजादी की जंग में पुरुषों के साथ कंधा से कंधा मिलाकर लड़ाई लड़ी। अनेकानेक जनजातीय महिलाएँ भी शहीद हुईं, लेकिन उनके योगदान को यथोचित स्थान इतिहास में अभी भी मिलना शेष है।

'स्वराज संदर्भ' में 1 अगस्त, 2016 को प्रकाशित एक आलेख में लेखिका सर्जना चतुर्वेदी ने लिखा है, "स्वाधीनता के इतिहास को जब हम पढ़ते हैं तो कुछ वीर शहीदों की शहादत की गाथाएँ हमें मुँहजबानी याद होती हैं, तो कुछ शहीद ऐसे भी हैं, जिनकी वीरता की गाथा से हम अनजान होते हैं" (सिंह, 2016, पृष्ठ 73)। 'मध्य प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम' नामक पुस्तक में डॉक्टर हंसा व्यास ने लिखा है कि "आदिवासी अंचलों में प्रचलित लोक गीतों ने देश के लिए कुर्बान हो गए क्रांतिकारियों को तो पालना दिया ही है, साथ ही ये गीत औपनिवेशिक काल में जन सामान्य की व्यथा को भी उजागर करते हैं" (व्यास, 2020, पृष्ठ 213)। उबेदा बेगम ने लिखा है, "आजादी के संघर्ष पर केवल नारों का अधिकार नहीं, बल्कि इनकी व्यापकता में शामिल हैं, गीत, दोहे और पंक्तियाँ, जो गाँव-गाँव, घर-घर गाए जाते थे। आंदोलन शहर और महानगर तक सीमित नहीं होता। संघर्ष चौड़ी सड़कों पर ही नहीं होता। वह तो कच्चे-पक्के रास्तों से और पगडंडियों से होकर गुजरता है।" घनश्याम सक्सेना ने अपनी पुस्तक 'जंगल सत्य और सत्याग्रह' में लिखा है : लोकगीतों और लोक कथाओं को गढ़ने वाले अनाम रह जाते हैं, लेकिन यह कृतियाँ वाचिक परंपरा से लोकमानस में अमर हो जाती हैं।

बैतूल में बंजारी ढाल का जंगल सत्याग्रह आजादी की लड़ाई में एक ऐसी लोकप्रिय प्रवृत्ति का परिचायक था, जिसे बड़े पैमाने पर लोक स्वीकृति प्राप्त थी। जिसके बल पर वह आदिवासियों की जुबान

[1]निदेशक, कर्मवीर विद्यापीठ परिसर, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, खंडवा, मध्य प्रदेश. mculect.sandeep@gmail.com
[2]अतिथि व्याख्याता, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, खंडवा, मध्य प्रदेश. pramod.khandwa@gmail.com

पर दीर्घकाल तक बना रहा (सक्सेना, 2008, पृष्ठ 137)। भगवानदास श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक 'जंग-ए-आजादी में महाकौशल' में ताँत्या टोपे के महाकौशल अभियान का जिक्र किया है। उन्होंने लिखा कि ताँत्या टोपे नर्मदा नदी पार कर फतेहपुर आए। वहाँ अर्जुन सिंह गोंड ने उनका स्वागत किया। ताँत्या टोपे एक रात फतेहपुर में रुके। अर्जुन सिंह ने ताँत्या टोपे को खाने-पीने की सामग्री उपलब्ध कराई और आगे जाने के लिए मार्गदर्शकों का प्रबंध भी किया। नर्मदा नदी पार करने के बाद ताँत्या टोपे ने पचमढ़ी की पहाड़ियों तथा मुलताई की पर्वत श्रृंखलाओं के बीच बाँसपानी के रास्ते मुलताई नगर में प्रवेश किया (श्रीवास्तव, 2008, पृष्ठ 114-115)। राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली के संदर्भ अभिलेख 'रिवॉल्ट इन सेंट्रल इंडिया' पृष्ठ क्र. 218-219 में भी इस बात का जिक्र है कि सतपुड़ा के आदिवासियों में अँग्रेजी शासकों के प्रति नफरत और अँग्रेजों से लड़ने वाले भारतीय विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति और सम्मान का भाव विद्यमान था। मध्य भारत के आदिवासी नायकों ने 1857 के क्रांतिकारियों का भरपूर साथ दिया था। इसी संदर्भ में यह भी जिक्र किया गया है कि अँग्रेजों के खिलाफ बगावत का बिगुल फूँकने वाला विद्रोही जननायक टंट्या भील का दबदबा निमाड़ से लेकर बैतूल तक था। (सिंह, 2016, पृष्ठ 15, 22-25)।

'सिवनी जिले के टूरिया जंगल सत्याग्रह' शीर्षक से प्रकाशित अपने आलेख में रंजना चितले ने लिखा है कि सतपुड़ा के जंगल से उठा सैलाब खंडवा, बुरहानपुर, रुस्तमपुर मूंदी, पंधाना, हरसूद, और डोंगरगाँव फैला था, जिसमें जनजातीय क्रांतिकारी स्वप्रेरणा से जंगल पर अधिकार के लिए अँग्रेजों से संघर्ष कर रहे थे। 'सतपुड़ा के गुमनाम शहीद' पुस्तक में लेखक कमलेश सिंह ने लिखा कि जनजाति समुदाय ने स्वाधीनता आंदोलन के क्रांतिकारियों के साथ ही जंगल सत्याग्रह के माध्यम से अँग्रेजों के खिलाफ जमकर संघर्ष किया। जनजातीय क्रांतिकारियों की लोकप्रियता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि आज भी मध्य भारत के जनजाति क्रांतिकारी आदिवासी लोक गीतों में जीवित हैं। उन्होंने जनजाति क्रांतिकारी गुंजन सिंह कोरकू और सरदार विष्णु सिंह गोंड की लोकप्रियता का जिक्र करते हुए कुछ पंक्तियाँ आदिवासी बोली में उल्लेखित की हैं। इन पंक्तियों में एक आदिवासी बेटा अपनी माँ से कहता है कि, माँ घर जल्दी चलो और सीधा खाना बाँधो मुझे गुंजन सिंह की मदद के लिए बंजारी ढाल जाना है। डॉ. सुनीता व्यास ने भी अपनी पुस्तक 'मध्य प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम' में इस बात का जिक्र किया है (सिंह, 2016 पृष्ठ 63)।

अट्ठारह सौ सत्तावन की क्रांति में तत्कालीन मध्य प्रांत के और आज के मध्य प्रदेश के जनजाति बहुल इलाकों और इनके महानायकों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। मंडला के गोंड राजा शंकर शाह और उनके पुत्र रघुनाथ शाह के बलिदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। उन्होंने अँग्रेजी अत्याचारों के खिलाफ गोंडी भाषा में एक कविता लिखी थी। इसी कविता के माध्यम से देश के लिए मर मिटने और अँग्रेजों के खिलाफ क्रांति की लौ जाग्रत करने के लिए उन्हें देशद्रोही करार दिया गया। दोनों पिता-पुत्र को तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया गया। उनकी कविता जनजातीय क्षेत्रों में आज भी याद की जाती है। बैतूल का बंजारी ढाल हो या मंडला के राजा शंकर शाह, रघुनाथ शाह, इन जनजाति क्रांतिकारियों ने अपने संघर्ष की गाथा को लोकगीतों के माध्यम से न केवल जन-जन तक पहुँचाया, बल्कि अँग्रेजों के खिलाफ सामूहिक क्रांति करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

अनेक प्रमुख ऐतिहासिक संदर्भों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि हमारे देश की आजादी के आंदोलन में साल 1857 में शुरू हुई क्रांति की बात हो या गांधीजी का नमक सत्याग्रह और दांडी मार्च; जलियाँवाला बाग का घटनाक्रम हो या भारत छोड़ो आंदोलन और स्वराज की माँग के लिए चलाए गए अन्य देशव्यापी आंदोलन; इन सबमें मध्यप्रांत का महत्वपूर्ण योगदान रहा। वन संपदा से परिपूर्ण इस इलाके में निवासरत जनजातियों ने भी स्वाधीनता के समर में बढ़-चढ़कर भाग लिया। भारत एक विशाल देश है, जिसमें अनेक विविधताएँ हैं। यहाँ अनेक धर्म, मत, संप्रदाय, प्रजाति एवं जाति के लोग निवास करते हैं। यहाँ की संपूर्ण जनसंख्या का लगभग 8.6 भाग आदिम जातियों या जनजातियों द्वारा निर्मित है। 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में 5 करोड़ 16 लाख जनसंख्या जनजातियों की थी। वर्तमान में यह जनसंख्या 10 करोड़ को पार कर चुकी है। अनुसूचित जनजातियों का ग्रामीण भारत की जनसंख्या में प्रतिशत 11.3 है, जबकि शहरी जनसंख्या में यह प्रतिशत 2.8 है। अनुसूचित जनजातियों की 2001 से 2011 के दौरान दशकीय वृद्धि दर 23.7 है। मध्य प्रदेश में 46 प्रकार की जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनमें सबसे ज्यादा गोंड, भील, कौल और कोरकू हैं। गोत्र का विस्तृत स्वरूप जनजाति है। खानाबदोश जत्थे, भ्रातृदल अद्यांश अधिक विस्तृत एवं संगठित होते हैं। जनजातियों को आदिम समाज, आदिवासी, वन्यजाति, गिरिजन एवं अनुसूचित जनजाति आदि नामों से पुकारा जाता है। जनजाति परिभाषित करते हुए गिलिन एवम गिलिन लिखते हैं, "स्थानीय आदिम समूहों का कोई भी संग्रह, जो सामान्य क्षेत्र में रहता हो, सामान्य भाषा बोलता हो, एक सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता हो, एक जनजाति कहलाता है।" डॉ. रिवर्स के मतानुसार, "जनजाति एक ऐसा सरल प्रकार का सामाजिक समूह है, जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा का प्रयोग करते हैं तथा युद्ध आदि सामान्य उद्देश्यों के लिए सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं।

'इंपीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया' के अनुसार, "एक जनजाति परिवारों का एक संकलन है, जिसका एक नाम होता है, जो एक बोली बोलती है, एक सामान्य भू-भाग पर अधिकार जताती है और जो प्रायः अंतरविवाह नहीं करती रही। डॉ. बी.एस. गुहा ने भारत की संपूर्ण जनजातियों को भौगोलिक निवास के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया है—उत्तर तथा उत्तर पूर्वी क्षेत्र, मध्यवर्ती क्षेत्र और दक्षिण क्षेत्र। मध्य भारत में अनेक जनजातियाँ पाई जाती हैं। मध्य भारत के इतिहास के अवलोकन से साफ होता है कि इस इलाके में स्वाधीनता आंदोलन के समय यहाँ के आम जन ने बहुत उत्साह के साथ भागीदारी दर्ज करवाई। इस जनजाति बहुल इलाके के सुदूर ग्रामीण अंचलों में आजादी के आंदोलन की क्रांति की स्वर लहरियाँ आम आदमी तक पहुँची। संचार माध्यम जनमत के निर्माण का महत्वपूर्ण साधन होते हैं। इनके जरिये जनसमुदायों को प्रेरित और प्रभावित किया जा सकता है। आजादी के संघर्ष के दौरान जब आज जैसे मीडिया माध्यम नहीं थे, तब लोक माध्यमों या परंपरागत संचार माध्यमों जैसे लोकगीतों, नृत्यों, कलाओं आदि के जरिये ही बड़े समूहों या जनसमाज में किसी संदेश का प्रसार होता था। विशेषकर सुदूर ग्रामीण अंचलों में बसे जनजातीय समुदायों के बीच स्वराज के विचार और विदेश हुकूमत को जड़ से उखाड़ फेंकने के क्रांतिकारी विचारों के प्रसार में लोकमाध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण रही होगी।

गांधीजी के नमक सत्याग्रह से प्रेरित होकर मध्य भारत प्रांत अर्थात्

सी.पी. बरार क्षेत्र में जंगल सत्याग्रह शुरू हुआ। यह जंगल सत्याग्रह अँग्रेजों द्वारा 1927 में लागू किए गए जंगल कानून (जिसे इंडियन फॉरेस्ट एक्ट, 1927 के नाम से जाना जाता है) के खिलाफ जनजातीय समुदाय का विद्रोह था। मध्य प्रांत के प्रमुख नेता पंडित द्वारिका प्रसाद मिश्र ने अपनी संस्मृति में लिखा है कि मई 1930 में इलाहाबाद में हुई काँग्रेस कार्यकारिणी के सभापति मोतीलाल नेहरू के समक्ष जंगल सत्याग्रह का प्रस्ताव रखा गया था। पहले तो पंडित नेहरू हिचकिचाए, लेकिन बाद में उन्होंने इस सत्याग्रह को अपनी स्वीकृति दे दी थी। यह जंगल सत्याग्रह तत्कालीन सेंट्रल प्रोविजंस एंड बरार स्टेट, जिसे मध्य प्रांत भी कहा जाता है, में शुरू हुआ। इसकी राजधानी नागपुर थी। सीपी एंड बरार स्टेट में हिंदी और मराठी क्षेत्र शामिल थे। इस जंगल सत्याग्रह का नेतृत्व पंडित द्वारिका प्रसाद मिश्र ही कर रहे थे। अँग्रेजों ने उन्हें पहले ही गिरफ्तार कर लिया। 10 जुलाई, 1930 को मराठी जंगल क्षेत्र में एम.एस. अने के नेतृत्व में सत्याग्रहियों ने जंगल में घास काटकर अँग्रेजों के जंगल कानून को चुनौती दी थी। अँग्रेजों ने उन्हें भी बाद में गिरफ्तार कर लिया था। हिंदी क्षेत्र में जंगल सत्याग्रह के लिए बैतूल जिला केंद्र बना। यहाँ घनश्याम गुप्ता को सत्याग्रहियों का नेतृत्व करना था, लेकिन वे समय पर नहीं पहुँचे। उनके स्थान पर बैतूल के संपन्न व्यवसायी दीपचंद गोठी ने जंगल सत्याग्रह का नेतृत्व किया। बैतूल से 3 किलोमीटर दूर चिखलार के जंगल में गोठी ने सैकड़ों जनजाति समर्थकों के साथ घास काट कर जंगल सत्याग्रह का शंखनाद किया। बाद में दीपचंद गोठी को भी अँग्रेज शासकों ने गिरफ्तार कर लिया। बैतूल स्टेट गैजेटियर में भी इस जंगल सत्याग्रह का उल्लेख मिलता है।

जनजातियों में परंपरागत संचार

संचार शब्द अँग्रेजी के 'कम्युनिकेशन' का हिंदी रूपांतर है, जो लैटिन शब्द 'कम्युनिस' से बना है, जिसका अर्थ सामान्य भागीदारी युक्त सूचना है। चूँकि संचार समाज में ही घटित होता है, अतः हम समाज के परिप्रेक्ष्य से देखें तो पाते हैं कि सामाजिक संबंधों को दिशा देने अथवा निरंतर प्रवाहमान बनाए रखने की प्रक्रिया ही संचार है। संचार समाज के आरंभ से लेकर अब तक के विकास से जुड़ा हुआ है। संचार माध्यम से आशय है, संदेश के प्रवाह में प्रयुक्त किए जाने वाले माध्यम। संचार माध्यमों के विकास के पीछे मुख्य कारण मानव की जिज्ञासु प्रवृत्ति का होना है। वर्तमान समय में संचार माध्यम और समाज में गहरा संबंध एवं निकटता है। इसके द्वारा जन सामान्य की रुचि एवं हितों को स्पष्ट किया जाता है। संचार माध्यमों ने ही सूचना को सर्वसुलभ कराया है।

हेराल्ड लॉसवेल के अनुसार संचार माध्यम के मुख्य कार्य सूचना संग्रह, प्रसार, सूचना विश्लेषण, सामाजिक मूल्य एवं ज्ञान का संप्रेषण तथा लोगों का मनोरंजन करना है। संचार माध्यम का प्रभाव समाज में अनादिकाल से ही रहा है। संचार केवल, प्रिंट, टेलीविजन, रेडियो, फोटोग्राफी, इंटरनेट इत्यादि तक ही सीमित नहीं है। जनजातियाँ ग्रामीण एवं वन क्षेत्रों में निवास करती हैं, इन इलाकों में परंपरागत माध्यम आज भी प्रभावी रूप से उपस्थित हैं। जनजातियाँ वे आदिम समूह हैं, जो अधिकांशतया वनों या आम बसाहटों से दूर अंचलों में निवास करते रहे हैं। उनकी अपनी समृद्ध भाषाएँ तथा परंपराएँ हैं। जनजातीय समुदायों में लोकमाध्यमों या परंपरागत संचार माध्यमों जैसे लोकगीतों, लोक कलाओं, नृत्यों आदि का व्यापक विस्तार देखने को मिलता है। जनजाति बहुल बहुत से इलाकों में जहाँ बहुत ही अल्प दूरी पर एक या उससे अधिक जनजातियाँ रहती हैं, उनकी अपनी विशिष्ट कलाएँ, नृत्य और गीत आदि होते हैं। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को परंपरागत या देशज ज्ञान को हस्तांतरित करने के लिए जनजातियों में इन लोक माध्यमों का ही उपयोग किया जाता है। आज आधुनिक संचार और सूचना क्रांति के इस युग में भी जनजातीय समुदायों में लोक माध्यमों का उपयोग बदस्तूर कायम है।

लोकगीत

पुराने जमाने से लेकर वर्तमान समय तक सामान्य मानव के भाव विचारों को अभिव्यक्त करने की कला लोकगीत है। विविधता में एकता इसकी विशेषता रही है। हमारे देश में त्योहारों का बड़ा महत्व होता है। हर त्योहारों में गीत गाए जाते हैं। जैसे फसल कटाई, बच्चे के जन्म, विवाह, मुंडन आदि समय गीत गाए जाते हैं। भारत की ग्रामीण जनता इन लोकगीतों को आज भी बड़े आनंद के साथ गाती है। इसी कारण लोकगीत ग्रामीण जनसंचार के प्रभावी माध्यम हैं, जो आज भी प्रचलित दिखाई देते हैं।

लोककथा

भारत में लोककथाएँ पुराने जमाने से मौखिक तथा लिखित रूप में एक-दूसरे के पास जा रही हैं। लोककथा का मूल उद्देश्य लोगों को मनोरंजन के साथ समाज-बोध देना रहा है। पंचतंत्र हितोपदेश, बैताल पंचविधि, शुकसप्तति आदि की कथाएँ प्रचलित हैं। मानव प्राणी के रहन-सहन एवं संस्कारों को बढ़ाने में लोककथा जनसंचार का कार्य करती है।

लोककला

लोकनाट्य दृश्य-श्रव्य माध्यम होने के कारण प्राचीन काल से जनसंचार का सशक्त माध्यम है। भारत के हर प्रांत की अपनी-अपनी लोककलाएँ हैं। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश की नौटंकी, रामलीला, पंजाब का भाँगड़ा, महाराष्ट्र की लावणी (तमाशा) गोंधल, राजस्थान की कठपुतली आदि।

धार्मिक संचार माध्यम

अलग-अलग धर्मगुरु धर्म प्रचार-प्रसार हेतु देश तथा विदेश भ्रमण करते थे, तब उनके द्वारा जनसंचार कार्य होता था। वे जब भ्रमण करते थे तो प्रवचन देते थे, चित्र दिखाते थे, वार्ता सुनाते थे, संगीत या कला का सहारा लेते थे, तो उससे भी जनसंचार का कार्य होता था।

लोकनृत्य

लोकनृत्य भी संचार का प्रमुख लोक माध्यम है। अनेक जनजातीय समुदायों के अपने विशिष्ट नृत्य होते हैं। ये मनोरंजन के अलावा सूचना और संचार का प्रमुख साधन होते हैं। इन नृत्यों की विशेषता होती है कि इनमें किसी कहानी, पौराणिक या प्राचीन प्रसंगों, घटनाक्रम आदि को नृत्य के माध्यम से एक संदेश बतौर प्रस्तुत किया जाता है। आज भी पूरे देश में फैले जनजातीय समुदायों में लोकनृत्य जैसे परंपरागत संचार के माध्यम अपनी मौजूदगी बनाए हुए हैं।

हाट/बाजार/मेले आदि

जनजातीय हाट, मेले आदि भी संचार और संवाद के प्रमुख साधन रहे हैं। अतीत में ही नहीं, बल्कि आज भी ग्रामीण हाट बाजारों, मेलों आदि

में लोक समूहों की उपस्थिति देखते ही बनती है। मध्य प्रदेश का भगोरिया हो या किसी अन्य राज्य का कोई जनजातीय उत्सव; मेले, हाट बाजारों में ग्रामीण अंचलों में रहने वाले जनजातीय समुदायों के लोग एकत्र होते हैं। इन मेलों आदि में जनजातीय समुदाय के लोगों में आपस में व्यापक संवाद होता है।

विश्लेषण

मध्य प्रांत में जंगलों की बहुतायत है। यहाँ गांधीजी के सत्याग्रहों और आजादी के अन्य आंदोलनों से प्रेरित होकर आम जन ने उनमें भाग लिया। इनमें जनजातीय समुदाय भी शामिल था। इस क्षेत्र का प्रसिद्ध जंगल सत्याग्रह गांधीजी के नमक सत्याग्रह से प्रेरित था। जनजातीय समुदाय देश में फैले स्वाधीनता आंदोलन के दौरान क्रांतिकारियों की न केवल मदद करता था, बल्कि उन्हें अँग्रेजी सेना और अफसरों से बचाने के लिए जंगल के रास्ते एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने के लिए पथ प्रदर्शक का काम भी करता था। 1927 में अँग्रेजी हुकूमत के द्वारा 'इंडियन फॉरेस्ट एक्ट' लागू करने से जनजातीय समुदाय के सामने आजीविका का संकट खड़ा हो गया। इस काले कानून से मध्य प्रांत की सभी जनजातियों की अर्थव्यवस्था और आजीविका के मुख्य स्रोत जंगल की वनोपज और उनके पशुओं के लिए घास, चारा और ईंधन के लिए लकड़ी पर प्रतिबंध लग गया। इस कानून की आड़ में अँग्रेजों ने जनजातीय समुदायों को खूब प्रताड़ित किया। तब मध्य भारत में जनजाति समुदाय ने जंगल सत्याग्रह के माध्यम से न केवल अँग्रेजी हुकूमत के सामने संघर्ष किया, बल्कि स्वाधीनता के क्रांतिकारियों को भी खूब मदद पहुँचाई। झाँसी से मराठवाड़ा तक ताँत्या टोपे को पहुँचाने में जनजातियों ने उनका साथ दिया।

मध्य भारत का जंगल सत्याग्रह

बैतूल स्टेट गजेटियर में उल्लेख मिलता है कि मध्य भारत (सीपी एंड बरार स्टेट) में 10 जुलाई, 1930 को जंगल सत्याग्रह हुआ। इस आंदोलन में जनजाति आंदोलनकारियों ने घास काटकर जंगल सत्याग्रह शुरु किया। इसी दौरान 1 अगस्त, 1930 को बैतूल के दीपचंद गोठी के नेतृत्व में चिखलार के जंगल में 5000 आदिवासियों ने जुलूस निकाला, जिनमें गोंड और कोरकू जनजाति के लोग शामिल थे। जंगल सत्याग्रह के नेतृत्वकर्ता दीपचंद गोठी, गोविंदराव लव्हाटे सहित अन्य प्रमुख नेताओं की गिरफ्तारी के बाद भी यह आंदोलन अनवरत चलता रहा। कुछ समय बाद बैतूल के बंजारी ढाल में यह सत्याग्रह खूनी संघर्ष में बदल गया। गंजन सिंह कोरकू उस दौर में जंगल सत्याग्रह के सबसे बड़े क्रांतिकारी नेता बनकर उभरे। बैतूल जिले की होम पोलिटिकल फाइल में बंजारी ढाल जंगल सत्याग्रह और उसके प्रमुख नेता गुंजन सिंह का उल्लेख मिलता है।

कई ग्रंथों में बैतूल जिले के भैंसदेही के फिर्री और भालेगाँव के जंगल सत्याग्रह का भी उल्लेख मिलता है। चिखलार और बंजारी ढाल के बाद जंगल सत्याग्रह की आग जांबाडा भी पहुँची। सितंबर 1930 के पहले सप्ताह में जांबाडा के जंगल में सत्याग्रह शुरू हुआ। इस सत्याग्रह का नेतृत्व अमर सिंह ने किया था। अँग्रेज पुलिस अमर सिंह गोंड को गिरफ्तार नहीं कर सकी। इस सत्याग्रह में पुलिस की गोलीबारी में जिर्रा गोंड शहीद हो गया और अनेक आदिवासी घायल हो गए। अँग्रेज पुलिस ने 20 आदिवासियों को गिरफ्तार कर सश्रम कारावास की सजा दी। बैतूल जिले के आदिवासियों में व्याप्त असंतोष का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि उस दौर में आदिवासी अंचलों में संचार का कोई साधन उपलब्ध नहीं होने के बावजूद भी दूर-दूर के गाँवों से सैकड़ों आदिवासी बंजारी ढाल जंगल सत्याग्रह में पहुँचे थे। ये सभी आदिवासी अपने प्रमुख नेता गुंजन सिंह कोरकू के आह्वान पर ही बंजारी ढाल पहुँचे थे। इससे यह सिद्ध होता है कि बंजारी ढाल का जंगल सत्याग्रह एक या दो गाँव के आदिवासियों द्वारा बिना सोचे-समझे किया जाने वाला विद्रोह नहीं था, बल्कि रणनीतिक तैयारी से किया गया एक सुनियोजित आंदोलन था। बैतूल से उठी जंगल सत्याग्रह आंदोलन की यह आग कुछ ही दिनों में मध्य भारत के कई जिलों तक पहुँच गई। महाकौशल, निमाड़, मालवा विंध्य और छत्तीसगढ़ के बस्तर, दंतेवाड़ा सहित प्रदेश के अनेक हिस्सों में जंगल पर अधिकार के लिए अँग्रेजों के खिलाफ विद्रोह की होड़ मच गई। बंजारी ढाल का जंगल सत्याग्रह पूरे मध्य भारत के आदिवासियों को आजादी के लिए प्रेरित करने वाला आंदोलन था। सिवनी जिले के 'रक्तरंजित टूरिया जंगल सत्याग्रह' शीर्षक से प्रकाशित लेख में रंजना चितले ने लिखा है, "सतपुड़ा के जंगल से उठा यह आंदोलन खंडवा, बुरहानपुर रुस्तमपुर, मूँदी, पंधाना, हरसूद, डोंगरगाँव तक स्वप्रेरणा से पहुँचा था। इस तरह बैतूल के जंगलों से उठी जंगल सत्याग्रह की इस आँधी में सिर्फ जंगल के पेड़ ही नहीं, ब्रिटिश हुकूमत की बुनियाद तक हिल गई थी।"

संघर्ष में जनजातीय महिलाएँ

मध्य भारत का स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास अनेक वीरांगनाओं की शौर्य गाथाओं से भरा हुआ है। महारानी लक्ष्मीबाई स्वतंत्रता आंदोलन की प्रथम महिला सत्याग्रही थीं। लक्ष्मीबाई से प्रेरणा लेकर भारत की सैकड़ों महिलाओं ने आजादी की लड़ाई में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। मध्य भारत के सिवनी जिले का टूरिया जंगल सत्याग्रह 9 अक्टूबर, 1930 को क्रांतिकारी मुंका के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ था। अँग्रेजी हुकूमत ने सत्याग्रहियों पर अंधाधुंध गोलियाँ बरसाईं; जिसमें गुड्डो बाई, रहनी बाई एवं देबो बाई नामक महिलाएँ घटनास्थल पर ही शहीद हो गई थीं। इसी क्रम में मध्य भारत और बैतूल जिले की वीरांगनाओं ने भी जंग-ए-आजादी की दास्तान में अपना योगदान दिया। बैतूल के जंगल सत्याग्रह में जनजातीय पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर इन वीरों की माँ, बहनों और पत्नियों ने बड़े साहस का परिचय दिया। मध्य भारत के कई स्थानों में तो जंगल सत्याग्रह का नेतृत्व स्वयं महिलाओं ने ही किया था (सिंह, 2016 पृष्ठ 120)।

रमको बाई

बैतूल जंगल सत्याग्रह के महानायक गंजन सिंह की सगी बहन रमको ने भी अँग्रेजी सिपाहियों के खिलाफ विद्रोह किया और अपने भाई की गिरफ्तारी से उत्तेजित होकर अनेक जनजातीय महिलाओं के साथ अँग्रेजी सिपाहियों पर हमले किए। रमको बाई अँग्रेजों के खिलाफ हँसिया लेकर मैदान में कूद पड़ीं और अनेक अँग्रेजी सिपाहियों को घायल किया।

मन्ना बाई

स्वाधीनता संग्राम के दौरान भारत छोड़ो आंदोलन में घोड़ाडोंगरी की बहड़ी ढाना की आदिवासी विरांगना मन्ना बाई ने घोड़ाडोंगरी के ऐतिहासिक सरकारी डिपो अग्निकांड को अंजाम दिया था। घोड़ाडोंगरी की अनेक महिलाओं के साथ उन्होंने घोड़ाडोंगरी रेलवे स्टेशन पर अँग्रेजी

हुकूमत को चुनौती दी। जुलूस के दौरान इस महिला ने अँग्रेजों पर चूड़ियाँ फेंककर अपना विरोध दर्ज कराया था।

सुमित्रा बाई

जंगल सत्याग्रह के प्रमुख नायक सरदार विष्णु की धर्मपत्नी सुमित्रा बाई ने भी अँग्रेजों के खिलाफ जनजातीय महिलाओं को एकजुट करने का काम किया। घोड़ाडोंगरी के सरकारी डिपो को जलाने, डाकखाना और टेलीफोन के तार काटने की महत्वपूर्ण घटना में प्रमुख रणनीतिकार वही थीं। अपने पति सरदार विष्णु सिंह के साथ वह गाँव-गाँव जंगल-जंगल घूमीं और न केवल जनजातीय पुरुषों को बल्कि महिलाओं को भी अँग्रेजी हुकूमत के खिलाफ एकजुट करने का काम किया। इसी तरह बाना बाई, मनकी बाई, राधाबाई, सावित्रीबाई, पार्वतीबाई और जानकीबाई जैसी अनेक जनजातीय वीरांगनाएँ थीं, जिन्होंने अपने पति, भाई और बेटों के साथ जंगल सत्याग्रह के बहाने स्वतंत्रता संघर्ष में बड़ा योगदान दिया।

वीरांगना बाना बाई पटेल

मंडवी गाँव की वीरांगना बाना बाई पटेल ने प्रभात पट्टन के उत्तम सागर में जंगल सत्याग्रह का नेतृत्व किया था। उन्होंने आरक्षित वन क्षेत्र में अँग्रेजों के जंगल कानून के खिलाफ गवर्नर को काले झंडे दिखाए और 'गवर्नर वापस जाओ' के नारे लगाए थे। गवर्नर को काले झंडे दिखाने के कारण बाना बाई को गिरफ्तार कर लिया गया।

मनकी बाई

इसी तरह स्वतंत्रता संग्राम सेनानी मोकम सिंह की पत्नी मनकी बाई ने भी जंगल सत्याग्रह के दौरान जनजातीय महिलाओं को एकजुट कर अँग्रेजों के खिलाफ पुरुषों का साथ दिया। अपने पति मोकम सिंह की गिरफ्तारी के बाद जंगल सत्याग्रह का नेतृत्व भी मनकी बाई ने किया।

राधाबाई

आजादी के आंदोलन के सत्याग्रही बिहारी लाल पटेल की पत्नी राधाबाई ने भी पति की गिरफ्तारी के बाद जंगल सत्याग्रह का मोर्चा सँभाला और पुरुषों के साथ महिलाओं को एकजुट करते हुए अँग्रेजी सत्ता का विरोध किया।

शांति बाई एवं शिक्षिका सावित्रीबाई

बैतूल के व्यवसायी जेठमल ताँतेड़ की पत्नी शांतिबाई एवं शिक्षिका सावित्रीबाई ने भी सत्याग्रहियों के साथ नागपुर झंडा सत्याग्रह में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। स्वराज संस्थान संचालनालय भोपाल द्वारा वर्ष 2006 में प्रकाशित विशेषांक 'स्वराज्य संदर्भ' के एक आलेख में शंभू दयाल गुरु ने बताया कि बैतूल जिले में भीषण दमन के बाद भी सत्याग्रह का जोश कम नहीं हुआ। इस जंगल सत्याग्रह में जनजाति महिलाओं ने भी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर भाग लिया। खार में राधाबाई, नीलगढ़ में पार्वतीबाई तथा जानकीबाई तथा बहेड़ी में बाना बाई पटेल ने जंगल कानून तोड़कर सत्याग्रह किया था।

जनजातीय लोकगीतों में स्वराज और आजादी की चेतना

स्वाधीनता संघर्ष में जनजातीय समुदाय ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। इतिहास का अवलोकन बताता है कि आजादी की जंग में मध्य भारत प्रांत के घने जंगलों में जनजाति महिलाओं का योगदान किसी से कम नहीं रहा। नागपुर का झंडा सत्याग्रह हो या बैतूल का जंगल सत्याग्रह, आजादी की अंतिम लड़ाई भारत छोड़ो आंदोलन तक बैतूल की वीरांगनाओं ने अपने अद्भुत साहस का परिचय दिया। बैतूल जिले के नीलगढ़, खार और सातलदेही में जंगल सत्याग्रह का नेतृत्व महिलाओं ने ही किया था। जनजातियों ने न केवल राजनीतिक क्रांतिकारियों का साथ दिया, बल्कि जंगल पर अधिकार जताने के लिए सीधे अँग्रेजों से भी संघर्ष किया। ऐसे कई जनजातीय वीर योद्धा हुए, जिनके नाम इतिहास के पन्नों में दर्ज नहीं हो सके। जंगल सत्याग्रह से लेकर भारत छोड़ो आंदोलन तक समूचे आजादी के आंदोलन में मध्य प्रांत की जनजातियों के लोग शक्तिपुंज की भूमिका में रहे। बैतूल जिले के महेंद्रवाड़ी के रहने वाले सरदार विष्णु सिंह गोंड ने दो दशक तक मध्य भारत के जनजाति क्षेत्रों में अँग्रेजी हुकूमत के खिलाफ जनजाति समुदाय का नेतृत्व और संघर्ष किया। घोड़ाडोंगरी क्षेत्र के अनेकों गाँव में जनजातीय समुदाय के लोग उनकी एक आवाज पर इकट्ठा हो जाते थे। जनजातियों में विष्णु सिंह की लोकप्रियता का अंदाजा गोंडी लोकगीत कि इन पंक्तियों से लगाया जा सकता है :

"पालाड़ी पाल तड़ा रेयों न आना
बेनायों मदद से दा की रो बेटा
चूड़ों सिदों नारेनी दायो
गांधी ने मदद ते दाका रो दाई
विष्णु ने मदद ते दाका रो दाई
घोड़ाडोंगरी दाका रो दाई"
(सिंह, 2016, पृष्ठ 63)।

इन पंक्तियों में एक आदिवासी बेटा माँ से कहता है कि माँ जल्दी से कच्चा भोजन बाँध दो, मुझे विष्णु की मदद के लिए घोड़ाडोंगरी जाना है। मुझे गांधीजी की मदद के लिए आगे जाना है। इन पंक्तियों से पता चलता है कि जनजातीय समुदाय में भी आजादी के लिए संघर्ष का भी एक सांस्कृतिक महत्व था। भारत के जनजातीय समाज में अँग्रेजों के खिलाफ जो संघर्ष की अग्नि भड़की, उसमें अँग्रेजी कानून, महाजनी और जागीरदारी शोषण उसके मूल में था। बाद में 1927 में अँग्रेजों द्वारा लागू किया गया जंगल कानून भी स्वतंत्रता के संग्राम में आदिवासियों की भूमिका का मुख्य कारण बना।

उस दौर में जब न तो आवागमन के साधन थे और न ही जनसंचार के माध्यम। खासकर घने जंगलों में बसे जनजातीय समाज के बीच तो बिल्कुल भी नहीं। फिर भी 17 वीं शताब्दी से लेकर आजादी तक जनजातीय समाज ने जो संघर्ष किया, उसमें उनकी लोक कला और लोक संचार माध्यम ही महत्वपूर्ण साधन थे। उस दौर में न तो इनकी भाषाएँ, बोली और साहित्य को समझने वाले बुद्धिजीवी लोग थे और न ही किसी प्रकार की तकनीक। इनकी लोक कला, संस्कृति में जिस तरह के ओजस्वी और वीररस से भरे लोकगीत, कहावतें, कहानियाँ और जनश्रुतियाँ सुनने को मिलती हैं, उससे पता चलता है कि जनजातीय समुदाय में भी आजादी के लिए संघर्ष की ज्वाला उतनी ही थी, जितनी प्रथम पंक्ति में नेतृत्व करने वाले राजनीतिक लोगों में। इस बात का अंदाजा बस्तर के भतरी गीत की इन पंक्तियों से लगाया जा सकता है:

जो माटी चो किरिया खासत

हून माटी जेचो धन आए
देस हुनी के बलसत आए।

मतलब जिस मिट्टी की सौगंध उठाते हो, वही माटी मतलब धरती जो हमारा धन है, देश उसी का नाम है, उसे ही देश कहते हैं। ये पंक्तियाँ देश की अवधारणा को व्यक्त करने के साथ ही आदिवासी मन को भी परिभाषित करती हैं।

मध्य प्रदेश के निमाड़ अंचल में टंट्या भील और भीमा नायक ने अँग्रेजों को खूब परेशान किया। अँग्रेजों ने इन्हें डाकू और लुटेरा बताया, जबकि ये लोग अपने जनजातीय समाज में रॉबिन हुड की तरह नायक घोषित थे। पारंपरिक शस्त्रों के बल पर अँग्रेजों से संघर्ष करने की प्रवृत्ति एक भील लोकगीत में इस तरह दिखाई देती है। "कुन धरे टँगिया, कुन धरे बलुआ, कुन धरे तीर गुलेला। मर्द तो धरे तोरे अँगियारे टँगिया"। छत्तीसगढ़ के दक्षिणी भूभाग में हल्बी आदिवासी समुदायों की एक हल्बी लोकगीत की पंक्तियाँ हैं, जिसमें गायक कहता है, "अँग्रेज राज कंगाल होली, गोटक रूपिया चाउर सोली" मतलब अँग्रेजों के काल में हम कंगाल हो गए, एक रुपये में एक सोली चावल कैसे खरीदें। एक अन्य गीत की पंक्तियाँ लोकगीत में है, जिसमें गायक कहता है कि जब से फिरंगी राजा हो गए तब से अच्छा भोजन नसीब नहीं हुआ। अच्छा भोजन तभी नसीब होगा, जब फिरंगी इस देश से चले जाएँगे।

ऐसे कई लोकगीत और वाचिक जनश्रुतियाँ गोंड और कोरकू जनजातीय समुदाय में उस दौर में गाँव-गाँव में गुनगुनाई जाती थीं। यही लोकपंक्तियाँ, लोकगीत और वाचिक जनश्रुतियाँ उस दौर में परंपरागत जनसंचार का माध्यम हुआ करती थीं। इन्हीं परंपरागत माध्यमों के कारण ही मध्य प्रांत के बड़े जंगली इलाके में अँग्रेजों के खिलाफ जंगल सत्याग्रह और अनेक आंदोलन बखूबी चलते रहे। इस तरह से हम कह सकते हैं कि मध्य प्रांत के क्षेत्रों में जो स्वाधीनता के संघर्ष की जनजातीय महिला नायिकाएँ रहीं होंगी, उन्होंने अपने लोकगीत, लोकभाषा जैसे परंपरागत माध्यमों के जरिये अपने परिवारों तथा समुदायों में स्वराज और स्वाधीनता के विचारों के प्रसार में एक अहम भूमिका का निर्वाह किया होगा। हम देखते हैं कि पश्चिमी मध्य प्रदेश से लेकर छत्तीसगढ़ तक गोंड, कोरकू और बेगा जनजातियों के लोकगीतों और वाचिक जनश्रुतियों में ऐसे कई लोकगीत सुनाई देते हैं, जिनमें जनजातीय लोग अपने वंशजों की बहादुरी को गर्व से याद करते हैं। लोकपरंपराओं के निर्माण और उनके संरक्षण में किसी भी समुदाय में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि मध्य प्रांत के इन जानजातीय समुदायों में भी महिलाओं ने आजादी के जो गीत रचे होंगे, उनसे इस क्षेत्र के स्वाधीनता के नायकों में देशप्रेम के भाव का संचार हुआ होगा।

निष्कर्ष

भारत की आजादी के लिए पूरे देश में राष्ट्रभक्ति की भावना जाग्रत करने में मध्य भारत का बैतूल जिला महत्वपूर्ण केंद्र था। स्वाधीनता के इतिहास में मध्य प्रांत खासकर बैतूल के जंगली इलाकों में जनजातीय समुदाय की ओर से अनेक गौरवशाली घटनाएँ हुईं, जिनका जिक्र इतिहास के पन्नों में दर्ज नहीं हो पाया, लेकिन जनजातीय लोकगीतों और जनश्रुतियों में आज भी वह जिंदा है। यह सच्चाई है कि मध्य प्रांत के जंगल सत्याग्रह जैसे आंदोलन देश के अनेक जनजातीय क्षेत्रों में हुए और उनका योगदान भी देश के स्वाधीनता संग्राम में कम नहीं रहा। यहाँ के जनजातीय सेनानायकों, विशेषकर महिलाओं ने बढ़-चढ़कर स्वतंत्रता संग्राम में हिस्सा लेकर अँग्रेजों के छक्के छुड़ाए। मध्य प्रांत में अँग्रेजी हुकूमत से संघर्ष करने वालों में 90% जनजातीय लोग थे। इतिहास की पुस्तकों और संदर्भ ग्रंथों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्वाधीनता की लड़ाई में जनजातीय क्रांतिकारी नायकों के साथ संघर्ष में इनकी माँ और बहनें भी साथ खड़ी हुईं। इनके मजबूत नेतृत्व और संघर्ष की वजह से ही मध्य भारत का यह आंदोलन सफल रहा, लेकिन स्वाधीनता के इस आंदोलन में इनके योगदान का कहीं कोई समुचित उल्लेख सामने नहीं आया। जनजातीय लोकगीतों और वाचक जनश्रुतियों में ये सभी नाम आज भी गर्व से सुने और गाए जाते हैं। कहना बहुत ही सार्थक होगा कि इन महान जनजातीय महिला स्वाधीनता सेनानियों ने अपने लोकगीतों, लोकभाषा जैसे संचार के परंपरागत माध्यमों के उपयोग से अपने पूरे जनसमुदाय में स्वाधीनता को लेकर जनचेतना के निर्माण और विकास का महत्वपूर्ण कार्य किया।

संदर्भ

गुरू, एस. (2008). मध्य प्रदेश में स्वाधीनता आंदोलन (1857-1950). भोपाल : मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी.

जनगणना रिपोर्ट, मध्यप्रदेश, 2011, https://www.mpinfo.org/mp-infostatic/hindi/Census/census-2011.pdf से पुनःप्राप्त.

जनजातीय कार्य मंत्रालय, मध्यप्रदेश सरकार की रिपोर्ट. https://www.tribal.mp.gov.in/CMS/?page=1boLBvNSzvApuj5nTswP7A%3D%3 से पुनःप्राप्त.

दुबे, एस. सी. (1998). ट्राइबल अपराइजिंग एंड सोशल मूवमेंट्स इन एमपी, इंटर इंडिया पब्लिशिंग, पृ.-272, 317.

मध्यप्रदेश की अनुसूचित जनजातियाँ. (2018). टीआरएआई भोपाल, https://www.tribal.mp.gov.in/cms/Uploaded%20Document/Scheduled%20Tribe/अनुसूचित%20जाति,%20 अनुसूचित%20जनजाति%20सूची.pdf से पुनःप्राप्त.

राजकुमार. (सं). (2003). एसेज ओन इंडियन फ्रीडम मूवमेंट. नई दिल्ली : डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस. पृ-116.

व्यास, एच. (2020). मध्यप्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम, भोपाल : मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी. पृष्ठ क्र. 213

श्रीवास्तव, बी. (2008). जंग-ए-आजादी में महाकौशल, भोपाल : मध्यप्रदेश स्वराज संस्थान. पृष्ठ 114-115

सक्सेना, जी. & तिवारी, एस. (2008). जंगल सत्य और सत्याग्रह, मध्यप्रदेश स्वराज संस्थान. पृष्ठ. 137

सक्सेना, एस. (1999). मध्य प्रदेश में आजादी की लड़ाई और आदिवासी, भोपाल : मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ.104-105

सिंह, के. (2016). सतपुड़ा के गुमनाम शहीद, भोपाल : पहले पहल प्रकाशन. पृष्ठ 63,73,120.

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 76-84, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

पत्रिकाओं, कविताओं एवं नाटक-सिनेमा द्वारा स्वतंत्रता आंदोलन में 'पतित' स्त्रियों के संघर्ष का चित्रण

डॉ. अमृता शिल्पी[1]

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र में महिलाओं के ऐसे दो वर्गों की विवेचना की गई है, जो औपनिवेशिक शासकों द्वारा समाज के हाशिये पर धकेल दी गई थीं। पहला वर्ग नर्तकियों, तवायफों एवं देह व्यापार में संलग्न महिलाओं का है और दूसरा वर्ग अनुबंधित महिला श्रमिक अथवा गिरमिटिया स्त्रियों का है। दोनों ही वर्ग अपने आप में पूर्णतः विषमांग थे, परंतु औपनिवेशिक शासन ने न केवल इन्हें एकरूप किया, बल्कि समाज में इनकी उपस्थिति, कला एवं क्षमता को कलंकित कर इन्हें 'पतित' एवं 'चरित्रहीन' वर्ग के रूप में प्रक्षेपित भी किया। साथ ही शोध पत्र में यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार इन महिलाओं के संघर्ष एवं स्थिति को पत्रिकाओं, कविताओं एवं नाटक-सिनेमा में न केवल चित्रित किया गया, बल्कि इनके योगदान की साझी अभिव्यक्ति को भी प्रस्तुत किया गया।

संकेत शब्द : स्वतंत्रता आंदोलन, उपनिवेशवाद, तवायफ, गिरमिटिया महिला श्रमिक

प्रस्तावना

कोई भी यज्ञ दूर्वा के बिना संपन्न नहीं होता। वही दूर्वा, जिसे व्यक्ति प्रायः अपने पाँव तले रौंद देते हैं। फिर भी इसका पुनरुत्थानशील स्वभाव इसे न मरने देता है न ही इसकी हरियाली समाप्त होने देता है। कोई इसे पूजन योग्य माने चाहे न माने, इसकी उपस्थिति को कोई नकार नहीं सकता। स्वतंत्रता के महायज्ञ में समाज के ऐसे कई वर्ग थे, जिनका अस्तित्व दूर्वा समान था, पर उनके योगदान के बिना संभवतः स्वतंत्रता की सिद्धि पूर्ण न हो पाती (बेली, 1983; भद्रा, 1988; फारूकी, 2000; पति, 2007)। स्वतंत्रता आंदोलन के राजनीतिक इतिहास में राजाओं, सैनिकों और विभिन्न अधिनायकों का संदर्भ तो बहुत मिलता है। पर विद्वानों का मत है कि समाज के ऐसे कई समूह हैं, जिनका या तो उल्लेख ही नहीं है या फिर इस आंदोलन और उसके बाद के उनके संघर्ष को योगदान के रूप में देखा ही नहीं गया (मुखर्जी, 1984; रॉय, 1994; स्टोक्स, 1969, 1980, 1986)। उस कालखंड के अकादमिक लेखन अथवा सरकारी दस्तावेजों आदि में इनके योगदान का उल्लेख नगण्य ही है।

प्रस्तुत शोध पत्र में महिलाओं के ऐसे दो वर्गों की विवेचना की गई है, जो औपनिवेशिक शासकों द्वारा समाज के हाशिये पर धकेल दी गई थीं। पहला वर्ग नर्तकियों, तवायफों एवं देह व्यापार में संलग्न महिलाओं का है और दूसरा वर्ग अनुबंधित महिला श्रमिक अथवा गिरमिटिया स्त्रियों का है। दोनों ही वर्ग अपने आप में पूर्णतः विषमांग थे, परंतु औपनिवेशिक शासन ने न सिर्फ इन्हें एकरूप किया, बल्कि समाज में इनकी उपस्थिति, कला एवं क्षमता को कलंकित कर इन्हें 'पतित' एवं 'चरित्रहीन' वर्ग के रूप में प्रक्षेपित भी किया। साथ ही प्रस्तुत शोध पत्र में यह भी दिखाने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार इन महिलाओं के संघर्ष एवं स्थिति को पत्रिकाओं, कविताओं एवं नाटक-सिनेमा में न केवल चित्रित किया गया, बल्कि इनके योगदान की साझी अभिव्यक्ति को भी प्रस्तुत किया गया। इन दोनों वर्गों की महिलाओं में समानता थी भी और नहीं भी। तवायफों/नर्तकियों का एक अलग ही संसार था (वाहिद, 2014)। इस पारिस्थितिकी तंत्र में राजाओं, नवाबों और दरबारियों के मनोरंजन हेतु नृत्य-संगीत से जुड़ी महिलाएँ और पुरुषों के अलावा सेवक-सेविकाएँ, दरबान, अंगरक्षक आदि बसते थे (सेनगुप्ता, 2014; ओल्डेनबर्ग, 1990)। आर्थिक और व्यक्तिगत रूप से ये महिलाएँ पूर्णतः स्वतंत्र थीं और सामान्य पारिवारिक संबंधों से पृथक्। हालाँकि इनके विवाह के दृष्टांत भी मिलते हैं, पर शारीरिक संबंध किससे बनाने हैं, यह इनका अपना निर्णय था (मोरकॉम, 2014)। दूसरी तरफ गिरमिटिया महिला श्रमिकों का वर्ग उनका था, जो कुलीन वंश की विधवाएँ थीं या फिर निम्न जाति की एकल महिलाएँ (निरंजना, 2011)। चाहे समाज में अपनी परिस्थितियों से उबरने के लिए अथवा विदेशों में रोजगार के अवसर तलाशने के लिए, जिन भी महिलाओं ने अपना पंजीकरण गिरमिटिया श्रम हेतु कराया, उन्हें औपनिवेशिक पर्यवेक्षकों और एजेंटों ने 'पतित' घोषित कर दिया (डे, 2014)। इन दोनों वर्गों की महिलाओं में समानता यह थी कि ये दोनों ही 'परिवार और नैतिकता' की औपनिवेशिक अवधारणा (घोष, 2006) से बिलकुल भिन्न थीं। प्रस्तुत शोध पत्र में विवेचना की गई है कि किस प्रकार उपनिवेश की संस्कृति को समझने में अक्षम इन श्वेत शासकों और उनके अधिकारियों ने भ्रांतियों को प्रचारित कर महिलाओं के इन वर्गों पर अपना वर्चस्व कायम करने का प्रयास किया। इन दोनों वर्गों की महिलाएँ इसकी प्रत्यक्ष शिकार बनीं, पर इन महिलाओं ने अपने तरीके से औपनिवेशिक शासन को कड़ी चुनौती भी दी।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध में ऐतिहासिक अध्ययन विधि का प्रयोग किया गया है। विषय बोध हेतु तीन मूर्ति पुस्तकालय, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में उपलब्ध 1860-1947 के बीच प्रकाशित अखबार, जर्नल एवं पत्रिकाओं और द्वितीयक साहित्य, पुस्तकों एवं हिंदी सिनेमा की समीक्षा की गई है। राष्ट्रीय डिजिटल पुस्तकालय और इंटरनेट पर उपलब्ध लेखों और पुस्तकों का संकलन एवं फिल्म समीक्षा जैसे अन्य संसाधन भी अति सहायक रहे।

[1]सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्विद्यालय. दिल्ली. ईमेल : amritashilpi7@gmail.com

शोध परिकल्पना

- औपनिवेशिक शासन ने श्रम बाजार में उपलब्ध महिला नर्तकियों एवं श्रमिकों की उपस्थिति, कला एवं क्षमता को कलंकित कर इन्हें 'पतित' एवं 'चरित्रहीन' वर्ग के रूप में प्रक्षेपित किया।
- पत्रिकाओं, कविताओं एवं नाटक-सिनेमा में इन महिलाओं के संघर्ष और योगदान का मार्मिक चित्रण मिलता है।

शोध प्रश्न

- उपनिवेशवादियों द्वारा स्त्री समूह को किस प्रकार श्रेणीबद्ध किया गया?
- स्त्रियों को श्रेणीबद्ध करने के लिए अँग्रेजों ने किन परिवर्ती कारकों का प्रयोग किया?
- क्या ये कारक वस्तुनिष्ठ और सार्वभौमिक थे या फिर इन्हें भारत के संदर्भ में ही निर्मित किया गया?
- नर्तकियों, तवायफों एवं देह व्यापार में संलग्न महिलाओं को नियंत्रित और उनके श्रम को विनियमित करने के लिए अँग्रेजों ने कानून एवं अधिनियम का किस प्रकार दुरुपयोग किया?
- अनुबंधित श्रम हेतु भर्ती की गई महिला प्रवासियों का दैहिक, आर्थिक एवं सामाजिक शोषण क्या अँग्रेजों के दोहरे नैतिक सिद्धांत का परिचायक रहा?
- क्या श्वेत जाति की श्रेष्ठता स्थापित करते हुए अँग्रेजों ने 'अनैतिक' और 'अशुद्ध' के तत्वों को लाकर राष्ट्रवादी विमर्श को चुनौती देने की कूटनीति अपनाई?
- परिवार के दायरे के बाहर की व्यवसायी महिलाओं के वर्ग का स्वतंत्रता आंदोलन में क्या योगदान था?

इन प्रश्नों पर यदि प्रकाश डालेंगे तब ही हम समझ पाएँगे कि वर्ष 1860 के उपरांत तथाकथित रूप से 'पतित' मानी जाने वाली महिलाओं का संघर्ष क्या था और शक्तिशाली उपनिवेशवादियों के समक्ष ये कैसे खड़ी रहीं? इस क्रम में प्रस्तुत शोध पत्र पाँच खंडों में विभाजित है :

1. अधीनस्थ क्षेत्रों की महिलाओं का औपनिवेशिक शासन द्वारा 'पतित' एवं 'अशुद्ध' रूप में सामाजिक वर्गीकरण।
2. 1857 के उपरांत वंशानुगत व्यवसायों में शामिल नर्तकियों, तवायफों एवं देह व्यापार में संलग्न महिलाओं का औपनिवेशिक शासन द्वारा सामाजिक 'बहिष्करण' एवं शोषण।
3. औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की यौन शिकार भारतीय महिला गिरमिटिया श्रमिकों की स्थिति।
4. नाटक-सिनेमा में स्वतंत्रता आंदोलन में नर्तकियों एवं तवायफों के योगदान का चित्रण।
5. पत्रिकाओं एवं कविताओं में भारतीय महिला गिरमिटिया श्रमिक स्त्रियों के संघर्ष का चित्रण।

अधीनस्थ क्षेत्रों की महिलाओं का औपनिवेशिक शासन द्वारा 'पतित' एवं 'अशुद्ध' रूप में सामाजिक वर्गीकरण

बीसवीं सदी के मध्य में उपनिवेशवाद से प्रभावित कई राज्यों और समूहों पर अध्ययन हुए हैं। उत्तर औपनिवेशिक लेखों में यह माना गया है कि उपनिवेशवादियों में वर्ग, लिंग और उपनिवेशवाद की धारणा में ही प्रतिस्पर्धात्मकता और तनाव था (घोष, 2004)। मानव विज्ञान, इतिहास, राजनीति विज्ञान आदि विषयों के अधिकांश उत्तर औपनिवेशिक लेख ये प्रमाणित करते हैं कि औपनिवेशिक शासन तंत्र न तो अखंड थे और न ही सर्वशक्तिशाली (कूपर एंड स्टॉलर,1989, पृ.610)। समस्त विश्व में उनके द्वारा प्रक्षेपित अपनी शक्ति और नस्लीय, सांस्कृतिक एवं तकनीकी प्रभुत्व के दावे को दुनियाभर के विद्वानों द्वारा चुनौती दी गई है। प्रश्न यह उठता है कि क्या उपनिवेशों की संस्कृति और समाज की अंतर्निहित विविधता को समझाना इस शासन व्यवस्था का एक मौलिक द्वंद्व रहा? क्या यही कारण रहा कि अधीनस्थ क्षेत्रों के अंतर को अपने अनुकूल परिभाषित और वर्गीकृत करना उपनिवेशवादी शासन की राजनीतिक विवशता हो गई? या फिर अपनी नस्लीय सर्वोच्चता को न्यायसंगत सिद्ध करने की इनकी यह कूटनीति रही? इसी कारण क्या औपनिवेशिक शासन द्वारा अधीनस्थ क्षेत्रों का सामाजिक वर्गीकरण नस्लीय और लैंगिक आधार पर किया गया? ये कुछ प्रश्न हैं, जिनके उत्तर उपलब्ध साहित्य के आधार पर इस खंड में जानने का प्रयास किया गया है।

विद्वानों का मत है कि उपनिवेश संस्कृति और व्यक्ति की अन्यता न तो एकरूप थी और न ही स्थिर, (कूपर एंड स्टॉलर,1989, पृ.610)। उपनिवेश समाज की श्रेणियाँ तात्त्विक रूप से जटिल, संघर्षरत और परिवर्तनशील थीं। विशेषकर भारत में लिंग, जाति, धर्म, संप्रदाय, क्षेत्र, भाषा-बोली, मूल्य एवं व्यवहार की विविधतापूर्ण उपस्थिति प्राचीन काल से इस राष्ट्र की पहचान रहे। विडंबना यह थी कि उपनिवेशवादियों को न तो भाषा और संस्कृति की समझ थी न ही इतनी रुचि और सहनशीलता कि उस समाज और वहाँ के मूल निवासियों को समझ पाएँ। पर अपना आधिपत्य बनाए रखने के लिए उस क्षेत्र के बारे में ज्ञान होना आवश्यक था।

इस विषय के अध्येता मानते हैं कि जानकारी एकत्रित एवं व्यवस्थित करने की परियोजनाएँ, जैसे जनगणना, सर्वेक्षण और भूमि बंदोबस्त आदि का प्रयोग उपनिवेशवादियों ने अपने द्वारा किए गए शोषण और उसके औचित्य को स्थापित करने हेतु किया। इन जानकारियों का उन्होंने अपने लाभ के लिए दुरुपयोग किया (तलाल, 1973)। एक ओर उनके प्रचारक धर्म और राष्ट्र की सीमाओं, भूमि और श्रम, वर्ग और नस्ल के बारे में अमूर्त शब्दों में बात करते, वहीं दूसरी ओर उनके शासनाधिकारी भूमि, श्रम, वर्ग और नस्ल के संघर्षों को उनके स्थानीय संदर्भों और लंबे इतिहास से अलग करके यूरोपीय मापदंडों के अनुसार श्रेणीबद्ध करते (कूपर एंड स्टॉलर, 1989, पृ.610-11)। सामाजिक सीमाएँ, जो एक समय में स्पष्ट थीं, आवश्यक रूप से वैसी रही ही नहीं।

मिजास, स्पेन में 1988 में आयोजित वेनर-ग्रेन फाउंडेशन कानफ्रेंस में प्रस्तुत अपने पत्र 'द एंथ्रोपोलॉजी ऑफ अ कोलोनियल स्टेट एंड इट्स फॉर्म्स ऑफ नॉलेज' में बर्नार्ड कोहेन ने लिखा कि औपनिवेशिक

शासन—बर्तानिया राज—ने एक स्व-घोषित मॉडल के रूप में साभिप्राय श्रेणियों का निर्माण किया। ये वे उपखंड थे, जिनमें अँग्रेजों को खुद को और भारतीयों को परिभाषित करना था। विशेष रूप से 1860 के दशक से औपनिवेशिक नौकरशाही ने लोगों और उनकी विशेषताओं को जनगणना, सर्वेक्षण और नृवंशविज्ञान, लेन-देन के अभिलेखन, स्थान का चिह्नांकन, व्यवहार और प्रथाओं के मानकीकरण के माध्यम से वर्गीकृत करने की प्रक्रिया शुरू की (कूपर एंड स्टॉलर, 1989, पृ.611)। सूचना के प्रत्येक विनियोग के योग की तुलना में उनसे होने वाले प्रभाव कहीं अधिक रहे। औपनिवेशिक शासन एक निश्चित प्रकार के नागरिक समाज के घटकों को परिभाषित करने में निरंतर संलग्न रहा। उपनिवेशीकरण के एजेंटों-अधिभ कारियों, मिशनरियों और उद्यमियों द्वारा प्रायः यह दावा किया जाता रहा कि उनके पास संस्कृति को परिभाषित करने की अपार क्षमता थी। मनमानी श्रेणियों के निर्माण के कार्य को उन्होंने जानबूझकर यह तर्क देकर छुपाया कि समाज एक प्राकृतिक घटना और राज्य एक तटस्थ पर्यवेक्षक और नियामक था (कोहन)।

कहने का तात्पर्य यह है कि उपनिवेशों की संस्कृति और समाज की अंतर्निहित विविधता को अपने अनुरूप परिभाषित करना इस शासन व्यवस्था की राजनीतिक विवशता एवं मौलिक द्वंद्व, दोनों ही रहे। उनके द्वारा अपनाई गई सामाजिक वर्गीकरण की कूटनीति उनकी नस्लीय सर्वोच्चता को न्यायसंगत सिद्ध करने की परियोजना रही। अब प्रश्न यह उठता है कि औपनिवेशिक शासन द्वारा अधीनस्थ क्षेत्रों का लैंगिक आधार पर सामाजिक वर्गीकरण करने के पीछे क्या प्रयोजन हो सकता है? तोश (1994, पृ.196-97) लिखते हैं कि ब्रिटिश समाज का अपने साम्राज्य में व्यापक निवेश न केवल लाभ और आजीविका के कारण बल्कि सम्मोहक कल्पनाओं में उनकी महारत से भी उत्पन्न हुआ। यह प्रवृत्ति सिर्फ उन औपनिवेशिक गोरों की ही नहीं थी, जो अन्य नस्लों के संपर्क में थे, परंतु ब्रिटेन के उन पुरुषों की भी थी, जिन्होंने यूरोप से आगे की कभी यात्रा भी नहीं की थी...अफ्रीका, भारत या कैरेबियाई लोगों की छवियों के निर्माण ने श्वेत और नर (एवं मादा से भी) जुड़े अर्थों को पूर्णतः डिगा दिया।

ह्याम (1990, पृ 3) के अनुसार, "रेस कोर्स और वनस्पति उद्यान, बैरक और जेल, भाप इंजन और कानून की किताबों के साथ-साथ ब्रिटेन ने दुनिया भर में यौन रोग फैलाया...अँग्रेजों ने इसके अतिरिक्ति एक विरोधाभासी मगर बहुत प्रभावशाली और निस्प्रभावन से युक्त तर्क का भी निर्यात किया। अपनी आधिकारिक पाखंडपूर्णता...ब्रिटेन की एक अति-संवेदनशील और अति-पाखंडपूर्ण अजीबोगरीब विशेषता रही—स्त्री पुरुष अंतर, जिसके प्रति अपना संकीर्ण, निमिष, दोषपूर्ण और असहिष्णु दृष्टिकोण उसने बाकी दुनिया पर भी सफलतापूर्वक थोपा।" एलिजाबेथ कलिंघम (2001) ने अपनी पुस्तक 'इंपीरियल बॉडीज' में ब्रिटिश भारत को अत्यधिक नस्लीय 'भारतीयकृत' और 'अँग्रेजी' शरीरों के उत्पादन और विनियमन के एक विशिष्ट स्थल के रूप में देखा है। कलिंघम ने यह दर्शाया है कि अपनी वैधता बनाए रखने की ब्रिटिश शासन की राजनीतिक असुरक्षा ने शारीरिक विनियमन के दौर को जन्म दिया, जिसने अँग्रेजी या श्वेत शरीर को औपनिवेशिक शासन का एक मानव यंत्र बना दिया। कलिंघम का व्याख्यान विशेष रूप से लिंग पर आधारित न होकर औपनिवेशिक शासन की मानसिकता और तरीकों को उजागर करता है। मकक्लिंटॉक (1995) और स्टॉलर (1995, 2002) का मत है कि यूरोपीय उपनिवेशवादी अपने बीच वर्ग और लिंग भेद को बनाए रखने के बारे में उतने ही चिंताशील थे, जितना कि वे अपनी नस्लीय श्रेष्ठता के सृजन में थे। उपनिवेशवाद महिलाओं की भूमिका के रूपांतरण के लिए निर्णायक रहा, क्योंकि इसने महिलाओं के बारे में विचारों का एक समुच्चय बनाया और उन पर विशिष्ट भूमिकाएँ थोपीं (सैंटोरू, 1996, पृ . 253)।

भारत की महिलाएँ अमिश्रित वर्ग तो कभी रही ही नहीं। उनके बीच का अंतर, उनकी विभिन्नता जैविक भी रही और निर्मित भी। औपनिवेशिक नीतियों ने इस अंतर का एक तरफ तो अपने हित के लिए इस्तेमाल किया, वहीं दूसरी तरफ 'अनैतिक' और 'अशुद्ध' के तत्वों को लाकर राष्ट्रवादी विमर्श को चुनौती देने की कूटनीति अपनाई। प्रभावी राष्ट्रवादी मत यह था कि भारत की आत्मा परिवार में बसती है। जहाँ महिलाओं का वास है, वहाँ पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव नहीं पड़ा है (चटर्जी,1989)। उपनिवेशवादी विचारधारा ने महिलाओं की रचनात्मक स्वतंत्रता को नकारते हुए उन्हें सम्मानित समाज के ढाँचे से बाहर कर दिया। उपनिवेश शासन के दौरान एक विशिष्ट मध्यम वर्ग का निर्माण हुआ, जिसने नारी की परिकल्पना को पुनः परिभाषित किया। जब महिलाओं की छवि का निर्माण परिवार के अंदर अत्यधिक आदर्श रूप में किया गया, तो इस दायरे से बाहर की महिलाओं का चित्रण 'क्षुद्र' और 'विचित्र' रूप से कर दिया गया (सिंह, 2006, पृ.131)। वीना ओल्डेनबर्ग (1990) का मत है कि वे स्त्रियाँ, जो कभी राजाओं और दरबारियों के संग रहती थीं, जिन्होंने एक शानदार भव्य जीवन का आनंद लिया, पुरुषों और साधनों का अपने सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्यों के लिए अपने तरीके से नियंत्रण किया, संस्कृति और भूषाचार की संरक्षक रहीं, उन्हें अँग्रेजों की औपनिवेशिक नीतियों ने अत्यंत संदिग्ध और वेदनीय स्थिति में लाकर छोड़ दिया। नागरिक कर बहीखातों में उनका वर्णन 'गायन और नृत्य करने वाली स्त्रियों' के रूप में किया गया। ऐसे वर्गीकरण का आविष्कार औपनिवेशिक अधिकारियों द्वारा महिलाओं और भारतीय संस्कृति के प्रति औपनिवेशिक भ्रांतियों का परिचायक रहा। 1857 में तवायफों की सक्रिय और अभूतपूर्व भूमिका से भयाकुल अँग्रेजों ने 'रोगी' एवं 'पतित' रूप में इन्हें प्रक्षेपित कर महिलाओं के सम्माननीय वर्ग से पृथक् कर दिया और फिर विधेयकों को लागू करके अपने सैनिकों की यौन-क्षुधा को शांत करने में इनका बुरी तरह शोषण किया।

1857 के उपरांत वंशानुगत व्यवसायों में शामिल नर्तकियों, तवायफों एवं देह व्यापार में संलग्न महिलाओं का औपनिवेशिक शासन द्वारा सामाजिक बहिष्करण एवं शोषण

उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार औपनिवेशिक शासकों द्वारा नर्तकियों, तवायफों एवं देह व्यापार में संलग्न महिलाओं का जिस तरह समांगीकरण और विनियमन किया गया, वैसा पूर्व-औपनिवेशिक कालखंड में बिलकुल नहीं हुआ। ऐसी महिलाओं का विशेषाधिकार प्राप्त एक वर्ग था, जिनका संबंध राज्य के उच्च पदाधिकारियों से था। इनकी पहचान देह व्यापार नहीं, बल्कि शिष्टाचार पद्धति, नृत्य-संगीत की विभिन्न विधाओं आदि से जुड़ी थी। कर एवं राजस्व के बहीखाते में इस श्रेणी की कई महिलाओं का नाम विशिष्ट रूप से आता है। इन महिलाओं का वर्ग आर्थिक एवं सामाजिक

दृष्टि से (यहाँ तक कि यौन संबंधों के निर्धारण में भी) पूरी तरह स्वतंत्र था। राज्य द्वारा उन्हें विनियमित नहीं किया जाता, बल्कि संरक्षण दिया जाता था। प्रथागत आनुष्ठानिक कार्यक्रमों में इनका अपना एक अलग स्थान था।

औपनिवेशिक शासनकाल से पूर्व परंपरागत नृत्य आदि से संबद्ध वंशानुगत कलाकारों के सम्मान के व्यापक संदर्भ मिलते हैं। कई प्राचीन भारतीय ग्रंथ गणिकाओं के जीवन और कौशल का विवरण देते हैं। आम्रपाली या अंबापाली प्राचीन भारत की सबसे प्रसिद्ध गणिकाओं में से एक थी। लगभग 600-500 ई.पू. में लिच्छवी महाजनपद की राजधानी वैशाली में उसके जन्म का उल्लेख मिलता है। कुछ लेखों के अनुसार, 'आम्रपाली न सिर्फ अपने समय की सबसे सुंदर स्त्री थी, बल्कि एक उत्कृष्ट नर्तकी भी थी, लेकिन उसकी उदारता और समाज के दलित वर्गों के उत्थान में उसका हस्तक्षेप अविवादित है' (आनंद, 2012)। आम्रपाली को 'वैशाली जनपद कल्याणी' की उपाधि दी गई, जो समकालीन युग में नगर की सर्वोच्च सुंदरी को दी जाती थी। एक जनपद कल्याणी सात वर्षों के लिए लिए चुनी जाती और उसे निवास हेतु एक महल दिया जाता। कालांतर में आम्रपाली 'नगरवधू' के रूप में दरबार की राज नर्तकी बनी। उसके पास यह स्वतंत्रता थी कि वह जिससे चाहे अपने शारीरिक संबंध बना सकती थी। कहते हैं कि वैशाली और मगध, दोनों ही राज्यों के राजनीतिक संबंधों एवं निर्णयों में आम्रपाली की महत्वपूर्ण भूमिका रही। राज्य और राजाओं को त्यागकर अंततः वह बौद्ध धर्म अपना कर भिक्षुणी बनी। कहने का अर्थ यह है कि समाज की उपयोगिता हेतु प्राचीन भारत में गणिका को एक सम्मानित सार्वजनिक स्थान प्राप्त था (सेनगुप्ता, 2014, पृ .127-28)।

परिष्कृत साहित्यिक उल्लेखों में गणिकाओं को उनकी शालीनता, त्रुटिहीन शिष्टाचार, सुसंस्कृत रीति-रिवाजों, गायन और नृत्य में प्रवीणता के लिए जाना जाता था। ऋषि वात्स्यायन द्वारा रचित 'कामसूत्र' यौन व्यवहार का एक वैज्ञानिक और गंभीर अध्ययन है। माना जाता है कि यह प्राचीन ग्रंथ तीसरी शताब्दी ईस्वी के अंत के आसपास लिखा गया। इसमें गणिकाओं की कई उप श्रेणियाँ वर्णित हैं, जिन्हें सामाजिक और आर्थिक भूमिकाएँ सौंपी गई थीं। ये श्रेणियाँ आमतौर पर संरक्षकों के वर्ग, कलात्मक कौशल, सांस्कृतिक उपलब्धियों, उनकी सुंदरता, युवावस्था आदि के आधार पर श्रेणीबद्ध थीं। 'कामसूत्र' में गणिकाओं की नौ श्रेणियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। एक गणिका को 64 कलाओं में पारंगत होना अनिवार्य था (बर्टन, 1962; सेनगुप्ता, 2014, पृ .127)। दक्षिण में देवदासियाँ मंदिरों में बसती थीं, जो शहर के मध्य में स्थित होते। समाज में देवदासी का स्थान 'अनुष्ठान विशेषज्ञ' के रूप में पहले आता और उसके बाद ही कलाकार या नर्तकी के रूप में। मंदिर के अनुष्ठानों में उनकी प्रयोजनमूलक भूमिका थी (केर्सनबूम, 1998; 1999)। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में अँग्रेजों द्वारा बनाए कानूनों ने मंदिर नृत्य को प्रतिबंधित कर, उसे और नृत्य दोनों को मंदिर से बाहर कर दिया (मेदूरी, 1988, पृ.1-22)।

मुगलकालीन कई साक्ष्य प्रमाणित करते हैं कि राज्य के सन्निकट होने के साथ-साथ ऐसी संरक्षित महिलाओं को उनके कुलीन संरक्षकों ने आवासिक निकटता भी प्रदान की, जैसे लखनऊ का कैसर बाग, लाहौर की हीरा मंडी, हैदराबाद (महबूब-की-मेंहदी), पुणे का बुधवार पेठ (ओल्डेनबर्ग, 1984)। भारत की संगीत और नृत्य परंपराओं को जीवित रखने में तवायफ की भूमिका विस्तृत रूप से प्रलेखित है। नृत्य विधाएँ, शिष्टाचार पद्धति, ठुमरी-गजल और कई उपशास्त्रीय संगीत की विधाओं का विकास इनके कोठों और हवेलियों से जुड़ा हुआ है (मैनुअल, 1987; 1988-89)। कई ऐसी अदाकराएँ मुक्त छंद की रचयिता और साहित्यिक कला में भी सिद्धहस्त थीं। मुगल दरबार एवं भारत के अन्य शासक एवं राज्य तवायफों के नृत्य, संगीत, संस्कृति और जीवनशैली के ग्राहक और संरक्षक थे। चटर्जी (1993: पृ 163) का कथन है कि मुस्लिम दरबार के मानदंडों ने पूर्व के ब्राह्मण समाज में गणिकाओं की स्थिति की पुष्टि की और उन्हें अनुदान देना जारी रखा। सार्वजनिक अनुष्ठानों में नर्तकियों और संगीतकारों के रूप में उन्होंने भाग लिया और जनाना महल के निवासियों के मनोरंजन के लिए वहाँ भी गए। उन्हें अनुबंध विवाह के माध्यम से परिवार में शामिल भी किया गया। अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी में भी यही प्रक्रिया चलती रही। बंगाल और अवध में शासकों और नर्तकियों के विवाह के दृष्टांत भी मिलते हैं, पर इनकी संख्या बहुत कम है (चटर्जी, 1993: पृ 163)।

इन महिलाओं के लिए राज्य के स्वरूप के अनुसार इनके सामाजिक ओहदे में बदलाव आए। जब राज्य बदला, तो उनकी पहचान और संबंध भी बदले। पूर्व-औपनिवेशिक राज्य में इनकी एक अलग सामाजिक-सांस्कृतिक भूमिका और रुतबा था। राजाओं और नवाबों से इनके अंतरंग संबंध रहे। अँग्रेज अफसर एवं सिपाही भी इनकी कला और यौन कार्य का उपभोग करते रहे। 1857 के बाद से वंशानुगत व्यवसायों में शामिल महिला कलाकारों के औपनिवेशिक 'बहिष्करण' की निरंतर प्रक्रिया शुरू हुई। संशय पर आधारित औपनिवेशिक ज्ञान और वर्गीकरण अलगाव, शारीरिक एवं प्रतीकात्मक रोग, प्रलोभन और संक्रमण पर निर्मित किया गया, जिससे उन्होंने साभिप्राय इस वर्ग को 'अशुद्ध' एवं 'पतित' के रूप में चित्रित किया (चटर्जी, 2008: पृ 208)।

1857 के बाद ब्रिटिश अधिकारियों ने तवायफों, देवदासियों आदि से संबंधित कानूनों की एक शृंखला के द्वारा इनके स्थान और कार्यों को 'वेश्या' का सामूहिक उपनाम लगा दिया (गुप्ता, 2001: 111)। सैनिकों, कस्बों और बंदरगाहों में सूचीबद्ध पुरुषों में यौन रोग के प्रसार को नियंत्रित करने के लिए इंग्लैंड में 1864,1866 और 1869 के बीच संक्रामक रोग अधिनियम पेश किए गए। अधिनियमों के तहत, एक महिला को देह व्यापार में संलग्न व्यक्ति के रूप में एक पुलिसकर्मी पहचानता और फिर उसे पाक्षिक आंतरिक परीक्षा के उपरांत पीड़ित पाए जाने पर नौ महीने से अधिक की अवधि के लिए अस्पताल में नजरबंद किया जाता। इन नियमों के विरुद्ध 1869 में इंग्लैंड में संगठित जन आंदोलन हुआ और 1886 में इस अधिनियम को निरस्त कर दिया गया, पर भारत में इन विधेयकों और कानूनों के इन महिलाओं पर दीर्घकालिक विनाशक परिणाम हुए (डैंग, 1993, पृ. 173-196)। केनेथ बल्लाचेट की 'रेस, सेक्स एंड क्लास अंडर द राज' (1793-1905) संक्रामक रोग अधिनियम, ब्रिटिश नीति, लॉक अस्पताल जैसी संस्थाओं और लाल बाजारों के साथ उनके संबंध, नस्लीय भेदभाव के अलावा और भी कई दिलचस्प सवाल उठाती है। यह किताब बंगाल, बॉम्बे और मद्रास प्रेसीडेंसी के सामयिक संदर्भों के साथ,

नीति और अधिनियमों के क्षेत्रीय कार्यान्वयन को उजागर करती है।

भारत में सवाल नैतिकता और अनैतिकता पर तो आधारित था ही, पर उपनिवेशित लोगों के जीवन को नियंत्रित करने पर और अधिक जोर था। स्त्रियों का यह समूह अँग्रेज और उनके सैनिकों के लिए भयसूचक था। 1857 का संग्राम भारतीय बल और सामर्थ्य का एक सतत अनुस्मारक था और अब पहले से कहीं अधिक एक मजबूत ब्रिटिश सेना की आवश्यकता थी। संग्राम के बाद ब्रिटिश सैनिकों की संख्या बढ़ा दी गई और उन सैनिकों और 'पतित' महिलाओं, दोनों पर नियंत्रण बढ़ाने की कहीं अधिक व्यवस्था की गई (लेवाइन, 1994, पृ .579-602)। विद्रोह के केंद्र बिंदु अवध में सभी तत्वों के नियंत्रण की अभूतपूर्व व्यवस्था की गई। ऐसी परिस्थितियों में उपनिवेशी ताकतों के लिए तर्कसंगत था कि संगीत-नृत्य से संबंधित ऐसे 'बहिष्कृत' समूहों का नियमन और नियंत्रण पूरी तरह से हो जाय। वीना ओल्डेनबर्ग अपनी पुस्तक, 'द मेकिंग ऑफ कॉलोनियल लखनऊ' 1856-1877, में संग्राम के पश्चात् लखनऊ में राजनीतिक और सामाजिक संरचनाओं में आए परिवर्तनों पर प्रकाश डालती हैं। उनकी समीक्षा का केंद्र इस विषय का अँग्रेजों द्वारा एक चिकित्सा समस्या के रूप में निपटारा एवं पुराने नर्तकी समूह के विस्थापन के साथ इस क्षेत्र में नई पेशेवर महिलाओं की भूमिका है। संग्राम के पश्चात् सुरक्षा, स्वच्छता और ब्रिटिश राज्य के नीति और कानून के आवश्यक पहलू बन गए। इसी तरह 1857 के बाद अवध में वाजिद अली शाह के निर्वासन के उपरांत ब्रिटिश हस्तक्षेप और परिवर्तन ने नर्तकी और इस समूह की अन्य महिलाओं को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया।

औपनिवेशिक काल ने संक्रमित एवं रोगग्रस्त होने के आधार पर चिकित्सा-नैतिक तर्क देते हुए ऐसे कलाकारों का पृथक्करण शुरू किया। समाज में यह बात संचारित की गई कि यह स्त्री समूह रोगग्रस्त एवं रजित रोगों से संक्रमित है, जो ब्रिटिश अधिकारियों और सैनिकों को शारीरिक क्षति पहुँचाएगा। इस प्रकार उन्होंने 1864 में इंग्लैंड में प्रभावी संक्रामक रोग अधिनियम (सी.डी.ए) और औपनिवेशिक भारत में 1868 में नृत्य-संगीत से जुड़ी स्त्रियों का पृथक्करण शुरू किया। ऐसी हर स्त्री को देह-व्यापर से जोड़कर उन्हें शहर से बाहर स्थानांतरित किया गया। तदनंतर उन्हें पुलिस उत्पीड़न और हिंसा का सामना करना पड़ा (मोरकॉम, 2014)। संग्राम के बाद भी इस समूह का सामाजिक मूल्यांकन जारी रहा और उनके पूर्वकालिक अंतर और पदानुक्रम में अभूतपूर्व बदलाव आया। नए कानूनों ने संरक्षक और लाभान्वित के आपसी विश्वास, सहानुभूति और वृद्धावस्था संरक्षण परंपराओं आदि को भी परिवर्तित किया। इस प्रकार जो व्यवसाय पहले सामाजिक-सांस्कृतिक रूप में व्याप्त थे, वे अब पूरी तरह से एक यौन-श्रम केंद्रित व्यापर में परिवर्तित हो गए। औपनिवेशिक राज्य द्वारा मनोरंजन व्यवसाय की संस्था में लाए गए औपचारिक बदलाव के परिणामस्वरूप शोषण एवं दमन के तरीके में दिन-प्रतिदिन गुणोत्तर वृद्धि हुई। उसी भाँति महिलाओं के इस वर्ग का नैतिक, सामाजिक और आर्थिक पतन होता चला गया (लेग्ग, 2012 पृ. 1459-1505)। एक ओर राज्य का सभ्यता मिशन और दूसरी ओर सेना की इस समूह पर बढ़ती निर्भरता ने इस वर्ग की कला और सांस्कृतिक विरासत को देह व्यापार के दलदल में धकेल दिया। नैतिकता और राजनीति का विरोधाभासी और असहज संलयन समाज के इस जैविक संबंध को तार-तार कर गया।

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की यौन शिकार भारतीय महिला गिरमिटिया श्रमिकों की स्थिति

शोध पत्र का यह भाग उपनिवेशवादियों द्वारा प्रवासी श्रमिक भारतीय नारी से संबंधित सामाजिक श्रेणियों के निर्माण की प्रक्रिया पर केंद्रित है। उन्नीसवीं सदी से औपनिवेशिक राजनीतिक अर्थव्यवस्था की एक नई विशेषता सामने आई। एक लाख से अधिक भारतीयों को विभिन्न उपनिवेशों के मजदूर के रूप में बागानों पर काम करने, द्वीपों की देखरेख के लिए बाहर भेज दिया (काले, 1998; कार्टर 2012; गुप्ता, 2014; डे, 2014)। ब्रिटिश सरकार द्वारा उनके साम्राज्य से दास प्रथा के उन्मूलन के बाद बागान श्रमिकों की कमी को दूर करने के लिए यह व्यवस्था आनन-फानन में शुरू की गई। यह प्रणाली दास प्रथा से भिन्न, अनुबंधित श्रम के रूप में फीजी, पश्चिम त्रिनिदाद, नेटाल और मॉरीशस के बागानों में भारतीय गिरमिटिया श्रमिकों का आयात था। गिरमिटिया श्रमिकों में से अधिकांश श्रमिक उत्तर प्रदेश और बिहार से थे। अप्रवासी श्रमिकों की लिंग संरचना विषम थी। महिलाओं की तुलना में पुरुषों ने अधिक प्रवास किया। फिर भी, 28 से 40 प्रतिशत प्रवासी महिलाएँ रहीं और उनमें से भी 70 प्रतिशत एकल (गुप्ता, 2014, पृ.716)। ह्यू टिंकर (1974) गिरमिटिया व्यवस्था की तुलना दासता से करते हैं। गिरमिटिया महिलाओं, जो मुख्यतः निम्न जाति, एकल प्रवासी और समाज से बहिष्कृत थीं, उनको 'सॉरी सिस्टरहुड' के रूप में वर्णित करते हुए वे उन्हें वृक्षारोपण अर्थव्यवस्था की यौन शिकार के रूप में देखते हैं। मरीना कार्टर (2012) ने 'पतिता स्त्री' के औपनिवेशिक दृष्टिकोण का कड़ा विरोध किया है। उनका मत है कि महिलाओं का अभाव और एकल या विधवा महिलाओं का देह व्यापर में संलग्न होने की धारणा और दस्तावेजीकरण, दोनों ही बातें कॉलोनियों में मजदूरों की मुख्तारी और परिवहन के लिए जिम्मेदार ब्रिटिश भारतीय अधिकारियों और एजेंटों द्वारा जानबूझकर बनाई गई। कार्टर के अनुसार कई पुरुष श्रमिकों ने मॉरीशस से भारत में अपनी पत्नियों और बच्चों के परिवहन के लिए आवेदन किया था, पर सरकार ने उसे अनुत्तरित छोड़ दिया, जबकि वे पुरुष, जिन्होंने परिवार के साथ प्रवास किया, उनके परिवार अक्सर खुद को अलग पाते।

उपनिवेशों में सामाजिक प्रक्रियाओं द्वारा पहले से ही उपेक्षित एवं अशक्त महिलाओं के पुनरुत्थान की जगह उपनिवेशी शासकों ने उत्प्रवास डिपो में या वृक्षारोपण कॉलोनियो में प्रवास हेतु की गई जहाज यात्रा के दौरान उनका दैहिक, आर्थिक एवं सामाजिक शोषण किया (लाल, 1985, पृ 55-71)। वस्तुकरण और प्रवास के साथ-साथ यौन-कार्य के लिए मानव तस्करी के विवादित तरीके इस समस्या के केंद्र में हैं। औपनिवेशिक शासन ने अपनी इन त्रुटियों को न कभी स्वीकारा न ही सुधारा, पर भारत की पत्रकारिता, फिल्मों-कविताओं और मौखिक इतिहास में महिलाओं के ऐसे वर्गों का संघर्ष और योगदान उल्लेखनीय है। निम्नलिखित दो खंडों में इसी विषय की विवेचना की गई है।

नाटक-सिनेमा में स्वतंत्रता आंदोलन में नर्तकियों एवं तवायफों के योगदान का चित्रण

स्टोक्स (1986); भद्रा (1988) आदि विद्वानों का मत है कि 1857 के विद्रोह में साधारण व्यक्तियों की सहभागिता पर हुए अधिकतम अध्ययन पुरुषों की भागीदारी पर केंद्रित हैं, लेकिन किस्से-कहानियों में ऐसी

नर्तकियों, तवायफों और देह व्यापर में संलग्न स्त्रियों का विवरण है, जो कि समकालीन किसी औपचारिक पत्रों में नहीं मिलता। लखनऊ, अवध और कानपुर जैसे क्षेत्र, जहाँ संग्राम अत्यधिक तीव्र रहा, वहाँ नवाबों, राज्य के अधिकारियों या सैनिकों से संबंधित ऐसी नर्तकियों ने उनका जमकर समर्थन किया। दक्षिण के राज्यों में भी राजनर्तकियों और मनोरंजन से संबंधित स्त्रियों के वर्ग ने राजाओं को पूर्ण समर्थन दिया। उनकी निष्ठा और सक्रिय समर्थन की चोट को अँग्रेज अधिकारी भूल नहीं पाए। बीसवीं सदी के उपन्यासकार और पत्रकार अब्दुल हलीम शरार (1975) ने 1857 की लखनऊ की घटनाओं के उत्तरजीवियों की मौखिक कहानियों के आधार पर अवध के नवाबों के बारे में उल्लेखनीय पुस्तक लिखी है। इसी संदर्भ में लखनऊ की तवायफों की राजनीति में सक्रिय भूमिका का वे विस्तृत वर्णन देते हैं। उस जमाने में हाकिम महदी एक बेहद सुसंस्कृत व्यक्ति माना जाता था। यह बाद में अवध का वजीर भी बना। उसकी प्रारंभिक सफलता का श्रेय पियारो नामक एक तवायफ को जाता है। पियारो ने उसे हाकिम बनाने के लिए अवध के नवाब को अपनी तरफ से धन और नजराने दिए। शरार लिखते हैं कि उस समय व्यक्ति तभी सुसंस्कृत माना जाता, यदि उसका तवायफों से संबंध होता था।

कानपुर के बीबीघर की मालकिन हुसैनी या फिर बीसवीं सदी की बेहद प्रसिद्ध अदाकारा गौहर जान, हुस्ना बाई, विद्याधर बाई (नागर, 1958) के किस्से आज भी वहाँ के लोग सुनाते हैं। लेकिन कुछ कहानियाँ, जो नाटक और फिल्मों में बताई गईं; वे हमारे मौखिक इतिहास का अभिन्न अंग हैं। त्रिपुरारी शर्मा द्वारा अजीजन निसा पर लिखित नाटक, सन् सत्तावन का किस्सा (एक तवायफ और 1857 का विद्रोह) एक अलग कहानी है (सिंह, 2006; 2007)। नाटक की मुख्य पात्र तवायफ अजीजुन निसा है, जो कानपुर में अँग्रेजों के खिलाफ 1857 के विद्रोह में सिपाहियों के साथ शामिल हुई। अजीजुन निसा पुरुषों की तरह कपड़े पहनती। वह सिपाहियों के बहुत करीब थी और उसका महल विद्रोही सिपाहियों का मिलन स्थल बना। इसी तरह मुहम्मद हदी रुस्वा (1975) का उपन्यास 'उमराव जान' अवध की एक तवायफ की अदा, सुंदरता, नवाब से उसके संबंध और एक विद्रोही सैनिक से प्रेम की कहानी है। 1857 के संग्राम के बाद उसका विस्थापन और सामाजिक पतन ब्रिटिश दमन और नियंत्रण की गहराई को बखूबी दर्शाते हैं। इस किरदार पर दो हिंदी फिल्में बनीं, जो दर्शक दीर्घा और आलोचकों द्वारा खूब सराही गईं। माना जाता है कि लोक कथाओं में इन महिलाओं के किस्से आज भी बहुत प्रचलित हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि 1857 के संग्राम में भारत के वीरों ने अँग्रेजों को अभूतपूर्व चुनौती दी, पर महिलाओं के इस वर्ग ने कई ऐसे योद्धाओं को तन, मन, धन से संबल दिया। सिर्फ यही नहीं, अँग्रेजों ने इन महिलाओं पर गोरे सैनिकों को पथभ्रष्ट और रोगग्रस्त करने का अभियोग भी लगाया। यदि इसे सच मानें तो विरोधी सैनिक दस्ते को कमजोर करना कोई कम योगदान नहीं है। लोककथाओं और जन-स्मृतियों में न जाने इन तवायफों के योगदान के कितने और किस्से हैं, जो अकादमिक लेखन में आने बाकी हैं।

पत्रिकाओं एवं कविताओं में भारतीय महिला गिरमिटिया श्रमिकों स्त्रियों के संघर्ष का चित्रण

1913 में भारतीय गिरमिटिया महिला के पत्र पर आधारित 'भारत मित्र' पत्रिका में एक लेख प्रकाशित हुआ। चरण चमार (लखुआपोखर, पी.ओ बेलाघाट, जिला-गोरखपुर) की कुंती नाम की बेटी के साथ हुए अत्याचार ने गिरमिटिया श्रम की इस उपनिवेशी प्रणाली पर बहुत बड़ा सवाल उठाया (कुमार, 2013)। 10 अप्रैल और 13 अगस्त, 1913 के 'लीडर' पत्र और 8 मई, 1914 के 'भारत मित्र' में श्वेत सर्वेक्षक के द्वारा बलात्कार की रिपोर्ट आई। कुंती ने अपने पत्र में अपने ऊपर 10 अप्रैल 1913 को श्वेत सर्वेक्षक और उसके सहायक द्वारा बलात्कार करने का आरोप लगाया। 'भारत मित्र' पत्रिका ने लिखा कि निम्न जाति की होने के बावजूद कुंती ने कई संपन्न (उच्च) वर्ग की महिलाओं को पीछे छोड़ दिया। अपनी अस्मिता बचाने के लिए नदी की धारा में कूदने के उसके साहस के कारण हमारे देश की सम्माननीय और बहादुर महिलाओं में उसका नाम लिया जाएगा। कुंती की कहानी ने औपनिवेशिक शासन की आलोचना को मजबूत आधार प्रदान किया। औपनिवेशिक विचारधारा में भारतीय महिला के जीवन का मोल उसके पति के प्रति समर्पण के अलावा कुछ भी नहीं था। कुंती प्रकरण महिला विरोधी इस नजरिये का एक सशक्त प्रत्युत्तर बना (केली, 2005 पृ 45-65)।

कई ऐसी पत्रिकाएँ थीं, जिनमें गिरमिटिया महिलाओं पर विशेष रूप से लेख प्रकाशित हुए (गुप्ता, 2014, पृ. 716-722)। उदाहरणस्वरूप प्रतिष्ठित पत्रिका 'चाँद' में जनवरी 1926 में प्रमुख हिंदी पत्रकार बनारसीदास चतुर्वेदी ने अतिथि संपादक के रूप में इस विषय पर 300 से अधिक पन्ने का विशाल संग्रह प्रकाशित किया। पाँच लंबी कविताएँ और चार लेखों के इस अंक ने इस सामाजिक-आर्थिक विषय पर जन-चेतना जाग्रत करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जनवरी 1926 (पृ 253) में प्रकाशित 'चाँद' के अंक में ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' की 'प्रवासिनी बाला' नामक कविता प्रकाशित हुई, जिसमें प्रवासी श्रमिक युवती का विलाप उसकी स्थिति का विवरण देता है।

बैठी मैं प्रवासिनी बाला!
करुण विलाप 'कलाप' करती हूँ,
सहती कष्ट कसाला

'चाँद' के जनवरी के ही अंक में (पृ.451-3) अरविंद प्रसाद श्रीवास्तव ने अपनी कविता 'प्रवासिनी भारतवासिनी' में लिखा :

छाती फटती, सर दुखता है, कहने में आती है लाज!
किंतु कहें मन की हम किससे, हे भारत के पुरुष समाज...
हा! क्या-क्या मैंने भोगा है, सुनो, करो पत्थर छाती...
माता सीता का हित कितना, रचा गया भारी संग्राम,
एक द्रौपदी की लज्जा का, समर महाभारत था दाम
आर्यों के पवित्र शोणित में, नहीं उष्णता है क्या आज
भाई खड़ा देख सकता है, जाती जो बहन की लाज

औपनिवेशिक कुशासन की कुत्सित व्यवस्था की निंदा करते हुए 'प्रवासिनी भारतवासिनी' में आगे लिखा :

नर-पिशाच हैं यहाँ बहुत से, गोरे हैं स्त्रित्व घाती

फरवरी 1917 (पृ. 63-4, 100-5) में 'स्त्री दर्पण' पत्रिका में सी.एफ. एंड्रयूज का कुली प्रथा शीर्षक से विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें

इस शोषक प्रथा का भारत के संदर्भ में विस्तृत वर्णन था। मार्च 1917 में स्त्री दर्पण के संपादकीय (स्त्रियाँ और भारती) में नंदरानी नेहरू ने इस समस्या और भारत की स्त्रियों की स्थिति पर प्रकाश डाला। अप्रैल 1917 के संपादकीय लेखन (महिला प्रतिनियुक्ति और वायसराय की प्रतिक्रिया) में रामेशवरी नेहरू ने इस वर्ग की महिलाओं की निराशाजनक जीवन स्थितियों पर प्रकाश डाला। अप्रैल 1917 के 'स्त्री दर्पण' में ही उमा नेहरू ने स्त्रियाँ और भारती एवं इसी पत्रिका के मार्च 1920 के संपादकीय लेख उपनिवेशों में हिंदुस्तानी में इस समस्या को उजागर किया। इन महिला श्रमिकों के उत्पीड़न का स्वर आज भी राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त (पालीवाल 2008,पृ 94-95) की कविताओं में गूँजता है।

देखो, कौन दौड़ कर सहसा कूद पड़ी वह जल में,
पाप जगत् से पिंड छुड़ा कर डूबी आप अतल में

उन्नीसवीं सदी के मध्य में पंडित बेनीराम के बिदेसिया जैसे भोजपुरी लोकगीतों और भिखारी ठाकुर के नाटक बिदेसिया जैसी प्रस्तुतियों में गिरमिटिया भर्ती में फर्जीवाड़े, मुश्किलों का चित्रण बखूबी किया गया है (कुमार, 2013, पृ 516)।

फिरंगिया के राजुवा में छूटा मोर देसुवा हो,
गोरी सरकार चली चल रे बिदेसिया...
भोली हमें देख अर्कती भरमाए हो, ...
कलकत्ता पर जाओ पाँच साल रे बिदेसिया।
दीपूवा में लाए पकराओ कगदुवा हो,
अँगूठवा लगाए देहल रे बिदेसिया।
पाल के जहजुवा मा रोय-धोय बइठि हो,
कइसे होइ कालापानी पार रे बिदेसिया...
काली कोठरिया मा बीते नहीं रतिया हो,
किससे बताए हम पीर रे बिदेसिया।

निष्कर्ष

भारत की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक व्यवस्था इतनी विषमांग थी कि इसकी समरूपता यूरोप में तो क्या भारत के ही विभिन्न क्षेत्रों में मिलनी कठिन थी। यहाँ का राजनीतिक विकेंद्रीकरण, समाज में समूहों के अंतर-संबंध और समृद्धि के विभिन्न कारक आदि सदियों से विकसित सभ्यता का परिणाम थे। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि प्राचीन भारत में जिस समय गणराज्य और अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय फल-फूल रहे थे, उस कालखंड में कई तथाकथित यूरोपीय साम्राज्यवादी राष्ट्र पत्थरों को घिस के चिनगारियाँ निकलना सीख रहे थे। कहने का तात्पर्य यह है कि भारत की संस्कृति और समाज को समझ पाना अँग्रेजों की क्षमता के परे था। ऐसी स्थिति में बलपूर्वक मौजूदा राजनीतिक-सामाजिक संरचना को तार-तार करके अपनी संकीर्ण युक्तियों को कार्यान्वित करना उनकी मजबूरी भी बन गया और कूटनीति भी। जिस हद तक औपनिवेशिक राज्यों ने 'सभ्यता मिशन' का अनुसरण किया या जिस प्रकार उन्होंने औपनिवेशिक लोगों को अनुशासित कृषक या श्रमिक अथवा नौकरशाही राज्य के अधीनस्थ बनाने का प्रयास किया, वह पूर्णतः अनुचित और यातनापूर्ण था। विषम और जीवंत भारतीय समाज में अँग्रेजों द्वारा लाई गई सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक विकृति अभूतपूर्व है। दो शताब्दियों के उनके शासन में जो कुछ भी 'भारतीय' था, उसे सभ्य बनाने, सुधारने और पुनर्गठित करने के दुस्साहस में, अँग्रेजों ने जो वास्तव में किया, वह देश के लिए दुर्भाग्यपूर्ण रहा। उपनिवेशवादियों द्वारा स्त्री समूह को मनमाने रूप में श्रेणीबद्ध किया गया। उन्हें श्रेणीबद्ध करने के लिए अँग्रेजों ने उन किन्हीं भी कारकों का प्रयोग नहीं किया, जिनसे कि उन्होंने यूरोपीय महिलाओं को परिभाषित किया। ये किसी भी प्रकार वस्तुनिष्ठ और सार्वभौमिक नहीं थे, इन्हें भारत के संदर्भ में ही निर्मित किया गया। अनिवार्यतः उपनिवेशवाद की एक विशिष्ट प्रकृति यह रही कि उपनिवेश और एकल प्रभुत्व वाले राज्य के बीच एक अनन्य और अवपीड़क संबंध रहा। यह यूरोप के आर्थिक तर्कसंगतता, व्यक्तित्व, स्वतंत्रता, भागीदारी और सामाजिक प्रगति के सार्वभौमिक संलाप के सर्वथा विरुद्ध था। यूरोपीय उपनिवेशवादी वर्ग और लिंग भेद के साथ-साथ सिर्फ अपनी नस्लीय श्रेष्ठता को बनाए रखने में संबद्ध थे। श्वेत जाति की श्रेष्ठता स्थापित करते हुए अँग्रेजों ने अनैतिक और अशुद्ध के तत्वों को लाकर राष्ट्रवादी विमर्श को चुनौती देने की कूटनीति अपनाई। नर्तकियों, तवायफों एवं देह व्यापार में संलग्न महिलाओं को नियंत्रित और उनके श्रम को विनियमित करने के लिए अँग्रेजों ने कानून एवं अधिनियम का पूर्णतः दुरुपयोग किया। दास प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् अनुबंधित श्रम के नाम पर मानव संसाधन का निर्यात इनकी एक सोची-समझी योजना थी। इस क्रम में भर्ती की गईं महिला प्रवासी श्रमिकों का दैहिक, आर्थिक एवं सामाजिक शोषण अँग्रेजों के दोहरे नैतिक सिद्धांत का परिचायक रहा। इन शासकों का उद्देश्य मात्र उपनिवेश क्षेत्रों के संसाधनों का दोहन और अपना अधिक से अधिक आर्थिक लाभ था। जिन दो वर्गों की महिलाओं की विवेचना इस पत्र में की गई है, वे 'परिवार और नैतिकता' की औपनिवेशिक अवधारणा से बिलकुल भिन्न थीं। उपनिवेश की संस्कृति को समझने में अक्षम ये श्वेत शासक और उनके अधिकारियों ने भ्रांतियों को प्रचारित कर अपना वर्चस्व कायम करने का प्रयास किया। उपर्युक्त दोनों वर्ग की महिलाएँ इसकी प्रत्यक्ष शिकार बनीं, पर इन्होंने अपने तरीके से औपनिवेशिक शासन को कड़ी चुनौती भी दी, जो कि नाटकों-कविताओं और पत्रिकाओं के माध्यम से आज भी जनस्मृति का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

संदर्भ

आनंद, ए. (2012). द लीजेंड ऑफ आम्रपाली. नई दिल्ली: सृष्टि पब्लिशर्स.

एलिज़ाबेथ, सी. (2001). इम्पीरियल बॉडीज: द फिज़िकल एक्सपीरियंस ऑफ द राज c. 1800-194. लंदन: पॉलिटी.

ओल्डेनबर्ग, वी. टी. (1990). 'लाइफस्टाइल ऐज रेजिस्टेंस: द केस ऑफ द कोर्टेजेंस ऑफ लखनऊ', फेमिनिस्ट स्टडीज, 16, 2 (समर).

ओल्डेनबर्ग, वी. टी. (1984). द मेकिंग ऑफ कॉलोनियल लखनऊ 1856-1877. न्यू जर्सी: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.

ओल्डेनबर्ग, वी. टी. (1990). लाइफस्टाइल ऐज रेजिस्टेंस: द केस ऑफ द कोर्टेसन्स ऑफ लखनऊ, इंडिया. फेमिनिस्ट स्टडीज, समर, खंड.16, नं. 2, स्पीकिंग फॉर अदर्स/स्पीकिंग फॉर सेल्फ: वीमेन ऑफ कलर. पृ. 259-287.

उमराव जान फिल्म के निर्देशक श्री मुजफ्फर अली का साक्षात्कार: https://www.youtube.com/watch?v=Rw58C3FpDwI

कल्याण एस, वी. एंड रोहिणी एस. (2017). स्टेट ऑफ़ अफेयर्स, अफेयर्स ऑफ द स्टेट: स्टेट-प्रोस्टीटूशन एक्वेशन्स इन इंडिया. इंडिया इंटरनेशनल सेंटर क्वार्टरली, खंड. 44, नंबर 2 (ऑटम), पृ.113-129.

कपूर, आई. (1993). फॅमिली प्लानिंग एन्कम्पासेस सेक्सुअलिटी- ऍन एशीयन पर्सपेक्टिव. इन रीडिंग्स ऑन सेक्सुअलिटी एंड रिप्रोडक्टिव हेल्थ. संकलन, महेंद्र वत्स, 11–13. बॉम्बे: फॅमिली प्लानिंग एसोसिएशन ऑफ इंडिया.

काले, एम. (1998). फ्रैगमेन्ट्स ऑफ एंपायर; कैपिटल, स्लेवरी, एंड इंडियन इण्डेंचर्ड लेबर माइग्रेशन इन द ब्रिटिश कॅरीबीयन, फिलेडैल्फिया. पृ.141.

कार्टर, एम. (2012). वीमेन एंड इंडेंचर: एक्सपीरियंस ऑफ इंडियन लेबर माइग्रेंट्स. पिंक पिजन प्रेस.

कुमार, ए. (2013). एंटी-इंडेंचर भोजपुरी फोक सॉङ्ग्स एंड पोयम्स फ्रॉम नार्थ इंडिया. मैन इन इंडिया, खंड 93. नं 4 पृ .509-519.

कूपर, एफ. एंड स्टोलर, ए. एल. (1989). टेंशन्स ऑफ़ एम्पायर: कोलोनियल कंट्रोल एंड विजन्स ऑफ रूल. अमेरिकन एथ्नोलॉजिस्ट, खंड. 16, नं 4 (नवंबर), पृ. 609-621

गिलियन, एल. (1956). 'द सोर्सेज ऑफ इंडियन इमीग्रेशन टू फिजी'. पॉपुलेशन स्टडीज, खंड. 10, नं. 2, (नवंबर), पृ. 150.

गुप्ता, सी. (2014). सेविंग 'रॉङ्गड बॉडीज: कास्ट, इंडेंचर्ड वीमेन एंड हिंदी प्रिंट-पब्लिक स्फीयर इन कोलोनियल इंडिया. प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कॉंग्रेस, खंड. 75, प्लैटिनम जुबली पृ. 716-722.

गुप्ता, सी. (2001). सेक्सुअलिटी, ऑब्सेनिटी, कम्युनिटी: पब्लिक इन कोलोनियल इंडिया. दिल्लीः परमानेंट ब्लैक.

घोष, डी. (2004). जेंडर एंड कोलोनिअलिस्म: एक्सपैंशन और मार्जिनलाइज़ेशन? द हिस्टोरिकल जर्नल. खंड.47, नंबर 3 (सितंबर), पृ. 737-755.

चकल्दार, एच.सी. (1976). सोशल लाइफ इन अन्सिएंट इंडिया: स्टडीज़ इन वात्स्यायनस कामसूत्र. भारतीय पब्लिशिंग हाउस. दिल्ली. पृ. 11-35.

चटर्जी, जी. (2008). द वेश्या, द गणिका एंड दी तवायफ: रिप्रेसेंटेशन्स ऑफ प्रोस्टीटूट्स एंड कोर्टेसन्स इन इंडियन लैंग्वेज लिटरेचर एंड सिनेमा, इन रोहिणी साहनी, वी. कल्याण शंकर एंड हेमंत आप्टे (सं.), प्रोस्टीटूशन एंड बियॉण्ड: ऍन एनालिसिस ऑफ़ सेक्स वर्क इन इंडिया. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशन्स.

चटर्जी, पी. (1989). द नेशनलिस्ट रिजॉल्यूशन ऑफ द विमेंस क्वेश्चन; रिकॉस्टिंग वीमेन: एस्सेज़ इन कोलोनियल हिस्ट्री; सांगरी, कुमकुम एंड सुदेश वैद. नई दिल्ली: काली फॉर वीमेन. पृ. 233-253.

चटर्जी, आर. 1993. 'प्रोस्टीटूशन इन नाइनटींथ सेंचुरी बंगाल: कंस्ट्रक्शन ऑफ क्लास एंड जेंडर'. सोशल साइंटिस्ट, 21 (9/11): पृ. 159-72।

जोशी, पी.सी. (सं.). (1957). 1857: ए सिंपोजियम. दिल्ली: पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस.

टिंकर, एच. (1974). ए न्यू सिस्टम ऑफ स्लेवरी: द एक्सपोर्ट ऑफ इंडियन लेबर ओवरसीज 1830-1920. लंदन.

डे, डी. (2014). इण्डेंचर्ड लेबररज एंड द नेटिव वीमेन इन मॉरिशस: द कोलोनियल पर्सपेक्टिव्स. प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कॉंग्रेस खंड. 75, प्लेटिनम जुबली. पृ. 989-995.

डैंग, के. (1993). प्रॉस्टिट्यूट्स, पेटरंस एंड द स्टेट: नाइनटींथ सेंचुरी अवध. सोशल साइंटिस्ट, सितंबर-अक्टूबर खंड. 21, नंबर 9/11 पृ.173-196.

तलाल, ए. (सं.).(1973). एंथ्रोपोलॉजी एंड द कोलोनियल एनकाउंटर. लंदन: इथाका

तोश, जे. (1994). व्हाट शुड हिस्टोरियंस डू विथ मैस्क्युलिनिटी? रेफ्लेक्शंस ऑन नाइनटींथ-सेंचुरी. हिस्ट्री वर्कशॉप. न. 38, पृ.179-202.

दुर्बा, जी. (2006). सेक्स एंड द फैमिली इन कोलोनियल इंडिया: द मेकिंग ऑफ एम्पायर, कैंब्रिज : कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

नागर, ए. (1958). ये कोठेवालियाँ. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.

निरंजना, टी. (2011). इंडियन नेशनलिज्म एंड फीमेल सेक्शुअलिटी: ट्रिनिडाडियन टेल. फेथ स्मिथ द्वारा सं. सेक्स एंड द सिटीजन, यूनिवर्सिटी वर्जीनिया प्रेस.

पति, बी. (2007). हिस्टोरियंस एंड हिस्टोरिओग्राफी: सिचुएटिंग 1857. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, मई 12-18, 2007, वॉल्यूम। 42, नंबर 19 (मई 12-18), पृ 1686-1691.

पालीवाल, जे. (सं.) (2008). मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली खंड. 2, दिल्ली.

पैक्सटन, एन. (1999). राइटिंग अंडर द राज: जेंडर, रेस एंड रेप इन द ब्रिटिश कोलोनियल इमेजिनेशन, 1830-1947, न्यू ब्रंसविक: रटगर्स यूनिवर्सिटी प्रेस.

फारूकी, ए. (2000). फ्रॉम बैजा बाई टू लक्ष्मी बाई: द सिंधिया स्टेट इन द अर्ली नाइनटींथ सेंचुरी एंड द रूट्स ऑफ़ 1857. बिस्वमय पति (सं) इश्यूज इन मॉडर्न इंडियन हिस्ट्री: फॉर सुमित सरकार. मुंबई: लोकप्रिय प्रकाशन.

बल्लाचेट, के. (1980). रेस, सेक्स एंड क्लास अंडर द राज। इम्पीरियल एटिट्यूड एंड पॉलिसीज एंड देयर क्रिटिक्स, 1793-1905. लंदन: विडेनफील्ड और निकोलसन.

बर्टन, आर. ई. (1962). कामसूत्र. अनुवाद: न्यूयॉर्क: ई. पी. डटन.

बेली, सी, ए. (1983). रुलर्स, टाउंसमेन एंड बजार्स: नार्थ इंडियन

सोसाइटी इन द ऐज ऑफ ब्रिटिश एक्सपेंशन, 1770-1870. कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

भद्रा, जी. (1988). फोर रेबल्स ऑफ एटीन-फिफ्टी-सेवन, इन रणजीत गुहा एंड गायत्री चक्रवर्ती स्पिवक (सं.) सिलेक्टेड सबाल्टर्न स्टडीज, (न्यूयॉर्क एंड ऑक्सफोर्ड, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस.

मुख़र्जी, आर. (1984). अवध इन रिवोल्ट,1857-58. अ स्टडी ऑफ पॉपुलर रेजिस्टेंस. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

मेदूरी, ए. (1988). भरत नाट्यम-व्हाट आर यू? एशीयन थिएटर जर्नल. खंड 5 (नं 1).

मैकक्लिंटॉक, एन. (1995). इंपीरियल लेदर: रेस, जेंडर एंड सेक्सुएलिटी इन द कोलोनियल कॉण्टेस्ट न्यूयॉर्क: रूटलज. पृ .160-5, 167-9, 223, 252-3.

मैनुअल, पी. (1987). कोर्टेसंस एंड हिंदुस्तानी म्यूजिक. एशियन रिव्यू 1 (स्प्रिंग): पृ.12-17

मैनुअल, पी. (1988-89). ए हिस्टोरिकल सर्वे ऑफ दी उर्दू गजल-सांग इन इंडिया. एशियन म्यूजिक. 20(1): पृ 93-113.

मोरकॉम, ए. (2014). इल्लिसिट वर्ल्ड्स ऑफ इंडियन डांस: कल्चर्स ऑफ एक्सक्लूजन. लंदन: हर्स्ट एंड कंपनी पब्लिशर्स.

मोरकॉम, ए. (2014). इलिसिट वर्ल्ड्स ऑफ इंडियन डांस: कल्चर्स ऑफ एक्सक्लूजन. लंदन: हर्स्ट एंड कंपनी पब्लिशर्स.

मॉडर्न एशियन स्टडीज. खंड. 48, नंबर 4 (जुलाई). पृ. 986-1023.

रॉय, टी. (1994). द पॉलिटिक्स ऑफ़ अ पॉपुलर अप्राइसिंग: बुंदेलखंड इन 1857. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

रुसवा, एम. एम. एच. (1975). उमराव जान 'अदा'. दिल्ली: राजकमल.

लाल. बी. (1985). कुंतीज क्राई: इंडेंचर वूमेन इन फिजी प्लांटेशन. इंडियन इकोनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू. खंड.22, नं 1.

लेवाइन, पी. (1994). वेनेरल डिजीज, प्रोस्टीटूशन, एंड द पॉलिटिक्स ऑफ एम्पायर: द केस ऑफ ब्रिटिश. जर्नल ऑफ द हिस्ट्री ऑफ सेक्सुअलिटी. खंड.4 नं 4. (अप्रैल).

लेग्ग, एस. (2012). स्टिमुलेशन, सेग्रीगेशन एंड स्कैंडल: जोग्राफिज ऑफ प्रोस्टीटूशन इन ब्रिटिश इंडिया, बिटवीन रजिस्ट्रेशन (1888) एंड सप्रेशन (1923). मॉडर्न एशियन स्टडीज, नवंबर. खंड.46, नं 6 (नवंबर).

वाहिद, एस. (2014). वुमन ऑफ 'इल रेप्यूट': एथिक्स एंड उर्दू लिटरेचर इन कोलोनियल इंडिया.

शरार, ए. एच. (1975). लखनऊ: द लास्ट फेज ऑफ एन ओरिएंटल कल्चर, अनु. एवं सं. ई.एस. हरकोर्ट और फखिर हुसैन (लंदन: पॉल एलेक)

शार्प, जे. (1993). एलेग्रीज ऑफ एंपायर: द फिगर ऑफ वुमन इन द कोलोनियल टेक्स्ट. मिनियापोलिस: विश्वविद्यालय मिनेसोटा प्रेस.

सेनगुप्ता, एम. (2014). कोर्टेसन कल्चर इन इंडिया: द ट्रांज़िशन फ्रॉम द देवदासी टू द तवायफ और बाईजी. इंडिया इंटरनेशनल सेंटर क्वार्टरली, खंड.41, नंबर 1 (समर). पृ.124-140.

सैंटोरू, एम. ई. (1996). द कोलोनियल आईडिया ऑफ वीमेन एंड डायरेक्ट इंटरवेंशन: द माउ माउ केस. अफ्रीकन अफेयर्स, (अपर), खंड 95, न. 379 पृ. 253-267.

स्टोलर, एन. एल. (1995). रेस एंड द एजुकेशन ऑफ डिजायर: फौकॉल्ट्स हिस्ट्री ऑफ सेक्सुअलिटी थिंग्स. डरहम, एनसी.

स्टोलर, एन एल. (2002). कार्नल नॉलेज एंड इंपीरियल पावर: रेस एंड द इंटिमेट इन कोलोनियल रूल. बर्कले.

स्टोक्स, ई. (1969). रूरल रिवोल्ट इन द ग्रेट रिबेलियन ऑफ़ 1857 इन इंडिया, ए स्टडी ऑफ द सहारनपुर एंड मुजफ्फरनगर डिस्ट्रिक्स. द हिस्टोरिकल जर्नल, दिसंबर, खंड. 12, नं. 4.

स्टोक्स, ई. (1980). द पेसेंट एंड द राज, स्टडीज इन अग्रेरियन सोसाइटी एंड पेसेंट रिबेलियन इन कोलोनियल इंडिया. न्यूयॉर्क एंड लंदन. कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

स्टोक्स, ई. (1986). दी पेसंट आर्म्ड, द इंडियन रिवोल्ट ऑफ 1857. टोरंटो, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

सिंह, एल. (2007). विसिबिलाइजिंग द 'अदर' इन हिस्ट्री: कोर्टेसंस एंड दी रिवोल्ट. इकनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली. मई 12-18, खंड.42, नंबर 19 (मई 12-18), पृ. 1677-1680.

सिंह, एल. (2006). मेकिंग विजिबल द 'पेटी' एंड 'ग्रोटेस्क' ऑफ द नेशंस नैरेटिव: डायलाग विथ त्रिपुरारी शर्मा. फेमिनिस्ट रिव्यू, नंबर 84, पोस्टकोलोनियल थिएटर्स. पृ.130-140.

ह्याम, आर. (1990). एंपायर एंड सेक्सुअलिटी: दी ब्रिटिश एक्सपीरियंस (मेनचेस्टर: मेनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस).

http://www.columbia.edu/itc/mealac/pritchett/OOurdu/umraojan/txt_veena_oldenburg.html

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 85-91, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

राष्ट्रीय चेतना के विविध स्वर और हिंदी कहानी

डॉ. अंशु यादव[1]

सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख ऐतिहासिक परिस्थितियों के आलोक में हिंदी कहानी में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना के विविध स्वरों की पहचान करता है। अँग्रेजी शासन के खिलाफ और आंतरिक स्तर पर अपनी कमजोरियों के खिलाफ सुधार एवं जागरण की जिस प्रक्रिया से उस समय देश गुजर रहा था, उन प्रश्नों की प्रभावी अभिव्यक्ति हमें तत्कालीन साहित्य में देखने को मिलती है। आधुनिकीकरण और नवजागरण की प्रक्रिया से गुजरते हुए भारतीय समाज के नवीनीकरण ने साहित्य को भी नए विषयों की ओर उन्मुख किया। इस दृष्टि से हिंदी कहानी भी तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप रूपाकार ग्रहण करते हुए धीरे-धीरे जीवन यथार्थ के मार्ग पर अग्रसर होने लगी। इस रूप में हिंदी कहानी राष्ट्रीय भावना और स्वाधीनता की चेतना की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन रही थी। आरंभिक कहानियों में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति मुखर रूप में नहीं सांकेतिक रूप में देखने को मिलती है। स्वदेशी के समर्थन और विदेशी के विरोध की अनुगूँज भी सुनाई देती है। साम्राज्यवादी शासन का विरोध, अतीत का गौरव गान, वीर बुंदेलों, मराठों आदि की शौर्य गाथाएँ और इतिहास के प्रेरक प्रसंगों द्वारा जनसाधारण में उत्साह का संचार हिंदी कहानी की मुख्य विषयवस्तु बनते हैं। प्रेमचंद, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', जयशंकर प्रसाद, चंडी प्रसाद हृयदेश, सुभद्रा कुमारी चौहान, वृंदावनलाल वर्मा आदि की कहानियाँ राष्ट्रीय चेतना और पुनर्जागरण की मुख्य वाहक बनती हैं। ये कहानियाँ तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन को प्रभावित करने वाले कारणों की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं तथा देश की एकता और अखंडता के मार्ग में आने वाली जटिलताओं को भी सामने लाती हैं। युगबोध से अनुप्राणित हिंदी कहानी स्वाभिमान, स्वामिभक्ति, वीरता और बलिदान की अनेक कहानियों को जनसाधारण के समक्ष लाती है। यह कार्य देश को औपनिवेशिक गुलामी से मुक्त करने के लिए बहुत आवश्यक था। ये कहानियाँ स्वदेशी का पुरजोर समर्थन करती हुई स्वतंत्रता सेनानियों की वैचारिकता और प्रतिबद्धता को अपनी सृजनात्मकता द्वारा सामने लाती हैं। इस रूप में हिंदी कहानी तत्कालीन समाज के महत्वपूर्ण प्रश्नों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती है और त्रासद यथार्थ से लड़ने के लिए जातीय गौरव भाव के महत्व को सामने लाती है।

शब्द संकेत : राष्ट्रीय चेतना, स्वाधीनता आंदोलन, औपनिवेशिक गुलामी, नवजागरण, औद्योगिक क्रांति, जातीय गौरव

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से देखा जाए तो साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना की मुखर अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। वह स्वाधीनता आंदोलन की सशक्त वाहक भी बनती है। इस दृष्टि से यह शोध आलेख प्रचलित परिपाटी से अलग हिंदी कहानी में राष्ट्रीय चेतना के विविध स्वरों के अध्ययन को प्रस्तावित करते हुए देश-बोध के निर्माण में हिंदी कहानी की युगांतरकारी भूमिका को भी सामने लाता है। हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल के आविर्भाव ने तत्कालीन चिंतन पद्धति को पूर्णतया बदल दिया। इस रूप में हिंदी कहानी गद्य की एक नवीन और महत्वपूर्ण विधा के रूप में प्रसिद्ध हुई। आधुनिक भावबोध और नवजागरण की चेतना से संपृक्त देश कई स्तरों पर एक साथ बाहरी और भीतरी आंदोलन की प्रक्रिया से गुजर रहा था। प्रस्तुत शोध आलेख में तत्कालीन रचनाशीलता की दृष्टि से सक्रिय और अपनी रचनाओं द्वारा देशप्रेम की अभिव्यक्ति करने वाले रचनाकारों की कहानियों को अध्ययन स्वरूप प्रस्तावित किया गया है। प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', सुभद्रा कुमारी चौहान आदि की कहानियों में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में राष्ट्र-भाव की तीव्र अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। इन रचनाकारों की कहानियों में अपने समय संदर्भों की प्रभावशाली अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। जातीय गौरव-भाव इन कहानियों की विशेषता बनता है। भारतीय इतिहास के जननायकों की वैचारिक सरणी तत्कालीन रचनाकारों की कहानियों की मुख्य विषयवस्तु बनती है। सत्याग्रह, अहिंसा और स्वदेशी के प्रति प्रतिबद्धता का विचार इन कहानियों की ताकत बनता है। इस रूप में हिंदी कहानी ऐतिहासिक दायित्वबोध का निर्वाह करते हुए संपूर्ण देश की एकजुटता का आह्वान करती है। राष्ट्रीय भावना से संपृक्त इस दौर की हिंदी कहानी हर प्रकार के भेदभाव से ऊपर उठकर राष्ट्र-भाव को प्रबल करने में ऐतिहासिक भूमिका का निर्वाह करती है। इस दृष्टि से हिंदी कहानी के विकास और उसकी भूमिका को देखा, सोचा, समझा जाना चाहिए।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य हिंदी कहानी में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना के विविध स्वरों का बहुमुखी अध्ययन करना है। किन रचनाकारों की कहानियों में यह राष्ट्र-भाव प्रबल रूप में अभिव्यक्त हुआ है, उसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप कैसा था—इन्हीं संभावनाओं के आलोक में हिंदी कहानी को देखने का प्रयास किया गया है।

शोध-प्रविधि

भारतीय इतिहास और हिंदी साहित्य के इतिहास के तथ्यात्मक पक्षों पर प्रकाश डालने हेतु ऐतिहासिक एवं समाजशास्त्रीय शोध पद्धति को अपनाया गया है। हिंदी कहानी की विकास यात्रा का उल्लेख करते हुए विभिन्न रचनाकारों की रचनाशीलता का विवेचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक

[1]सहायक प्रोफेसर, भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. ईमेल: anshuyadav1981@gmail.com

पद्धति द्वारा गहन एवं गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तथ्यों का स्रोत विभिन्न पुस्तकालयों में उपलब्ध पुस्तकें हैं।

युगबोध से अनुप्राणित साहित्य

स्वाधीनता आंदोलन के दौर में युगबोध से अनुप्राणित साहित्य राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बना। साहित्य की सभी विधाएँ कविता, कहानी, उपन्यास तथा नाटक आदि ने देश-भाव के जागरण अभियान को नई गति और ऊर्जा से युक्त किया। भारतीय एवं पाश्चात्य संस्कृति की टकराहट, नई आर्थिक नीति, औद्योगिक क्रांति, संचार व्यवस्था तथा मुद्रणालयों के अस्तित्व में आने से बदलाव की एक ऐसी प्रक्रिया शुरू हुई, जिसने भारतीय जनमानस को प्रत्येक स्तर पर प्रभावित किया। भारतीयों के रहन-सहन, जीवनयापन, आचार-विचार, साहित्य, कला, शिक्षा और संस्कारों में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। उदासीनता और स्थिरता के आवरण से बाहर निकलकर देश नई गतिशीलता से युक्त हो रहा था। नवजागरण के रूप में आत्ममंथन और आत्मविश्लेषण की प्रक्रिया ने देशभाव को प्रबल करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय समाज की विसंगतियों और विडंबनाओं को पहचानते हुए उनको दूर करने के प्रयास हर स्तर पर किए गए। "किसी देश या उसके प्रदेश के सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन को हम नवजागरण कहते हैं। इसमें सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के प्रयत्न शामिल हैं। शूद्रों और स्त्रियों की स्थिति को बदलने के प्रयत्न नवजागरण के अंग हैं। धार्मिक सुधार, अंधविश्वासों के विरुद्ध प्रचार नवजागरण के अंतर्गत हैं। शिक्षा प्रसार, साहित्य रचना जैसे कार्य तो उसके अंतर्गत हैं ही। स्वाधीनता आंदोलन विदेशी प्रभुत्व के विरुद्ध चलाया हुआ राजनीतिक आंदोलन है" (शर्मा, 1992)। सैकड़ों वर्षों की गुलामी से त्रस्त जनता, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक विषमताओं, विसंगतियों और अंधविश्वासों से इतनी पीड़ित थी कि नवजागरण का प्रादुर्भाव अनिवार्य था। स्वाधीनता आंदोलन ने विदेशी साम्राज्य से देश को मुक्त कराया और इतिहास के प्रेरक प्रसंगों द्वारा जनजीवन में जागरण भाव का प्रसार किया। चिंतन पद्धति में बदलाव की इस प्रक्रिया ने जनसाधारण के भीतर एक नया आत्मविश्वास और आत्मसम्मान का भाव जाग्रत किया।

बाह्य स्तर पर अँग्रेजी शासन के खिलाफ और आंतरिक स्तर पर अपनी कमजोरियों के खिलाफ सुधार एवं जागरण की इस प्रकिया का आह्वान सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम से हो चुका था। अँग्रेजों के दमनपूर्ण शासन के विरोध में हुए इस आंदोलन ने ब्रिटिश शासन की नींव हिलाकर रख दी थी। यह संग्राम भारतीय जनता के असंतोष की तीव्र अभिव्यक्ति था। 1857 का प्रथम स्वाधीनता संग्राम राजनीतिक और सांस्कृतिक मुक्ति की प्रक्रिया के लिहाज से महत्वपूर्ण प्रस्थान बिंदु माना जाता है। आधुनिक काल की साम्राज्यवाद-विरोधी चेतना को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने में इस संग्राम की महत्वपूर्ण भूमिका थी। अँग्रेजों से मुक्ति के लिए अनेक विद्रोह और लड़ाइयाँ इस संग्राम से पहले हुईं। सन्न्यासी विद्रोह हो या नील विद्रोह, पवना का किसान विद्रोह हो या महाराष्ट्र का किसान विद्रोह अथवा 1857 का संग्राम इन सब की स्वाधीनता संग्राम की राष्ट्रवादी चेतना के निर्माण में भूमिका रही है। ये समाज-संघर्ष, विद्रोही चेतना की सतत प्रक्रिया को दर्शाते हैं। इन समस्त संघर्षों में 1857 का संग्राम प्रमुख स्थान रखता है" (सिंह, 2002)। दूसरी ओर, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी आदि सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन देश को आंतरिक स्तर पर परिष्कृत करने का कार्य कर रहे थे। हिंदी साहित्य के इतिहास की दृष्टि से यह आधुनिक काल के प्रादुर्भाव का समय था। मध्यकालीन चिंतन धारा से विमुक्त होते हुए साहित्य यथार्थबोध के मार्ग पर अग्रसर हुआ। रीतिकालीन दरबारी संस्कृति और जीवनशैली की केंद्रीयता का स्थान आधुनिक काल के यथार्थ ने ले लिया। सुधार, परिष्कार, जागृति, आत्ममंथन, राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक बोध तथा स्वतंत्रता की चेतना से युक्त साहित्य एक नवीन मार्ग पर आगे बढ़ा।

विषयवस्तु और अभिव्यक्ति के ढंग में बदलाव

आधुनिक काल में गद्य का आविर्भाव इन्हीं परिस्थितियों की देन था। नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध और पत्र–पत्रिकाएँ आदि के रूप में गद्य के आविर्भाव ने वैचारिकता की नई सरणी को जन्म दिया। कविता भावाभिव्यक्ति का ऐसा मनोलोक रचती है, जिसमें मनुष्य की आशाएँ, आकांक्षाएँ और सपनों की अभिव्यक्ति होती है, लेकिन गद्य जीवन की ठोस वास्तविकता से मुठभेड़ करता है। यही कारण है कि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने गद्य को 'जीवन संग्राम' की भाषा कहा है। आधुनिक परिस्थितियों के दबाव में कविता का अनुशासन जीवन की अभिव्यक्ति के लिए अपर्याप्त सिद्ध होने लगा। इसलिए गद्य को रचनात्मकता की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया। इस रूप में गद्य आधुनिक भाव बोध की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बना। पत्र-पत्रिकाओं में हिंदी गद्य वैचारिकता और जीवन से जुड़ा। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ तर्क और वैचारिक अनुशासन के अनुरूप अभिव्यक्त होने लगीं। परिणामस्वरूप आधुनिक साहित्य में मनुष्य और उसका समाज और उसकी लौकिक परिस्थितियाँ रचना का विषय बनने लगीं। "आधुनिकता कोई निरपेक्ष धारणा या निरंकुश सिद्धांत नहीं है। यह गतिशील आधुनिक स्थिति है, जिसका स्वभाव ठहरना नहीं निरंतर बदलना है। काल धारणा से मुक्त यह कोई सनातन क्रिया नहीं, आधुनिक युग की प्रक्रिया है। आधुनिकता इसी प्रक्रिया से बनी मानसिकता है जो हर बँधी-बँधाई व्यवस्था, रूढ़िग्रस्त मर्यादा और बद्धमूल धारणा को तोड़ती है, जो किसी एक मूल्य, धारणा या सिद्धांत को चरम नहीं मानती, बल्कि उसे स्वीकार करने से पूर्व जाँचने-पड़तालने पर बल देती है। यह इतिहास-विरोधी, मूल्य निषेधी प्रक्रिया नहीं, इतिहास के संदर्भ में मूल्यान्वेषण की सतत प्रक्रिया से अर्जित मानसिकता है" (मोहन, 1982)। समाज के नवीनीकरण ने साहित्य को भी नए विषयों की ओर उन्मुख किया। नाटक इस युग में अभिव्यक्ति के सबसे सशक्त माध्यम के रूप में अग्रणी रहा। हिंदी कहानी भी तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप रूपाकार ग्रहण करते हुए धीरे-धीरे जीवन यथार्थ के मार्ग पर अग्रसर होने लगी। विषयवस्तु के रूप ने अभिव्यक्ति के ढंग को भी बदला, ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली हिंदी गद्य की भाषा के रूप में अपनाई गई।

भारत की प्राचीन कहानी परंपरा

कहानी आधुनिक काल की एक सशक्त और महत्वपूर्ण गद्य विधा के रूप में सामने आई। बंगला में कहानी 'गल्प' नाम से प्रख्यात हो चुकी थी और 'सरस्वती' पत्रिका में आख्यायिका खंड की शुरुआत भी हुई। किशोरी

लाल गोस्वामी की कहानी 'इंदुमती' भी इसी क्रम में आख्यायिका नाम से प्रकाशित हुई। कहानी के आधुनिक रूप पर अँग्रेजी की 'शॉर्ट स्टोरी' के प्रभाव की चर्चा की जाती है, लेकिन भारतीय संदर्भों में कथा कहानी की अति प्राचीन और सुदीर्घ परंपरा रही है, जिसने आधुनिक कहानी के विकास के लिए एक अनुकूल वातावरण तैयार किया। "कहानियों की लिखित परंपरा भारतवर्ष में वैदिक काल से ही मिलती है। उपनिषदों की रूपक कथाओं, महाभारत के उपाख्यानों, रामायण की कहानियों, बौद्धों की जातक कथाओं और फिर पौराणिक देवी-देवताओं के चतुर्दिक बुनी गई रोचक कथाओं का अपूर्व भंडार हमारे यहाँ विद्यमान है। बाद में इसी कथा परंपरा का विकास 'वासवदत्ता', 'कादम्बरी', 'दशकुमारचरित्' आदि की लंबी कहानियों और पंचतंत्र, हितोपदेश, बेताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, शुकसप्तति, कथासरित्सागर और भोजप्रबंध आदि की छोटी-छोटी कहानियों में हुआ। आधुनिक काल से पूर्व के हिंदी साहित्य में अधिकांशतः पद्य में, और कभी-कभी गद्य में कहानियों की उक्त परंपरा बनी रही" (हरदयाल, 2005)। लोक जीवन ऐसी अनेक कथाओं की कुल संपत्ति से समृद्ध रहा है। आधुनिक ढंग की कहानियों के लेखन का विकास बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में ही प्रारंभ हुआ। इस दिशा में 'सरस्वती' पत्रिका की भूमिका महत्वपूर्ण रही। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का विचार है कि "अँग्रेजी की मासिक पत्रिकाओं में जैसी छोटी-छोटी आख्यायिकाएँ या कहानियाँ निकला करती हैं, वैसी कहानियों की रचना 'गल्प' के नाम से बंगभाषा में चल पड़ी थीं। ये कहानियाँ जीवन के बड़े मार्मिक और भाव व्यंजक खंड चित्रों के रूप में होती थीं। द्वितीय उत्थान की सारी प्रवृत्तियों का आभास लेकर प्रकट होने वाली 'सरस्वती' पत्रिका में इस प्रकार की छोटी कहानियों के दर्शन होने लगे। 'सरस्वती' के प्रथम वर्ष में ही पंडित किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' नाम की कहानी छपी, जो मौलिक जान पड़ती है। इसके उपरांत तो उसमें कहानियाँ बराबर निकलती रहीं, पर ये अधिकतर बंगभाषा में अनूदित या छाया लेकर लिखी होती थीं" (शुक्ल, 2001)। आधुनिक हिंदी कहानी के विकास में 'सरस्वती' पत्रिका की विशेष भूमिका रही। महावीर प्रसाद द्विवेदी राष्ट्रीय चेतना, नैतिक मूल्य, देशहित, वैज्ञानिक दृष्टि, भाषिक सजगता आदि के साथ-साथ हिंदी कहानी के लिए पृष्ठभूमि निर्माण का कार्य भी कर रहे थे।

अपनी प्रारंभिक अवस्था में भी हिंदी कहानी अपने समय और समाज की धड़कनों को अभिव्यक्त कर रही थी। स्वाधीनता की चेतना और राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बन रही थी। लेकिन आरंभिक कहानियों में राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति मुखर रूप में नहीं, अपितु सांकेतिक रूप में देखने को मिलती है। स्वदेशी के समर्थन और विदेशी के विरोध की अनुगूँज भी सुनाई देती है। साम्राज्यवादी शासन का विरोध, अतीत का गौरवगान, राजपूतों, वीर बुंदेलों, मराठों आदि की शौर्य गाथाएँ और प्रेरक प्रसंगों द्वारा जनसाधारण में उत्साह का संचार हिंदी कहानी के मुख्य विषयवस्तु बनते हैं। प्रेमचंद, पांडे बेचन शर्मा 'उग्र', जयशंकर प्रसाद, चंडीप्रसाद हृदयेश, सुभद्राकुमारी चौहान, वृंदावनलाल वर्मा आदि की कहानियाँ राष्ट्रीय चेतना और पुनर्जागरण की मुख्य वाहक बनीं।

राजनीतिक स्वतंत्रता और समाज सुधार

1900 ई. में ही 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित केशव प्रसाद सिंह की 'चंद्रलोक की यात्रा' भी छपी, जिसमें वैज्ञानिक दृष्टि का प्रसार, राजनीतिक स्वतंत्रता और समाज सुधार की उपस्थिति है। इसी समय 'बंग महिला' भी रचनाक्षेत्र में सक्रिय थीं। 'चंद्रदेव से मेरी बातें' शीर्षक आख्यायिका में व्यंग्य के साथ राजनीतिक, सामाजिक विद्रूपता का तीखा विरोध और राष्ट्रीय भावना का उद्रेक देखने को मिलता है। "भारत की बदहाल आर्थिक दशा और देश में फैली बेरोजगारी के चित्रण के साथ-साथ समाज में नारियों की स्थिति, जातिगत पक्षधरता और हर क्षेत्र में वृद्ध पीढ़ी के अनुचित दबदबे का भी रेखांकन किया।....इस कहानी में समकालीन वायसराय कर्जन के प्रशासन पर भी करारा व्यंग्य किया गया है" (राय, 2008)। 'बंग महिला' की प्रसिद्ध कहानी 'दुलाईवाली' में हास्य और व्यंग्य के द्वारा मध्यवर्ग के आत्मिक संबंधों का प्रभावशाली अंकन किया गया है। कहानी स्वदेशी आंदोलन का समर्थन भी करती है। "नहीं, एक दो देशी धोती पहिनकर आना था; सो, भूलकर विलायती ही पहिन आए। नवल कट्टर स्वदेशी हुए हैं ना? वे बंगालियों से भी बढ़ गए हैं। देखेंगे तो दो-चार सुनाए बिना रहेंगे। और, बात भी ठीक है। नाहक विलायती चीजें मोल लेकर क्यों रुपये की बर्बादी की जाय। देशी लेने से भी दाम लगेगा सही; पर रहेगा तो देश ही में" (झारी, 2013)। इसी समय उदय-नारायण वाजपेयी की कहानी 'जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' भी 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई। इसमें भी मातृभूमि की महिमा का सांकेतिक उल्लेख किया गया है। इसी समय माधवप्रसाद मिश्र की कहानी 'पुरोहित का आत्मत्याग' में महाराज उदयसिंह के दोनों पुत्र प्रतापसिंह और शक्तिसिंह एक-दूसरे के साथ द्वंद्व युद्ध कर रहे थे। उन्हें अपनी शक्ति का अपव्यय करते देख उन्हें देश रक्षा की ओर उन्मुख करने के लिए पुरोहित अपने प्राण न्योछावर कर देते हैं। इस कहानी ने "इतिहास में अपने समय की आवाज पिरोने की कुशलता का परिचय दिया है। यह कहानी उन लोगों की ओर भी संकेत करती है, जो भोग और ऐश्वर्य के लोभ में साम्राज्यवादी सत्ता को बरकरार रखने के लिए अँग्रेजों की ओर से हिंदुस्तानियों का वध कर रहे थे" (राय, 2008)। ये कहानियाँ तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन को प्रभावित करने वाले कारणों की ओर ध्यान आकर्षित करती हैं तथा देश की एकता और अखंडता के मार्ग में आने वाली जटिलताओं को भी सामने लाती हैं। विकास के मार्ग पर अग्रसर होती हिंदी कहानी यथार्थ की मजबूत जमीन पर खड़ी होती है। राष्ट्रीय संदर्भों की अभिव्यक्ति और स्वाधीनता की चेतना की वाहक बनती है।

प्रेमचंद और कहानी

जिस समय प्रेमचंद ने साहित्य जगत् में प्रवेश किया, वह समय भारतीय इतिहास की दृष्टि से भयंकर उथल-पुथल का दौर था। भारतीय समाज उस समय बदलाव के बड़े दौर से गुजर रहा था। राष्ट्रीय चेतना के तीव्र प्रसार के उस समय में अँग्रेजी शासकों की नीतियाँ स्वाधीनता की अग्नि को और भड़का रही थीं। सन् 1905 में बंगाल का धार्मिक आधार पर विभाजन एक ऐसी ही घटना थी, जिसके कारण भारतीय समाज में असंतोष की ज्वाला और अधिक प्रचंड हो गई। काँग्रेस बंगाल विभाजन के प्रश्न पर गरम दल और नरम दल में विभक्त हो गई। इसी वर्ष सेडिशस मीटिंग एक्ट भी लागू हो गया और सरकारी दमन और भी तेज हो गया। इन्हीं परिस्थितियों में प्रेमचंद का आगमन होता है। "देश में जन-जागरण, राष्ट्र-भाव, देश-भक्ति तथा स्वराज्य का भाव अनेक सामाजिक-धार्मिक संस्थाओं तथा राष्ट्रीय नायकों ने किया और जब प्रेमचंद ने बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में

अपना लेखन शुरू किया तो उनके सामने ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष का आधी शताब्दी से भी अधिक का इतिहास था और भारतेंदु युग एवं द्विवेदी युग की परिस्थितियाँ तथा साहित्य की प्रवृत्तियाँ थीं। उनके समय में देश में पूर्व-पश्चिम का द्वंद तथा पश्चिम के सभी राजनीतिक–दार्शनिक आदि विचार थे और प्रजातंत्र, अधिनायकवाद, लोकशाही, साम्राज्यवाद, गांधीवाद, समाजवाद आदि विभिन्न सत्तात्मक प्रणालियाँ भी सामने घटित हो रही थीं। प्रेमचंद इन सभी के बीच से गुजर रहे थे और अपने राजनीतिक चिंतन में युग के अनुरूप आगे बढ़ते जा रहे थे" (गोयनका, 2013)। प्रेमचंद कहानी को किस्सागोई और कल्पनाशीलता से बाहर निकालकर मानवीयता के धरातल पर खड़ा करते हैं। उनकी रचनाओं में पराधीन भारत का यथार्थ जीवंत अभिव्यक्ति पाता है। स्वाधीनता संग्राम और उसकी चिंताएँ उनकी रचनाओं का केंद्र बनते हैं। ''उनका पहला कहानी संकलन 'सोजे-वतन' के नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमें उनकी देशभक्ति प्रधान कहानियाँ संकलित हुई हैं। उनका यह कहानी संग्रह तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया था। इसी संकलन में उनकी शुरुआती दौर की प्रसिद्ध कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' भी संकलित है। इस कहानी में प्रेमचंद ने बताया कि 'मातृभूमि की रक्षा में शहीद हो जाने वाले देशभक्त के शरीर से बहने वाले रक्त की बूँद ही दुनिया का सबसे अनमोल रतन मानी जा सकती है" (मिश्र, 2012)। पहली बार प्रेमचंद ने अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, औपनिवेशिक सत्ता का विरोध करने का साहस दिखाया। इसलिए उनकी आरंभिक कहानियों में देशप्रेम का भाव खुलकर अभिव्यक्ति हुआ है। 'राजाहरदौल' आल्हा, राजहठ, बाँका, जमींदार, अनाथ लड़की, शिकारी राजकुमार आदि कहानियाँ प्रत्यक्षतः राजपूतों, बुंदेलों, सिखों आदि की वीरता, बलिदान, स्वाभिमान, स्वामिभक्ति आदि का चित्रण करती हैं। जुगनू की चमक, वियोग और विलाप, दुस्साहस, विचित्र होली, आदर्श, विरोध, सुहाग की साड़ी, परीक्षा, सती आदि कहानियाँ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से जनमानस में उन भावनाओं को जाग्रत करना चाहती हैं, जो देश को औपनिवेशिक गुलामी से मुक्त करने के लिए जरूरी थी।

जुलूस, जेल, आहुति, पत्नी से पति, समरयात्रा, अनुभव, कातिल आदि कहानियाँ सन् 1931 में 'समरयात्रा' कहानी संग्रह में प्रकाशित हुईं, जिसे ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया था, क्योंकि इस संग्रह की सभी कहानियाँ स्वाधीनता आंदोलन के प्रति जनोत्साह का प्रभावी चित्रण करती हैं। ये कहानियाँ स्वदेशी का पुरजोर समर्थन करती हैं और विदेशी का विरोध, शराब की दुकानों पर पिकेटिंग के प्रश्न पर, सामाजिक एकता और सद्भाव के प्रश्न पर गांधीवादी विचारों को अमल में लाती हैं, साथ ही अँग्रेजों की खुशामद में लगे अभिजात वर्ग पर व्यंग्य भी करती हैं।

कहानीकार सुदर्शन भी भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की दृष्टि से बेहद ज्वलंत समय में लिख रहे थे। 1919-22 का समय सत्याग्रह आंदोलन का समय था, जब विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, होली जलाने आदि के आंदोलन चल रहे थे। 'सुप्रभात' कहानी संग्रह की कहानियाँ इसी समय का प्रतिनिधित्व करती हैं। 'सत्य मार्ग' में उन्होंने अँग्रेजों के समर्थक एक मुसलमान रईस के 'देशसेवा' में लगने के संकल्प का चित्रण किया है। 'ऐसा भी हुआ था' कहानी जालियाँवाला बाग हत्याकांड पर आधारित है। 'अँधेरे में निवास : प्रकाश की खोज' जीवन से निराश युवक के असहयोग आंदोलन में शामिल होने और उसके बाद अच्छी नौकरी मिलने पर भी उसे त्याग देने का चित्रण करती है। 'कौन जीता : कौन हारा' और 'अंतिम साधन' दोनों कहानियाँ विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और दहन आंदोलन का संवेदनापूर्ण अंकन करती हैं। 24 अप्रैल, 1921 को 'स्वदेश' पत्रिका में छपे अपने एक लेख में महात्मा गांधी ने भारतीय जनता से स्वदेशी का आह्वान किया था। "भारत एक छोटा द्वीप नहीं है, यह एक महादेश है, जो इंग्लैंड की तरह सहज ही में औद्योगिक देश नहीं बनाया जा सकता और हम लोगों को संसार की दोहन की प्रत्येक स्कीम से दृढ़तापूर्वक मुख मोड़ लेना चाहिए। हमारी एकमात्र आशा केवल राष्ट्र के समय का सदुपयोग करना ही होना चाहिए, जिससे अपनी झोपड़ियों में रुई से कपड़े बनाकर देश के धन की वृद्धि कर सकें। अतएव चरखा भारतीय जीवन के लिए जलवायु के सदृश ही परमावश्यक है" (दुबे, 2013)। उनका यह आह्वान देश की आत्मनिर्भरता के प्रति उनके संकल्प की दृढ़ता को चित्रित करता है। वास्तव में, स्वाधीनता आंदोलन के दौरान स्वदेशी के व्यवहार की इस प्रतिज्ञा ने देश को एकजुट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। साहित्य ने महात्मा गांधी के जन अभियान के राष्ट्रीय कार्यक्रम को समूची जनता तक पहुँचाने में ऐतिहासिक दायित्व निभाया है। चंडीप्रसाद 'हृदयेश' की 'प्रतिज्ञा' कहानी में दो युवकों विश्वनाथ और रमानाथ के देशसेवा के लिए समर्पित होने के संकल्प का चित्रण करती है। शिवपूजन सहाय के कहानी संग्रह 'विभूति' में 'सतीत्व की उज्ज्वल 'प्रभा', 'मुंडमाल', 'विषपान', 'शरणागत की रक्षा' कहानियाँ आदि प्रकाशित हुईं। ये कहानियाँ राजपूतों की वीरता और शौर्य का चित्रण करती हैं।

सांस्कृतिक चेतना के रचनाकार जयशंकर प्रसाद

वर्तमान यथार्थ की त्रासद दुर्दशा से लड़ने के लिए, जातीय गौरव भाव जाग्रत करने के लिए इतिहास ऊर्जा का स्रोत बना और श्रेष्ठता का भी। नवजागरण की चेतना ने इस विचार को सुदृढ़ किया कि इतिहास के माध्यम से पूरे समाज और जाति को हीनता की ग्रंथि से मुक्त किया जा सकता है। जयशंकर प्रसाद के लेखन में इस विचार की प्रबल अभिव्यक्ति देखने को मिलती है :

'जगे हम, लगे जगाने विश्व,
लोक में फैला फिर आलोक।

जयशंकर प्रसाद राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के महत्वपूर्ण रचनाकार हैं। इनकी रचनाएँ इतिहास के माध्यम से वर्तमान की समस्याओं को अभिव्यक्त करती हैं। प्रसाद के साहित्य पर युगीन चेतना और समसामयिक प्रवृत्तियों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। भारतीय संस्कृति और भारतीय दर्शन में उनकी गहरी आस्था थी। यही विश्वास उनके नाटकों-कहानियों में व्यापक सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है। "प्रसादयुग को भारतीय जीवन के पुनर्संगठन का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से उथल-पुथल का क्रांति युग कहा जाएगा। उसे अंधविश्वासों से मुक्ति, अँग्रेजी फैशन के दोषों को पहचानने की दृष्टि, स्वदेशप्रेम का प्रचार, राष्ट्रीयता और जागरण का युग कहा जाएगा। यही कारण है कि प्रसाद साहित्य में कला, समाज, संस्कृति, राजनीति, धर्म के प्रति नई जागरूक दृष्टि मिलती है, उसमें सामंती रूढ़ियों का तिरस्कार और राष्ट्रीयता एवं आधुनिकता का स्वर प्रबल और स्पष्ट रूप में मिलता

है'' (चौरसिया, 2002)। प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियाँ हिंदी कहानियों के इतिहास में मील का पत्थर सिद्ध हुई। प्रसाद द्वारा अतीत की भव्य संस्कृति का चित्रण केवल अतीत मोह नहीं था, वह देशवासियों की वेदना, पीड़ा से उत्पन्न करुणा की कलात्मक अभिव्यक्ति था। अतीत के सांस्कृतिक वैभव, देश की राष्ट्रीयता और संस्कृति का भव्य अंकन का कारण अतीत मोह नहीं था, अपितु वह सीधे वर्तमान से संबद्ध था। आर्य सभ्यता और आर्य संस्कृति की पूरी अभिव्यक्ति, भारतीय श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों और आदर्शों की प्रतिष्ठा भी उनकी कहानियों में मिलती है। 'पत्थर की पुकार' कहानी औपनिवेशिक पराधीनता के संदर्भ से जुड़ती है। कहानी का पात्र विमल कहता है—'स्तुत्य अतीत की घोषणा और वर्तमान की करुणा इसी का ज्ञान हमें आता है।' यहाँ विमल के माध्यम से प्रसाद साम्राज्यवादी शासन और उसके कारण देश की दुरावस्था को चित्रित करते हैं। 'शरणागत' कहानी में प्रसाद भारतीय संस्कृति के मूल्यों को अभिव्यक्त करते हुए भारत की महानता अतीत की शरणागत रक्षा में ही देखते हैं। 'सिंकदर की शपथ' में भारतीय वीरों की बहादुरी और सिकंदर के विश्वासघात के चित्रण के बहाने भारत के पराभव के कारणों पर दृष्टिपात करते हैं। 'चित्तौड़ का उद्धार' में देशप्रेम और प्रेम की संवेदना का सहभाव प्रस्तुत हुआ है। 'अशोक' कहानी में अशोक के पूर्ण रूप से अहिंसा व्रत अपनाने की मनोदशा का अंकन किया गया है। 'गुलाम' पतन की ओर अग्रसर मुगल शासन और उसके प्रति प्रतिशोध की ज्वाला का चित्रण किया गया है। अतीत के आलोक में निजी प्रेम और देशप्रेम की संवेदना को अभिव्यक्त करती 'पुरस्कार' कहानी समकालीन स्वाधीनता आंदोलन से भी अप्रत्यक्ष रूप में जुड़ जाती है। देशप्रेम पर व्यक्तिप्रेम का बलिदान दिखाया गया है।

देशप्रेम की सच्ची अनुभूति ही राष्ट्रीय चेतना की मूल उत्प्रेरक है। पराधीन राष्ट्र देशभाव से भरकर साम्राज्यवादी सत्ता की नींव को हिलाने में समर्थ हो सकता है। इस दृष्टि से साहित्य ने युगांतरकारी भूमिका का निर्वाह किया। जातीय अस्मिता के आलोक में इतिहास की पुनर्व्याख्या का प्रश्न भी बहुत महत्वपूर्ण रहा। इतिहास भारतीय अस्मिता के गौरव का पर्याय बना, वह वर्तमान में भी ऊर्जा का संचार करता है, श्रेष्ठता का बोध भी पैदा करता है। यथार्थ की त्रासद स्थितियों से जातीय गौरव के भाव से भरकर ही लड़ा जा सकता है, इसलिए चाणक्य और चंद्रगुप्त जैसे पात्र प्रेरणा का मुख्य स्रोत बने। वर्तमान है दुर्दशा ग्रस्त, इसलिए आधुनिक भारत का केंद्र भी वर्तमान रहा। आत्ममंथन और आत्मविश्लेषण की इस प्रक्रिया ने भारतीय जनमानस को अपनी शक्तियों और कमियों को देखने के लिए प्रेरित किया। दूसरी और राष्ट्रीय आंदोलन की गतिविधियाँ और गांधीजी के प्रयासों द्वारा सत्य, अहिंसा और स्वदेशी का समर्थन और विदेशी का बहिष्कार तीव्र होते गए।

स्वाधीनता आंदोलन की तीव्र अभिव्यक्ति

स्वाधीनता आंदोलन के दौर में देश की साधारण स्त्री की भी देश के साथ मानसिक संसक्ति दिखाई देती है। व्यक्तिगत हितों को तिलांजलि देकर स्वाधीनता आंदोलन की डगर पर अनेक चुनौतियों का सामना करते हुए भी स्त्रियाँ देश की स्वतंत्रता के लिए प्रतिबद्ध थीं। स्वाधीनता संग्राम में स्वतंत्रता का मंत्र भरती उनकी कहानियाँ इतिहासबोध और देश-बोध के सागर में आजादी की आकांक्षा जगाने में, स्वतंत्र पथ पर जेल की यातनाएँ झेलकर स्वाधीनता के सपनों को साकार करने में मातृशक्ति की सक्रिय भूमिका को चिह्नित करती हैं। महिला कथाकारों ने अपने आत्मबल से, संघर्ष से, निष्ठा से स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया, आजादी के मतवालों का मनोबल ऊँचा किया। जब हम उन्हें पढ़ते हैं, उनके भाव से हमारा गहरा रिश्ता जुड़ जाता है, तो वह आज भी देश के प्रति राष्ट्र-भाव को मजबूती प्रदान करता है। स्त्री सशक्तीकरण की भारतीय अवधारणा की कड़ी के रूप में इन महिलाओं को याद किया जाना चाहिए। देश की आजादी का संघर्ष स्त्री स्वाधीनता के संघर्ष से भी मिल जाता है। इनकी राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति समूचे युग का आईना हमारे सामने प्रस्तुत करती है। सुभद्राकुमारी चौहान की कहानियों की पृष्ठभूमि उनके राजनीतिक और सामाजिक जीवन की सक्रियता की अभिव्यक्ति है। अपनी पढ़ाई छोड़कर गांधीजी के आह्वान पर वे कई बार जेल गईं। लगातार स्वाधीनता आंदोलन में अपनी सक्रिय भागीदारी उन्होंने बनाए रखी और एक कर्मठ साहसी स्त्री की छवि लिए रचनाकार के रूप में प्रसिद्ध हुईं। उनका साहस ओज बनकर 'झाँसी की रानी' जैसी कविताओं में उभरा। उनकी कहानियाँ अमराई, गौरी, ताँगेवाला, गुलाबसिंह, रूपा, सुभागी आदि में स्वाधीनता आंदोलन की तीव्र अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

गौरी अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध राष्ट्रीय कर्मी सीताराम का पति रूप में वरुण करती है। उनके यहाँ प्रेम और देशप्रेम में कोई विभाजन नहीं था। देश के लिए ताँगेवाले का जज्बा देखते ही बनता है। ताँगेवाले ने अपने ताँगे में किसी फिरंगी को न बैठाने की कसम खाई थी। उसने कहा, "सारे हिंदुस्तान में गदर के समय इन फिरंगियों ने क्या कम जुल्म किए हैं? गाँव के गाँव जला दिए, औरतों को बेइज्जत किया, निरपराध लोगों को तोपों के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया। फिर सन् सत्तावन की दूर की बात जाने दीजिए। अभी कल की बात है पंजाब में उन्होंने क्या कम किया है? जलियाँवाला बाग को कौन भूल जाएगा? घाव ताजा है हुजूर! इन फिरंगियों को देखते ही उस पर नमक पड़ जाता है। इसीलिए मैंने कसम खाई है, इन्हें ताँगे पर कभी न बिठाऊँगा। मेरा मन इनसे बदला लेने के लिए बार-बार उमड़ता है" (गुप्ता, 2015)। इन कहानियों ने जन-जन में चेतना भरने का युगांतरकारी कार्य किया और हर एक व्यक्ति इस आंदोलन का हिस्सा बना।

अँग्रेजों के क्रूरतापूर्ण रवैये का जीवंत चित्रण

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का रचना संसार औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध विद्रोह की सशक्त अभिव्यक्ति है। गांधीजी के सत्याग्रह आंदोलन से प्रभावित होकर उग्र जेल भी गए और लगातार स्वाधीनता आंदोलन और साहित्य के क्षेत्र में व्यंग्य भी लिखते रहे। उग्र प्रकृतवादी साहित्यकार के रूप में प्रसिद्ध थे। अपनी बेबाक अभिव्यक्ति के लिए जाने जाते थे। उनकी रचनाओं में देशप्रेम का भाव खुलकर अभिव्यक्त हुआ है। "उग्र द्वारा राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में लिखी कहानियाँ देशभक्त, स्वदेश के लिए, नादिरशाही, माँ कैसे मरी, निहलिस्ट, वीर कन्या, नेता का स्थान, जैतू में, वह दिन, प्यारे, मेरी माँ, उसकी माँ, नरसिंह राज और जल्लाद आदि आम पाठकों में जितना सराही गई थीं, उतना ही सरकारी कोप का भाजन भी बनी थीं। उनकी 'प्यारे' शीर्षक कहानी ब्रिटिश सरकार के विरोध में इतनी

अधिक उत्तेजक हो गई थी कि 'मतवाला' के उस अंकों पर पाबंदी लगा दी गई थी" (पांडेय, 2001)। साम्राज्यवादी दृष्टि से परिचालित अँग्रेजी इतिहासकार सन् 1857 के पहले स्वाधीनता संग्राम को एक छुटपुट विद्रोह सिद्ध करने के प्रयास में थे, तब उग्र ने 1857 के स्वाधीनता संग्राम को अपनी कहानियों का विषय बनाकर इस आंदोलन के महत्व और व्यापकता को प्रतिपादित किया। नादिरशाही, रेन ऑफ वॉटर, एक भीषण स्मृति, काल कोठरी आदि कहानियाँ सन् 1857 के दौरान अँग्रेजी सरकार द्वारा किए गए निरंकुश और दमनात्मक व्यवहार को उजागर करती हैं। 'एक भीषण स्मृति' में साधारण जनता पर ब्रिटिश सेना द्वारा किए गए क्रूर और पाश्विक अत्याचारों का वर्णन है। 'काल कोठरी' में 1857 के विद्रोह में अवध के सैनिकों के प्रति अँग्रेज अफसरों के क्रूरतापूर्ण रवैये का बड़ा ही जीवंत वर्णन किया है।

महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद पंजाब को कंपनी शासन में मिलाने के लिए अँग्रेजों द्वारा चलाई गई कूटनीतिक चालों को भी अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर किया है। अँग्रेजी शासन की चुनौतियाँ उग्र के लेखन का मुख्य बनीं। राष्ट्रहित में उनका चिंतन और कार्य निरंतर चलते रहे। 'ध्रुवधारणा' कहानी में उन्होंने देशप्रेम के साथ पति-पत्नी के प्रेम का अद्भुत समन्वय दिखाया है। 'जैतू में' पंजाब के स्वाधीनता संग्राम के दीवानों के बलिदान की गाथा रची गई है। 'माँ कैसे मरी' जलियाँवाला बाग के नरसंहार की पृष्ठभूमि में लिखी गई अत्यंत मार्मिक कहानी है। 'देशभक्त' कहानी में भारत की आजादी के लिए संघर्षरत क्रांतिकारियों के त्याग और बलिदान का चित्रण किया है। 'प्यारी पताका' कहानी अपने देश की राष्ट्रीय पताका की सम्मान रक्षा के लिए प्राण देने वाले एक जापानी वीर की बलिदान कथा प्रस्तुत की गई है। इस कथा के माध्यम से 'उग्र' ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों के अपने तिरंगे झंडे के प्रति प्रेम और बलिदान की भावना का अंकन भी किया है।

विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रश्न

इसी तरह चंद्रगुप्त विद्यालंकार अपनी कहानी 'हूक' के माध्यम से विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रश्न उठाते हैं और देश के प्रति स्वयंसेवकों के समर्पण भाव को दर्शाते हैं। इस कहानी में हृदय की हूक समय-स्थान के अनुरूप राष्ट्रीय आंदोलन के संघर्ष में समाहित हो जाती है। ऐतिहासिक रचनाकारों में वृंदावनलाल वर्मा का एक विशिष्ट स्थान है। उनके उपन्यास एवं कहानियाँ अपनी ऐतिहासिक कथावस्तु के लिए प्रसिद्ध हैं। वर्मा जी की रोमानी, ऐतिहासिक कहानियाँ राष्ट्रीयता और आदर्शवादिता की विशेषताओं से युक्त हैं। वर्मा जी ने प्रागैतिहासिक काल से लेकर 1947 तक के इतिहास को लेकर कहानियाँ लिखी हैं, किंतु प्रधानता मुगल काल से संबंध रखने वाली कहानियों की है। ऐतिहासिक कहानियों में राजपूतों, मराठों, बुंदेलों, सिक्खों आदि के आत्मबलिदान और राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित चित्र अंकित किए हैं। इन कहानियों में जिन आदर्शों की स्थापना की गई है, उनका मूलाधर राष्ट्रीयता की भावना है। वृंदावनलाल वर्मा की कहानियाँ भारतीय संस्कृति और मूल्यों की जीवंत अभिव्यक्ति के साथ-साथ इतिहास के गौरवशाली पक्षों का महाआख्यान है। 'अण्णाजी पंत' कहानी मुगलों के अधिकार से सतारा का किला छीनने और मराठों का परचम लहराने वाले अण्णाजी पंत के शौर्य और पराक्रम की कहानी है। 'वचन का निर्वाह' मारवाड़ के अंतर्गत एक गाँव की कथा है। यह क्षत्रिय के अपने वचन निर्वाह के लिए प्राणों का उत्सर्ग कर देने की कहानी है। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि अपनी शरण में आए व्यक्ति की सदैव रक्षा की जाती है। इतिहास में ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं जब कठिन परिस्थितियों में शरणागत की जान बचाई गई है। वर्मा जी की कहानी 'शरणागत' इसी भाव को प्रकट करती है। 'बुंदेला शरणागत के साथ घात नहीं करता, इस बात की गाँठ बाँध लेना। 'अंबरपुर के अमर वीर' कहानी में अंबरपुर के किले के वीर जवानों ने अपनी जान पर खेलकर किले की रक्षा की और मरते दम तक अँग्रेजों को किले में घुसने नहीं दिया। न अपने स्थान से हिले और न पीठ दिखाई। 34 जवानों और एक तोप ने हजारों सैनिकों और तोपों का डटकर दिलेरी के साथ सामना किया और इतिहास में ये जवान मरकर भी हमेशा के लिए अमर हो गए। 'दीर्घजीवी कैसे हों?' यह कहानी प्राचीन भारतीय शासकों और उनकी शासन व्यवस्था के महत्व को उजागर करती है। हर्षवर्धन के पिता थानेश्वर के राजा प्रभाकरवर्धन का यश मध्य एशिया तक फैला हुआ था। तुर्किस्तान के सरदार ने प्रभाकरवर्धन को पत्र लिखा और पूछा कि हम दीर्घजीवी कैसे हों? उन्होंने सुन रखा था कि हिंद में कुछ ऐसी औषधियाँ हैं, जिनके प्रयोग से यहाँ के राजा बड़ी लंबी आयु पा जाते हैं। पत्र में उन औषधियों को भिजवाने और विस्तार के साथ सेवन विधि बतलाने की भी प्रार्थना थी। तुर्कीदल को जीवंत उदाहरण द्वारा प्रभाकरवर्धन ने दीर्घजीवी होने का राज बताया—न्याय, परोपकार का मार्ग, प्रजा की सेवा और रक्षा। 'गुप्त सभा' कहानी 1857 की पृष्ठभूमि में भारतीय जनता के उन प्रयासों को सामने लाती है, जिनके द्वारा हम आजाद भारत के स्वप्न को साकार कर पाए। 'मंदिरों, मस्जिदों में कमल के फूल पहुँचे—'हम अपने धर्म ईमान के लिए प्राणों को होम कर देंगे।' कमल भारतीय संस्कृति का चिह्न था और रोटी जनता के पेट का प्रश्न। इन कहानियों के ऐतिहासिक पात्र साधारण जन में नवीन ऊर्जा का संचार कर रहे थे। भारतीय परंपरा और संस्कृति के उज्ज्वल पक्षों को रेखांकित कर रहे थे।

भारत बोध जगाती कहानियाँ

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने इलाहाबाद से प्रकाशित 'चाँद' साहित्यिक पत्रिका के 'फाँसी अंक' के संपादन द्वारा भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के उत्सर्ग में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। औपनिवेशिक सत्ता के क्रूर और अमानवीय चेहरे को सामने लाने में इस अंक की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही। 'हल्दी घाटी में' कहानी देश के लिए प्रतिबद्ध मेवाड़ के हिंदू राजा प्रताप के शौर्य और पराक्रम का चित्रण करती है। देशद्रोह के अपराध में प्रताप अपने भाई शक्तिसिंह को प्राणदंड देने का निश्चय करता है। 'लौह पुरुष' कहानी स्वाधीनता आंदोलन के नायक गांधीजी के व्यक्तित्व पर आधारित है। 'राजपूतनी का प्रायश्चित' कहानी मुसलमान शासकों के संदर्भ में राजपूतों के शौर्य का चित्रण करती है। 'मुखबिर' में ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने लिए किए जाने वाले क्रांतिकारी कष्ट, बलिदान और निष्ठा की कहानी है। 'सफेद कौआ' और 'लंबग्रीव' व्यंग्यशैली में भारत में अँग्रेजों के आगमन और देश के औपनिवेशिक आर्थिक शोषण, भारतीय जीवन में विलायती संस्कृति के प्रवेश, स्वाधीनता संग्राम में महात्मा गांधी के नेतृत्व और अंततः देश के स्वतंत्र होने का इतिहास प्रस्तुत करती हैं।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के कहानी संग्रह 'गांधी टोपी' में इसी

नाम की एक कहानी भी है, जिसमें उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए देशसेवा का ढोंग करने वाले पाखंडी देशभक्तों के असली रूप को उजागर किया है और बताया है कि ऐसे लोग देशसेवा की आड़ में अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। कहानीकार ने देशसेवा के आदर्श रूप को पाठकों के सामने रखा है। भगवती प्रसाद वाजपेयी ने व्यक्तिगत प्रेम की संवेदना का देशप्रेम के भाव से संघर्ष दिखाकर उसे प्रभावी बनाने का प्रयास किया है। साइमन कमीशन का विरोध और सरकार की क्रूर दमनात्मक कार्यवाहियों का चित्रण किया है। फितूर, स्वप्नों का राज्य, झरोखे की रानी, प्रमाण आदि कहानियाँ इसी सच को सामने लाती हैं। 'प्रमाण' का पात्र देश की आजादी के लिए वैवाहिक जीवन को बलिवेदी पर चढ़ा देता है। सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय ने भी 'हारीति', 'पुलिस की सीटी', 'गृह त्याग', 'पुरुष का भाग्य' और 'क्रांतिकारियों की बेखौफ निष्ठा' आदि कहानियों में देश-विदेश की क्रांतिकारी पृष्ठभूमि में क्रांतिकारियों के त्याग, बलिदान, शौर्य, प्रेम और वात्सल्य आदि संवेदनाओं का मार्मिक चित्रण किया है। पुष्पा भारती की कहानी '8 अगस्त 1942 की रात' अँग्रेजों के 'भारत छोड़ो आंदोलन' की पृष्ठभूमि में लिखी गई है। समस्त कार्यकर्ताओं को या तो गिरफ्तार कर लिया गया या फिर गोलियाँ चलाई गईं। अत्याचारी सरकार ने बड़े स्तर पर नरसंहार किया। नेताओं को अज्ञात स्थानों पर कैद कर दिया, देश के कर्णधार लोहे की सीखचों में बंद हो गए, भारत का प्रत्येक व्यक्ति भारत के लिए नेता बनकर 'अँग्रेजों भारत छोड़ो' का नारा बुलंद करने लगा। पुलिस ने समस्त देश में गिरफ्तारी शुरू कर दी। प्रत्येक नगर के काँग्रेसी कार्यकर्ता 9 अगस्त को ही जेल में डाल दिए गए। राष्ट्रीय चेतना के प्रबल भाव से युक्त ये कहानियाँ पराधीन भारत का रचनात्मक दस्तावेज हैं, जो ब्रिटिश सरकार की अमानवीय नीतियाँ, जनसाधारण विरोधी कार्यवाहियाँ और दमनात्मक क्रूर रवैया सामने लाती हैं। पराधीन देश के भीतर गौरव भाव जाग्रत करने के लिए, उसे अपनी शक्ति का एहसास कराने के लिए आत्मविश्वास और आत्मिक बल को बढ़ाने वाले ऐसे साहित्य की आवश्यकता थी, जो उसे एकजुट करे। तत्कालीन हिंदी कहानियाँ इस कसौटी पर खरा उतरती हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि ये कहानियाँ पराधीन भारत के सभी पक्षों को अत्यंत सूक्ष्मता से उभारती हैं। औपनिवेशिक सत्ता के शोषणकारी, अत्याचारी स्वरूप को सामने लाती हैं। दूसरी ओर, राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन करती हुई जनसाधारण की एकजुटता का आह्वान करती हैं। देश-विदेश के स्वाधीनता आंदोलन के उल्लेख द्वारा अँग्रेजों के वास्तविक और दोहरे चरित्र को जनसाधारण के सम्मुख उद्घाटित करती हैं कि किस तरह अपने देश में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की पक्षधर ब्रितानी सरकार अपने साम्राज्यवादी देशों में मानव अधिकारों का हनन कर रही थी। इन कहानियों में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों की एक पूरी झाँकी प्रस्तुत होती है। एकजुटता के आह्वान में धर्म, जाति, संप्रदाय, वर्ग आदि सभी भेदभाव के जनक आधारों को नकारते हुए राष्ट्र के प्रति समर्पण का भाव उभरता है। इतिहास के प्रसंग वर्तमान के लिए प्रेरणा का जनक बनते हैं। इतिहास, परंपरा, संस्कृति को वैज्ञानिक तर्क विधान और ज्ञान के आलोक में देखते हुए, राजपूतों के शौर्य और वीरता की गाथाएँ, सन् 1857 के मार्मिक प्रसंगों की दास्तान, स्त्री की सहभागिता आदि प्रश्न कहानियों की विषयवस्तु बनते हैं। परतंत्र भारत की दुरवस्था को देखकर तत्कालीन साहित्यकारों के मन उद्विग्न थे। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलनों की विभिन्न गतिविधियों को साहित्य में प्रस्तुत करके जनता को उनके प्रति जागरूक किया तथा दूसरी ओर सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों को निर्मूल करने के लिए उनके विरुद्ध लिखकर समाज और राष्ट्र के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को दर्शाया।

संदर्भ

गुप्ता, आर. (सं.) (2015). सुभद्रा कुमारी चौहान ग्रंथावली (भाग-2). नई दिल्ली : स्वराज प्रकाशन. पृष्ठ–231

गोयनका, के. के. (सं.) (2013). प्रेमचंद. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी. पृष्ठ-34-35

चौरसिया, पी. (2002). प्रसाद साहित्य का सांस्कृतिक अनुशीलन. वाराणसी : नारायण प्रकाशन. पृष्ठ- 38

झारी, वी. (सं.) (2013). आरंभिक हिंदी कहानियाँ. नई दिल्ली: राष्ट्रीय हिंदी साहित्य परिषद्. पृष्ठ –160

दुबे, पी. (सं.) (2013). स्वदेश का साहित्य एवं समाज (भाग- 2). नई दिल्ली : विश्व भारती पब्लिकेशंस. पृष्ठ- 224

पाण्डेय, बी. (2001). पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी. पृष्ठ-71

मिश्र, एस. (सं.) (2012). कहानीकार प्रेमचंद : रचना दृष्टि और रचना शिल्प. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृष्ठ - 20

मोहन, एन. (1982). आधुनिकता के संदर्भ में हिंदी कहानी. दिल्ली : जय श्री प्रकाशन. पृष्ठ -14

राय, जी. (2008). हिंदी कहानी का इतिहास : 1900 -1950. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृष्ठ- 50

शर्मा, आर. (1992). स्वाधीनता संग्राम : बदलते परिप्रेक्ष्य. दिल्ली विश्वविद्यालय : हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय. दिल्ली, पृष्ठ-121

शुक्ल, आर. (2001). हिंदी साहित्य का इतिहास. वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा. पृष्ठ –274

सिंह, एस. (2002). आधुनिक साहित्य और रामविलास शर्मा. नई दिल्ली: स्वराज प्रकाशन. पृष्ठ-45

हरदयाल. (2005). हिंदी कहानी परंपरा और प्रगति. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृष्ठ – 84

संचार माध्यम | खंड 34(1) : 92-99, जनवरी-जून 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

एक पत्रकार और लेखक के रूप में दीनदयाल उपाध्याय का अध्ययन

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार[1]

सारांश

दीनदयाल उपाध्याय एक चिंतक, विचारक और राजनेता के रूप में भारत सहित संपूर्ण विश्व में विख्यात हैं। चिंतक और विचारक इसलिए क्योंकि उन्होंने एकात्म मानवदर्शन जैसा मौलिक चिंतन विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया और राजनेता इसलिए क्योंकि वे लंबे समय तक भारतीय जनसंघ के महामंत्री और अध्यक्ष रहे। इसके साथ-साथ दीनदयाल उपाध्याय एक लेखक और पत्रकार भी थे। उनके जीवन के इस पहलू पर बहुत कम चर्चा हुई है। यह सच है कि वे कभी किसी समाचार पत्र-पत्रिका के औपचारिक संपादक अथवा संवाददाता नहीं रहे, कभी किसी समाचार पत्र में संपादक के रूप में उनका नाम प्रकाशित नहीं हुआ, कभी किसी समाचार पत्र अथवा पत्रिका के कार्यालय में उनके लिए कुर्सी नहीं लगी, पत्रकारिता के किसी स्कूल से उन्होंने कोई डिग्री/डिप्लोमा नहीं लिया, किसी पत्र या पत्रिका के प्रतिनिधि के रूप में उन्होंने कभी सरकारी मान्यता प्राप्त नहीं की, कभी किसी पत्र से लेखन का कोई पारिश्रमिक नहीं लिया, फिर भी उन्होंने देश की समसामयिक समस्याओं पर पैनी नजर रखते हुए अपनी लेखनी चलाई और देश के अनेक पत्रकारों के लिए वे प्रेरणापुंज बने। उन्होंने अटल बिहारी वाजपेयी, राजीव लोचन अग्निहोत्री, पंडित भगवतीधर वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, महेंद्र कुलश्रेष्ठ, केवल रतन मलकानी, देवेंद्र स्वरूप, भानुप्रताप शुक्ल, गिरीश चंद्र मिश्र, वचनेश त्रिपाठी, बालेश्वर अग्रवाल, एन.बी. लेले, यादवराव देशमुख, दीनानाथ मिश्र, अच्युतानंद मिश्र जैसे अनेक वरिष्ठ पत्रकारों एवं संपादकों की लेखनी को राष्ट्रीय दिशा प्रदान की। इसके अलावा अनेक पत्र-पत्रिकाओं के संपादक उन्हें सहज ही अपना मित्र एवं मार्गदर्शक मानते थे। इसीलिए वरिष्ठ पत्रकार वेद प्रताप वैदिक दीनदयाल उपाध्याय को 'पत्रकारों का पत्रकार और संपादकों का संपादक' कहते हैं। औपचारिक रूप से देखा जाए तो वे 'पाञ्चजन्य' एवं 'आर्गेनाइजर' में नियमित स्तंभ लेखक थे। 'पाञ्चजन्य' में वे 'पराशर' नाम से 'विचारवीथि' और 'आर्गेनाइजर' में पॉलिटिकल डायरी' स्तंभ लिखते थे। परंतु 'राष्ट्रधर्म', 'पाञ्चजन्य' और 'आर्गेनाइजर' में अनेक लेख और समाचार ऐसे भी प्रकाशित होते थे, जो लिखे जाते थे तो दीनदयाल उपाध्याय द्वारा, पर उनमें लेखक के रूप में उनका नाम प्रकाशित नहीं होता था। ऐसे अनेक समाचार और लेख 'हिंदुस्थान समाचार' संवाद समिति द्वारा भी जारी किए जाते थे। इसके अलावा उन्होंने एक दर्जन से अधिक पुस्तकें लिखी हैं, जो न केवल राष्ट्र जागरण में मील का पत्थर साबित हुईं, बल्कि समाज जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में आज भी दिशाबोधक हैं। मीडिया की तत्कालीन दशा और दिशा पर दीनदयाल जी ने 1963 में 'हिन्दुस्थान समाचार' द्वारा प्रकाशित स्मारिका हेतु जो संदेश लिखा, वह मूल्यपरक पत्रकारिता के लिए आज भी दिशाबोधक है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका वह संदेश आज भी भारतीय पत्रकारिता के लिए उतना ही प्रासंगिक है जितना उस समय था। भाषा की शिष्टता, समाचार में भारत की अभिव्यक्ति, समाज को रचनात्मक दिशा देने के लिए लेखन आदि ऐसे मूल्य हैं, जो दीनदयाल जी से वर्तमान मीडिया सीख सकता है। इसके अलावा भारतीय मीडिया आज पेड न्यूज, फेक न्यूज आदि जिन चुनौतियों और विसंगतियों से जूझ रहा है, उनके निराकरण में भी दीनदयाल जी का पाथेय उपयोगी है। एक साहित्यकार और पत्रकार के रूप में दीनदयाल उपाध्याय पर और अधिक अध्ययन की आवश्यकता है। अध्ययन तो मीडिया और एकात्म मानवदर्शन को केंद्रबिंदु मानकर भी हो सकता है।

संकेत शब्द : राष्ट्रधर्म, पाञ्चजन्य, ऑर्गेनाइजर, हिन्दुस्थान समाचार, विचारवीथि, पॉलिटिकल डायरी, मीडिया और एकात्म मानवदर्शन

प्रस्तावना

पत्रकारिता के माध्यम से प्रभावी एवं अर्थपूर्ण जनसंवाद की भारत में एक समृद्ध परंपरा है। 'स्वराज' का सर्वप्रथम नारा देने वाले स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-1883) ने अजमेर में करीब 150 साल पहले मूल्यपरक साहित्य रचना हेतु प्रिंटिंग प्रेस स्थापित की थी। स्वामी विवेकानंद (1863-1902) ने 'प्रबुद्ध भारत' (1896) की शुरुआत इसी उद्देश्य से की थी। 'इंडियन ओपिनियन' (1903), 'यंग इंडिया' (1919), 'नवजीवन' (1919), 'हरिजन' (1933), 'हरिजन बंधु' (1933) और 'हरिजन सेवक' (1935) जैसे पत्र प्रारंभ करने के पीछे महात्मा गांधी का भी यही ध्येय था। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 'मूकनायक' (1920), 'बहिष्कृत भारत' (1927), 'जनता' (1930), और 'प्रबुद्ध भारत' (1956) की शुरुआत देशवासियों से प्रभावी संवाद स्थापित करने के लिए ही की थी। इसी प्रकार नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने 'स्वराज' और 'फारवर्ड' जैसे पत्र चलाए, गोपाल कृष्ण गोखले ने 'ज्ञानप्रकाश' और 'हितवाद' का प्रकाशन किया, बालगंगाधर तिलक ने 'केसरी' और 'मराठा' जैसे पत्र निकाले, पंडित मदनमोहन मालवीय ने 'द लीडर' और 'हिन्दुस्तान' का संचालन किया, लाला लाजपत राय ने 'पंजाबी', जवाहरलाल नेहरू ने 'नेशनल हेराल्ड' और महात्मा गांधी की प्रेरणा से घनश्यामदास बिड़ला ने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का प्रकाशन आरंभ किया। दीनदयाल उपाध्याय का नाम भारतीय पत्रकारिता की इसी समृद्ध परंपरा में शामिल है। उन्होंने राष्ट्र जागरण एवं प्रभावी जनसंवाद हेतु 'राष्ट्रधर्म', 'पाञ्चजन्य', 'स्वदेश', 'हिमालय', 'राष्ट्रभक्त', आदि समाचार पत्रों की शुरुआत करने में न केवल प्रभावी भूमिका निभाई, बल्कि उन्हें स्थापित करने के लिए अपने

[1]पाठ्यक्रम निदेशक, उर्दू पत्रकारिता, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली. ईमेल: drpk.iimc@gmail.com

हाथ से कंपोजिंग, प्रिंटिंग प्रेस चलाने तथा साइकिल पर बंडल बाँधकर वितरण करने और डाकखाने ले जाने तक का काम किया। दीनदयाल जी मूल्यपरक पत्रकारिता के पोषक थे और उसी भाव को उन्होंने उन सभी पत्रकारों में पुष्ट किया, जो उनके संपर्क में आए।

पत्रकारिता के अलावा दीनदयाल जी का साहित्य रचना संसार बहुत व्यापक है। उनके लेखन के बारे में टिप्पणी करते हुए वरिष्ठ काँग्रेस नेता डॉ. संपूर्णानंद ने उनकी पुस्तक 'पॉलिटिकल डायरी' की प्रस्तावना में लिखा है कि दीनदयाल जी जो भी कुछ लिखते थे, उसे स्थायी वैचारिक अधिष्ठान प्रदान करके लिखते थे। इसीलिए उनके द्वारा लिखी गई सामग्री आज भी अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है। उन्होंने अपनी प्रथम पुस्तक 'सम्राट चंद्रगुप्त' (1946) एक ही बार में 16 घंटे बैठकर पूरी कर ली थी। दूसरी पुस्तक 'जगद्गुरु श्री शंकराचार्य' (1947) युवाओं के लिए उपयोगी उपन्यास है। राष्ट्रीय स्वसंसेवक संघ के संस्थापक डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार के अधिकृत जीवन चरित्र का मराठी से हिंदी में अनुवाद उन्होंने ही किया था। उनकी अन्य प्रमुख पुस्तकें हैं : अखंड भारत क्यों? (1952), हमारा कश्मीर (1953), जोडें कश्मीरः मुखर्जी-नेहरू और अब्दुल्ला का पत्र व्यवहार (1953), टैक्स या लूट (1954), बेकारी की समस्या और उसका हल (1954), दो योजनाएँ : वायदे, अनुपालन, आसार (1958), सिद्धांत और नीतियाँ (1964), एकात्म मानववाद (बंबई में दिए गए चार व्याख्यान) (1965), विश्वासघात (1965), वचन भंगः ताशकंद घोषणा की शव परीक्षा (1966), अवमूल्यनः एक बड़ा पतन (1966), पॉलिटिकल डायरी (1968), राष्ट्र जीवन की दिशा (1971), आदि। 'पाञ्चजन्य' के पूर्व संपादक श्री यादवराव देशमुख दीनदयाल जी की पत्रकारिता का इस प्रकार जिक्र करते थे : ''राष्ट्रधर्म में संपादक के रूप में उन्होंने कभी अपना नाम नहीं छपने दिया, पर 'राष्ट्रधर्म' का ऐसा कोई अंक नहीं है, जिसमें उनके विचारोत्तेजक लेख के साथ उनकी पत्रकारिता की छाप न हो। वे उसी सामग्री का प्रकाशनार्थ चयन करते थे जो नकारात्मक न होकर सकारात्मक होती थी। जनहित विरोधी विचारों या आंदोलनों की आलोचना से उन्हें परहेज नहीं था, बशर्ते उनकी भाषा संतुलित हो और आलोचना स्वस्थ'' (शर्मा, 2011, पृष्ठ 55)।

शोध प्रविधि

दीनदयाल उपाध्याय ऐसे चिंतक एवं विचारक हैं, जिन पर भारत में भी अभी तक बहुत अधिक शोध कार्य नहीं हुआ है। उनके द्वारा लिखित साहित्य का प्रकाशन 11 फरवरी, 1968 को हुई उनकी हत्या के तुरंत बाद हो जाना चाहिए था, परंतु वह कार्य उनके जन्म शताब्दी वर्ष 2016 में हो सका। उसके बाद ही उनके विचारों पर शोध कार्य को गति मिली। प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य आधार 'हिन्दुस्थान समाचार' बहुभाषी संवाद समिति द्वारा 1963 में प्रकाशित स्मारिका में दीनदयाल जी द्वारा दिया गया वह संदेश है, जो भारतीय पत्रकारिता की दिशा और दशा का विश्लेषण करता है। वह पूरा संदेश इस शोध पत्र में शामिल किया गया है। इसके अलावा दीनदयाल उपाध्याय से प्रभावित अथवा उनके साथ काम कर चुके पत्रकारों एवं संपादकों के विभिन्न पुस्तकों तथा पत्रों में प्रकाशित विचारों का भी सहारा लिया गया है। साथ ही दीनदयाल जी के साथ काम कर चुके श्री अच्युतानंद मिश्र, डॉ. नंदकिशोर त्रिखा, श्री मनमोहन शर्मा तथा पंडित भगवतीधर वाजपेयी जैसे वरिष्ठ पत्रकारों तथा दीनदयाल उपाध्याय के विचारों के अध्येता डॉ. महेशचंद्र शर्मा से बातचीत की गई।

पत्रकारिता पर दीनदयाल जी का दिशाबोधक लेख

दीनदयाल जी की पत्रकारीय दृष्टि को समझने के लिए उनके द्वारा 1963 में 'हिन्दुस्थान समाचार' की 15वीं वर्षगाँठ के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका के लिए लिखा गया एक संदेश महत्वपूर्ण दस्तावेज है। वह संक्षिप्त संदेश अत्यंत दिशाबोधक और सारगर्भित है। वह संदेश ज्यों का त्यों यहाँ प्रस्तुत हैः

''प्रतिक्षण हमारे चारों ओर अनेक घटनाएँ घटती हैं। जीवन के प्रत्येक व्यवहार से उनका संबंध रहता है, इनमें से जिन घटनाओं को हम दूसरों को बताना आवश्यक तथा उचित समझते हैं, वह समाचार है। जिस समाचार का सार्वजनिक महत्व है, जो व्यक्तिगत अथवा कुटुंब मात्र की रुचि और चिंता का विषय न हो, अखबारों के लिए खबर बन जाता है। समाचार और साहित्य में मूल अंतर यही है कि समाचार मुख्यतः दूसरों की घटी और कृति से संबंध रखता है, जबकि साहित्य प्रधानतः आत्माभिव्यक्ति है। वस्तुगतता समाचार का मुख्य गुण है, किंतु अनगिनत घटनाओं में से समाचार संकलनकर्ता कुछ को ही रिपोर्ट करता है। सबका संकलन न तो संभव है, न आवश्यक। किसी भी दृश्य का या व्यक्ति का फोटो उनकी प्रतिछाया होती है, किंतु चित्रकार की तूलिका से बने चित्र में केवल वे विवरण रहते हैं, जो दर्शक को वस्तु की सही कल्पना देने के साथ उसके ऊपर वांछित प्रभाव भी कर सकें। इसी प्रकार घटना का यथार्थ वर्णन मात्र समाचार नहीं, बल्कि रुचिकर तथा जनता की जिज्ञासा को शांत करने वाला भी होना चाहिए।

जनरुचि और जन जिज्ञासा का विचार करते हुए भी संवाददाता केवल द्रष्टा और उदासीन भाव से काम नहीं करता। जनरुचि की तुष्टि तथा उत्पन्न जिज्ञासा की संतुष्टि ही नहीं तो जनरुचि का निर्माण तथा उसे दिशा देने का महत्वपूर्ण कार्य भी संवाददाता को करना होता है। यह उसके कार्य का भावात्मक एवं रचनात्मक पहलू है। यदि उसे इस दिशा का भान नहीं रहा तो समाचार संकलन तथा वितरण में उसे सदैव कठिनाई बनी रहेगी तथा उसमें वह कोई विशेष रुचि निर्माण नहीं कर सकेगा। चुगलखोर एवं संवाददाता में अंतर है। चुगली जनरुचि का विषय हो सकती है, किंतु वह सही मायने में संवाद नहीं। संवाद को तो सत्य, शिव, सुंदर के तीनों आदर्शों को चरितार्थ करना चाहिए। केवल सत्य और सुंदर से काम नहीं चलेगा।

संवाददाता शिव का बराबर ध्यान रखता है, किंतु वह उपदेष्टा की भूमिका में नहीं चलता। यह यथार्थ के सहारे वाचक को शिव की ओर इस प्रकार से ले जाता है कि शिव यथार्थ बन जाता है। संवाददाता न तो शून्य में विचरता है और न कल्पना जगत् की बातें करता है, वह तो जीवन की ठोस घटनाओं को लेकर चलता है और उनमें से शिव का सृजन करता है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में विचार करें तो यह मानना पड़ेगा कि तथ्यगतता समाचार का प्रधान गुण होते हुए भी वह संकलन कार्य के व्यक्तित्व से अछूता नहीं रह सकता। प्रत्येक समाचार में अपनी निजी विशेषता रहनी चाहिए। भारतीय समाचार जगत् में इस दृष्टि से बहुत कुछ कमी है। यहाँ के अधिकांश समाचार पत्र एक ही ढाँचे के हैं। संपादकीय तथा एक-दो

समाचारों को छोड़कर सब पत्र एक से हैं। फलतः सार्वजनिक जीवन में महत्वपूर्ण काम करने वाले भी आवश्यक नहीं समझते कि वे एकाधिक समाचार पत्र पढ़ें। किसी भी एक समाचार पत्र से उनका काम चल जाता है। भारत के समाचार पत्रों का अपना कोई निजी व्यक्तित्व नहीं विकसित हुआ है।

इस स्थिति का मुख्य कारण है कि सभी समाचार पत्रों का स्रोत एक ही है—प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया, जो 'रायटर' की भारतीय शाखा 'एसोसिएटिड प्रेस ऑफ इंडिया' का रूपांतर मात्र है। सरकारी सूचना विभाग ही इन पत्रों के समाचार के मुख्य आधार हैं, पत्रों के निजि संवाददाता नहीं के बराबर हैं। बहुधा तो एक ही संवाददाता कई-कई पत्रों को समाचार भेजता है। जहाँ अलग-अलग संवाददाता हैं भी, वहाँ सभी संवाददाता प्रायः एक ही संवाद भेजते हैं। कारण, किसी भी घटना के संवाद मूल्य के संबंध में अधिकांश संवाददाताओं की घिसी-पिटी धारणाएँ हैं और यदि किसी संवाददाता ने नए ढंग का समाचार भेजा भी तो समाचार संपादक अपनी लीक छोड़ने को तैयार नहीं। फलतः स्वराज्य के बाद भी हमने पत्रकारिता के क्षेत्र में कोई नया विकास नहीं किया है।

संवाद-जगत् में राजनीतिक नेताओं और संस्थाओं का प्रभाव, उनमें भी राजकर्ताओं का तो एक प्रकार से सर्वस्वी वर्चस्व हो गया है। यह भारतीय राष्ट्रजीवन की धारणा के प्रतिकूल है। राजनीति के अतिरिक्त भी क्षेत्र हैं, जिनमें जनता की रुचि है, किंतु उस ओर ध्यान नहीं जाता। यदि कहीं जाता भी है तो अपराध या दुर्घटनाओं के समाचार की ओर। साहित्य, संस्कृति, धर्म इन क्षेत्रों के समाचार तो यत्किंचित् ही मिलेंगे। विदेशी समाचारों का भी हमारे यहाँ बहुत प्रभुत्व है। अर्जेंटीना में हुई रेल दुर्घटना को हमारे यहाँ समाचार-पत्रों में स्थान मिल जाएगा, किंतु जगद्गुरु शंकराचार्य का यदि कोई कार्यक्रम नगर में भी हो तो संवाद योग्य नहीं समझा जाएगा। हाँ, 'रायटर' से प्राप्त होने के कारण पोप या किसी विदेशी पंथ प्रमुख के समाचार अवश्य छप जाएँगे। अकाली नेता मास्टर तारा सिंह के वक्तव्य संवाद योग्य समझे जाते हैं, क्योंकि वे राजनीति में भाग लेते हैं, किंतु शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के नेताओं के अन्य वक्तव्यों का कोई मूल्य नहीं।

संवाद मूल्य संबंधी इस धारणा के अतिरिक्त संवाद की भाषा भी महत्व का विषय है। अभी तक हमारा कामकाज अँग्रेजी में होता है। संवाद-समितियां अँग्रेजी में चलती हैं, देशी भाषाओं के पत्र भी अँग्रेजी से अनुवाद के सहारे काम चलाते हैं। फलतः भाव की अभिव्यक्ति तो हो ही नहीं पाती। अनेकदा भाव के स्थान पर भाषा का अत्यधिक महत्व हो जाता है। अँग्रेजी में विचार करने वाले भारतीय भावों को ग्रहण नहीं कर पाते, जो ग्रहण भी करते हैं, उसे अँग्रेजी में व्यक्त नहीं कर पाते। जितने समाचार संकलित होते हैं, वे सब के सब अँग्रेजी पत्रों तथा उनके पाठकों को ध्यान में रखकर होते हैं और हिंदी पत्र या दूसरी भाषाओं के पत्र को वे ही समाचार दिए जाते हैं। प्रत्युत 'पी.टी.आई.' के अनुसार तो उनको दूसरे दर्जे की सेवा, जो कुछ सस्ती है, दी जाती है। इनमें मूल समाचारों को और भी संक्षिप्त कर दिया जाता है। इन समाचार-पत्रों का संपादक अनुवादक से अधिक कुछ नहीं बन पाता। अनेक बार तो भारतीय भाषाओं में कही गई बातों का संवाददाता अँग्रेजी में अनुवाद करता है और फिर उस अनुवाद का संपादक के द्वारा भारतीय भाषाओं में अनुवाद होता है। इस दोहरे अनुवाद में मूल की क्या गति होगी, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। मद्रास का हेमिल्टन ब्रिज जैसे बरबरस ब्रिज बन गया, उसी प्रकार इन वक्तव्यों का आए दिन रूप बिगड़ता रहता है।

आवश्यकता है कि समाचार क्षेत्र में विद्यमान इन विविध प्रकार के एकाधिपत्यों को तोड़ा जाए। विदेशी समाचार, अँग्रेजी भाषा, राजकर्ता, राजनीति, एक ही समाचार समिति, सरकारी सूचना विभाग का समाचार जगत् पर लगभग एकाधिकार है। जब तक यह समाप्त नहीं होता हम इस क्षेत्र में विकास नहीं कर पाएँगे। 'हिन्दुस्थान समाचार' ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से समाचार देने का एक स्तुत्य प्रयास किया है। मैं आशा करता हूँ कि इसके समाचारों में हिंदुस्थान की अभिव्यक्ति होगी तभी उसका नाम सार्थक होगा तथा विद्यमान अभाव को दूर करने में उसे सफलता मिलेगी'' (शर्मा, 2011)।

दीनदयाल उपाध्याय का यह संदेश भारतीय पत्रकारिता के स्वरूप का एक खाका प्रस्तुत करता है। करीब 59 वर्ष पूर्व लिखा गया यह संदेश आज भी प्रासंगिक है। इसमें भाषा की शिष्टता, समाचार का महत्व, समाचार और साहित्य में अंतर, समाचार में तथ्यगतता, संवाद समिति की समस्याएँ, समाचार संपादकों की जड़ता, मीडिया में राजनीतिक नेताओं का प्रभाव, राजनीति के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों को नजरअंदाज करना, संवाद की भाषा, संपादकों पर सवार अँग्रेजियत, दोहरे अनुवाद की समस्या, समाचार क्षेत्र में विद्यमान विविध प्रकार के एकाधिपत्य, भारतीय भाषाओं में समाचार देने की जरूरत और समाचारों में भारत की अभिव्यक्ति आदि बिंदुओं की ओर स्पष्ट संकेत किया गया है। ये सभी ऐसे बिंदु हैं, जो आज मीडिया शोधार्थियों हेतु शोध के अलग-अलग विषय हो सकते हैं।

भाषा की शिष्टता

सबसे पहले बात भाषा की शिष्टता की। इस संबंध में 'नवभारत टाइम्स' और 'जनसत्ता' जैसे प्रतिष्ठित हिंदी समाचार पत्रों में संपादकीय विभाग का नेतृत्व करने के बाद भोपाल स्थित माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के कुलपति का दायित्व निभा चुके वरिष्ठ पत्रकार श्री अच्युतानंद मिश्र दीनदयाल जी से जुड़ी एक घटना का उल्लेख करते हैं : ''बात 1960 के दशक की है। श्री भानुप्रताप शुक्ल और मैं उन दिनों लखनऊ में 'पाञ्चजन्य' के संपादन का कार्य देखते थे। हमने वचनेश त्रिपाठी जी से तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित नेहरू पर एक कविता लिखवाई, जिसका शीर्षक था '100 बरस की उम्र हो तेरी जवाहरलाल'। कविता की भाषा व्यंग्यात्मक थी। कविता को 'पाञ्चजन्य' के आवरण पृष्ठ पर छापा गया। हमें जानकारी मिली की दीनदयाल जी लखनऊ में हैं। समाचार पत्र की पहली प्रति लेकर हम प्रेस से सीधे दीनदयाल जी के पास पहुँचे। उम्मीद थी कि दीनदयाल जी शाबाशी देंगे। दीनदयाल जी ने कविता पढ़ी और कुछ सोचने लगे। थोड़ी देर बाद पूछा कि उस अंक की कितनी प्रतियाँ छप चुकी हैं? हमने कहा, अभी थोड़ी ही छपी हैं। उन्होंने कहा, इसकी छपाई तुरंत रुकवा दो और आवरण पृष्ठ पर छपी इस कविता को हटा दो। इसमें प्रधानमंत्री के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे शिष्टता की श्रेणी में नहीं आते। हमें अपने देश के प्रधानमंत्री के लिए अमर्यादित शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए'' (मिश्र, 2020)।

भाषा के संबंध में 'पाञ्चजन्य' के पूर्व संपादक भानुप्रताप शुक्ल अक्सर बताया करते थेः ''पाञ्चजन्य' और उसके संपादकीय विभाग में काम करने वाले लोगों से दीनदयाल जी के संबंध दिखते नहीं थे, सब उन्हें महसूस करते थे। उनका सान्निध्य बड़ा ही शिक्षाप्रद होता था। वे आते तो पत्रकारिता पर चर्चा होती, खबर कैसे बनानी, शीर्षक कैसे लगाना आदि से लेकर सभी छोटी-बड़ी सैद्धांतिक और व्यावहारिक बातें होती थीं। हम उनसे बहस भी करते थे। एक बार दीनदयाल जी लखनऊ आए। उस दौरान संत फतेह सिंह किसी विषय पर आमरण अनशन कर रहे थे। उस संबंध में प्रकाशित होने वाले समाचार में हमने शीर्षक दिया 'अकाल तख्त के काल'। दीनदयाल जी ने वह शीर्षक हटवा दिया और समझाया कि सार्वजनिक जीवन में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए, जिससे परस्पर कटुता बढ़े तथा आपसी सहयोग और साथ काम करने की संभावना ही समाप्त हो जाए। अपनी बात को दृढ़ता से कहने का अर्थ कटुतापूर्वक कहना नहीं होना चाहिए''(शर्मा, 2011)। इसी प्रकार 'आर्गेनाइजर' के पूर्व संपादक स्व. केवल रतन मलकानी बताया करते थेः ''वर्ष 1968 में जब तीन दिन से भी कम समय में तत्कालीन केंद्र सरकार ने हरियाणा, पश्चिम बंगाल और पंजाब की गैर-काँग्रेसी सरकारें गिरा दीं तो 'आर्गेनाइजर' ने एक व्यंग्यचित्र छापा, जिसमें तत्कालीन गृहमंत्री श्री चव्हाण को लोकतंत्र के बैल को काटते हुए दर्शाया गया। बहुत से लोगों को यह अतिवाद लगा। दीनदयाल जी की प्रतिक्रिया थी कि चाहे व्यंग्यचित्र ही क्यों न हो, गो-हत्या का दृश्य मन को धक्का पहुँचाने वाला है'' (शर्मा, 2011)। इसका अभिप्राय है कि दीनदयाल जी व्यंग्यचित्रों के माध्यम से भी मर्यादा का पालन करने के पक्षधर थे। ये घटनाएँ वर्तमान मीडिया के लिए आइना हैं। वर्तमान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के लिए विपक्षी दलों द्वारा जिस प्रकार अत्यंत अशिष्ट भाषा (पी.टी.आई. 2017) का प्रयोग कभी-कभी दिखाई देता है, ऐसे में दीनदयाल जी का भाषा की शिष्टता का आग्रह बहुत प्रासंगिक दिखाई देता है।

मीडिया की निष्ठा किसके प्रति?

पत्रकारिता में यह प्रश्न आज भी महत्वपूर्ण है कि पत्रकार और समाचार पत्र/टेलीविजन न्यूज चैनल/वेब पोर्टल की निष्ठा किसके प्रति होनी चाहिए? अपनी व्यक्तिगत विचारधारा के प्रति? किसी दल के प्रति अथवा देश और जनता के व्यापक हितों के प्रति? 'पाञ्चजन्य' के पूर्व संपादक यादवराव देशमुख इस संबंध में एक प्रसंग का उल्लेख करते थे, ''बात संभवतः 1961 की है। उस समय चीनी आक्रमण के बादल देश पर मँडराने लगे थे। उस समय अनेक राजनीतिक दलों एवं मजदूर संगठनों ने रेल कर्मचारियों की कतिपय माँगों के समर्थन में देशव्यापी रेल हड़ताल का आह्वान किया। सन् 1962 के चुनावों को निकट देखकर भारतीय जनसंघ ने भी उस हड़ताल का समर्थन किया। उसके प्रमुख नेताओं को स्वाभाविक अपेक्षा थी कि 'पाञ्चजन्य' भी उस हड़ताल का समर्थन करेगा, पर मैंने अपने संपादकीय सहयोगियों से विचार-विमर्श कर हड़ताल को देशहित में विरोधी करार दिया। सत्तारूढ़ काँग्रेस के 'नवजीवन' दैनिक ने उसे जनसंघ पर प्रहार करने का अच्छा माध्यम बना लिया। इससे जनसंघ के साथियों का नाराज होना स्वाभाविक था। उन्होंने दीनदयाल जी से शिकायत की कि क्या जनसंघ की नीतियों-कार्यक्रमों का 'पाञ्चजन्य' में विरोध उचित है? दीनदयाल जी ने एक दिन सायंकाल अपने आवास पर मुझे बुलाया और जनसंघ के

छायाचित्र 1: दीनदयाल उपाध्याय के साथ 'ओर्गनाइजर' के तत्कालीन संपादक केवल रतन मलकानी (मध्य) और 'पांचजन्य' के संपादक अटल बिहारी वाजपेयी (एकदम दायें)

कार्यकर्ताओं को भी। उनकी नाराजगी का कारण बताया। फिर स्वयं ही प्रश्न किया, 'जो काम पार्टी के हित में हो, पर देश या समाज के लिए अहितकर या अनुचित न लगे, तो पाठकों का मार्गदर्शन करने वाले समाचार पत्र को क्या करना चाहिए?' प्रश्न में ही उत्तर भी निहित था। फिर बोले, 'भाई, पार्टी की अपनी कुछ विवशताएँ हड़ताल का समर्थन करने की हो सकती हैं, पर 'पाञ्चजन्य' की तो ऐसी कोई विवशता नहीं होनी चाहिए। मुझे लगता है आप लोगों ने अपनी-अपनी जगह ठीक ही निर्णय लिया है।' बात यहीं पर साफ हो गई। पार्टियाँ देश या समाज से बड़ी नहीं हो सकतीं। देशहित ही सर्वोपरि होना चाहिए। पत्रकार की निष्ठा भी देश के प्रति ही अपेक्षित है'' (शर्मा, 2011, पृष्ठ 57-58)।

भारतीयता का प्रश्न

मीडिया से जुड़ा एक और अहम प्रश्न है—अँग्रेजी समाचार पत्रों के एक समूह द्वारा भारतीयता के प्रश्न पर विरोधी रुख अपनाना। अँग्रेजी मीडिया का यह वर्ग स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भी ऐसा ही व्यवहार करता था। यही प्रश्न एक बार यादवराव देशमुख ने दीनदयाल जी से किया। उसका जवाब दीनदयाल जी ने इस प्रकार दियाः ''अँग्रेजी के प्रायः सभी बड़े अखबार अँग्रेजों द्वारा चलाए गए थे। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद यद्यपि उनका स्वामित्व तो भारतीय हाथों में आ गया, पर उनमें कार्यरत संपादक एवं पत्रकार वर्ग तो उसी मानसिकता व भावभूमि से अभिभूत था। अँग्रेजों का समर्थन तो उन्होंने छोड़ दिया, पर अँग्रेजियत का नहीं। वे इस देश की संस्कृति, सभ्यता व परंपरा से वैचारिक रूप से कटे-कटे ही रहे। इसमें कुछ अपवाद जरूर थे। सर्वसाधारण अँग्रेजी समाचार पत्र का पत्रकार उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही हो पाता था। इसलिए उस पर 'अँग्रेजियत' सवार रहती थी। हिंदी या भाषाई पत्र-पत्रिकाओं का संपादक या पत्रकार वैचारिक दृष्टि से इस देश की भावभूमि से प्रेरित होता है। स्वतंत्रता संग्राम के समय हिंदी या भाषाई संपादकों एवं पत्रकारों की देशप्रेम व संस्कृति निष्ठा की परंपरा का भी बहुत बड़ा योगदान है। इस कारण एक ही पत्र समूह के

हिंदी व अँग्रेजी के पत्रों के संपादक के चिंतन में स्पष्ट विरोधाभास रहता है। इसका एक और कारण है। अँग्रेजों के जाने के बाद भी स्वतंत्र भारत अपनी परंपरा के अनुरूप शिक्षण पद्धति का विकास नहीं कर सका। शरीर से हिंदुस्तानी और मन-मस्तिष्क पर अँग्रेजियत के संस्कार डालने वाली मैकाले-प्रणीत शिक्षा पद्धति ही छोटे-मोटे परिवर्तनों के साथ आज भी चल रही है। उसमें से निकलने वाले पत्रकार उन संस्कारों से अलिप्त कैसे रह सकते हैं? जब तक इस शिक्षा पद्धति का भारतीयकरण नहीं होगा, तब तक अँग्रेजी समाचार पत्रों का भी भारतीयकरण नहीं हो सकेगा। इसमें कुछ अपवाद अवश्य रह सकते हैं और हैं भी''(शर्मा, 2011, पृष्ठ 58-59)।

भारत का भारत से परिचय

वरिष्ठ पत्रकार डॉ. नंदकिशोर त्रिखा दीनदयाल जी की पत्रकारिता का जिक्र करते हुए गीता के एक श्लोक को उद्धृत किया करते थे-'अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्। स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।।' इसका अभिप्राय है कि जो कथन उत्तेजना, यानी चुभन पैदा न करे, यथार्थ हो और मन को अच्छा लगने वाला हो, पर हितकारी अवश्य हो उसे ही मन का तप कहा गया है। डॉ. त्रिखा की दृष्टि में दीनदयाल जी का पत्रकारीय लेखन अक्षरशः इस आदर्श पर खरा उतरता है। गीता के इस आदेश का उन्होंने जीवनपर्यंत पालन किया। सत्य और केवल सत्य लिखना, कटुसत्य को भी प्रिय रूप में लिखना और कथन यदि सत्य और प्रिय दोनों हो, पर अनिष्टकारी हो तो उसे न लिखना-यह उनकी पत्रकारिता का आदर्श था। उनके लेखों में इस बात का आग्रह रहता था कि एक भी ऐसा शब्द प्रयुक्त न हो जाए, जो लोकहित के प्रतिकूल प्रभाव पैदा करता हो। अपने ही लेखों में नहीं, बल्कि जिस किसी ने भी इस प्रकार से लिखा हो, उन सबके लेखों में भी वे अगर ऐसे शब्द देखते थे तो उन्हें निःसंकोच टोक देते थे। यह जो वाणी का कठोर तप है, कोई तपस्वी ही उस पर चल सकता है। पत्रकार के रूप में दीनदयाल जी ऐसे ही तपस्वी थे। किसी भी विषय पर लिखने से पहले उसके समस्त पहलुओं का गहरा अध्ययन और अन्वेषण करना उनके स्वभाव का अंतर्निहित अंग था। इसलिए यथार्थ के पैमाने पर उनके विरोधी भी उन्हें चुनौती नहीं दे पाते थे। वे बड़े सटीक ढंग से और बड़े ही नपे-तुले शब्दों में अपनी बात कहते थे। उनके लेखन में बड़े-बड़े विवादों पर गंभीर चिंतन होता था। शब्द तो उनके सीधे-सादे होते, लेकिन अपने तर्कों से वे विपक्षियों को सहज निरुत्तर कर देते थे। अपने लेखन से उन्होंने भारत का भारत से परिचित कराया''(त्रिखा, 2015)।

स्वाध्यायी वृत्ति

वरिष्ठ पत्रकार और 'भाषा' संवाद समिति के पूर्व संपादक श्री वेदप्रताप वैदिक को दीनदयाल जी की पत्रकारिता को देखने व समझने का अवसर प्राप्त हुआ। वे कहते हैं : ''जो दोष आज हम पत्रकारिता में देखते हैं उनकी तरफ दीनदयाल जी बराबर इशारा करते थे। आज पत्रकारिता वृत्ति बन गई है। लेकिन आजादी के बाद भी दीनदयाल जी की पत्रकारिता में हमें उन वृत्तियों का कहीं पता नहीं चलता है, जिनसे आज की पत्रकारिता ग्रस्त है। हमारे पास कलम की शक्ति है, वाणी का बल है, विचार का बल है तो राष्ट्र की सेवा करें। यह संतोष और उस संतोष को प्राप्त करने वाले लोगों की पीठ पर कोई हाथ धरे, पीठ ठोके, थपथपाए वह काम दीनदयाल जी बराबर करते रहे। इस मायने में दीनदयाल जी पत्रकारों के पत्रकार थे और संपादकों के संपादक थे। आज की पत्रकारिता और दीनदयाल जी की पत्रकारिता में एक बड़ा बदलाव मुझे यह दिखाई पड़ता है कि आज के पत्रकार स्वाध्याय नहीं करते। न उन्हें शब्दों की पहचान है और न ही विषयों की जानकारी। आज कोई गहरी बात लिख दें तो संपादन करते हुए कट जाती है। संपादन करने वाले को पता ही नहीं होता कि जो काटा गया है वह बहुत महत्वपूर्ण था। दिल्ली शहर तो बड़े-बड़े बादशाहों की कब्रगाह है, बड़े-बड़े राजाओं का श्मशान है। उनको कौन याद करता है? आज दीनदयाल जी को हम याद करते हैं, इसलिए कि उन्होंने नये विचार हमारे समक्ष रखे''(वैदिक, 2020)।

लेखन देश की चिरंतन प्रतिष्ठा के लिए

वरिष्ठ साहित्यकार एवं उत्तर प्रदेश में दीनदयाल जी के सान्निध्य में काम करने वाले श्री हृदयनारायण दीक्षित दीनदयाल जी की पत्रकारिता को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं : ''पंडित जी ने शब्द तपस्या के अनुष्ठान में बहुत कुछ लिखा है। उनके लेखन का एक ही हेतु था—विश्व के मानचित्र पर भारत के गौरव की पुनःप्रतिष्ठा। पंडित जी ने भारतीय तत्वज्ञान को नए शब्द देने की कोशिश की। जब सारी दुनिया मनुष्य को ही पदार्थ सिद्ध करने में संलग्न थी, पंडित जी मानव की महिमा और गरिमा की पुनःप्रतिष्ठा के लिए ही लिखते रहे। उनके रचना संसार की निष्पति है कि इस भारत ने मनुष्य को पदार्थ मात्र कभी नहीं माना। मनुष्य का जितना हिस्सा पदार्थ है, वह भी शुद्ध चैतन्य ही है। इसी सत्य की अनवरत शोध और आराधना में लगी चेतना का नाम भारत है। भारत देशवाचक ही नहीं, एक सनातन साधना की संज्ञा भी है। पंडित जी इसी भारतभूमि की चिरंतन प्रतिष्ठा की खातिर लिखते थे''(शर्मा, 2011)। 'राष्ट्रधर्म' की चर्चा करते हुए श्री दीक्षित बताते हैं कि 1950 के दशक में एक-एक रुपये जोड़कर एक ट्रेडिल प्रिंटिंग मशीन की व्यवस्था दीनदयाल जी ने की। वे राष्ट्रधर्म प्रकाशन के प्रबंध संचालक थे, मगर प्रेस में झाड़ू लगाने के काम से लेकर मशीन की सफाई तक का कार्य करने में शर्म महसूस नहीं करते थे। राष्ट्रधर्म के पूर्व संपादक श्री वचनेश त्रिपाठी बताया करते थे कि एक बार शीत लहर के कारण रात्रि पाली में कम कंपोजिटर आए। दैनिक 'स्वदेश' भी पंडित जी के ही मार्गदर्शन में निकलता था। अखबार हर हालत में निकलना ही था। अखबार सही समय पर निकाला जा सके, इसके लिए पंडित जी ने स्वयं पूरी रात कंपोजिंग की। भारतीय इतिहास का निष्काम कर्मयोगी रात भर अक्षर जोड़ता रहा। भारत की आज की पीढ़ी सौभाग्यशाली है कि उसे कर्म प्रेरणा देने की खातिर दीनदयाल उपाध्याय जैसे ऋषियों की कथनी और करनी का जीवंत रूप मौजूद है।

अखबार का वितरण

समाचार पत्र छपते ही समय पर सब जगह पहुँच जाए, इसकी दीनदयाल जी सदैव चिंता करते थे। वह आर्थिक अभावों का दौर था और साधन बहुत सीमित थे। इसलिए जरूरत के अनुसार लिखने से लेकर कंपोजिंग और मशीन चलाने तक के काम में दीनदयाल जी स्वयं ही जुट जाते थे। यही नहीं, वे अखबार के बंडल हाथ में लेकर वितरण करने के लिए भी जाया करते थे (दीनदयाल उपाध्याय चित्रावली, 2017)। दीनदयाल उपाध्याय द्वारा 'राष्ट्रधर्म' के बंडल बाँधकर डाकखाने में पोस्ट करने का एक संस्मरण वरिष्ठ पत्रकार श्री मनमोहन शर्मा भी साझा करते हैं। दिनांक

21 अप्रैल, 2022 को श्री मनमोहन शर्मा ने अपनी फेसबुक पोस्ट में लिखा : ''जनसंघ के प्रमुख नेता दीनदयाल उपाध्याय जी से मेरा प्रथम परिचय 1957 में लखनऊ में उस समय हुआ था जब मुझे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तत्कालीन सरसंघचालक श्री गुरुजी के उत्तर प्रदेश प्रवास के समाचारों के संकलन हेतु 'हिन्दुस्थान समाचार' की ओर से लखनऊ भेजा गया था। गुरुजी को लखनऊ में कार्यकर्ताओं की एक बैठक को संबोधित करना था, इसलिए मुझे राजेंद्र नगर स्थित संघ कार्यालय में भिजवा दिया गया। मेरे साथ संघ के एक प्रचारक थे। जैसे ही हम संघ कार्यालय पहुँचे तो कार्यालय के बाहर धोती-कुर्ताधारी एक साधारण व्यक्ति साइकिल के पीछे 'राष्ट्रधर्म' के बंडल लादे खड़ा हुआ था। लखनऊ के प्रचारक ने इस व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए कहा 'ये हैं माननीय दीनदयाल जी'। सच तो यह है कि मैं काफी दिनों से पंडित जी की चर्चा 'हिन्दुस्थान समाचार' के कार्यालय में सुनता आ रहा था। मैंने उनके जिस भव्य व्यक्तित्व की कल्पना कर रखी थी उस खाँचे में असली दीनदयाल जी कहीं फिट नहीं थे। कुछ देर बाद पंडित जी राष्ट्रधर्म के बंडलों को डाकखाने में पोस्ट करने के बाद कार्यालय वापस लौट आए तो मैंने उन्हें अपना परिचय दिया। पंडित जी ने मुझे पूछा क्या तुम चाय पीते हो? जब मैंने हाँ में उत्तर दिया तो वे मेरे पास से उठकर चले गए और कुछ ही देर में चाय का एक गिलास हाथ में लिए प्रकट हुए। इसके बाद हमारी कुछ देर आपस में बात हुई। फिर मैं एक कमरे में विश्राम करने के लिए चला गया'' (शर्मा, 2022)।

दीनदयाल उपाध्याय के साथ 'राष्ट्रधर्म' में काम कर चुके भोपाल के वरिष्ठ पत्रकार पंडित भगवतीधर वाजपेयी भी ऐसा ही एक संस्मरण सुनाते हैं। वे कहते हैं, ''एक दिन हमारे मशीनमैन का स्वास्थ्य खराब हो गया। उसका हैल्पर थोड़ी-थोड़ी छपाई जानता था, किंतु उसमें आत्मविश्वास की कमी थी। लेकिन हम सभी यह देखकर अचरज में डूब गए कि पंडित जी ने उसे मशीन चलाने के लिए उत्साहित किया और खुद सहयोगी बनकर उसकी मदद करने लगे, जिससे अखबार समय पर प्रकाशित हो सका। उस रात छपाई में देर हो जाने से बंडल बस स्टैंड पहुँचाने का काम भी विलंबित हो गया था। और तब दीनदयाल जी ने बिना किसी से कुछ कहे बंडल बाँधना प्रारंभ किया। नानाजी भी उनके साथ जुटे और उसके बाद वहाँ मौजूद पूरा स्टाफ उस काम में जुट गया'' (वाजपेयी, 2021)।

दीनदयाल जी के लिए पत्रकारिता व्यवसाय नहीं, मिशन थी। पद या प्रतिष्ठा का उनके लिए कोई महत्व नहीं था। 'पाञ्चजन्य' के पूर्व संपादक स्व. देवेंद्र स्वरूप बताया करते थे, ''दीनदयाल जी की पत्रकारिता का वास्तविक अनुभव मुझे 1951 के अंत में लखनऊ पहुँचने पर हुआ। दीनदयाल जी जनसंघ महामंत्री के नाते प्रवास करके लखनऊ वापस आते तो थोड़ी देर अमीनाबाद में जनसंघ कार्यालय में रहकर सदर बाजार में 'राष्ट्रधर्म' प्रकाशन पहुँच जाते। वहीं से 'पाञ्चजन्य' व 'स्वदेश' भी प्रकाशित होते थे। दीनदयाल जी वहाँ आते तो संपादक मंडल एकत्र हो जाता। चाय के प्याले पर प्रवास के अनुभव सुनाते, चुटकुले, हँसी-मजाक चलते। राष्ट्रीय घटनाचक्र पर चर्चा होती, तो विश्लेषण करते, भावी संभावनाओं को टटोलते हुए बहस छिड़ जाती। उनके शब्दों में भर्त्सना नहीं पारिवारिक आत्मीयता होती थी। उसी आत्मीय भाव से उन्होंने अनेक पत्रकार गढ़े।'' दीनदयाल जी की पत्रकारिता का विश्लेषण करते हुए वरिष्ठ लेखक डॉ. महेशचंद्र शर्मा लिखते हैं, ''उनके संपादकीयों, आलेखों एवं स्तंभ लेखों में उनकी चिंतन शैली, विद्वता एवं अध्ययन क्षमता तो परिलक्षित हैं ही, पत्रकारीय दायित्व-बोध एवं शालीनता भी उनकी रेखांकनीय विशेषता है। सामाजिक सरोकारों से पथभ्रष्ट पत्रकारिता बहुत खतरनाक हो सकती है। आज 'प्रोफेशनलिज्म' के नाम पर कुछ पत्रकारों द्वारा पत्रकारिता के साथ जो व्यवहार हो रहा है, वह चिंता उत्पन्न करने वाला है। ऐसे समय में दीनदयाल जी द्वारा पत्रकारिता के संदर्भ में किया गया मार्गदर्शन एक समुचित पाथेय है। क्या हम इस पाथेय को ग्रहण कर सकेंगे? यही हमारे समक्ष आज का यक्ष प्रश्न है''(शर्मा, 2011)।

छायाचित्र 2: प्रिंटिंग प्रेस पर काम करते हुए दीनदयाल उपाध्याय

कुशल पत्रकार

वरिष्ठ पत्रकार श्री मनमोहन शर्मा दीनदयाल उपाध्याय से जुड़ी एक अन्य घटना का स्मरण करते हैं। वे कहते हैं: एक घटना की याद आज भी मेरे स्मृति पटल पर अमिट बनी हुई है। दीनदयाल जी 'हिन्दुस्थान समाचार' के कार्यालय प्राय: आया करते थे। एक बार जब वे बालेश्वर अग्रवाल जी के पास बैठे हुए थे तो थोड़ी देर में बालेश्वर जी ने मुझसे पूछा कि 'क्या दीनदयाल जी के भाषण का कोई समाचार मेरठ से प्राप्त हुआ है?' तो मैंने कहा 'नहीं।' बालेश्वर जी ने दीनदयाल जी से कहा कि 'आप ही समाचार लिख दीजिए'। दीनदयाल जी मेरी मेज के समीप एक कुर्सी घसीटकर बैठ गए और समाचार की कॉपी लिखनी शुरू कर दी। 15 मिनट के बाद उन्होंने समाचार मुझे थमा दिया। मैंने समाचार पर एक नजर डाली। समाचार पत्रकारिता की दृष्टि से त्रुटिहीन था। मैंने उसे अपने एक वरिष्ठ सहयोगी को सौंप दिया। दीनदयाल जी ने उस सहयोगी से कहा 'अरे भइया! इसका संपादन कर लीजिए। मेरे से कोई गलती या त्रुटि हो सकती है'। यह घटना इस बात को सिद्ध करती है कि दीनदयाल जी एक कुशल पत्रकार भी थे'' (शर्मा, 2022)।

कुशल मीडिया प्रबंधक

पंडित भगवतीधर वाजपेयी दीनदयाल जी से जुड़ा एक और संस्मरण साझा करते हैं : ''भारतीय जनसंघ की स्थापना हो चुकी थी और दीनदयाल जी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा प्रदत्त उन कुछ प्रचारकों में से थे, जिन्हें जनसंघ के रूप में विशुद्ध भारतीय चिंतन वाली राजनीति को मजबूत करने का दायित्व सौंपा गया था। मैं और अटल बिहारी वाजपेयी ग्वालियर से स्नातक की उपाधि अर्जित करने के उपरांत आगे की पढ़ाई हेतु तैयारी कर रहे थे। मैंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से विधि की उपाधि लेने का मन बनाया

और अटल जी कानपुर एम.ए. करने पहुँच गए। हालाँकि संघ कार्यवश हम दोनों का संपर्क बना रहता था। उसी दौरान लखनऊ में एक बैठक के दौरान मेरी दीनदयाल जी से पहली भेंट हुई। अटल जी उनसे पूर्व परिचित थे, अतः वे ही मुझे उनसे मिलवाने वाले बने। उस समय लखनऊ से राष्ट्रवादी विचारधारा का साहित्य प्रकाशित करने का विचार हुआ, जिसके अंतर्गत 'राष्ट्रधर्म' प्रकाशन की रचना हुई थी। दीनदयाल जी के द्वारा 'राष्ट्रधर्म' मासिक, 'पांचजन्य' साप्ताहिक और तदुपरांत 'स्वदेश' नामक दैनिक का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। मेरे परिवारजन चाहते थे मैं ग्वालियर लौटकर वकालत करूँ, किंतु अटल जी के आग्रह पर मैं लखनऊ आकर राष्ट्रधर्म प्रकाशन से जुड़ गया। अटल जी ने संपादक का गुरुतर दायित्व ग्रहण किया और मैं उनका सहयोगी बना। अटल जी विद्यार्थी जीवन से ही ओजस्वी वक्ता और अच्छे कवि के तौर पर प्रसिद्ध होने लगे थे, किंतु जब मैंने देखा कि दीनदयाल जी उस संस्थान के प्रबंध संचालक थे, तब मैं चौंका क्योंकि उनके समूचे व्यक्तित्व और व्यवहार से कहीं भी ऐसा नहीं लगता था कि वे किसी अखबार का संचालन करने वाले प्रकाशन संस्थान के प्रबंधन जैसा दायित्व भी निर्वहन कर सकेंगे। उनका धीर-गंभीर व्यक्तित्व हर मिलने वाले के मन में उनके प्रति सम्मान और श्रद्धा का संचार कर देता था। एक छोटे से परिसर में अटल जी, मैं, नानाजी देशमुख, वचनेश त्रिपाठी और कुछ अन्य सहयोगियों के साथ दीनदयाल जी भी रहते थे। वे कभी-कभी संघ कार्यालय में भी रुक जाते और बाद में जनसंघ कार्यालय की देखरेख भी उनके जिम्मे आई। लेकिन इस सबके बावजूद अपनी वरिष्ठता का प्रदर्शन उन्होंने कभी नहीं किया। सभी लोग उनको आदर से 'पंडित जी' कहते थे। समाचार पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का कोई पूर्व अनुभव न होने के बाद भी उनकी विलक्षण नेतृत्व क्षमता हम सबका मार्गदर्शन करती रही। अटल जी तो खैर लेखन में निष्णात थे ही, लेकिन दीनदयाल जी द्वारा राजनीतिक विषयों पर लिखे आलेख उनकी पैनी नजर और भविष्य को भाँपने की क्षमता का प्रमाण थी। सामान्यतः वे राजनीति पर ज्यादा चर्चा नहीं करते थे, किंतु जब उनकी 'साप्ताहिक डायरी' प्रकाशन हेतु आती तब उसे देखकर संपादकीय विभाग के सभी साथी हतप्रभ हो जाते थे। हिंदी भाषा के मामले में अटल जी जहाँ साहित्यिक दृष्टि से बेजोड़ थे, वहीं वचनेश जी का प्रवाह आकर्षित करता था। लेकिन पंडित जी का लेखन अपने आप में अलग था। वे न तो साहित्यकार थे और न ही पेशेवर नियमित लेखक, परंतु उनकी विद्वता जिस सरलता के साथ कागज पर उतरती वह राजनीति से जुड़े किसी व्यक्ति से अनपेक्षित ही होती है" (वाजपेयी, 2021)।

मीडिया और एकात्म मानवदर्शन

दीनदयाल उपाध्याय एकात्म मानव दर्शन के प्रणेता हैं। प्रश्न उठता है कि क्या उनका यह चिंतन मीडिया पर भी लागू होता है? भारतीय जन संचार संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी मानते हैं कि यह चिंतन मीडिया पर भी लागू होता है। वे कहते हैं, "एकात्म मानवदर्शन को लेकर समाज जीवन के विविध पक्षों में कैसे परिवर्तन होंगे, इस पर विद्वानों ने अलग-अलग विचार किया है। किंतु हमें यह जानना जरूरी है कि आज के सबसे प्रभावकारी माध्यम मीडिया में एकात्म भाव की उपस्थिति से क्या बदलाव आएँगे। एकात्म मानवदर्शन विभेद का नहीं, संपूर्णता में विचार करने वाला दर्शन है। यह एक ऐसी चिंतनधारा है, जिसमें मनुष्यता के मूल्य और मनुष्य की मुक्ति संयुक्त है। दीनदयाल जी अपनी विचारधारा में मीडिया को अलग करके नहीं देखते। वे यही दृष्टि रखते कि किस तरह मीडिया समाज की एकता, उसकी बेहतरी और मनुष्यता की मुक्ति में सहायक हो। संवाद मनुष्य की आवश्यकता भी है और उसकी प्रेरणा भी। वह संवाद किए बिना रह नहीं सकता। उसका समूची सृष्टि से रिश्ता है और संवाद है, जिसे हम प्रकृति से संवाद की भी संज्ञा देते हैं। मनुष्य के लिए संवाद कैसा हो, इस पर बहुत विचार हुआ है। सूचना की भी इसमें एक बड़ी भूमिका है। इस भूमिका का वास्तविक निर्वाह ही हमें मनुष्य बनाता है। एकात्म मानवदर्शन के आधार बनने वाले मीडिया और सूचना की दुनिया में सबका हित निहित होना है। वह एकांगी मीडिया नहीं होगा, वह सूचना को जारी करने से पहले उसके प्रभाव का भी आकलन करेगा। मीडिया और शुभ दोनों विरोधी लगते हैं। पश्चिमी अवधारणा में खबर तभी बनेगी, जब कुछ अशोभन हो, चौंकानेवाला हो, दर्द का विस्तार करने वाला हो, तो इसमें शुभदृष्टि कहाँ है? एकात्म भाव से भरा मीडिया इसके विपरीत चलेगा। वह हर सूचना में शुभदृष्टि का विचार करेगा। सूचनाओं को विद्रूप करने, उसे खींचने के बजाय, वह शुभदृष्टि के चलते उसकी न्यूनतम नकारात्मकता का विचार करेगा। जाहिर तौर पर यह मीडिया आज की मीडिया के लीक से अलग चलेगा। वह बाजार और व्यापार के लिए संवाद से सौदा नहीं करेगा। वह मनुष्यता और मनुष्य की मुक्ति को केंद्र में रखते हुए वही परोसेगा, जिससे समाज में जुड़ाव बढ़े और शुभदृष्टि का विचार हो। क्या ऐसा मीडिया संभव है? साथ ही यह सवाल भी है कि यदि समाज में शुभदृष्टि का विचार स्थापित हो जाता है तो क्या हमारा परंपरागत मीडिया अप्रासंगिक नहीं हो जाएगा?" (द्विवेदी, 2021)।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि दीनदयाल उपाध्याय के लिए पत्रकारिता अर्थोपार्जन का जरिया नहीं, बल्कि राष्ट्र जागरण एवं राष्ट्रीय विचारों के प्रचार-प्रसार का माध्यम थी। यदि उन्होंने पत्रकारिता को थोड़ा और अधिक समय दिया होता, तो देश की वर्तमान पत्रकारिता का स्वरूप संभवत: कुछ और ही होता। जन सरोकारों से कटकर पत्रकारिता कितनी नुकसानदेह हो सकती है यह आज की मुख्यधारा की पत्रकारिता को देखकर समझ में आता है। मीडिया का एक वर्ग आज अपने लाभ के लिए देशविरोधी शक्तियों से भी समझौता करने में संकोच नहीं करता। राजनीतिक दलों तथा कुछ छुपी हुई वैश्विक ताकतों को लाभ पहुँचाने के लिए झूठी खबरें छापने का चलन भी जोरों पर है। 'पेड न्यूज' का मुद्दा करीब दो दशक से चर्चा में है। समाचार पत्र के प्रथम पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक और न्यूज चैनल की पहली खबर से लेकर अंतिम खबर तक नकारात्मकता ही छायी रहती है। वर्तमान समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और न्यूज चैनलों एवं वेब पोर्टलों को देखकर लगता है कि आज देश में सिर्फ नकारात्मक घटनाएँ ही घट रही हैं और समाज में कुछ भी सकारात्मक और रचनात्मक नहीं हो रहा है। समाज की उजली तस्वीर मीडिया से गायब है। ऐसे समय में दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता और उनके द्वारा रचित साहित्य हमें नई दिशा प्रदान करता है। दीनदयाल जी ने सार्वजनिक जीवन के प्रति सचेत, सुरुचिपूर्ण एवं संस्कारक्षम पत्रकारिता को अपने कार्यकर्ताओं व समाचार पत्रों के माध्यम से विकसित करने का प्रयत्न किया। भाषा की शिष्टता, समाचार में भारत की अभिव्यक्ति, समाज को रचनात्मक दिशा देने के लिए लेखन आदि ऐसे मूल्य हैं जो दीनदयाल जी से सीखे जा सकते हैं। पेड न्यूज, फेक न्यूज आदि जिन विसंगतियों से भारतीय मीडिया जूझ रहा है उनके

निराकरण में भी दीनदयाल जी का पाथेय उपयोगी है। दीनदयाल उपाध्याय के मीडिया संबंधी चिंतन पर गहन शोध की आवश्यकता है। अध्ययन तो मीडिया और एकात्म मानवदर्शन को केंद्रबिंदु मानकर भी हो सकता है। देश के अन्य महापुरुषों की पत्रकारिता का लक्ष्य जहाँ स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु जनजागरण था, वहीं दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता और लेखन का ध्येय स्वतंत्रता के पश्चात राष्ट्र निर्माण था। उनकी प्रथम पुस्तक 'सम्राट चंद्रगुप्त' और दूसरी पुस्तक 'जगद्गुरु श्री शंकराचार्य' भले ही स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व प्रकाशित हुई हों, परंतु उनके माध्यम से उन्होंने राष्ट्र निर्माण और चरित्र निर्माण का संदेश ही दिया।

संदर्भ

त्रिखा, एन.के. (2015). वरिष्ठ पत्रकार, 28 दिसंबर, 2015 को नई दिल्ली स्थित उनके आवास पर साक्षात्कार.

द्विवेदी, एस. (2021). मीडिया के क्षेत्र में पं. दीनदयाल उपाध्याय का योगदान. समाचार4मीडिया पर 25 सितंबर, 2021 को प्रकाशित लेख. https://www.samachar4media.com/vicharmanch-news/professor-sanjay-dwivedi-pays-tributes-to-pandit-deen-dayal-upadhyay-on-his-birth-anniversary-3532.html से दिनांक 10 दिसंबर, 2021 को पुन:प्राप्त.

दीनदयाल उपाध्याय चित्रावली. (2017). पं. दीनदयाल उपाध्याय चित्रावली. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ 21.

पी.टी.आई. (2017). अमित शाह लिस्टस एक्सप्रेशन्स यूज्ड बाय कांग्रेस लीडर्स अगेन्सट पीएम नरेंद्र मोदी. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation/amit-shah-lists-expressions-used-by-congress-leaders-against-pm-narendra-modi/articleshow/61967115.cms?from=mdr से पुन : प्राप्त.

मिश्र, ए. (2020). नई दिल्ली में दिनांक 10 मार्च, 2020 को दूरभाष पर साक्षात्कार.

वाजपेयी, बी. (2021). भोपाल में रहने वाले वरिष्ठ पत्रकार. शोधार्थी के आग्रह पर उनके सुपुत्र रविंद्र बाजपेयी ने उनसे बात करके संस्मरण लिखकर भेजे.

वैदिक, वी. (2020). वरिष्ठ पत्रकार, 10 मार्च, 2020 को दूरभाष पर साक्षात्कार.

शर्मा, एम. (2022). दिनांक 21 अप्रैल, 2022 को मनमोहन शर्मा की फेसबुक पोस्ट. दिनांक 15 मई, 2022 को https://www.facebook.com/profile.php?id=100009268370574 से पुनःप्राप्त.

शर्मा, एम.सी. (सं.). (2011). पत्रकारिता और दीनदयाल उपाध्याय. नई दिल्लीः दीनदयाल समग्र, भारतीय जनता पार्टी.

शर्मा, एम.सी. (2018). पं. दीनदयाल उपाध्यायः कर्तृत्व एवं विचार. नई दिल्लीः प्रभात प्रकाशन.

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 100-105, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

समाधानमूलक पत्रकारिता की प्रासंगिकता का अध्ययन

डॉ. ईश्वर दास बैरागी[1]

सारांश

पत्रकारिता समाज में चलने वाली विविध प्रकार की गतिविधियों का दर्पण है, जिसके माध्यम से हमारे आसपास घटित होने वाली घटनाओं की जानकारी रोचक ढंग और तथ्यपरक ढंग से हम तक पहुँचती है। पत्रकारिता का दायित्व केवल समस्याओं को उजागर करने तक सीमित नहीं है, बल्कि समस्याओं के समाधान का उपाय बताना भी है। पश्चिमी मूल्यों से प्रभावित पत्रकारिता में नकारात्मकता का प्रभाव है, जिसके दुष्प्रभाव संपूर्ण विश्व में सामने आ रहे हैं। 'न्यूयॉर्क टाइम्स' और 'बीबीसी' द्वारा अपने ऑनलाइन पाठकों के बीच कराए गए अध्ययनों से पता चला है कि लोगों में समाचारों के प्रति अरुचि पैदा हो रही है। केवल समस्या आधारित पत्रकारिता से पाठकों की प्रभावशीलता कम हो रही है, जिसके कारण वे सार्वजनिक जीवन से दूर हो सकते हैं। 'एसोसिएटेड प्रेस' ने वर्ष 2008 के एक अध्ययन में पाया कि युवा समाचारों से थक गए हैं, जिसे वे नकारात्मक और संकल्प की कमी के रूप में मानते थे। भारत में समाधानमूलक पत्रकारिता की दीर्घ परंपरा है। देश में स्वाधीनता की अलख जगाने और कुरीतियों के खिलाफ समाज को खड़ा करने में पत्रकारिता लोकचेतना का सशक्त माध्यम बनी है। बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, गणेशशंकर विद्यार्थी, बाबासाहेब अंबेडकर और दीनदयाल उपाध्याय सहित अनेक मनीषियों ने देश में आसन्न समस्याओं को निकट से देखा और महसूस किया तथा पत्रकारिता के जरिये उनका समाधान भी प्रस्तुत किया। आज भी देश में पर्यावरण, स्वालंबन, कृषि, विज्ञान, शिक्षा, स्वास्थ्य, समाज जागरण, महिला सशक्तीकरण जैसे कई क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य हो रहे हैं। इनके प्रति मीडिया का रुझान भी बढ़ा है, लेकिन इसका अनुपात बहुत कम है। इसके लिए मीडिया को और गति के साथ आगे बढ़ने की जरूरत है। पत्रकारों को भी यह दायित्वबोध कराना होगा कि नकारात्मकता के इतर भी देश में कई कहानियाँ हैं, जो जनचेतना के लिए मिसाल बन सकती हैं। इनमें केवल समस्याएँ ही नहीं, बल्कि समस्याओं के समाधान के सटीक उदाहरण भी हैं। ऐसे समाचार समाज को एक नई दिशा देने में महती भूमिका निभा सकते हैं। सकारात्मक और समाधानमूलक समाचारों के प्रति लोकरुचि भी जाग्रत हो रही है। कुछ मीडिया संस्थानों ने इस दिशा में कदम बढ़ाए हैं, उनकी अनुकरणीय पहल का समाज में स्वागत हो रहा है। सही मायनों में आज के बदलते परिवेश में ऐसी ही समाधानमूलक पत्रकारिता की प्रासंगिकता है।

संकेत शब्द : समाधानमूलक पत्रकारिता, भारतीय चिंतन, शुभ दृष्टि, जनचेतना

प्रस्तावना

मनुष्य की हमेशा से ही खोजी प्रवृति रही है। अपने आसपास के वातावरण को जानने और समझने के लिए वह आदिकाल से ही उत्सुक रहा है। मनुष्य की इस जिज्ञासु वृत्ति के पीछे ही पत्रकारिता के उद्भव और विकास की कहानी छिपी है। वास्तविक अर्थों में पत्रकारिता सामाज में चलने वाली विविध प्रकार की गतिविधियों का दर्पण है, जो हमारे आसपास घटित घटनाओं की जानकारी रोचक और तथ्यपरक ढंग से हम तक पहुँचाती है। इसके अलावा देश-दुनिया में हो रहे नए प्रयोगों, आविष्कारों से भी हमें रूबरू कराती है। समाचार पत्र- पत्रिकाएँ, रेडियो, दूरदर्शन, वेब पोर्टल, यूट्यूब, ट्विटर, इंस्टाग्राम, फेसबुक आदि पत्रकारिता के माध्यम हैं। आधुनिक पत्रकारिता पश्चिम की देन है, जो नकारात्मकता पर आधारित है, जबकि भारतीय चिंतन इसके विपरीत है। इस चिंतन पर आधारित पत्रकारिता एक कदम आगे चलकर समाधान भी प्रस्तुत करती है। "गीता में जगह-जगह 'शुभ दृष्टि' का प्रयोग है। यह शुभ दृष्टि ही समाधान आधारित पत्रकारिता का आधार है, जिसमें गुणों को परखना तथा मंगलकारी तत्वों को प्रकाश में लाना सम्मिलित है। इसमें असत्य, अशिव और असुंदर पर 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की शंख ध्वनि है" (पंत & द्विवेदी, 2007, पृ 1)। वास्तव में इसका अंतिम लक्ष्य जन-कल्याण ही है।

भारतीय संस्कृति में नारद का एक विशिष्ट स्थान है। उन्हें आद्य पत्रकार की संज्ञा दी गई है। पुराणों में नारद मुख्य व अनिवार्य भूमिका में प्रस्तुत हैं। उन्हें देवर्षि माना गया है। उनका काम केवल देवताओं तक ही सीमित नहीं था। वे दानवों और मानवों सभी के मित्र, मार्गदर्शक, सलाहकार और आचार्य के रूप में उपस्थित हैं। पुराणों में नारद के जीवन के कई प्रसंग आते हैं, जिन्हें समाधानमूलक पत्रकारिता के रूप में देखा जा सकता है। भारतीय ऋषि परंपरा और लोक परंपरा, दोनों के इतिहास में उनकी समान लोकप्रियता है। लोककल्याण की भावना से नारद तीनों लोकों में भ्रमण करते हैं। "आदि पत्रकार नारद की पत्रकारिता सज्जन रक्षक एवं दुष्ट विनाशक की थी। समुद्र मंथन में विष निकलने की सूचना सर्वप्रथम नारद ने मंथन में लगे पक्षों को दी, परंतु सूचना पर ध्यान नहीं देने से विष फैला। सती द्वारा यक्ष के यज्ञ कुंड में शरीर त्यागने की सूचना सर्वप्रथम भगवान शिव को दी। महाभारत के युद्ध के समय तीर्थ यात्रा पर गए बलराम जी को महाभारत युद्ध की समाप्ति की सूचना नारद जी ने ही दी थी। उन्होंने स्वार्थ, लोभ एवं माया के स्थान पर हमेशा परमार्थ को श्रेष्ठ माना, ध्रुव को तपस्या तथा ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग बताया। इतना ही नहीं, प्रह्लाद को भी भक्ति एवं अध्यात्म का उपदेश देकर आसुरी शक्तियों के संहार में सहयोग प्रदान किया" (सिंह, 2016, पृष्ठ 26)। कुरुक्षेत्र में 18 दिनों के महाभारत युद्ध का आँखों देखा हाल सुनाने वाले संजय अपनी पत्रकारिता के माध्यम से समाधान भी देते दिखाई देते हैं। वे धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र का आँखों देखा हाल सुनाते हैं। श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद का वर्णन करते हुए संजय कृष्ण के विराट् रूप को धृतराष्ट्र के सामने रखते हैं। संजय प्रयास करते हैं

[1]पोस्ट डॉक्टरल फेलो, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली. ईमेल : ishwar.media@gmail.com

कि धृतराष्ट्र किसी तरह समझें। इस दौरान संजय का झुकाव धर्म की ओर है और वे समाधान की ओर अग्रसर हैं।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र समाधानमूलक पत्रकारिता की प्रासंगिकता को समझने का प्रयास है। भारतीय चिंतन की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए पौराणिक आख्यानों का सहारा लिया गया है। 20वीं सदी के आरंभ से लेकर अब तक की पत्रकारिता को अध्ययन का आधार बनाया गया है। भारत में पत्रकारिता के इतिहास को जानने के लिए विभिन्न पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का संदर्भ लिया गया है। स्वाधीनता आंदोलन के दौर के पत्रकारों के बारे में चर्चा की गई है, जिन्होंने देश में स्व का जागरण किया और व्याप्त समस्याओं का पत्रकारिता के माध्यम से समाधान दिया। समाज में इसका गहरा प्रभाव पड़ा। वर्तमान दौर में सकारात्मक समाचारों के चयन के लिए मीडिया के विभिन्न माध्यमों के साथ ही इंटरनेट पर उपलब्ध विभिन्न पुस्तकों, शोध पत्रों और वेबपोर्टल पर प्रकाशित सामग्री का उपयोग किया गया है। विषय बोध के लिए राजस्थान विश्वविद्यालय पुस्तकालय और डॉ. राधाकृष्णन राज्य केंद्रीय पुस्तकालय में उपलब्ध पत्रकारिता से संबंधित साहित्य का अवलोकन किया गया है। विषय से संबंधित विद्वानों और पत्रकारों से चर्चा के आधार पर शोध परिकल्पना और एवं प्रश्नों को परखने का प्रयास किया गया है।

वर्तमान पत्रकारिता की यात्रा

मानव व्यवहार को नियंत्रित एवं समायोजित करते हुए अपेक्षित दिशा की ओर निर्देशित करने में पत्रकारिता का विशेष महत्व रहा है। विकास एवं परिवर्तन की विविध प्रक्रियाओं में न केवल समाज को बल्कि विभिन्न संस्थाओं को भी इसने प्रभावित किया है। विश्व में पत्रकारिता की शुरुआत 131 ईस्वी पूर्व रोम से मानी जाती है। कालांतर में यूरोप के शहरों में रिवाज था कि चौराहे पर खड़ा होकर एक आदमी हाथ से लिखे इश्तहार या समाचार पढ़कर लोगों को सुनाया करता था। यह इश्तहार सरकार की स्वीकृति से लिखा जाता था, और इसे सुनने वाले इस सेवा के लिए एक 'गजीटा' दिया करते थे। गजीटा उस समय एक छोटा सिक्का होता था। यहीं से गजट शब्द की उत्पत्ति हुई" (भास्कर, 2000, पृष्ठ 32)। आधुनिक पत्रकारिता में समाचार की परिभाषा ही नकारात्मकता से शुरू होती है। आदमी कुत्ते को काटे तो खबर है। यदि आदमी घायल कुत्तों आदि की सेवा करे तो क्या वह खबर नहीं है? पश्चिम के नकारात्मकता मूल्यों ने पत्रकारिता का बहुत नुकसान किया है, जबकि भारतीय जीवन मूल्य सकारात्मकता की वकालत करते हैं। "दो हजार वर्ष पहले भरत मुनि से जो नाट्यशास्त्र मिला, उसमें मंच पर हिंसा, जुगुप्सा के दृश्य दिखाए जाने की मनाही है, जबकि पश्चिम के संचार का कुल दारोमदार ही ऐसे दृश्यों पर टिका होता है। दुर्भाग्य यह है कि संचार की जिस परिपाटी को आज हमने अपनाया है, उसमें भारतीय चिंतन का अभाव है। वह वही है, जिसे पश्चिम के लोग अपनाते हैं। इसलिए पहला द्वंद्व तो मूलभूत चिंतन में ही दिख जाता है। अतियथार्थवाद की जिस बुनियाद पर पश्चिमी पत्रकारिता टिकी हुई है, उसके दुष्परिणाम सारी दुनिया को झेलने पड़े हैं। उन्होंने अपने दिशानिर्देशों पर लगाम लगाने के लिए तथाकथित आचार संहिता भी बनाई है, जो आज कमोबेश पूरी दुनिया में लागू है" (पोखरियाल, 2021)। देश में सभी व्यक्तियों की समस्याएँ एक जैसी नहीं हैं। इसका कारण यह है कि विभिन्न आधारों पर वे अपना अलग-अलग अस्तित्व रखती हैं। समस्याविहीन समाज की कल्पना करना आज दुष्कर है। आज भी कई समस्याएँ हैं, जो भविष्य में राष्ट्रव्यापी हो सकती हैं। ऐसे में पत्रकार को मात्र सूचनाएँ देने और समस्याएँ उठाने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। सूचना की व्याख्या और विश्लेषण भी करना होगा। समाज के दुख-दर्द, आर्तनाद में समाज को संबल देने और सत्यान्वेषण का काम भी पत्रकारिता का है। गीता में जिस 'शुभ दृष्टि' का उल्लेख है, वही दृष्टि पत्रकारिता की होनी चाहिए, जिसमें गुणों को परखना तथा मंगलकारी तत्वों को प्रकाश में लाना सम्मिलित है। मूलतः यह ही भारतीय चिंतन पर आधारित समाधान आधारित पत्रकारिता है, जिसकी प्रासंगिकता आज है।

भारत में कई पत्रकार ऐसे हुए हैं, जिन्होंने समाज में व्याप्त समस्याओं के समाधान के लिए पत्रकारिता को अपना धर्म बनाया। उन्होंने अपने बलबूते पर अखबार निकाले और समाज जागरण किया। इसका काफी हद तक सकरात्मक प्रभाव भी पड़ा। यह दौर पराधीनता का था। देश में नवजागरण चल रहा था। पत्रकारिता करने वाले अधिकांश लोग स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े थे, इसलिए उन्हें पग-पग पर अँग्रेजी हुकूमत के कोप का भाजन होना पड़ा। स्वाधीनता के बाद पत्रकारिता का स्वरूप तेजी से बदला। नए-नए माध्यम और आयाम इससे जुड़े। लिहाजा पत्रकारिता व्यवसाय उन्मुख हो गई और उसमें सकारात्मकता का भाव क्षीण होता गया। वैश्वीकरण के दौर ने पत्रकारिता को बिजनेस बना दिया। स्वाधीनता से पहले बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, गणेशशंकर विद्यार्थी, बाबा साहेब अंबेडकर और स्वाधीनता के बाद दीनदयाल उपाध्याय सहित कई ऐसे लोग थे, जिन्होंने भारतीय चिंतन की आभा में समाधानमूलक पत्रकारिता को अपना कर्म बनाया और देश के सामने व्याप्त समस्याओं के समाधान के लिए भारतीय चिंतन प्रस्तुत किया। उन्होंने राष्ट्रीय चिंतनधारा को प्रवाहित करने वाले पत्रकारों की एक नई पीढ़ी तैयार की। इनमें प्रमुख थे, बाल गंगाधर तिलक। तिलक जननायक थे, इसलिए उनको 'लोकमान्य' उपनाम दिया गया। जनता का उन पर अटूट विश्वास था। तिलक ने पत्रकारिता के माध्यम से लोगों में स्वराज की भूख पैदा की और समूची सांस्कृतिक संवेदना को प्रभावित किया। भारत के आत्मनिर्भर होने की बात करते हुए स्वराज को स्वदेशी से जोड़कर स्वतंत्रता आंदोलन को व्यापक बनाया। तिलक ने विष्णु शास्त्री चिपलूणकर के साथ मिलकर सन् 1881 में मराठी भाषा में 'केसरी' और अँग्रेजी में 'मराठा' नामक साप्ताहिक अखबारों की शुरुआत की। अँग्रेजों के अत्याचारों के विरुद्ध जनता में राष्ट्रीय चेतना की अलख जगाई। हताश, निराश और दिशाहीन समाज में 'संपूर्ण स्वाधीनता' के भाव भरे और सिंहवत गर्जना के साथ उद्घोष किया : "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और में इसे लेकर ही रहूँगा"। यह उद्घोष एक लहर की तरह देशभर में फैल गया। 'स्वराज, स्वाधीनता, बहिष्कार, स्वदेशी' ये शब्द तिलक की राष्ट्रीयता से ओतप्रोत मुखर पत्रकारिता की देन है। स्वराज्य का स्पष्ट मंतव्य था—'अधिकार माँगने से नहीं मिलते, वे कर्तव्य से हासिल किए जाते हैं' (श्रीधर, 2008, पृष्ठ 531)।

इसी कड़ी में मोहनदास करमचंद गांधी का नाम भी है। गांधी नेता से पहले एक कुशल पत्रकार थे। उनकी पत्रकारिता का उद्देश्य राष्ट्रीयता और जनजागरण था। दक्षिण अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों को अपने अधिकारों

के प्रति सजग करने तथा सामाजिक-राजनीतिक चेतना जाग्रत करने के लिए उन्होंने 4 जून, 1903 को चार भाषाओं में 'इंडियन ओपिनियन' का प्रकाशन शुरू किया। रोलेट एक्ट के विरोध में जनमानस को तैयार करने के लिए 7 अप्रैल, 1919 को बंबई से 'सत्याग्रही' नाम से एक पृष्ठ का बुलेटिन निकाला। गांधी के 'यंग इंडिया', 'हरिजन' और 'हरिजन सेवक' में प्रकाशित होने वाले लेखों ने जनजागरण का काम किया। गांधीजी ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचने और उनके अभिप्राय जानने का प्रयास करते थे। बहुविध भाषाओं में पत्रिकाओं का प्रकाशन इस दिशा में एक प्रयास था (गांधी हैरिटेज पोर्टल, 2022)। गांधी के अनुसार, पत्रकारिता का कार्य जनमानस को शिक्षित करना है, न कि जनमानस को आवश्यक-अनावश्यक विचार-भंडार बनाना। सामाजिक और धर्मिक परिप्रेक्ष्य में सत्य, अहिंसा, स्वदेशी, गौरक्षा, खादी, श्रम कल्याण और हिंदू-मुस्लिम एकता जैसे रचनात्मक विषयों पर गांधी निरंतर लिखते रहे। महात्मा गांधी की पत्रकारिता का तत्कालीन समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

20वीं सदी के आरंभ में पत्रकारिता का मूल उद्देश्य स्वाधीनता प्राप्ति और अँग्रेजी हुकूमत के अत्याचारों का मुखरता से विरोध करते हुए जनजागरण रहा। इसी शृंखला में गणेश शंकर विद्यार्थी का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। वर्ष 1917-18 में उन्होंने 'होम रूल' आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाई और कानपुर में कपड़ा मिल मजदूरों की पहली हड़ताल का नेतृत्व किया। वर्ष 1920 में उन्होंने 'प्रताप' का दैनिक संस्करण निकालना शुरू किया। भगत सिंह, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सोहन लाल द्विवेदी, सनेही, प्रताप नारायण मिश्र जैसे तमाम देशभक्तों ने 'प्रताप प्रेस' की 'ज्वाला' से राष्ट्रप्रेम को घर-घर तक पहुँचा दिया था। गणेश शंकर विद्यार्थी की पत्रकारिता हिंदू-मुस्लिम साम्प्रदायिक सद्भाव को समर्पित थी। उन पर हिंदू जीवन मूल्यों का बड़ा प्रभाव था। इसलिए 'प्रताप' में उन्होंने लिखा था, "हम अपनी प्राचीन सभ्यता और जातीय गौरव की प्रशंसा करने में किसी से पीछे नहीं रहेंगे, और अपने पूजनीय पुरुषों के साहित्य, दर्शन, विज्ञान और धर्मभाव का यश सदैव गाएँगे" (श्रीधर, 2008, पृष्ठ-571)। अपने छोटे जीवन-काल में उन्होंने उत्पीड़क क्रूर व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाते हुए अपनी पत्रकारिता के माध्यम से समाज को जाग्रत कर स्वाधीनता की अलख जगाई। इसी शृंखला में एक और नाम बाबासाहब डॉ. भीमराव अंबेडकर का जुड़ता है। इतिहास में अंबेडकर प्रखर राष्ट्रभक्त, सुविज्ञ विधिवेत्ता, राजनीतिज्ञ और कुशल समाजचेता से संपन्न विभूति हैं। धर्म, दर्शन, राजनीति, कानून और अर्थनीति की गहरी समझ रखने वाले बाबासाहब अद्वितीय एवं अप्रतिम हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति और धर्म को श्रेष्ठ बताया। वे 1917 से पत्रकारिता में सक्रिय हुए और 1920 में 'मूकनायक' पाक्षिक समाचार पत्र के जरिये पत्रकारिता में पदार्पण किया। अंबेडकर भारतीय स्वरूप में भारतीय सम्यक् परिवर्तन के व्यावहारिक समर्थक थे (बेचैन, 1999, पृष्ठ- 93)। 'मूकनायक' ने अछूतोद्धार आंदोलन में बड़ी भूमिका निभाते हुए दलित और शोषितों की समस्याओं को शासन और प्रशासन तक पहुँचाया। डॉ. अंबेडकर के द्वारा प्रकाशित समाचार पत्र 'मूकनायक', 'बहिष्कृत भारत', 'जनता', 'समता' और 'प्रबुद्ध भारत' उनके विविधतापूर्ण व्यक्तित्व की बानगी हैं। इनके माध्यम से उन्होंने देश की कथित निम्न जातियों को शोषण, अत्याचार, असम्मान से बाहर निकालकर सम्मान, समानता की राह पर आगे बढ़ाया।

स्वाधीनता के बाद सर्वप्रथम भारतीय चिंतन के आलोक में समाधान आधारित पत्रकारिता करने वालों में दीनदयाल उपाध्याय का नाम अग्रणी है। उन्होंने एकात्म मानवदर्शन के रूप में भारतीय राजनीति को अपनी संस्कृति एवं प्रकृति के अनुकूल दर्शन दिया, एक नया विचार दिया और एक नया विकल्प दिया (सिंह, 2019)। एकात्म मानवदर्शन में संपूर्ण जीवन की एक रचनात्मक दृष्टि है। उन्होंने पत्रकारिता की ऐसी धारा प्रवाहित की, जिसकी अवधारणा पश्चिम पर नहीं, अपितु भारतीयत चिंतन पर आधारित हो। उन्होंने राष्ट्रीय विचार से ओत-प्रोत मासिक 'राष्ट्रधर्म', साप्ताहिक 'पांचजन्य' और दैनिक 'स्वदेश' आरंभ कराए। पत्रकारिता के माध्यम से देश में खड़ी समास्याओं से निपटने के लिए एक समाधान दिया। दीनदयाल जी ने अपने चिंतन का केंद्र अंतिम व्यक्ति को बनाया। कृषि, उद्योग, स्वास्थ्य और शिक्षा के क्षेत्र में गहन चिंतन प्रस्तुत किया। इस हम आर्थिक चिंतन कह सकते हैं। उन्होंने न्यूनतम आवश्यकताओं को रोटी, कपड़ा और मकान तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि उससे आगे जाकर इसमें शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा को भी सम्मिलित किया।

समाधानमूलक पत्रकारिता

चूँकि समाधानमूलक पत्रकारिता पर अभी तक अकादमिक जगत् में बहुत अधिक शोध कार्य नहीं हुआ है, इसलिए इसके संबंध में जानकारी बिखरी हुई है। इसे एक साथ समेटने के लिए गहन शोध की आवश्यकता है। अभी समाधानमूलक पत्रकारिता को निश्चित परिभाषा में बाँधना कठिन है। फिर भी उसे इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं—पत्रकारिता के माध्यम से लोकहित के मुद्दे पर जनमानस को जाग्रत करते हुए उसे समाधान तक ले जाना ही समाधान आधारित पत्रकारिता है। दूसरे शब्दों में कहें तो लोकचेतना में आया सकारात्मक परिवर्तन ही समाधान आधारित पत्रकारिता का निकष है। जनता को किसी विषय के प्रति जाग्रत कर उन्हें समस्या के समाधान के लिए प्रेरित करने वाली पत्रकारिता समाधानमूलक पत्रकारिता कहलाती है। पत्रकार भी देश का एक जिम्मेदार नागरिक है। पत्रकारिता का धर्म केवल सूचनाओं के आदान-प्रदान तक ही सीमित नहीं है, समाज जागरण भी उसका अभीष्ट है। आजादी के बाद देश में वैचारिक रूप से वामपंथ का प्रभाव रहा। उसने संपूर्ण शिक्षा का ढाँचा स्व गौरव विहीन बना दिया। इससे पत्रकारिता भी अछूती नहीं रही। लिहाजा पत्रकारिता नकरात्मकता प्रधान हो गई। पत्रकारिता की धारणा इस विश्वास पर टिक गई कि पत्रकार का काम केवल गलत कामों को उजागर करना और व्यवस्था के विरोध में सवाल खड़े करना है। सार्वभौमिक रूप से इस धारणा को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। समस्या आधारित रिपोर्टिंग की प्रधानता से ऐसा लगने लगा कि शायद दुनिया में मौजूद संकटों का कोई उपचार नहीं है। अनेक शोध अध्ययनों से पता चला है कि केवल समस्याओं पर आधारित पत्रकारिता पाठकों की रचनाशीलता कम कर देती है, जिससे वे सार्वजनिक जीवन से दूर हो सकते हैं (दहिया & साहू, 2021)। वर्ष 2008 के किए गए एक अध्ययन में 'एसोसिएटेड प्रेस' ने पाया कि युवा समाचारों से थक गए हैं, जिसे वे नकारात्मक और संकल्प की कमी के रूप में मानते हैं (एसोसिएटेड प्रेस, 2008)। इसके परिणामस्वरूप 'समाचार थकान' हुई, जिसमें लोगों ने संलग्न होने के बजाय समाचार

मीडिया से बाहर निकलने का प्रयास किया। समाधानमूलक पत्रकारिता यह मानती है कि समस्याओं के उठाने के तरीकों के बदलाव से लोगों के बीच जुड़ाव बढ़ सकता है। ऐसी पत्रकारिता प्रभावकारिता की भावना को बढ़ाती है। अब जनमानस का झुकाव सकारात्मक और समाधानमूलक पत्रकारिता की तरफ बढ़ने लगा है। लोग सकारात्मक खबरें देखना और पढ़ना चाहते हैं। खबर में समाधान भी खोजते हैं। देश में 'स्व' की भावना के साथ गौरवशाली प्राचीन इतिहास, वैभवशाली संस्कृति और देश के मानबिंदुओं के प्रति सम्मान जाग्रत हो रहा है। हम कह सकते हैं कि समाधानमूलक पत्रकारिता एक ऐसा दृष्टिकोण है, जो मुद्दों को उठाने के साथ-साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत कर सकता है। इस पत्रकारिता का लक्ष्य लोगों को मुद्दों के बारे में संपूर्ण दृष्टिकोण के साथ अधिक से अधिक जानकारी देना है, ताकि उन्हें और बेहतर नागरिक बनने में मदद मिले।

समाधानमूलक पत्रकारिता की अनेक कहानियाँ हम आए दिन कुछ समाचार माध्यमों में देखते, सुनते और पढ़ते रहते हैं। समाज के विविध क्षेत्रों में बहुत अच्छे काम हो रहे हैं। इन्हें पत्रकारिता के माध्यम से लोगों के सामने लाना चाहिए। कुछ अच्छे उदाहरण सामने आ रहे हैं, लेकिन इनकी गति मंद है। इसे और बढ़ाने की आवश्यकता है। कई इलेक्ट्रॉनिक चैनलों ने सकारात्मक समाचारों को दिखाने की शुरुआत की है। आजतक ने 'गुड न्यूज टुडे' नाम से एक अलग चैनल शुरू किया है। कई समाचार पत्रों ने सफलता की कहानी या पॉजिटिव स्टोरी के नाम से समाचार देने की परंपरा शुरू की है (कुमार, 2019)। सोशल मीडिया पर भी इस तरह के कई समाचार सामने आते हैं। भले ही इनकी आवृत्ति कम हो, लेकिन मीडिया की यह पहल स्वागत योग्य है।

समाधानमूलक पत्रकारिता की कहानियाँ प्रेरणादायक हैं। इनके कुछ उदाहरण देखिए : "जलसंकट और सूखे जैसी स्थिति से जूझने वाला उत्तर गुजरात का पालनपुर शहर है। यहाँ स्वाध्याय परिवार से जुड़े 200 परिवार गुजरात ही नहीं, पूरे देश के लिए मिसाल हैं। पिछले 20-22 साल से ये परिवार सिर्फ बरसात में जमा किया गया पानी ही पीते हैं। राजकोट के आसपास के सभी परिवारों ने इस बात को समझा और शुरुआती दौर में करीब 17 हजार से ज्यादा कुएँ और छोटे तालाबों को जोड़कर जल संरक्षण का कार्य शुरू किया" (तिवारी, 2022)। इन 20 वर्षों में किसी ने न टैंकर मँगवाया और न ही कोई फ्रिज का पानी इस्तेमाल करता है। आज जब देश में भूजल स्तर तेजी से गिर रहा है, ऐसे में यह समाचार समस्या का समाधान देते हुए जल संरक्षण का संदेश देता है। ऐसे ही जल संरक्षण के कुछ प्रयोग राजस्थान में हुए हैं, जो पर्यावरण और जल सरंक्षण की दिशा में उम्मीद की नई किरण है। "करौली में धौलपुर बॉर्डर के आसपास (डांग क्षेत्र) के गाँवों में पहले पीने का पानी तक नहीं था। आजीविका का साधन नहीं था। दस साल पहले लोगों ने तस्वीर बदलने की ठानी। सैरनी नदी के हालात देखे, जो बरसात में तो खूब चलती, लेकिन पथरीली भूमि पर मानसून बाद कहीं पानी नहीं ठहरता। आखिर 36 गाँवों के ग्रामीणों ने दस वर्षों में 250 तालाब बना दिए, नदी जिंदा हो गई, खेतों में 12 महीनें फसलें लहलहाने लगीं।" तरुण भारत संघ से जुड़े राजेंद्र सिंह बताते हैं, "करौली में पानी को लेकर जो काम हुए, उससे लोगों का जीवन और प्रकृति का चेहरा बदल गया है। 10-12 साल पहले जब हम यहाँ आए तब धरती का चेहरा डरावना था। बिन हरियाली पठारी एरिया में हर ओर हताशा, लोगों में बीमारी और डर का माहौल था। आज लोगों का लोगों के लिए और लोगों द्वारा किया गया काम नया जीवन है (शर्मा, 2022, पृ.1)। यह एक ऐसा सामूहिक प्रयास था, जिसने असंभव को संभव कर दिखाया।

इसी प्रकार हरियाणा एवं राजस्थान के पूर्वी अंचल में विद्यमान गुड़गाँव नहर के जल रिसाव से अभिशाप बनी सैकड़ों एकड़ खेती की जमीन को लोगों ने तालाब में बदलकर मछली उत्पादन शुरू कर दिया। दिल्ली एनसीआर में खपत से मेवात इलाके की अर्थव्यवस्था को संबल मिला है। जीराहेड़ा सहित क्षेत्र में दौ सौ से अधिक तालाबों में 500 हैक्टेयर क्षेत्र में मछली उत्पादन हो रहा है। दरअसल मानसून में यमुना नदी के अधिशेष पानी से सिंचाई के लिए ओखला बैराज से निकली गुड़गाँव नहर हरियाणा के कलिंजर हैड से राजस्थान में सीमांत गाँव काकन खोरी में प्रवेश करती है। पहाड़ी कांमा क्षेत्र में जमीन तल से काफी ऊँचाई पर बहने वाली नहर से जल रिसाव से जीराहेड़ा, नोनेरा, काकन खोरी इत्यादि गाँवों में खेती की जमीन छोटे-बड़े तालाबों में बदल गई। इस अभिशाप को रोजगार के अवसर में बदलने के लिए लुपिन फाउंडेशन ने आरंभ में दो-तीन साल तक कोलकाता से मछली बीज मँगाया। परिवहन में बीज खराब होने पर जिला प्रशासन से आवंटित दस हैक्टेयर जमीन पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग की मदद से फिश हेजरी स्थापित कर मछली पालकों के प्रशिक्षण के साथ मछली बीज उपलब्ध कराने की व्यवस्था करवाई। नतीजतन, मछली उत्पादन में तेजी आई (बत्रा, 2022)। यह कहानी है अभिशाप को अवसर में बदलने की।

राजसमंद जिले के पिपलांत्री गाँव की भी एक प्रेरक कहानी है। "पिपलांत्री के पूर्व सरपंच श्याम सुंदर पालीवाल ने बेटी की याद में पहले एक पेड़ लगाया। यह एक ऐसे विचार का जनक बनकर उभरा कि अब गाँव में हर बेटी के जन्म पर 111 पेड़ लगाए जाते हैं। तालाब बनवाए, बारिश का पानी रोकने के लिए चेक डैम बनवाए। इसके बाद जब बारिश हुई तो सारा पानी गाँव में रुका और गाँव में भूजल स्तर बढ़ा। सूखे से परेशान पिपलांत्री गाँव की पानी की समस्या का समाधान हुआ। आज गाँव में खूब पेड़ और पर्याप्त पानी है। पिपलांत्री देश का आदर्श गाँव है। पिपलांत्री मॉडल का अध्ययन करने के लिए देशभर से लोग आते हैं" (श्रीराम, 2022)। पर्यावरण सरंक्षण के महत्व को लोकपरंपरा के साथ जोड़कर एक अभिनव पहल पिपलांत्रीवासियों ने की है, जिसकी मिसाल दी जाती है। भारत सरकार ने भी इस मुहिम के अगुवा रहे श्यामसुंदर पालीवाल को पद्मश्री से सम्मानित किया है। राजस्थान की राजधानी जयपुर में दूदू तहसील का लापोडिया गाँव जल संस्कृति के रूप में जाना जाता है। करीब 40 साल की मेहनत के बाद सामाजिक कार्यकर्ता लक्ष्मण सिंह लापोड़िया की प्रेरणा से करीब 58 गाँव जल क्षेत्र में आत्मनिर्भर बने हैं। बीते तीन दशक में इन गाँवों की सूरत बदल गई है। बिना किसी तकनीकी उपकरणों के पानी सहेजकर, माकूल इस्तेमाल कर गाँव को आत्मनिर्भर बनाना वाकई अद्भुत है। लक्ष्मण सिंह बताते हैं कि वे सालाना जल यात्रा करते हुए लोगों को इकोसिस्टम बचाने के लिए जागरूक करते हैं। साथ ही गाँव-गाँव पानी को सहेजने के लिए खुद की तरफ से तैयार किए गए चौका सिस्टम को लेकर लोगों को जागरूक करते हैं और पानी को व्यवस्थित रूप से इस्तेमाल करते हुए इसे जल प्रसाद समझने की सीख देते हैं (ईटीवी भारत, 2020)। पानी की समस्या का समाधान होने से कृषि और पशुपालन भी आसान हो

गया है। आसपास के गाँवों के लिए लापोड़िया प्रेरणा का केंद्र है।

इसी कड़ी में राजस्थान के झालावाड़ की 2500 महिलाएँ डेयरी का संचालन कर महिला सशक्तीकरण और स्वावलंबन की नई कहानी लिख रही हैं। इसी के बूते राजस्थान ग्रामीण आजीविका विकास परिषद् के माध्यम से तीन हजार लीटर दूध हर रोज इंदौर जा रहा है। जिले में दूध संग्रह के लिए 90 संग्रहण केंद्र बनाए हैं। संग्रहण केंद्रों से एकत्रित कर दूध झालरापाटन रीको इंडस्ट्रीज एरिया में लगे चिलिंग प्लांट में भेजा जाता है, यहाँ दूध को फिल्टर कर ठंडा किया जाता है। इसके बाद टैंकरों से इंदौर की मदर डेयरी में पहुँचाया जा रहा है। दरअसल, जिले में यह पहला मामला है जब इतनी बड़ी संख्या में महिलाएँ दूध संग्रह कर स्वरोजगार से जुड़ी हैं। हर दिन सुबह-शाम ये महिलाएँ अपने गाँव के नजदीक संग्रहण केंद्र पर पहुँचती हैं और वहाँ पर लगी डिजिटल मशीनों में फैट के अनुसार दूध का तौल करवाती हैं। हर दस दिन में इन महिलाओं को इनका भुगतान भी हो रहा है। इससे ग्रामीण महिलाओं को अच्छी आय मिल रही है। जिले में खानपुर, अकलेरा, भवानीमंडी व बकानी सहित अन्य क्षेत्रों में जगह-जगह संग्रहण केंद्र बनाए गए हैं (खान, 2022, पृ. 14)। जयपुर के केशवपुरा गाँव की महिलाएँ उजड़ चुके गाँव की सुनहरी तकदीर लिख रही है। 105 घरों की आबादी वाला केशवपुरा गाँव महिलाओं के हुनर की बदौलत विदेश में ख्याति पा रहा है। राजस्थान की राजधानी जयपुर से 45 किलोमीटर दूर ग्राम पंचायत छांदेल कलाँ का यह गाँव 1981 की बाढ़ में तबाह हो गया था। गाँव की किस्मत दोबारा लिखने का बीड़ा महिलाओं ने उठाया। उनका सहारा बना गाय का गोबर। यहाँ की महिलाएँ गोबर से 13 तरह के जैविक उत्पाद बनाती हैं। इसमें जैविक गुलाल, दीपक, स्वस्तिक, राखी, मनकों की माला और लक्ष्मी-गणेश की मूर्तियाँ भी हैं, जिनकी माँग सिंगापुर-मलेशिया सहित यूरोप के नीदरलैंड तक है। अब यहाँ की महिलाओं ने सिलाई भी शुरू की है। आगरा से बंडी (गाँवों में पुरुषों के पहनने की प्रचलित बनियान) व लंगोट बनाने की माँग भी आई है। यहाँ हर घर की महिला इस स्वरोजगार से जुड़ी है (शर्मा, ओमप्रकाश, 2022, पृष्ठ 1)।

आज संयुक्त परिवार तेजी से बिखर रहे हैं, लेकिन जब हनुमानगढ़ की हैप्पी फैमिली की कहानी पढ़ते हैं तो संयुक्त परिवार का महत्व समझ में आता है। 51 सदस्यीय परिवार में सबसे बुजुर्ग 68 वर्षीय और सबसे छोटा 4 माह का शिशु है। हनुमानगढ़ जिले के गाँव भांभूवाली ढाणी में बुगालिया परिवार में प्रतिदिन 100 सदस्यों का भोजन तैयार होता है। परिवार के मुखिया महेंद्र कुमार बुगालिया ने सभी सदस्यों को एक सूत्र में पिरोकर रखा है। वे 6 भाइयों में सबसे बड़े हैं। 6 भाइयों के 20 बेटे-बेटियाँ हैं। सभी भाइयों की पत्नी, बेटे-बहू, पौत्र-पौत्रियाँ सहित 51 सदस्यों के इस परिवार की संयुक्त रूप से रहने की क्षेत्र में मिसाल दी जाती है। महेंद्र के दो भाई पेस्टीसाइड कंपनी में कार्यरत हैं। तीन भाई खेती सँभाल रहे हैं। सभी भाइयों के बेटे स्वयं का बिजनेस कर रहे हैं। सबसे खास बात यह है कि घर की महिलाओं को सभी घरेलू कार्यों के लिए अलग-अलग ड्यूटी सौंपी गई है। कुछ दिनों के अंतराल से महिलाओं की ड्यूटी में भी परिवर्तन कर दिया जाता है। ऐसे में कोई भी महिला कार्य को लेकर शिकायत नहीं करती। इस बिग हैप्पी फैमिली में प्रतिदिन 20 किलो आटा की रोटियाँ बनती हैं। हरी सब्जियाँ अपने खेत में ही उगाते हैं। प्याज, आलू सहित सूखी सब्जियाँ थोक में एक साथ खरीदकर लाते हैं (सहारण, 2022, पृ.17)। देश में ऐसे ही सैंकड़ों सकारात्मक एवं प्रेरणा देने वाले समाचार है, इन्हें समाज के सामने लाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान पत्रकारिता का एकमात्र ध्येय देश को स्वाधीन कराना था। इस मिशन में पत्रकारिता की प्रभावी भूमिका रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में तेजी से बदलाव आए। पत्रकारिता भी इससे अछूती नहीं रही। भारतीय पत्रकारिता में पश्चिम के मूल्य हावी होते चले गए। लिहाजा भारतीय पत्रकारिता ने भी नकारात्मकता को ही खबर मान लिया। देश में कुछ भी अच्छा नहीं हो रहा, ऐसा वातावरण बनाने के प्रयास लगातार चलते रहे हैं। कालांतर में ऐसा लगने लगा था कि देश-दुनिया में कुछ भी शुभ नहीं हो रहा है। 21वीं सदी के प्रारंभ में मीडिया में कई नए टूल जुड़े। इन्हें 'सोशल मीडिया टूल्स' के नाम से जाना जाता है। आज मुख्यधारा की पत्रकारिता के सामने सोशल मीडिया बड़ी चुनौती है। कोई भी सूचना परंपरागत मीडिया माध्यम की मोहताज नहीं रही। सोशल मीडिया ने नागरिक पत्रकारिता को जन्म दिया। अब हर नागरिक पत्रकार है। सूचनाओं के आदान-प्रदान में बढ़ी गति के फलस्वरूप लोगों में सकारात्मकता, समाधानपरक और देश में 'स्व' के भाव का जागरण करने वाली खबरों की भूख बढ़ी है। कई मीडिया संस्थानों ने लोगों की रुचि को भाँपकर सकारात्मक समाचार देने की शुरुआत की है। समाधान-मूलक पत्रकारिता की कई कहानियाँ लोगों के लिए प्रेरणा का केंद्र बन रही हैं। अच्छे कार्यों और समाचारों को सराहना मिल रही है। सकरात्मक समाचारों से जनचेतना आ रही है। वर्षों से बन रही नकारात्मकता की धारणा अब ध्वस्त हो रही है और नए प्रतिमान स्थापित हो रहे हैं। शोध पत्र में उल्लिखित सफल कहानियाँ इसकी उदाहरण हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि लोकचेतना के लिए समाधानमूलक पत्रकारिता की प्रासंगिकता है। इस दिशा में और अधिक कार्य करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

ईटीवी भारत. (31 अगस्त, 2020). लापोड़िया का चौका सिस्टम बना वरदान, पानी सहेजने की इस तकनीक से 58 गाँव बने आत्मनिर्भर. https://www.etvbharat.com/hindi/rajasthan/state/jaipur/process-of-water-storage-by-choka-system-of-lapodia-village-in-jaipur/rj20200831190139963 से दिनांक 20 अप्रैल, 2022 को पुनःप्राप्त.

एसोसिएटेड प्रेस. (2008). अ न्यू मॉडल फॉर न्यूज : स्टडिंग द डीप स्ट्रक्चर ऑफ यंग-एडल्ट न्यूज कंजंपशन. एसोसिएटेड प्रेस और संदर्भ-आधारित अनुसंधान समूह. https://apo.org.au/node/15035 से दिनांक 24 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

कुमार, पी. (2019). रोल ऑफ मीडिया इन इग्नाइटिंग माइंडस फॉर पॉजिटिव चेंज : अ स्टडी ऑफ द कवरेज ऑफ इंस्पाइरिंग स्टोरीज बाय फोर नेशनल डेलीज, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, अमर उजाला एंड द इंडियन एक्सप्रेस. इंडियन जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च. https://www.worldwidejournals.

com/indian-journal-of-applied-research-(IJAR)/article/role-of-media-in-igniting-minds-for-positive-change-a-study-of-the-coverage-of-inspiring-stories-by-four-national-dailies-dainik-bhaskar-dainik-jagran-amar-ujala-and-the-indian-express/MTcyODI=/?is=1&b1=109&k=28 से दिनांक 24 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

खान, एम. (11 अप्रैल, 2022). झालावाड़ की 2500 महिलाएँ संचालित कर रही डेयरी, हर दिन 3000 लीटर दूध इंदौर भेजकर बनीं आत्मनिर्भर. दैनिक भास्कर. https://www.bhaskar.com/local/rajasthan/kota/jhalawar/news/2500-women-of-jhalawar-are-running-the-dairy-becoming-self-sufficient-by-sending-3000-liters-of-milk-to-indore-every-day-129642980.html से दिनांक 20 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

गांधी हैरिटेज पोर्टल. (2022). गांधीजी की पत्रिकाएँ. https://www.gandhiheritageportal.org/hi/journals-by-gandhiji से दिनांक 20 अप्रैल, 2022 को पुनःप्राप्त.

तिवारी, जी. (16 मई, 2022). यहाँ सिर्फ बारिश का पानी पीते हैं लोग : गुजरात में पालनपुर के 200 परिवार 20 साल से बारिश का पानी सहेज रहे, 17 हजार कुओं को जिंदा किया. दैनिक भास्कर, https://www.bhaskar.com/local/gujarat/news/200-families-in-gujarat-drink-only-rain-water-for-20-years-one-verse-changed-their-thinking-17-thousand-wells-made-alive-129811449.html से दिनांक 20 मई, 2022 को पुन:प्राप्त.

दहिया, एस. & साहू, एस. (2021). बीट रिपोर्टिंग एँड एडिटिंग: जर्नलिज्म इन द डिजिटल एज. नई दिल्ली: सेज पब्लिकेशंस.

पंत, एन.सी. & द्विवेदी, एम. (2007). पत्रकारिता एवं जनसंचार, नई दिल्ली : कनिष्क पब्लिशर्स डिस्टिब्यूटर्स.

पोखरियाल, एस. (24 मई, 2021). नकारात्मकता पर आधारित पत्रकारिता, पश्चिम की पत्रकारिता अपने फायदे के लिए दोहरे मानदंड अपनाती. दैनिक जागरण. https://www.jagran.com/news/national-negativity-based-journalism-jagran-special-21672337.html से दिनांक 25 मई, 2022 को पुन:प्राप्त.

बत्रा, जी. (10 अप्रैल, 2022). गुड़गाँव नहर के जल रिसाव से मेवात में मछली उत्पादन की धूम. हिंदुस्थान समाचार. https://www.hindusthansamachar.in/Encyc/2022/4/10/Fish-production-due-to-water-leakage-of-Gurgaon-canal-.php से दिनांक 24 अप्रैल, 2022 को पुनःप्राप्त.

बेचैन, एस.एस. (1999). हिंदी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार अंबेडकर का प्रभाव. दिल्ली : समता प्रकाशन.

भास्कर, एस. (2000). हिंदी पत्रकारिता और स्वामी श्रद्धानंद. दिल्ली : सरस्वती साहित्य संस्था.

शर्मा एम. & शर्मा एस. (25 मई, 2022). सैरनी नदी ने बदली डांग की तकदीर : बंदूकें छोड़ दस्यु अब किसान बने, फेफड़े गलाते खनन से युवाओं का पीछा छूटा. दैनिक भास्कर. https://www.bhaskar.com/local/rajasthan/karauli/news/bandits-have-now-become-farmers-leaving-guns-the-youth-are-chased-by-mining-by-smelting-lungs-129848843.html से दिनांक 25 मई, 2022 को पुन:प्राप्त.

शर्मा, ओ.पी. (21 मार्च, 2022). गाय के गोबर से केशवपुरा की महिलाओं ने लिखी उजड़ चुके गाँव की सुनहरी तकदीर. दैनिक भास्कर. https://www.bhaskar.com/local/rajasthan/jaipur/news/the-women-of-keshavpura-wrote-the-golden-fate-of-the-ruined-village-with-cow-dung-129537016 से दिनांक 20 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

श्रीधर वी.डी. (2008). भारतीय पत्रकारिता कोश, खंड- दो. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.

श्रीराम, आर. (16 मई, 2022). बेटी की मौत के गम में सरपंच ने लगाया 1 पेड़, अब गाँव में हर बेटी के जन्म पर लगते हैं 111 पेड़. न्यूज-18. https://hindi.news18.com/news/nation/sarpanch-planted-1-tree-in-grief-of-daughters-death-now-111-trees-are-planted-on-the-birth-of-every-daughter-in-the-village-4251514.html से दिनांक 20 मई, 2022 को पुनःप्राप्त.

सहारण, आर. (15 मई, 2022). 1 परिवार के 51 सदस्य रहते हैं साथ : 6 भाइयों के 20 बेटे-बेटियाँ, जॉइंट फैमिली के लिए सम्मानित. दैनिक भास्कर. https://www.bhaskar.com/local/rajasthan/hanumangarh/news/20-sons-and-daughters-of-6-brothers-honored-for-joint-family-129846083.html से दिनांक 20 मई, 2022 को पुन:प्राप्त.

सिंह, ए. के. (2016). प्रथम पत्रकार देवर्षि नारद. नई दिल्ली : विचार विनिमय प्रकाशन.

सिंह, एल. (25 सितंबर, 2019). पं. दीनदयाल उपाध्याय ने पत्रकारिता को कम्युनिस्टों के प्रभाव से मुक्त कराया था. प्रभा साक्षी. https://www.prabhasakshi.com/column/pandit-deen-dayal-upadhyay-contribution-to-journalism से दिनांक 23 अप्रैल, 2022 को पुनःप्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 106-113, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

राजनीतिक चुनाव प्रचार में मीम्स की भूमिका : 2022 में संपन्न पाँच राज्यों के विधानसभा चुनाव के संदर्भ में एक अध्ययन

डॉ. बिजेंद्र कुमार[1]

सारांश

मीम एक टेक्स्ट, फोटो और वीडियो संदेश है, जिसमें कोई प्रासंगिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हास्य-व्यंग्ययुक्त संक्षिप्त संदेश निहित होता है। मीम शब्द से इंटरनेट प्रयोक्ता अब भलीभाँति परिचित हो गए हैं। मीम की संकल्पना के निर्माता रिचर्ड डाकिंस और माइक गाड्विन ने कल्पना भी नहीं की होगी कि आने वाले समय में मीम्स का बिजनेस मॉडल भी बन सकता है और वह विश्व में किसी मुद्दे को वायरल करके चर्चित करने का प्रभावी माध्यम बन सकता है। आज मीम सोशल नेटवर्किंग साइटों की सबसे ज्यादा पसंद की जाने वाली संचार सामग्री है। आज बिना मीम के राजनीतिक प्रचार की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। 21वीं सदी के आरंभ में सोशल नेटवर्किंग साइटों के आने के साथ राजनीति में मीम का प्रचलन शुरू हुआ। पिछले दशक में मीम्स राजनीतिक संचार का महत्वपूर्ण माध्यम बनकर उभरे हैं। मीम्स के माध्यम से 'इंटेरेक्टिव' राजनीतिक संचार की प्रक्रिया मजबूत हुई है। भारत में वर्ष 2010 के बाद ही राजनीति में मीम्स के प्रयोग की शुरुआत हुई। वर्ष 2014 में भाजपा ने और 2015 में आम आदमी पार्टी ने डिजिटल मीडिया में प्रचार को प्रमुखता दी, जिसमें मीम भी एक हथियार था। फरवरी-मार्च 2022 में उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तराखंड, मणिपुर और गोवा सहित पाँच राज्यों के विधानसभा चुनाव संपन्न हुए। इन चुनावों में भाजपा, काँग्रेस, आप और अन्य कई पार्टियों सहित उनके समर्थकों और आम इंटरनेट प्रयोक्ताओं ने राजनीतिक प्रचार, बहस और विमर्श में हिस्सा लेने के लिए मीम्स का खूब इस्तेमाल किया। ये मीम्स चुनाव प्रक्रिया आरंभ होने, चुनाव परिणाम के दिन और बाद में सोशल नेटवर्किंग साइटों पर साझा किए गए। विविध राजनीतिक घटनाक्रम, नेताओं, पार्टियों और विचारधाराओं पर इन मीम्स को बनाया और साझा किया गया। इनमें से कई मीम वायरल हुए और ट्रेंडिंग में भी आए। प्रस्तुत शोध पत्र में फरवरी-मार्च 2022 में संपन्न पाँच राज्यों के विधान सभा चुनावों में मीम्स के प्रयोग, महत्व, उपयोगिता और प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

संकेत शब्द : राजनीतिक चुनाव प्रचार, सोशल नेटवर्किंग साइट, मीम, रिचर्ड डाकिंस, माइक गाड्विन

प्रस्तावना

पहली बार 'मीम' शब्द का प्रयोग 1976 में रिचर्ड डाकिंस ने अपनी पुस्तक 'सेल्फिश जीन' में किया। इस पुस्तक में डाकिंस ने पाठ और इमेज के परिवर्तित रूपों के संदर्भ में मीम को व्याख्यायित किया। 1993 में 'वायर्ड' पत्रिका में माइक गॉड्विन ने इंटरनेट मीम को अवधारणा के स्तर पर विश्लेषित किया। 2003 में '4चेन' वेबसाइट ने कई मीम बनाकर प्रसारित किए। 2004 में फेसबुक, 2005 में यूट्यूब और 2006 में ट्विटर जैसी सोशल नेटवर्किंग साइटें आने से मीम को नए प्लेट्फॉर्म मिले। अब मीम बनाकर साझा करना बहुत आसान हो गया है। सोशल नेटवर्किंग साइटों पर भी मीम की उपयोगिता और लोकप्रियता में अपार वृद्धि हुई है। मीम सामान्य हास्य-व्यंग्य से लेकर गंभीर सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विमर्श का केंद्र बन गए। इंग्लैंड में 2010 के चुनाव में डेविड कैमरन ने मीम का इस्तेमाल किया। यह वह समय था जब भारत में भी सोशल नेटवर्किंग साइट के राजनीतिक महत्व को भाजपा, कॉंग्रेस और अन्य दलों के नेताओं ने समझ लिया था और वे इन साइटों पर सक्रिय होने के फायदे से अवगत हो गए थे। इस समय तक मीम भारत में प्रचलन में आ गया था। वेब 2.0 ने डिजिटल माध्यमों पर उपभोक्ताजनित सामग्री की राह दिखाई, जिसने मीम के प्रचलन और विकास को प्रोत्साहित किया। 2012 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में मीम का जमकर प्रयोग किया गया। भारत में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों पर एक मजाकिया अंदाज के रूप में मीम्स 2015 के आसपास एक डिजिटल चलन के रूप में उभरे। 26 अप्रैल, 2019 को ' फोर्ब्स इंडिया डॉट कॉम' लिखता है कि बीजेपी ने 2014 में जो शुरू किया और 2015 में आपने जिसे हाथोंहाथ लिया, वह अब भारतीय राजनीति की प्रमुख विशेषता बन गया है (सारदा, 2019)। चुनाव जमीन पर उतना ही लड़ा जाता है जितना सोशल मीडिया पर। हर चुनाव अब राजनीतिक दलों के आईटी सेल को अतिसक्रिय कर देता है। 2016 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में जोडिएक टेड एक बहुत ही चर्चित मीम था, जो वायरल हुआ।

दिनांक 28 मई, 2019 को 'द प्रिंट' में प्रकशित एक रिपोर्ट के अनुसार 2019 के चुनाव से पहले के वर्षों में मीम्स ने काँग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी के लिए पप्पू की छवि बनाने में बड़ी भूमिका निभाई। उन्होंने नरेंद्र मोदी को शक्तिशाली नेता के रूप में पेश करते हुए अन्य दावेदारों को भी पीएम की कुर्सी से उतारा। इस समय तक राजनेताओं ने समझ लिया था कि मीम्स छवि निर्माण का उपकरण बन गए हैं (यादव, 2019)। वर्ष 2019 के चुनाव में बड़ी मात्रा में मीम्स बने। दिनांक 24 जून, 2020 को 'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित एक लेख में भूपेंद्र यादव लिखते हैं कि कोविड महामारी ने सार्वजनिक संचार और जनसंपर्क के तरीकों में परिवर्तन किया (यादव, 2020)। संचार का डिजिटल माध्यम अब संचार का सबसे

[1]एसोसिएट प्रोफेसर, डॉ. भीमराव अंबेडकर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय. दिल्ली. ईमेल : bijender.du@gmail.com

प्रभावी माध्यम है। फरवरी-मार्च 2022 में पाँच राज्यों के चुनाव में तो मीम्स की बाढ़-सी आ गई। उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तराखंड, गोवा और मणिपुर विधानसभा चुनाव में मीम्स का राजनीतिक दलों और इंटरनेट प्रयोक्ताओं ने जमकर प्रयोग किया।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र मुख्य रूप से राजनीति में मीम्स के इस्तेमाल को लेकर किए गए एक सर्वे पर आधारित है। यह सर्वे 15 मार्च से 30 मार्च, 2022 के बीच किया गया। इसमें 180 प्रतिभागियों ने भाग लिया। सर्वे के माध्यम से चुनाव में मीम्स के प्रयोग, प्रभाव, उपयोगिता, प्रस्तुति और प्रतिक्रिया को लेकर इंटरनेट प्रयोक्ताओं से सवाल किए गए और उनकी राय ली गई। मीम्स सोशल नेटवर्किंग साइट से लिए गए हैं, जहाँ इंटरनेट प्रयोक्ता अपने मीम्स साझा करते हैं। शोध में प्रयुक्त प्रश्नों के अनुसार कुछ मीम्स को उदाहरण स्वरूप विवेचित किया गया है। मीम्स का गुणवता की दृष्टि से भी अध्ययन किया गया है।

मीम्स की उत्पत्ति

'मीम्स' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'मिमिसस' से जोड़कर देखी जाती है। नकल को मीम का मुख्य लक्षण माना गया है। मूलत: यह एक मुद्रित पाठ या 'इमेज' के रूप में टिप्पणी होती है, लेकिन समय के साथ दृश्य भी इसमें शामिल हो गए हैं। मीम में हास्य-व्यंग्य का पुट होता है। यह हास्य-व्यंग्य अपने समय के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक संदर्भों से निर्मित होता है। दरअसल मीम्स वे टेक्स्ट, फोटो और वीडियो संदेश हैं, जिनमें कोई प्रासंगिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक घटना के साथ हास्य-व्यंग्य का संक्षिप्त संदेश निहित होता है। मीम्स सोशल नेटवर्किंग साइटों के प्रयोक्ताओं की आयु, वर्ग और दर्शकों की आवश्यकता की पूर्ति को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं। मीम्स के संदेश अपने समकालीन सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संदर्भों को मजाकिया, लेकिन गंभीर और प्रतीक रूप में प्रस्तुत करते हैं।

मीम : सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक हस्तक्षेप का माध्यम

एक लोकतांत्रिक समाज में मीम्स आम प्रयोक्ता को अपनी बात कहने और सामाजिक तथा राजनीतिक हस्तक्षेप का अवसर प्रदान करता है। वैश्विक स्तर पर भूमंडलीकरण और प्रौद्योगिकी के विस्तार के चलते डिजिटल मीडिया ने जनसंचार के अनेक प्लेटफॉर्म उपलब्ध कराए हैं। दैनिक जीवन के घटनाक्रम के साथ राजनीतिक प्रचार के रूप में मीम का प्रचलन भारत में भी तेजी से बढ़ रहा है। मीम्स राजनीतिक प्रोपगेंडा और विमर्श में शामिल होने के साथ ही सीधे एजेंडा निर्धारण से जनता को जोड़ देता है। अब राजनीतिक पार्टियाँ एक-दूसरे के विरुद्ध मीम को चुनावी हथियार बनाकर सुनियोजित रणनीति तैयार करती हैं। दिनांक 22 अगस्त, 2021 को 'जी न्यूज डॉट कॉम' द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, मीम एक ऐसी चीज है, जिसे हर कोई पसंद करता है। आज लोग बिना कोई शब्द लिखे सिर्फ मीम के जरिये खुशियाँ बाँट लेते हैं (जी न्यूज डेस्क, 2021)। जाहिर है मीम्स राजनीतिक संचार के महत्वपूर्ण उपकरण बनकर उभर रहे हैं। विभिन्न दल, नेता और उनके आई टी सेल अपने एजेंडे और विचार के प्रचार और एक–दूसरे पर कटाक्ष के लिए मीम्स का अत्यधिक प्रयोग करने लगे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि मीम्स और उनकी राजनीतिक विविधताएँ इंटरनेट पर सबसे अधिक शेयर की जाने वाली लोकप्रिय वस्तुओं में से हैं (पावर्स, 2016)। विश्वभर में युवा मीम्स के सर्वाधिक प्रयोक्ता हैं, जो सक्रियता से राजनीतिक सहित विविध क्षेत्रों में हास्य-व्यंग्य के माध्यम से मीम्स को अपनी बात कहने का जरिया बना रहे हैं। आज मीम संस्कृति तेजी से प्रचलित हो रही है। भारत में मीम डिजिटल युग का नया दृश्यात्मक उपकरण है (निहलानी, 2020)। राजनीतिक चुनावी प्रक्रिया में आम नागरिक की भागीदारी मीम्स के माध्यम से होने लगी है।

कटाक्ष के बहाने वर्चस्व को चुनौती देते मीम

आम इंटरनेट प्रयोक्ता को मीम्स के रूप में सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम मिला है, जहाँ वह बिंदास, बेलौस और बेखौफ होकर किसी भी शक्तिशाली और वर्चस्ववादी राजनीतिक हस्ती पर टिप्पणी कर सकता है। दुनिया में कुछ घटता है, लोग मुद्दे को मजाक के रूप में हल करने और उसे मजाक के रूप में फैलाने का तरीका ढूँढ़ते हैं। सोशल मीडिया में सबसे ज्यादा शेयर किए जाने वाले डॉक्युमेंट या पोस्ट मीम होते हैं (निहलानी, 2020)। मीम्स सांकेतिक अर्थ लिए होते हैं। उनके अर्थ को 'डिकोड' करना होता है, इसलिए उसके पाठक या दर्शक को उसके संदर्भ से परिचित होना आवश्यक है। मीम्स का सबसे प्रमुख लक्षण उनकी कोडेड पद्धति है। मीम्स का अर्थ जानने के लिए उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और विशेष इंटरनेट संदर्भ की जानकारी रखना जरूरी है (डेनिसोवा, 2020)। मीम्स जब वायरल होते हैं तो अक्सर भाषा, प्लेटफार्म और समुदायों की सीमा को पार कर जाते हैं। इससे मीम्स की ग्लोबल पहुँच और पहचान बन जाती है और वे स्थानीय मुद्दों को विश्वव्यापी बनाने में कारगार हो जाते हैं। कई मामलों में मीम्स की लामबंदी जनता का ध्यान उन महत्वपूर्ण सार्वजनिक मुद्दों की ओर आकर्षित करती है, जो आमतौर पर जनता के विचार क्षेत्र से बाहर रहते हैं। मीम्स विचारपूर्ण हस्तक्षेप के उपकरण हैं (डेनिसोवा, 2020)। मीम्स प्रतिरोध की संस्कृति का निर्माण भी करते हैं और उसके प्रसार के माध्यम भी हैं। यह हल्का प्रतिरोध सकारात्मक परिवर्तन की आकांक्षा से प्रेरित होता है, जिसमें थोड़ी-सी मस्ती और थोड़ा तर्क भी शामिल होता है। इसके लिए लोक संस्कृति से लेकर इतिहास, सिनेमा तक के संदर्भ लिए जाते हैं। मीम्स किसी खास समुदाय से संबंधित नहीं होते। मीम्स खाली ले-आउट होते हैं, जिनसे कोई भी अर्थ या कमेंट्री निर्मित कर सकता है। प्रयोक्ता कई तरीके से मीम्स का प्रयोग करता है। जनता अपनी अभिव्यक्ति, मनोरंजन, राजनीतिक विमर्श में भागीदारी और दूसरों को प्रोत्साहित करने के लिए मीम्स का प्रयोग करती है (डेनिसोवा, 2020)।

राजनीतिक चुनावी संचार में मीम्स

पिछले कुछ वर्षों में मीम्स के माध्यम से इंटेरेक्टिव राजनीतिक संचार की प्रक्रिया मजबूत हुई है। मीम्स के माध्यम से आम नागरिकों की राजनीतिक बहस और चुनावी प्लेटफॉर्म में उपस्थिति दर्ज हुई है। इसका कारण भारत और विश्व में डिजिटल माध्यमों में आम नागरिक की पहुँच का होना है। पिछले दशक में स्मार्टफोन के सस्ते होने, इंटरनेट सेवाओं के विस्तार और सोशल नेटवर्किंग सेवाओं की व्यापकता ने आम नागरिकों

को संचारकों की भूमिका प्रदान कर उन्हें राजनीतिक हस्तक्षेप और परिवर्तन में भागीदारी के लिए प्रेरित किया है। परंपरागत संचार माध्यमों में यह संभव नहीं था। अर्थपूर्ण सामग्री से युक्त एक मजेदार वाहक के रूप में मीम्स राजनीतिक व्यंग्य की तार्किकता में वृद्धि करता है। यह अंतःपाठीय, अवज्ञाकारी, राजनीतिक, सांस्कृतिक ज्ञान की अनेक परतों से जुड़ा होता है (डेनिसोवा, 2020)।

जनमत निर्माण में मीम्स की भूमिका

राजनीतिक मीम्स में एक प्रभावशाली अपील होती है। समाचार और खासतौर पर राजनीतिक समाचारों पर सबसे अधिक मीम्स का निर्माण होता है। किसी भी राजनीतिक घटना या बयान के बाद मीम्स बनने आरंभ हो जाते हैं और नागरिक उन्हें विभिन्न मंचों पर साझा करने लगते हैं। राजनीतिक मीम्स जनमत को आकार देने और परिवर्तन के शक्तिशाली उपकरण हैं। मीम्स राजनीतिक चुनाव को प्रभावित करने की शक्ति भी रखते हैं (निहलानी, 2020)। इसी कारण राजनीतिक पार्टियाँ अब मीम्स पेज को अपने प्रचार का माध्यम बनाने लगी हैं। लोकप्रिय मीम्स पृष्ठ अलग-अलग पार्टियों के प्रचार के प्लेटफॉर्म बनते जा रहे हैं। 31 जनवरी, 2020 को 'द इकॉनोमिक्स टाइम्स' में प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार राजनीतिक दलों ने मीम्स पर अपना खर्च काफी बढ़ा दिया है। चुनाव के दौरान एक पार्टी लगभग तीस दिनों के लिए एक मीम पेज संलग्न करती है और 60 से 80 हजार रुपये खर्च करती है। हालाँकि विशेषज्ञों का मानना है कि लोकप्रिय मीम पेज पेड पॉलिटिकल मीम्स के साथ जुड़ने से कतराते हैं (कार, 2020)।

राजनीतिक छवि निर्माण में मीम्स का प्रयोग

मीम्स एक राजनीतिक व्यक्तित्व के लिए एक विशिष्ट छवि बनाते हैं और आम जनता उस व्यक्ति को उसी तरह से देखना शुरू कर देती है। कार्टून के विपरित मीम्स को कोई भी व्यक्ति बना सकता है, उनका हर संभव तरीके से दुरुपयोग किया जा सकता है। सोशल मीडिया की गुमनाम प्रकृति ने उन्हें एक शक्तिशाली राजनीतिक हथियार बना रखा है (यादव, 2019)। राजनीतिक घटनाक्रम, व्यक्ति या विचार को समझने में मीम्स मददगार साबित होते हैं। राजनीति के कई अनछुए पहलुओं से नागरिकों को अवगत कराते हुए मीम्स उन्हें जागरूक करते हैं। राजनीतिक मीम्स में एक-दूसरे की खबर लेने के बाद राजनीतिक दल एक-दूसरे को पटकनी देने के लिए विरोधी दल के प्रमुख नेताओं के चेहरे वीडियो क्लिप में इस्तेमाल कर रहे हैं (टाइम्स ऑफ इंडिया.इन, 2022)।

विधानसभा चुनाव और मीम्स संचार युद्ध

फरवरी-मार्च 2022 में उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तराखंड, मणिपुर और गोवा विधानसभा के चुनाव संपन्न हुए। इस चुनाव में बीजेपी, काँग्रेस, आप और अन्य कई पार्टियों सहित उनके समर्थकों और आम नागरिकों ने राजनीतिक प्रचार और बहस और विमर्श में हिस्सा लेने के लिए मीम्स का खूब इस्तेमाल किया। ये मीम्स चुनाव प्रक्रिया आरंभ होने, रिजल्ट के दिन और बाद में सोशल नेटवर्किंग साइटों पर साझा किए गए। विविध राजनीतिक घटनाक्रम, नेताओं, पार्टियों और विचारधाराओं पर इन मीम्स को बनाया और साझा किया गया। पाँचों राज्यों के विधानसभा चुनाव में उत्तर प्रदेश और पंजाब को लेकर, चुनाव परिणाम के दिन और चुनाव के बाद के घटनाक्रम पर इंटरनेट यूजर ने जमकर मीम्स बनाए और साझा किए।

उत्तर प्रदेश चुनाव पर बने सर्वाधिक मीम

अन्य राज्यों की तुलना में उत्तर प्रदेश और पंजाब अधिक महत्वपूर्ण थे, इसलिए मीम्स इंटरनेट प्रयोक्ताओं का ध्यान इन पर केंद्रित था। ज्यादा मीम उत्तर प्रदेश को लेकर बने, क्योंकि यह राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण राज्य माना जाता है। इस चुनाव पर ज्यादा मीम बनने का कारण इन दोनों राज्यों में बीजेपी, काँग्रेस और आम आदमी पार्टी और उसके प्रमुख नेता चुनाव मैदान में थे। इस चुनाव में मीम्स निर्माताओं की दिलचस्पी स्वाभाविक थी। 'पत्रिका डॉट कॉम' पर दिनांक 22 मार्च, 2022 को प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार ट्विटर पर कुछ लोगों ने उत्तर प्रदेश में काँग्रेस के साफ होने पर जमकर मौज ली, तो किसी ने अखिलेश यादव के पुराने बयानों को शेयर किया। साथ ही पंजाब में 'आप' की सफाई पर कई मजेदार मीम्स देखने को मिले (पत्रिका डॉट कॉम, 2022)। एक अन्य वायरल मीम में यूपी में भाजपा की जीत पर यह मीम खूब शेयर किया गया :

राहुल डूबले
माया डूबली
अबकी डूबहें जयंत
चाँप के फिर से बुलडोजर दौड़ी
सीएम बनिहें महंत
जोगीरा सा रा रा रा।

विधानसभा नतीजों से पहले जब रुझान आने आरंभ हुए तो सोशल मीडिया पर मीम्स की बाढ़-सी आ गई। इस दौरान पुष्पा का डायलाग 'फायर हूँ मैं' भी खूब वायरल हुआ। इसके अलावा लोगों ने बुलडोजर और अन्य तरीकों से योगी आदित्यनाथ की जीत का जश्न शेयर किया (शर्मा, 2022)।

योगी को लेकर बना यह मीम भी चर्चा में रहा :

योगी नहीं जाएँगे मठ
पाँच साल और बजाएँगे लठ।

योगी आदित्यनाथ की जीत के बाद पार्टी कार्यकर्ता पूरे उत्तर प्रदेश में

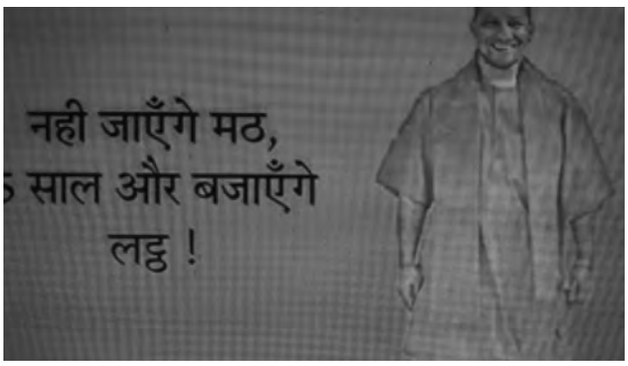

बुलडोजर पर चढ़कर जश्न मनाते देखे गए और जल्द ही सोशल मीडिया बुलडोजर बाबा को लेकर राजनीतिक मीम्स से भर गया (आउटलुक वेब डेस्क, 2022)। योगी आदित्यनाथ की मीम लोकप्रियता चुनाव परिणाम के दिन अपने उच्चतम स्तर पर रही। उन्हें लेकर अनेक मीम्स शेयर किए गए, जिनमें कुछ प्रमुख मीम्स निम्न हैं :

बाबा का जलवा कायम है
बाबा इज बैक
बुलडोजर इज बैक
एक गोला मा अब नहीं रहना।
तू जहाँ जहाँ चलेगा
मेरा साया साथ होगा।

चुनाव के दिन मीम्स की बाढ़ पर 11 मार्च, 2022 को 'अमर उजाला' लिखता है : योगी आदित्यनाथ के दोबारा सीएम बनने की उम्मीदों के बीच तमाम स्लोगन के जरिये जीत के बाद विपक्षियों पर सोशल मीडिया पर खूब तंज कसे गए (वाराणसी ब्यूरो, 2022)।

पंजाब चुनाव के चर्चित मीम

मीम की दृष्टि से दूसरे स्थान पर पंजाब रहा। नवजोत सिद्धू, भगवंत मान और चन्नी सहित विभिन्न पार्टियों जैसे काँग्रेस, आप और अकाली दल पर मजेदार मीम्स बने। पंजाब चुनाव में 'साड्डे सीएम बदलेंगे' पंजाब की तर्ज पर काँग्रेस और अन्य दलों ने उनके नशे में झूमते वीडियो मीम्स साझा किए। ये सब वीडियो क्लिप विभिन्न ट्विटर हैंडल और सोशल नेटवर्किंग साइट पर साझा किए जा रहे थे, जहाँ उन्हें खूब पसंद किया गया (टाइम्स ऑफ इंडिया.कॉम, 2022)। पंजाब के मीम युद्ध पर 'द वायर' ने 19 फरवरी, 2022 को लिखा कि नारे ही काफी नहीं थे तो राजनीतिक मीम की लड़ाई ने दर्शकों को झकझोर कर रख दिया। यह सब 'आप' के मीम के साथ शुरू हुआ, जिसमें पंजाब काँग्रेस प्रमुख नवजोत सिंह सिद्धू और मुख्यमंत्री चन्नी के गीत 'दिल दा मामला है दिलबर' गीत बैकग्राउंड में भगवंत मान को मुख्यमंत्री का उम्मीदवार घोषित कर चलाया गया। इसके जवाब में काँग्रेस ने सुपर हीरो फिल्म आधारित मीम में राहुल गांधी, चन्नी, सिद्धू और सुनील जाखड़ को एक अलग करैक्टर में दिखाया।

चुनावी मीम्स में फिल्मी डॉयलॉग, मुहावरे और विचित्र बयानों की भूमिका

अब चुनावी राजनीति में मीम्स के माध्यम से नेता और पार्टियाँ जनता के बीच जाते हैं और लोग इंटरेक्टिव माध्यम होने और उसमें हास्य-व्यंग्य का पुट शामिल होने से रुचि लेते हैं। चुनाव प्रचार में आकर्षक मुहावरे, फिल्मी गीत या डॉयलॉग, कहावत, विचित्र अजीबोगरीब बयान या स्लोगन को आधार बनाकर मीम्स बनाए और साझा किए जाते हैं। जैसे :

फ्लावर नहीं फायर हूँ मैं
किसका वोट कोको ले ले गई
जयंत चौधरी के हाथ क्या लगा
पंजाब में कौन ठौक रहा है ताली
यूपी में मांक पंजाब में ओल्ड मांक।

नवजोत सिंह को लेकर भी खूब मीम बनाए गए। कपिल शर्मा के शो में काम करने वाली कलाकार अर्चना पूरण सिंह से जोड़कर मजेदार मीम बनाए गए। अर्चना पूरण सिंह ने इन मीम को रिट्वीट किया। उन्होंने कहा कि मुझे सभी जोक्स पसंद आए जैसे कि उन्हें दूसरी बार अपनी सीट से हाथ धोना पड़ा (आजतक.इन, 2022)। इसके साथ इस चुनाव में दस

मार्च, गर्मी शांत, ये गुल्लू गुल्लू क्या है, अच्छा तो हम चलते हैं, रिजल्ट की मंगल बेला आ गई, देशी छोरा, नीचे से चैक कर नीचे से, काँग्रेस क्लीन स्वीप इन फाइव स्टेट्स आदि मीम्स भी खूब चर्चित हुए। ईवीएम इस विधानसभा चुनाव में भी चर्चा में रही। ईवीएम को लेकर कई तरह के मीम्स बनाए गए। जैसे :

कुछ भी हो सकता है उस्ताद
ईवीएम का पंगा बाबू भैया
नअरे जरा बचके ईवीएम
मैं यहाँ भी गई, मैं वहाँ भी गई--ईवीएम हैक।

बदनामी सहने को तैयार हो जा पगली इलजाम तुझ पर ही आने वाला है।

एक अन्य मीम में अखिलेश यादव पर तंज कसते हुए कहा गया कि 'हमें हार-जीत का कारण नहीं जानना, वह तो ईवीएम हैक हो गई बोलकर ही काम चला लेंगे'।

सर्वेक्षण परिणाम

प्रश्न, प्रतिक्रिया एवं चार्ट 1 : फरवरी-मार्च 2022 में संपन्न हुए पंजाब, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मणिपुर और गोवा विधानसभा चुनाव में प्रचार के लिए इस्तेमाल किए गए मीम्स और उनके प्रभाव को लेकर एक ऑनलाइन सर्वे किया गया है। यह सर्वे 15 मार्च से 30 मार्च 2022 के बीच किया गया। इस सर्वे में 180 लोगों की राय एकत्र की गई। इसमें अधिकतर युवा मतदाताओं ने हिस्सा लिया। सबसे अधिक मीम का इस्तेमाल यही वर्ग करता है। पहला सवाल सर्वे में यही किया गया कि आपको किस तरह के मीम पसंद हैं? इस प्रश्न के उत्तर में 35% लोगों की राय थी कि उन्हें राजनीतिक पार्टियों से जुड़े मीम्स अधिक पसंद हैं। 27.1% का मानना है कि उन्हें गैर राजनीतिक मीम्स अधिक अच्छे लगते हैं। 20.9% को राजनेताओं के मीम्स भाते हैं। 16.9% सेलेब्रिटी मीम्स को पसंद करते हैं।

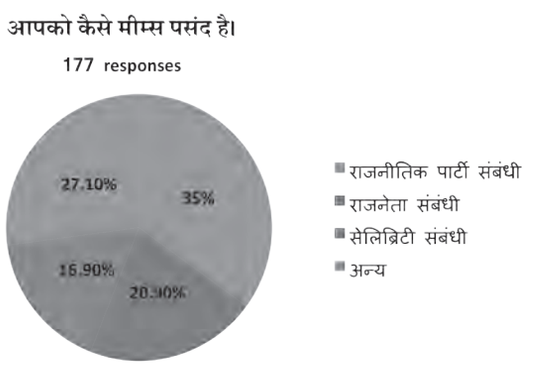

प्रश्न, प्रतिक्रिया एवं चार्ट 2 : दूसरा सवाल चुनावी प्रचार में मीम्स के उद्देश्य को लेकर किया गया था। इसके उत्तर में 42.6 प्रतिशत का मत था कि मीम्स के माध्यम से वे मनोरंजन करते हैं, जबकि 33.5 प्रतिशत की मान्यता थी कि मीम्स विरोधियों पर कटाक्ष करने का उपकरण है। 17.6 प्रतिशत इसे जागरूक करने वाला मानते हैं, जबकि छह प्रतिशत का मानना है कि मीम्स हमें शिक्षित करता है।

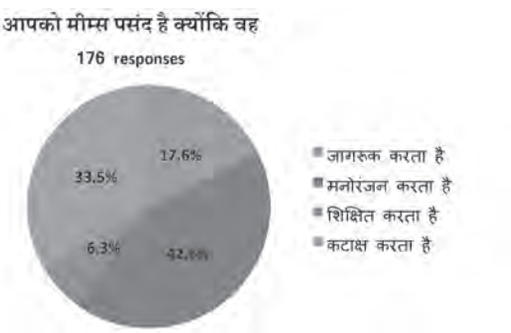

प्रश्न, प्रतिक्रिया एवं चार्ट 3 : तीसरा प्रश्न राजनीतिक चुनावी संचार में मीम को प्रभावी बनाने में फिल्मी डॉयलॉग, गाने और मुहावरों आदि के इस्तेमाल को लेकर किया गया। इस संदर्भ में अधिकतर प्रतिभागियों की राय थी कि जिस मीम में फिल्मों के डॉयलॉग होते हैं, वह अधिक प्रभावशाली रहता है। जिस मीम में डॉयलॉग का इस्तेमाल किया जाता है, उसके वायरल होने की संभावना भी अधिक होती है। चुनावी मीम में 55.04 प्रतिशत प्रतिभागियों की मान्यता है कि फिल्मी डॉयलॉग मीम को ज्यादा मारक और वायरल बनाते हैं। 19.08 प्रतिशत ने मुहावरों के प्रयोग को मीम में प्रभावशाली माना है। 11.09 प्रतिशत का मानना है कि फिल्मी गाने चुनावी मीम को असरदार बनाते हैं। 13 प्रतिशत प्रतिभागी मीम की लोकप्रियता में अन्य कारणों को महत्वपूर्ण मानते हैं।

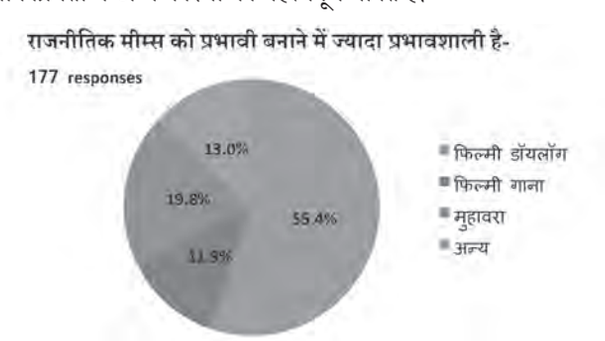

प्रश्न, प्रतिक्रिया एवं चार्ट 4 : राजनीतिक पार्टियाँ चुनाव में मीम का बहुआयामी प्रयोग करती हैं। सर्वे में भी इसकी पुष्टि हुई है कि प्रचार के अतिरिक्त मीम का इस्तेमाल कई मकसद साधने के लिए किया जाता है। प्रतिभागी इस मुद्दे पर मत व्यक्त करने में बहुत अंतर नहीं रखते हैं कि चुनाव में मीम का प्रयोग विरोधी को बेनकाब करने, अपनी छवि बनाने और ब्रांडिंग करने, चुनाव प्रचार के लिए तथा खुद को औरों से अलग दिखाने के लिए करते हैं। 30.3 प्रतिशत मीम को अपनी छवि बनाने और ब्रांडिंग करने, 25.7 प्रतिशत विरोधी को बेनकाब करने, 23.4 प्रतिशत खुद को दूसरों से अलग दिखाने तथा 20.6 प्रतिशत इसे चुनाव प्रचार से जोड़ कर देखते हैं।

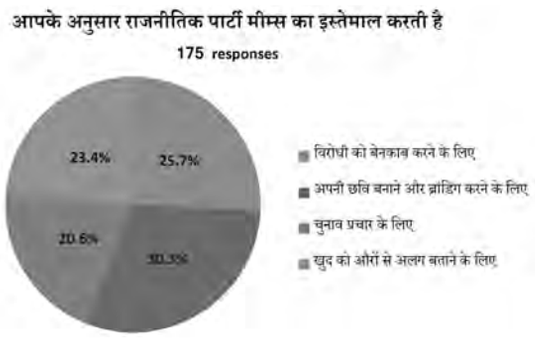

प्रश्न, प्रतिक्रिया और चार्ट 5 : सर्वे में मीम की वोटर के लिए उपयोगिता को लेकर भी प्रश्न किया गया, जिसमें वोटर की अलग-अलग राय सामने आई। 35.4 प्रतिशत प्रतिभागियों ने माना कि मीम उन्हें चुनाव से जोड़ता है। प्रतिभागियों को लगता है कि मीम उनकी अपनी बात करता है। सबसे ज्यादा 38.3 प्रतिशत का कहना है कि मीम वोटर को बदलाव के लिए प्रेरित करता है। इनका मानना है कि मीम में वह शक्ति है, जो परिवर्तन कर सकती है। 21.7 प्रतिशत की मान्यता है कि मीम हमें अपनी राय देने का अवसर प्रदान करता है और वोटर मीम के माध्यम से राजनीतिक संवाद में हिस्सेदारी करता है।

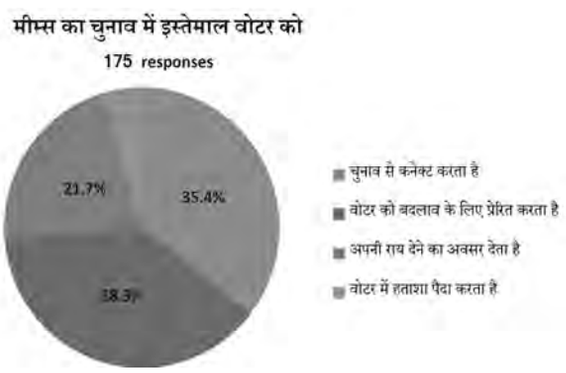

प्रश्न, प्रतिक्रिया और चार्ट 6 : सर्वे में एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न भाषा से संबंधित था, जिसमें तीन विकल्प रखे गए थे। पहला अँग्रेजी, दूसरा हिंदी और तीसरा हरियाणवी, पंजाबी, भोजपुरी और अन्य स्थानीय बोलियों को लेकर किया गया था। सर्वे में तीन-चौथाई प्रतिभागियों यानी 74 प्रतिशत ने हिंदी मीम को प्राथमिकता दी। हिंदी सर्वाधिक लोकप्रिय मीम भाषा के रूप में उभर कर सामने आई। 12.4 प्रतिभागी स्थानीय बोलियों के पक्ष में हैं। केवल 10.2 प्रतिशत अँग्रेजी मीम पसंद करते हैं। 4 प्रतिशत अन्य भाषा में मीम पसंद करते हैं।

प्रश्न, प्रतिक्रिया और चार्ट 7 : मीम को लेकर प्रतिभागियों के व्यवहार और प्रतिक्रिया को लेकर भी प्रश्न किया गया, जिसमें मीम को लाइक, शेयर, रीट्वीट और कमेंट करने संबंधी प्रश्न किया गया। 48 प्रतिशत प्रतिभागी मानते हैं कि वे मीम को लाइक करते हैं। 40.5 प्रतिशत ने राय व्यक्त की कि वे मीम को शेयर करते हैं। 8.1 प्रतिशत ने माना कि वे मीम पर कमेंट करते हैं।

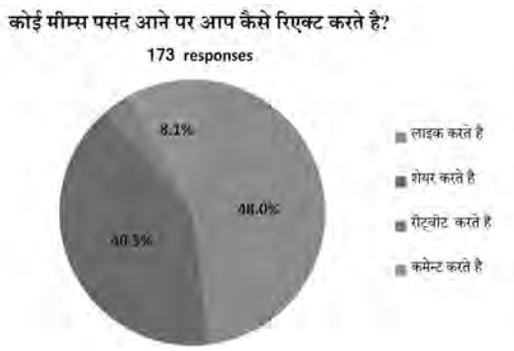

प्रश्न, प्रतिक्रिया और चार्ट 8 : हाल में ही संपन्न हुए पाँच विधानसभा चुनाव में अनेक राजनेताओं पर मीम बनाए गए, जिनमें नरेंद्र मोदी, योगी आदित्यनाथ, सोनिया गांधी, राहुल गांधी, मायावती, अखिलेश यादव, अरविंद केजरीवाल, नवजोत सिद्धू आदि प्रमुख हैं। सर्वे में इन नेताओं पर बने मीम की लोकप्रियता को लेकर भी सवाल किया गया। 33.3 प्रतिशत ने माना कि योगी आदित्यनाथ का मीम उन्हें पसंद आया। 20.1 प्रतिशत ने नरेंद्र मोदी के मीम को अच्छा बताया। 14.4 प्रतिशत ने अखिलेश यादव के मीम को पसंद किया। बाकी ने अन्य नेताओं के मीम को पसंद किया।

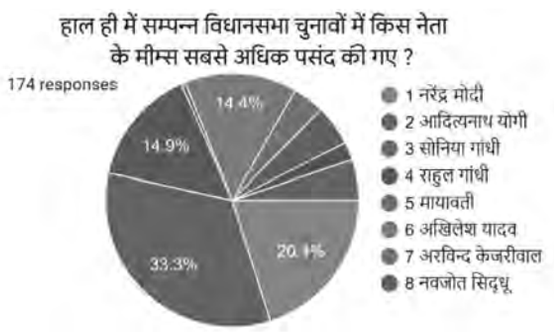

प्रश्न, प्रतिक्रिया और चार्ट 9 : उत्तर प्रदेश चुनाव में हिस्सेदारी कर रही प्रमुख पार्टियों के अग्रणी नेताओं के मीम की लोकप्रियता को लेकर भी प्रश्न किए गए। अधिकतर प्रतिभागियों ने योगी आदित्यनाथ के मीम को पसंद किया। योगी के मीम को पसंद करने वालों का प्रतिशत 62.5 था। 30.1 प्रतिशत ने अखिलेश यादव के मीम को पसंद किया। मायावती और अन्य के मीम को बाकी 7.04 प्रतिशत प्रतिभागियों ने पसंद किया।

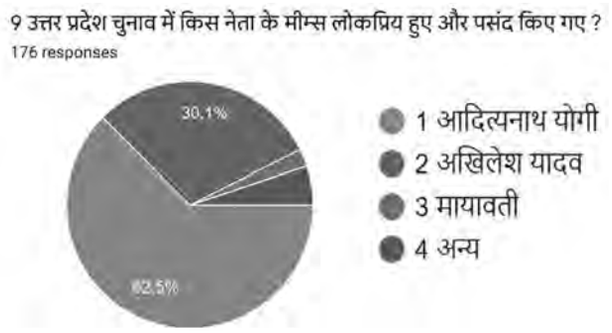

प्रश्न, प्रतिक्रिया और चार्ट 10 : अंतिम प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण है। इसमें पूछा गया कि इन विधानसभा चुनाव में कौन-सा मीम सबसे लोकप्रिय था। इसके उत्तर में 62.3 प्रतिशत बुलडोजर मीम के पक्ष में थे। 20 प्रतिशत ने साइकिल मीम को पसंद किया। बाकी को पसंद करने वालों का प्रतिशत 17.7 रहा।

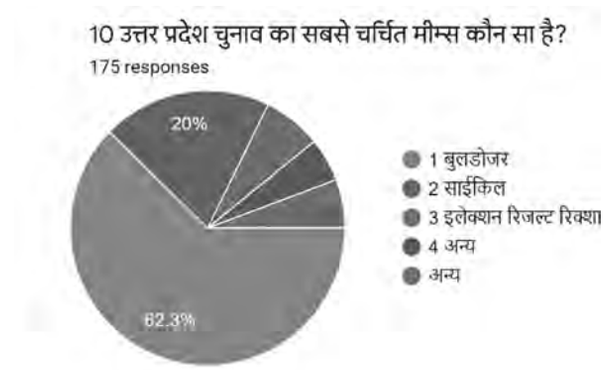

परिचर्चा एवं निष्कर्ष

मीम एक टेक्स्ट, फोटो और वीडियो संदेश हैं, जिनमें कोई प्रासंगिक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हास्य-व्यंग्य का संक्षिप्त संदेश निहित होता है। आज की चुनावी राजनीति में मीम सोशल नेटवर्किंग साइटों पर सबसे अधिक पसंद किए जा रहे हैं। बिना मीम के राजनीतिक प्रचार की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। 21वीं सदी के आरंभ में सोशल नेटवर्किंग साइटों के आने के साथ राजनीति में मीम का प्रचलन शुरू हो गया था। पिछले दशक में मीम्स राजनीतिक संचार का महत्वपूर्ण उपकरण बनकर उभरे हैं। मीम्स के माध्यम से इंटरेक्टिव राजनीतिक संचार की प्रक्रिया मजबूत हुई है। 2014 में भाजपा ने और 2015 में आम आदमी पार्टी ने डिजिटल मीडिया में प्रचार को प्रमुखता दी, जिसमें मीम भी एक हथियार था। फरवरी-मार्च 2022 में उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तराखंड, मणिपुर और गोवा विधानसभा के चुनाव संपन्न हुए। इस चुनाव में बीजेपी, काँग्रेस, आप और अन्य कई पार्टियों सहित उनके समर्थकों और आम नागरिकों ने राजनीतिक प्रचार तथा बहस और विमर्श में हिस्सा लेने के लिए मीम्स का खूब इस्तेमाल किया। ये मीम्स चुनाव प्रक्रिया आरंभ होने, रिजल्ट के दिन और बाद में सोशल नेटवर्किंग साइटों पर साझा किए गए। विविध राजनीतिक घटनाक्रम, नेताओं, पार्टियों और विचारधाराओं पर इन मीम्स को बनाया और साझा किया गया। इनमें से कई मीम वायरल हुए और ट्रेंडिंग में भी आए। सर्वे के सवालों के निष्कर्ष के अनुसार राजनीतिक पार्टियों से जुड़े मीम्स सबसे ज्यादा पसंद किए जाते हैं। नेताओं के उपर बने मीम्स भी इंटरनेट उपयोक्ताओं ने हाल के विधानसभा चुनाव में पसंद किए और साझा किए। इंटरनेट यूजर का मानना है कि मीम्स के माध्यम से राजनीतिक पार्टियाँ विरोधियों पर निशाना साधती हैं, क्योंकि कटाक्ष एक लाभदायक रणनीति है। प्रयोक्ताओं का मानना है कि मीम्स जनता को राजनीतिक रूप से शिक्षित और जागरूक करने के महत्वपूर्ण संचार उपकरण हैं। सर्वे के अनुसार राजनीतिक चुनावी प्रचार को प्रभावी बनाने में फिल्मी गाने, डॉयलॉग और लोक प्रचलित मुहावरे और कहावतें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिसके कारण मीम्स वायरल हो जाते हैं और ट्रेंडिंग में आ जाते हैं। सर्वे में भागीदारी करने वालों की राय के अनुसार मीम्स विरोधी को बेनकाब करने, अपनी छवि बनाने और ब्रांडिंग करने तथा औरों से अलग दिखने में सहायक भूमिका निभाते हैं। प्रतिभागियों के अनुसार मीम्स उन्हें चुनाव से जोड़ने और अपनी राय व्यक्त करने का अवसर भी प्रदान करते हैं। अधिकतर प्रतिभागी हिंदी मीम्स पसंद करते हैं और साझा करते हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और योगी आदित्यनाथ के मीम्स इस चुनाव में अधिक पसंद किए गए। नवजोत सिंह सिद्धू, अखिलेश यादव, भगवंत मान आदि के मीम्स भी चर्चित हुए और खूब साझा किए गए। लोकप्रियता की दृष्टि से बुलडोजर मीम सबसे ऊपर रहा, जिसे यूजर ने वायरल किया और यह ट्रेंडिंग में भी रहा।

संदर्भ

आउटलुक वेब डेस्क. (2022). 'बुलडोजर बाबा' मीम्स फ्लड सोशल मीडिया एज योगी आदित्यनाथ रिटेंस यूपी. https://www.outlookindia.com/national/-bulldozer-baba-memes-flood-social-media-as-yogi-adityanath-retains-up-news-186366 से दिनांक 13 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

आजतक.इन. (2022). सिद्धू के पंजाब चुनाव हारने पर वायरल हुए थे फनी मीम्स, अर्चना पूरन सिंह ने किया रिएक्ट. https://aajtak.link/pGYoUpE6cFxfnwVx6 से दिनांक 14 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

जी न्यूज डेस्क. (2021). वायरल : फेमस इंटरनेट मीम्स ने किताबों में बनाई जगह, फैंस कर रहे मजेदार कमेंट्स. https://zeenews.india.com/hindi/pakistan-china/famous-internet-memes-made-a-place-in-books-after-social-media-fans-said-dazzling/970679 से दिनांक 12 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

टाइम्स ऑफ इंडिया.इन (2022). पंजाब इलेक्शन 2022 : मीम्स बीकम वीपन ऑफ चॉइस फॉर पार्टीज टू अटैक ओपोनेंट्स. https://m.economictimes.com/news/elections/assembly-elections/punjab/punjab-elections-2022-memes-become-weapon-of-choice-for-parties-to-attack-opponents/videoshow/89140804.cms से दिनांक 12 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

डेनिसोवा, ए. (2020). इंटरनेट मीम्स एंड सोसाइटी : सोशल, कल्चरल एंड पॉलिटिकल कांटेक्स्ट्स. न्यूयार्क. रूटलेज.

कार, एस. (2020). मीम मेकर्स लॉफिंग आल द वे टू द बैंक

https://m.economictimes.com/tech/internet/meme-makers-laughing-all-the-way-to-the-bank/articleshow/73755230.cms से दिनांक 12 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

निहलानी, बी. (2020). मीम कल्चर इन इंडिया : हिस्ट्री, इंपोर्टेंस एंड फेमस मीम्स. https://yehaindia.com/meme-culture-in-india-history-importance-famous-memes/ से दिनांक 12 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

पत्रिका डॉट कॉम. (2022). असेंबली इलेक्शन रिजल्ट : चुनावी नतीजों के बीच सोशल मीडिया पर आई फनी मीम्स की बाढ़. https://www.patrika.com/elections-news/assembly-election-result-2022-trends-some-funny-memes-on-congress-aap-and-bjp-7391885/ से दिनांक 12 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

पावर्स, बी. (2016). हाउ मीम्स परफेक्टली केपचर व्हाट्स इज रॉग विद आवर पॉलिटिकल इंगेजमेंट. https://www.pastemagazine.com/politics/memes/how-memes-perfectly-capture-whats-wrong-with-our-p/ से दिनांक 12 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

यादव, जे. (2019). हाउ सोशल मीडिया मीम्स बीकेम अ पॉलिटिकल वीपन टू वू फर्स्ट टाइम वोटर्स https://theprint.in/politics/how-social-media-memes-became-a-political-weapon-to-woo-first-time-voters/241812/ से दिनांक 14, अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

यादव, बी. (2020). डिजिटल मीडिया इज रिडिफायनिंग मॉड्स ऑफ पॉलिटिकल कम्यूनिकेशन एंड मास कॉण्टेक्ट https://indianexpress.com/article/opinion/columns/digital-media-twitter-facebook-political-debate-democracy-6472997/ (24-06-2020) से दिनांक 14 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

वाराणसी ब्यूरो. (2022). सोशल मीडिया पर छाए चुनावी मीम्स सांग चुटकले. https://www.amarujala.com/uttar-pradesh/varanasi/jokes-with-election-memes-dominated-social-media-varanasi-news-vns6426189130 से दिनांक 14 अप्रैल, 2022 पुन:प्राप्त.

शर्मा, पी. (2022). नहीं जाएँगे मठ, पाँच साल और बजाएँगे लठ; सोशल मीडिया में आई ऐसे और भी मजेदार मीम्स की बाढ़. https://www.livehindustan.com/ncr/story-see-some-funny-memes-viral-on-social-media-after-up-election-result-5997416.html से दिनांक 14 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

सारदा, पी. (2019). पॉलिटिकल: टेकिंग ऑन द एसटबलिशमेंट विद मीम्स, मेशप एंड पॉटशॉट https://www.forbesindia.com/article/poll-vault/politickle-taking-on-the-establishment-with-memes-mashups-and-potshots/53229/1 से दिनांक 14 अप्रैल, 2022 को पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 114-120, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

इंटरनेट युग में वैज्ञानिक शोध पत्रिकाओं के आपराधिक स्वरूप 'क्लोंड शोध पत्रिकाओं' का बढ़ता वर्चस्व एवं उनसे बचाव : क्लोंड शोध पत्रिका 'बुलेटिन मोनुमेंटल' के अध्ययन पर आधारित

डॉ. अखिलेश कुमार[1]

सारांश

शिकारी पत्रिकाओं से त्रस्त वैज्ञानिक समुदाय के सामने 'क्लोंड शोध पत्रिकाएँ अथवा 'हाइजैक्ड शोध पत्रिकाएँ' एक नई चुनौती बनकर उभर रही हैं। इनका बढ़ता प्रभाव संपूर्ण उच्चशिक्षा एवं शोध प्रकाशनों के लिए अत्यंत हानिप्रद है। प्रस्तुत शोध-पत्र में केस अध्ययन विधि के द्वारा 'बुलेटिन मोनुमेंटल' नाम से प्रकाशित 'क्लोंड पत्रिका' के विभिन्न अंकों का विश्लेषण करके यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्लोंड पत्रिकाएँ गुणवत्तापूर्ण वैज्ञानिक शोध पत्रिकाओं से अलग कैसे हैं एवं उनकी पहचान कैसे की जाय? साथ ही इस पर भी चर्चा की गई है कि क्लोंड शोध पत्रिकाओं से कैसे बचा जाए? ऐसे उपायों में शामिल हैं शोध पत्रिका की वेबसाईट पर उपलब्ध सूचना का आई.एस.एस.एन. की वेबसाइट पर प्रदर्शित सूचना से मिलान करना और अत्यंत कम समय में प्रकाशन का दावा करने वाली शोध पत्रिकाओं के झाँसे में न आना। क्लोंड पत्रिकाओं के प्रति शोधार्थियों में जागरूकता पैदा करने हेतु कतिपय अन्य उपायों पर भी विचार किया जा सकता है। हालाँकि क्लोंड पत्रिकाओं पर शिकंजा कसने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने ऐसी पत्रिकाओं की सूची अपनी वेबसाइट पर भी प्रकाशित की है, परंतु इस प्रकार के शैक्षिक अपराधों को नियंत्रित करने के लिए अभी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पास कोई ठोस नीति दिखाई नहीं देती, जिस पर शीघ्रतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

संकेत शब्द : क्लोंड पत्रिकाएँ, शिकारी पत्रिकाएँ, वैज्ञानिक प्रकाशन, समकक्ष व्यक्ति समीक्षा

प्रस्तावना

'संचार माध्यम' के जनवरी-जून 2022 अंक में भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली के महानिदेशक एवं मूर्धन्य विद्वान प्रो. संजय द्विवेदी ने 'डिजिटल माध्यमों से मिल रही हैं प्रिंट मीडिया को गंभीर चुनौतियाँ' शीर्षक से लिखे एक आलेख में बताया है कि डिजिटल माध्यमों के कारण प्रिंट मीडिया पर संकट के बादल छाते जा रहे हैं (द्विवेदी, 2022)। वर्तमान समय में सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी के तीव्र विकास के कारण विभिन्न पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं उनका अनुरक्षण कम खर्चीला एवं आसान हो जाने की वजह से ऑनलाइन पत्रिकाओं का प्रचलन तेजी से बढ़ा है। प्रिंट माध्यम से प्रकाशित की जानेवाली पत्र-पत्रिकाएँ बड़ी तेजी से ऑनलाइन माध्यमों पर उपलब्ध कराई जाने लगी हैं। यह स्थिति भारत ही नहीं, बल्कि समस्त विश्व में कमोबेश समान है। आज की ऑनलाइन दुनिया में पत्र-पत्रिकाओं एवं प्रकाशन उद्योग के इस बदलते स्वरूप से संपूर्ण विश्व की अनुसंधान पत्रिकाएँ भी अछूती नहीं हैं एवं अधिकांश अनुसंधान पत्रिकाएँ ऑनलाइन माध्यमों के द्वारा उपलब्ध कराई जाने लगी हैं। अनुसंधान पत्रिकाओं में ऑनलाइन माध्यमों के संगत 'विडियो सारांश' एवं 'ऑडियो शोध पत्रों' का भी प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

शिकारी शोध पत्रिकाएँ

एक तरफ तो सूचना एवं संप्रेषण क्रांति ने विश्व के सम्मुख अनंत संभावनाओं के द्वार खोले हैं, परंतु इंटरनेट एवं इससे जुड़ी तकनीकों के तीव्र विकास ने 'साइबर अपराधों' को भी बढ़ावा दिया है एवं कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जहाँ पर साइबर अपराधी अपने अपराध को अंजाम न दे रहे हों। शोध-पत्रिकाओं के प्रकाशन के व्यवसाय में भी साइबर अपराधियों की दखल बढ़ी है, जिसके कारण शिकारी शोध पत्रिकाओं तथा क्लोंड शोध पत्रिकाओं का प्रचलन बड़ी तेजी से बढ़ा है। किसी भी अनुसंधान के निष्कर्षों को विद्वत् समुदाय के सामने चर्चा एवं परिचर्चा हेतु लाने का कार्य वर्षों से अनुसंधान पत्रिकाएँ करती आ रही हैं। प्रिंट मीडिया पर आधारित अनुसंधान पत्रिकाएँ धीरे-धीरे ऑनलाइन मोड में परिवर्तित हो रही हैं, परंतु पिछले लगभग एक दशक से यह देखा जा रहा है कि शोध-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी प्रदूषित हुआ है (डादका एवं ब्रोकार्ड, 2016; ग्रुद्रेविज एवं अन्य, 2019; पर्लीन एवं अन्य, 2018)। कई गुणवत्ता रहित ऑनलाइन शोध पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाने लगी हैं, जो निरंतर शोधार्थियों को विज्ञापन प्रेषित करती हैं कि उस शोध-पत्रिका में लेखकों के शोधपत्र 24 घंटे में स्वीकार कर लिए जाएँगे और 5 दिन से 30 दिन तक में शोधपत्र का प्रकाशन कर दिया जाएगा। साथ ही, शोध-पत्र प्रकाशन का सर्टिफिकेट भी शोधार्थी को जारी कर दिया जाएगा। इस प्रकार की गुणवत्ता रहित शिकारी-पत्रिकाओं के कारण इंटरनेट पर बड़ी संख्या में गुणवत्ता विहीन शोध-पत्रों की बाढ़-सी आ गई है एवं एक शोधार्थी के लिए यह निर्णय करना कठिन हो गया है कि किस शोध के परिणाम विश्वसनीय हैं? इस समस्या के कारण संपूर्ण विश्व में शोध की गुणवत्ता पर नकारात्मक दूरगामी प्रभाव पड़ने की संभावना हो सकती है और यही कारण है कि शोध में शुचिता सुनिश्चित करने एवं 'शिकारी पत्रिकाओं' पर नियंत्रण हेतु वैश्विक स्तर पर प्रयास किए जा रहे हैं। हालाँकि यह एक पृथक् अनुसंधान

[1]सहायक आचार्य, शिक्षा, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान, ईमेल : akumar@vmou.ac.in

का विषय है कि पारंपरिक रूप से शोध की गुणवत्ता सुनिश्चित करने का पैमाना 'समकक्ष व्यक्ति समीक्षा' किसी शोध की गुणवत्ता सुनिश्चित करने में कितनी कारगर है एवं इस हेतु अन्य प्रयास क्या किए जा सकते हैं।

शिकारी शोध-पत्रिकाओं पर गहन चर्चा 2010 में तब आरंभ हुई जब कोलोराडो डेनवर विश्वविद्यालय के लाइब्रेरियन जेफ्रे बिआल ने एक वेबसाइट पर गुणवत्ताविहीन प्रकाशनों तथा प्रकाशकों की सूची डाली, जो वैज्ञानिक शोध के प्रकाशन की पूरी प्रक्रिया के पालन का दावा तो करते हैं, परंतु उसका पालन किए बिना गुणवत्ता विहीन सामग्री एक निश्चित धन राशि प्रदान करने पर प्रकाशित करने को तैयार रहते हैं। शिकारी-पत्रिका (Predatory Journal) शब्द के सर्वप्रथम प्रयोग का श्रेय जेफ्रे बिआल को जाता है (बिआल, 2017; कार्टराइट, 2016; क्लेमन एवं अन्य, 2017; डेमिर, 2018; कुमार, 2020; मानका एवं अन्य, 2018; मास्टन एवं ऐशक्राफ्ट, 2016; नरिमानी एवं डादका, 2017; शमशीर एवं अन्य, 2017b, 2017a; श्याम, 2015; जिया, 2015; जिया एवं अन्य, 2015)। बिआल द्वारा जारी कथित शिकारी शोध पत्रिकाओं (?) की सूची ने संपूर्ण विश्व का ध्यान वैज्ञानिक प्रकाशनों के नाम पर चल रहे इस व्यापार की ओर खींचा। बिआल द्वारा जारी शिकारी पत्रिकाओं की सूची उनके व्यक्तिगत मत एवं मानदंडों पर आधारित थी, जिसके कारण न केवल बाद के वर्षों में उन्हें उस सूची को वेबसाइट से हटाना पड़ा, बल्कि कई कानूनी पेचीदगियों का सामना भी करना पड़ा। कुछ शोधार्थियों ने तो यहाँ तक लिखा है कि शिकारी पत्रिकाओं की वह सूची नवोदित प्रकाशकों को ब्लैकमेल करने हेतु जारी की गई थी एवं नवोदित प्रकाशकों से उनकी शोध-पत्रिका द्वारा धन प्रदान न किए जाने पर शोध-पत्रिका का नाम 'शिकारी पत्रिका' की सूची में वेबसाइट पर डाल दिए जाने का भय भी दिखाया गया था (कुमार, 2022; पापानिकोस, 2022)।

शिकारी शोध-पत्रिकाओं की व्यापकता

शिकारी पत्रिकाओं की परिभाषा उपलब्ध न होने एवं उनकी विवादित सूची के बावजूद, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने शिकारी पत्रिकाओं पर नियंत्रण हेतु गुणवत्तापूर्ण प्रकाशनों की एक सूची जारी की, जो विभिन्न विश्वविद्यालयों के शिक्षकों की अनुशंसा पर आधारित थी। बाद में यह मानते हुए कि इस कथित सूची में भी शिकारी पत्रिकाएँ अथवा अल्प गुणवत्तायुक्त शोध-पत्रिकाएँ सम्मिलित कर ली गई हैं, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने 2019 में पुनः इसकी समीक्षा के लिए एक समिति बनाई एवं उस समिति की रिपोर्ट पर 'यूजीसी केयर लिस्ट' तैयार की गई। 'यूजीसी केयर लिस्ट' में लगभग 4000 कथित शिकारी पत्रिकाओं, जो पूर्व में जारी सूची में सम्मिलित थे, को बाहर कर दिया (पटवर्द्धन, 2019)। साथ ही, यूजीसी ने विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों को निर्देश प्रदान किए हैं कि उच्च शिक्षा के स्तर पर नियुक्तियों एवं शिक्षकों के प्रमोशन हेतु इस बात का विशेष ध्यान रखा जाए कि शिक्षकों द्वारा किए गए प्रकाशन यूजीसी केयर में सूचीबद्ध शोध पत्रिकाओं में ही हुए हैं (यूजीसी, 2020)।

कुक ने अपने अध्ययन में यह पाया कि 2013 से 2017 के बीच शिकारी पत्रिकाओं की कुल संख्या में 700 प्रतिशत की वृद्धि हुई है (कुक, 2017)। मात्र पाँच वर्षों में शिकारी पत्रिकाओं की संख्या में सात गुना वृद्धि समस्त वैज्ञानिक समुदाय के लिए चिंताजनक तो है, परंतु तब; जब शिकारी पत्रिकाओं की कोई सर्वमान्य परिभाषा उपलब्ध हो एवं अनुसंधान पत्रिकाओं की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के, इंपैक्ट फैक्टर से इतर, अन्य वस्तुनिष्ठ मानदंड उपलब्ध हों। यदि शिकारी पत्रिकाओं की परिभाषा प्रत्येक व्यक्ति एवं वैज्ञानिक के लिए अलग होगी, तब इस पर किए गए अनुसंधान एवं निष्कर्ष का सामान्यीकरण संभव नहीं है। यहाँ यह चर्चा करना समीचीन है कि बिआल द्वारा उठाए गए इन प्रश्नों के उपरांत वैज्ञानिक समुदाय में एक बहस शुरू हो गई कि आखिर किन्हें गुणवत्तापूर्ण प्रकाशन माना जाए और किन्हें नहीं? कौन-सी पत्रिकाएँ शिकारी हैं और कौन-सी गुणवत्तापूर्ण? क्या ऑनलाइन पाठक को मुफ्त उपलब्ध अनुसंधान पत्रिकाओं को शिकारी शोध पत्रिका की श्रेणी में रखा जाना उपयुक्त है? क्या समस्त सब्सक्रिप्शन आधारित शोध-पत्रिकाएँ गुणवत्तापूर्ण हैं? क्या किसी शोध प्रकाशन का 'पे एवं एक्सेस मॉडल' गुणवत्ता की गारंटी है? क्या नवोदित अल्प संसाधन युक्त पत्रिकाओं को शिकारी पत्रिका माना जाना उपयुक्त है? क्या सिर्फ बड़े प्रकाशन गृहों द्वारा प्रकाशित की जा रही पत्रिकाएँ ही गुणवत्तापूर्ण हैं? वैज्ञानिक समुदाय के पास इन सभी प्रश्नों के अभी तक कोई निश्चित उत्तर नहीं हैं।

शोध पत्रिकाओं के आपराधिक स्वरूप 'क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाओं' का उदय

वैश्विक समुदाय अभी शिकारी पत्रिकाओं पर चर्चा करने, उनकी परिभाषा तय करने की तैयारियों में ही जुटा हुआ है, तब तक अनुसंधान-पत्रिकाओं का गंभीर आपराधिक स्वरूप 'क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाओं' के रूप में उभर कर सामने आ चुका है। यूजीसी केयर की वेबसाइट पर समूह-एक के अंतर्गत अधिसूचित क्लोंड शोध पत्रिकाओं में दिनांक 16 फरवरी, 2022 को अपराह्न 1:00 बजे तक 37 क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाओं की सूची मौजूद थी, वहीं समूह-दो के अंतर्गत ऐसी क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाओं की संख्या 45 दर्ज थी। यहाँ पर यह चर्चा करना महत्वपूर्ण है कि यूजीसी केयर लिस्ट में अधिसूचित शोध पत्रिकाओं की दो श्रेणियाँ रखी गई हैं : पहला समूह एक, जिसमें वे अनुसंधान पत्रिकाएँ शामिल की गई हैं, जिन्हें यूजीसी केयर के प्रोटोकॉल के अनुसार गुणवत्तापूर्ण माना गया है, परंतु वे अन्य अंतरराष्ट्रीय इंडेक्सिंग संस्थाओं की सूची में नहीं हैं, जबकि समूह दो में उन शोध-पत्रिकाओं को शामिल किया गया है जो प्रतिष्ठित अंतरराष्ट्रीय डाटाबेस यथा स्कूपस अथवा वेब ऑफ साइंस में सम्मिलित हैं।

क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाओं को शोध प्रकाशन का आपराधिक स्वरूप माना जा सकता है। क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाओं का तात्पर्य उन अनुसंधान पत्रिकाओं से है, जिनका कोई अपना आई.एस.एस.एन. नंबर नहीं है एवं इस प्रकार की प्रायः ऑनलाइन, शोध पत्रिकाएँ किसी अन्य जर्नल के छद्म नाम से पत्रिका का संचालन कर रही हैं। कुछ विद्वानों ने इसे 'अपहृत शोध पत्रिका' (Hijacked Journals) की संज्ञा भी प्रदान की है (असीम एवं सोरोसियन, 2019; खोसरवी एवं मेनन, 2021)। क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाएँ लेखकों से शोध-पत्र प्रकाशन के नाम पर एक बड़ी राशि शुल्क के रूप में ले रही हैं। एक लेखक अथवा शोधार्थी, जो इस समस्या के प्रति जागरूक नहीं है, वह जब स्कूपस अथवा वेब ऑफ साइंस की वेबसाइट पर जब शोध-पत्रिका के नाम अथवा आईएसएसएन नंबर

से सर्च करता है तब उसे मूल पत्रिका का नाम प्राप्त होता है और लेखक उस मूल पत्रिका के इंपैक्ट फैक्टर को अज्ञानता के कारण 'क्लोंड पत्रिका' का इंपैक्ट फैक्टर मान लेता है और उनके 'ट्रैप' में आकर अपना शोध-पत्र प्रकाशन हेतु प्रेषित कर देता है और दो से दस दिवस तक उसका शोध-पत्र प्रकाशित भी हो जाता है, जिसके लिए उसे 3000 रुपये से लेकर 10000 रुपये तक की धनराशि प्रदान करनी होती है। यहाँ सवाल यह भी उठता है कि ऐसी कई क्लोंड पत्रिकाएँ अस्तित्व में अभी भी होंगी, जो विद्वानों के शोधपत्र प्रतिष्ठित शोध पत्रिका के नाम पर गुमराह करते हुए सतत प्रकाशित कर रही होंगी और यह भी संभव है कि ऐसी कई पत्रिकाएँ अभी संज्ञान में ही नहीं आई होंगी।

शोध उद्देश्य

यहाँ पर शोधार्थी के सामने यह प्रश्न महत्वपूर्ण था कि 'क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाओं' की पहचान कैसे की जाए? संपूर्ण वैश्विक समुदाय जब शोध की गुणवत्ता के प्रति गंभीर है, जब समस्त शोधार्थी शिकारी पत्रिकाओं के प्रकाशन एवं उनमें शोध-पत्रों के प्रकाशन के विरुद्ध हैं, ऐसी परिस्थिति में एक शोधार्थी कैसे यह सुनिश्चित करे कि वह जिस शोध-पत्रिका में अपने शोधपत्र प्रकाशन के लिए भेज रहा है वह 'मूल पत्रिका' है अथवा एक 'क्लोंड पत्रिका'? इन्हीं शोध प्रश्नों का उत्तर जानने एवं क्लोंड शोध पत्रिकाओं की पहचान के उद्देश्य से इस विषय का चयन शोधकर्ता द्वारा किया गया।

शोध प्रविधि

उपर्युक्त उद्देश्यों एवं शोध-प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने हेतु शोधार्थी द्वारा 'केस अध्ययन' विधि का प्रयोग किया गया, ताकि समस्या को इसकी गहनता में समझा जा सके। इस अनुसंधान हेतु यूजीसी केयर की वेबसाइट पर उपलब्ध क्लोंड शोध पत्रिकाओं की सूची में शामिल क्लोंड अनुसंधान पत्रिका 'बुलेटिन मोनुमेंटल' का चयन 'सोद्देश्यपूर्ण चयन' विधि के विचलित केस प्रतिचयन विधि (Deviant case sampling) का प्रयोग करके किया गया, ताकि क्लोंड जर्नल एवं मूल शोध पत्रिकाओं के मध्य का अंतर एवं क्लोंड जर्नल की पहचान कैसे करें, इस पर जानकारी जुटाई जा सके।

दत्त-संकलन एवं विश्लेषण

शोधार्थी द्वारा 'बुलेटिन मोनुमेंटल' की क्लोन वेबसाइट http://bulletinmonumental.com/ का बारीकी से अध्ययन किया गया। साथ ही, 'बुलेटिन मोनुमेंटल' शोध पत्रिका की मूल वेबसाइट http://www.sf-archeologie.net/-Bulletin-monumental-.html का भी गहन अध्ययन किया गया, जिनका तुलनात्मक विवरण टेबल -1 में प्रस्तुत है :

	मूल जर्नल	**क्लोंड जर्नल**
वेबसाइट	http://www.sf-archeologie.net/-Bulletin-monumental-.html	http://bulletinmonu-/mental.com
प्रकाशक	फ्रांस अर्कियोलॉजी सोसायटी	कोई विवरण उपलब्ध नहीं
वर्तमान अंक	179	22
प्रकाशन स्थान	पेरिस	कोई विवरण उपलब्ध नहीं
इंपैक्ट फैक्टर का विज्ञापन	होम पेज पर उपलब्ध नहीं	होम पेज पर हाइलाइटेड
विषय	अर्कियोलॉजी	बहु-विषय
कांटेक्ट विवरण	पत्राचार का पता पिनकोड, दूरभाष एवं ईमेल आईडी सहित	सिर्फ ईमेल आईडी
ईमेल आई डी का स्वरूप	डोमेन विशिष्ट ईमेल आईडी	सामान्य जीमेल आईडी

टेबल :1 'बुलेटिन मोनुमेंटल' मूल शोधपत्रिका एवं क्लोंड शोध पत्रिका के होमपेज का तुलनात्मक विवरण

जब 'बुलेटिन मोनुमेंटल' की वेबसाइट पर दिए गए आई.एस.एस.एन. नंबर की जाँच आई.एस.एस.एन. की वेबसाइट https://portal.issn.org/resource/ISSN-L/0007-473X पर की गई तो पाया गया कि आई.एस.एस.एन. 0007-473X पत्रिका फ्रांस से छापी जानेवाली पत्रिका है, जिसका स्क्रीन-शॉट चित्र संख्या-1 में दर्शाया गया है :

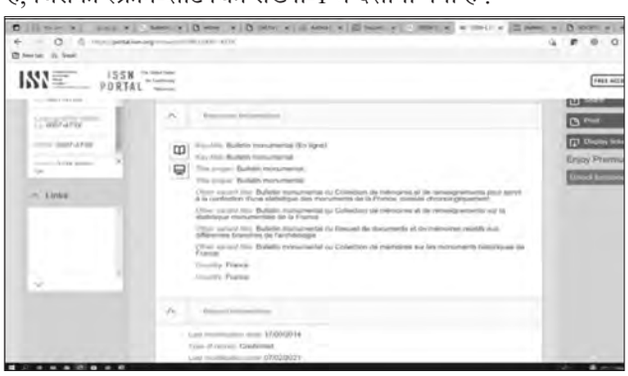

चित्र संख्या :1 'बुलेटिन मोनुमेंटल' की सूचना प्रदर्शित करता ISSN पोर्टल का स्क्रीनशॉट

क्लोंड अनुसंधान पत्रिका 'बुलेटिन मोनुमेंटल' के आर्काइव में जाने पर सूचना प्राप्त हुई कि 2019 एवं इससे पूर्व के अंकों में प्रकाशित शोध-पत्र सिर्फ संबंधित लेखकों के व्यक्तिगत अकाउंट में लॉग-इन करके ही देखा जा सकता है, परंतु नए लॉग-इन हेतु किसी प्रकार के पंजीकरण का प्रावधान नहीं था, जिसका स्क्रीनशॉट चित्र संख्या 2 में देखा जा सकता है।

चित्र संख्या 2 : 'बुलेटिन मोनुमेंटल' के आर्काइव में जाने पर लॉग-इन की बाध्यता का स्क्रीनशॉट

आर्काइव में केवल तीन वर्षों 2020, 2021 क्रमशः वॉल्यूम 21, अंक 1 से 12, वॉल्यूम 22 अंक 1 से 12 एवं 2022 में प्रकाशित वॉल्यूम 23 के दो अंक उपलब्ध हैं, जिनका अध्ययन शोधार्थी द्वारा किया गया। 'बुलेटिन मोनुमेंटल' की मूल पत्रिका, जिसका वेब पता http://www.sf-archeologie.net/-Bulletin-monumental-.html है, वह एक त्रैमासिक पत्रिका है, जिसके प्रत्येक वर्ष चार अंक प्रकाशित होते हैं, शोधपत्र लेखन तक 2022 में पत्रिका के वॉल्यूम 180 के दो अंक प्रकाशित हुए थे, जैसा कि चित्र संख्या 3 में दिए गए स्क्रीनशॉट में प्रदर्शित है :

चित्र संख्या 3 : 'बुलेटिन मोनुमेंटल' मूल पत्रिका के होम पेज का स्क्रीनशॉट

'बुलेटिन मोनुमेंटल' मूल शोध पत्रिका एक प्रिंट माध्यम से छापी जानेवाली सब्स्क्रिप्शन आधारित पत्रिका है, जबकि क्लोंड पत्रिका पूर्णतया 'ओपन एक्सेस' मॉडल में उपलब्ध है। गहन जाँच में यह भी पाया गया कि मूल शोध पत्रिका सिर्फ फ्रेंच भाषा में प्रकाशित की जाती है, जबकि क्लोंड प्रारूप में सिर्फ अँग्रेजी भाषा के अनुसंधान पत्र प्रकाशित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त मूल पत्रिका के अद्यतन दो अंक में किसी भी भारतीय शोधार्थी का शोधपत्र शामिल नहीं है, जबकि क्लोंड पत्रिका के अद्यतन दो अंकों क्रमशः वॉल्यूम 23 अंक 1 एवं अंक दो के समस्त प्रकाशित शोधार्थी भारतीय एवं भारत के किसी उच्च शिक्षा संस्थान में कार्यरत हैं, जिसके आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि 'क्लोंड पत्रिका' 'बुलेटिन मोनुमेंटल' भारतीय शोधार्थियों से ठगी के लिए बनाई गई है एवं यह भी संभव है कि इसका वेब प्रबंधन किसी भारतीय व्यक्ति/संस्था के द्वारा किया जा रहा हो। पत्रिका का भारतीय बैंक में अकाउंट इस तथ्य की पुष्टि करता है।

क्लोंड पत्रिका जिसका वेब पता http://bulletinmonumental.com/Author-Guidelines/ है, की 'ऑथर गाइडलाइन' में प्रकाशन शुल्क भारतीय लेखकों के लिए 3000 रुपये एवं विदेशी लेखकों के लिए 100 यू.एस. डॉलर उल्लिखित है, जिसे चित्र संख्या 4 में दिए गए स्क्रीनशॉट में देखा जा सकता है :

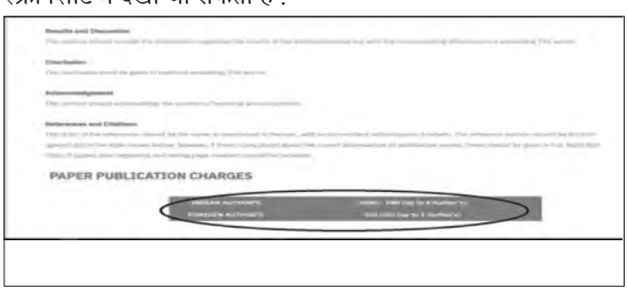

चित्र संख्या 4: 'बुलेटिन मोनुमेंटल' क्लोंड शोध पत्रिका की ऑथर गाइडलाइन का स्क्रीनशॉट, जिसमें प्रकाशन शुल्क प्रदर्शित है

क्लोंड अनुसंधान पत्रिका 'बुलेटिन मोनुमेंटल' के 2021 में कुल 12 अंक प्रकाशित हुए जिनमें कुल 227 शोध पत्र प्रकाशित किए गए। कुल 12 अंकों में से किसी भी अंक में न्यूनतम प्रकाशित शोध पत्रों की संख्या 5 रही एवं किसी एक अंक में अधिकतम प्रकाशित शोध पत्रों की संख्या 34 रही।

परिचर्चा एवं निष्कर्ष

आश्चर्य का विषय यह है कि एक तरफ कुछ शिक्षाविद गुणवत्ता रहित वैज्ञानिक प्रकाशनों की बढ़ती संख्या से चिंतित हैं, वहीं दूसरी तरफ कुछ शिक्षाविदों एवं वैज्ञानिकों के अनुसंधान पत्र धड़ल्ले से शिकारी पत्रिकाओं और यहाँ तक कि शिकारी पत्रिकाओं के आपराधिक स्वरूप 'क्लोंड शोध पत्रिकाओं' में लगातार छापे जा रहे हैं। शिकारी शोध पत्रिकाओं की तरह ही 'क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाओं' की भी सर्वमान्य परिभाषा उपलब्ध नहीं है एवं इस क्षेत्र में अभी अनुसंधान भी बहुत कम हुए हैं। विश्व के कई अनुसंधानकर्ताओं द्वारा इस प्रकार की पत्रिकाओं को 'आपराधिक कृत्य' माना जाने लगा है (अबालकिना, 2021; असीम एवं सोरोसियन, 2019; डादका एवं ब्रोकार्ड, 2016; जलानियन एवं महबूबी, 2014; खोसरावी एवं मेनन, 2021; सेपर, 2014) एवं इसे 'साइबरक्राइम' का एक स्वरूप भी माना गया है (जलानियन एवं महबूबी, 2014)। इन शोध-पत्रिकाओं के साथ सबसे बड़ी समस्या यह है कि कुछ ऐसी पत्रिकाएँ तो ज्ञात हैं, परंतु ऐसी कितनी शोध-पत्रिकाएँ प्रकाशित की जा रही हैं, यह अज्ञात है। जीवन रक्षा से जुड़े विषय यथा चिकित्सा शास्त्र आदि में तो क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाओं में प्रकाशित किए गए अनुसंधान मानव जीवन के लिए खतरा उत्पन्न कर सकते हैं। यदि अन्य विषयों की बात करें तो 'क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाओं' में छपे अनुसंधान पत्रों के कारण 'अज्ञान' विज्ञान के रूप में स्थापित हो सकता है।

इस प्रकार की पत्रिकाओं का बढ़ता वर्चस्व भविष्य में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गंभीर समस्याएँ खड़ी कर देगा। मान लीजिए कि इस प्रकार की पत्रिकाओं में अपने अनुसंधान पत्र प्रकाशित करवा कर कोई व्यक्ति अपनी नियुक्ति अथवा प्रोमोशन का दावा करता है और उसका दावा स्वीकार करके उसका प्रोमोशन कर दिया जाता है। तत्पश्चात् कई वर्षों के बाद यह पता चलता है कि उस शिक्षक के शोधपत्र 'क्लोंड पत्रिका' में छपे हैं, तब बड़ी विचित्र स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। साथ ही उस नियुक्ति प्राप्त शिक्षक से योग्य उम्मीदवारों का भी नुकसान हो चुका होगा। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को चाहिए कि इस प्रकार की पत्रिकाओं को बंद किए जाने संबंधी व्यापक नीति सुनिश्चित की जाए एवं इस प्रकार की पत्रिकाओं को छापने वाले प्रकाशकों के विरुद्ध कठोर कानूनी कार्रवाई के प्रावधान बनाए जाएँ।

क्लोंड शोध-पत्रिकाओं से कैसे बचें?

इस अध्ययन के क्रम में जो बातें सामने आईं, उनके अनुसार किसी भी शोध पत्रिका में अपना अनुसंधान-पत्र प्रकाशन हेतु प्रेषित करने से पूर्व एक शोधार्थी द्वारा यदि थोड़ी-सी सावधानी रखी जाय तो क्लोंड पत्रिकाओं के जाल से बचा जा सकता है। इसमें प्रमुख तथ्य यह है कि आई.एस.एस.एन. एजेंसी की वेबसाइट पर संदर्भित पत्रिका के विवरण एवं संदर्भित पत्रिका

के वेबलिंक की जाँच करें एवं आई.एस.एस.एन. की वेबसाइट पर उपब्ध कराए गए वेबलिंक का उपयोग करें। साथ ही, प्रतिष्ठित इंडेक्सिंग एजेंसियों यथा रॉयटर थॉमसन, स्कूपस आदि की वेबसाइट पर जाकर भी पत्रिका का विस्तृत विवरण देखें और यह सुनिश्चित करें कि ये विवरण अनुसंधान पत्रिका की वेबसाइट पर दिए गए विवरण से मेल खाते हों। वेब ऑफ साइंस के होम पेज https://mjl.clarivate.com/home का स्क्रीनशॉट चित्र संख्या 5 में प्रदर्शित है :

चित्र संख्या 5: वेब ऑफ साइंस का मास्टर जर्नल लिस्ट का होम पेज

यू.जी.सी. केयर की वेबसाइट https://ugccare.unipune.ac.in/apps1/home/index पर जाकर भी पत्रिका का विवरण देखा जा सकता है एवं वहाँ पर दिए गए वेबलिंक पर क्लिक करके मूल पत्रिका की वेबसाइट पर जाया जा सकता है। कई ऐसी भी गुणवत्तापूर्ण शोध-पत्रिकाएँ हैं, जो वेब ऑफ साइंस अथवा स्कूपस में लिस्टेड नहीं हैं। ऐसे में उनकी जाँच के विकल्प के लिए आई.एस.एस.एन. पोर्टल https://www.issn.org/ के साथ ही दूसरी प्रतिष्ठित इंडेक्सिंग संस्थाओं की वेबसाइट जैसे डायरेक्ट्री ऑफ ओपन एक्सेस जर्नल्स (DOAJ) https://doaj.org/ एवं डायरेक्ट्री ऑफ ओपन एक्सेस स्कोलारली रिसोर्सेज (ROAD) की वेबसाइट https://road.issn.org/advancedsearch पर शोध पत्रिका की सूचना की जाँच करें। यहाँ पर ध्यातव्य है कि शिकारी एवं क्लोंड शोध पत्रिकाओं की तरह ही कई 'शिकारी इंपैक्ट फैक्टर निर्धारण' संस्थाएँ भी कार्यरत हैं, जो मनमाने फार्मूले का प्रयोग करके शिकारी पत्रिकाओं को उच्च 'इंपैक्ट फैक्टर' का बताने एवं लेखकों तथा शोधार्थियों को गुमराह करने का कार्य कर रही हैं। इनसे भी सुरक्षा आवश्यक है। चौबीस से बहत्तर घंटे में शोधपत्र के प्रकाशन के दावों के झाँसे में आने से शोधार्थी को बचना चाहिए, क्योंकि कोई भी प्रतिष्ठित शोध पत्रिका इतने कम समय में आपका शोधपत्र प्रकाशित नहीं कर सकती है। सामान्यतः एक शोधपत्र की समकक्ष-व्यक्ति समीक्षा से लेकर उसके प्रकाशन में दो माह से लेकर कई परिस्थितियों में दो वर्ष तक का समय लग जाता है, अतः इस हेतु शोधार्थी में धैर्य की आवश्यकता भी है। शोधार्थी चाहे तो यू.जी.सी. केयर की वेबसाइट पर 'क्लोंड पत्रिकाओं' की अद्यतन सूची, जिसमें मूल पत्रिका एवं मूल सामग्री तथा क्लोंड पत्रिका एवं उसमें प्रकाशित शोधपत्र का लिंक दिया हुआ है, को भी शोधपत्र प्रकाशन हेतु भेजने से पूर्व देख सकते हैं। क्लोंड पत्रिकाओं की सूची प्रदर्शित करती यू.जी.सी. केयर की वेबसाइट का स्क्रीनशॉट निम्नांकित तस्वीर संख्या 4 में प्रदर्शित है :

चित्र संख्या 6 : क्लोंड जर्नल्स का विवरण प्रदर्शित करता यू.जी.सी. केयर का होम पेज

विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं उच्चशिक्षा के संस्थानों को इस प्रकार की क्लोंड शोध पत्रिकाओं के बारे में शोधार्थियों को जागरूक करने हेतु विभिन्न संचार माध्यमों का उपयोग करना चाहिए यथा दूरदर्शन के शैक्षिक चैनलों पर क्लोंड पत्रिकाओं से बचने के उपायों के संदर्भ में विज्ञापन प्रसारित किया जा सकता है। शोधार्थियों को जागरूक बनाने के लिए अनुसंधान प्रविधि के कोर्स-वर्क में इन विषयों को भी स्थान दिया जाना चाहिए एवं इस धोखाधड़ी से बचने के लिए लघु-अवधि के ऑनलाइन कार्यक्रमों का संचालन भी किया जा सकता है। यदि शोधार्थी उपर्युक्त सुझावों का ध्यान रखें तो वे आसानी से क्लोंड शोध पत्रिकाओं से अपना बचाव कर सकते हैं।

निष्कर्ष

किसी भी शोध पत्रिका के आई.एस.एस.एन. की चोरी एक आपराधिक कृत्य है एवं भारत में उच्च शिक्षा की नियामक संस्था विश्वविद्यालय अनुदान आयोग एवं शिक्षा मंत्रालय को इस प्रकार के फर्जी प्रकाशनों के विरुद्ध कानूनी रूप से आपराधिक एवं धोखाधड़ी का मुकदमा चलाना चाहिए। सिर्फ 'क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाओं' की सूची यू.जी.सी. केयर की वेबसाइट पर डाल देना समस्या का समाधान नहीं है। एक ओर तो विद्वत् समुदाय शिकारी पत्रिकाओं के बढ़ते प्रभाव से चिंतित है और उसी विद्वत समुदाय का एक वर्ग जाने-अनजाने में क्लोंड शोध पत्रिकाओं में अपने शोधपत्र प्रकाशित कर शैक्षिक अपराध का शिकार हो रहा है एवं प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसे बढ़ावा दे रहा है। क्लोंड अनुसंधान पत्रिकाओं का प्रकाशन 'शिकारी पत्रिकाओं' के प्रकाशन से ज्यादा गंभीर अपराध है (मौसा, 2021)। इस प्रकार के शैक्षिक अपराधों को नियंत्रित करने के लिए अभी विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पास कोई नीति, कानून अथवा योजना उपलब्ध नहीं है जिस पर शीघ्रतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

अल्बाकिना, ए. (2021). डिटेक्टिंग अ नेटवर्क ऑफ हाईजैक्ड जर्नल्स बाय इट्स आर्काइव. साईनटोमीट्रिक्स, 126(8), 7123–7148. https://doi.org/10.1007/s11192-021-04056-0 से पुनःप्राप्त.

असीम, जेड. एवं सोरोशियन, एस. (2019). क्लोन जर्नल्स : अ थ्रेट टू मेडिकल रिसर्च. साओ पावलो मेडिकल जर्नल, 137(6), 550–551. https://doi.org/10.1590/1516-3180.2018.0370160919 से पुन:प्राप्त.

कार्टराइट, वी. ए. (2016). ऑथर्स बीअवेयर! द राइज ऑफ प्रिडेटरी पब्लिशर्स. क्लिनिकल एंड एक्सपेरिमेंटल ओप्थाल्मोलॉजी, 44(8), 666–668. https://doi.org/10.1111/ceo.12836 से पुन:प्राप्त.

क्लेमंस, एम., डी कोस्टा इ सिल्वा, एम., जॉय, ए. ए., कोबे, के.डी., मजरेल्लो, एस., स्टोबर, सी., एंड हट्टन, बी. (2017). प्रिडेटरी इनविटेशन फ्रॉम जर्नल्स: मोर दैन अ न्यूसेन्स? द ओंकोलोजिस्ट, 22(2), 236–240. https://doi.org/10.1634/theoncologist.2016-0371 से पुन:प्राप्त.

कुक, सी. (2017). प्रेडेटरी जर्नल्स: द वर्स्ट थिंग इन पब्लिशिंग, एवर, जर्नल ऑफ ऑर्थोपोडिक एंड स्पोर्ट्स फिजिकल थेरेपी, 47(1), 1–2. https://doi.org/10.2519/jospt.2017.0101 से 8 सितंबर, 2020 को 11.41 बजे पुन:प्राप्त.

कुमार, ए. (2020). भारतीय उच्च शिक्षा एवं शिकारी पत्रिकाओं का फैलता जाल: एक समीक्षा, भारतीय आधुनिक शिक्षा, अक्टूबर, 41 (2). 49-58.

https://ncert.nic.in/pdf/publication/journalsandperiodicals/bhartiyaadhunikshiksha/BAS_Oct%2020.pdf से पुन:प्राप्त.

कुमार, ए., गुप्ता, आर., त्रिपाठी, के.के., एंड सिंह आर.आर. (2022). प्रिडेटरी पब्लिकेशन इन द इरा ऑफ इंटरनेट एंड टेक्नोलॉजी: अ रिज्वाइनडर. एथेंस जर्नल ऑफ मास मीडिया एंड कॉमुनिकेशन्स, फोर्थकमिंग पेपर्स, 1–5. https://www.athensjournals.gr/ajmmc/forthcoming से पुन:प्राप्त.

खोसरवी, एम.आर., एंड मनों.वी.जी. (2021). रिलाइबिलिटी ऑफ हाईजैक्ड जर्नल्स डिटेक्सन बेस्ड ऑन साईनटोमेट्रिक्स, अल्टमेट्रिक टूल्स, एंड वेब इन्फार्मेटिक्स: अ केस रिपोर्ट यूजिंग गूगल स्कॉलर, वेब ऑफ साइंस एंड स्कोपस. सिक्यूरिटी एंड कम्युनिकेशन नेटवर्क, 2021. https://doi.org/10.1155/2021/1631496 से पुन:प्राप्त.

ग्रुदनिविज, ए., मोहर, डी., एवं कोबी, के. डी. (2019). प्रिडेटरी जर्नल: नो डेफिनिशन, नो डिफेंस (नेचर). नेचर, 576, 210–212, https://doi.org/10.1038/d41586-019-03759-y से 20 सितंबर, 2021, सायंकाल 8.00 बजे पुन:प्राप्त.

जलानियन, एम., एवं महबूबी, एच. (2014). हाईजैक्ड जर्नल्स एंड प्रिडेटरी पब्लिशर्स: इज देयर अ नीड टू रीथिंक टू असेस क्वालिटी ऑफ एकेडमिक रिसर्च? वलईलैक जर्नल ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी, 11(5), 389–394. https://doi.org/10.2004/wjst.v11i5.1004 से पुन:प्राप्त.

जिया, जे. (2015). प्रेडेटरी जर्नल्स एंड देअर आर्टिकल पब्लिशिंग चार्जेज, लर्नड पब्लिशिंग, 28 (1), 69–74. https://doi.org/10.1087/20150111 से पुन:प्राप्त.

जिया, जे., हर्मन, जेनिफर, एल., कोनोली केविन, जी., डॉनली, रयान, एंडरसन, एम. आर., एम., एंड होवार्ड, हीदर, ए. (2015). हू पब्लिशेज इन प्रिडेटरी जर्नल्स? जर्नल ऑफ द एसोसिएशन फॉर इनफार्मेशन सोसाइटी एंड टेक्नोलॉजी, 66(July), 1406–1417. https://doi.org/10.1002/asi से पुन:प्राप्त.

डादका, एम., एवं बोर्कडर्ट, जी. (2016). हाईजैक्ड जर्नल्स: एन इमर्जिंग चैलेंज फॉर स्कोलरली पब्लिशिंग. एस्थेटिक सर्जरी जर्नल, 36(6), 739–741. https://doi.org/10.1093/asj/sjw026 से पुन:प्राप्त.

डेमिर, एस. बी. (2018). प्रिडेटरी जर्नल्स : हु पब्लिशेज इन देम एंड व्हाय? जर्नल ऑफ इन्फार्मेटिक्स, 12(4), 1296–1311. https://doi.org/10.1016/j.joi.2018.10.008 से पुन:प्राप्त.

द्विवेदी, एस. (2022) डिजिटल माध्यमों से मिल रही हैं प्रिंट मीडिया को गंभीर चुनौतियाँ, संचार माध्यम, 34 (1), 1-4

नरीमनी, एम., एवं डदका, एम. (2017). प्रेडेटरी जर्नल्स एंड पेरिश्ड आर्टिकल; अ लैटर टू एडिटर, एमरजेंसी, 5(1), 258–260. https://doi.org/10.22037/emergency.v5i1.12595 से पुन:प्राप्त.

पटवर्द्धन, बी. (2019). वर्ल्ड व्यू : इंडिया स्ट्राइक्स बैक अगेंस्ट प्रेडेटरी जर्नल्स, नेचर, 571, 7. https://www.nature.com/articles/d41586-019-02023-7 से पुन:प्राप्त.

पर्लिन, एम. एस., इमास्तो, टी., एवं बोरेंसटीन, डी. (2018). इज प्रिडेटरी पब्लिशिंग अ रियल थ्रीट? एविडेंस फ्रॉम अ लार्ज डाटाबेस स्टडी. साईनटोमेट्रिक्स, 116(1), 255–273. https://doi.org/10.1007/s11192-018-2750-6 से पुन:प्राप्त.

पापानिकोस, जी.टी. (2022). प्रिडेटरी पब्लिकेशन इन द इरा ऑफ इंटरनेट एंड टेक्नोलॉजी : अ कमेंट. फोर्थकमिंग पेपर्स. 1–6. https://www.athensjournals.gr/ajmmc/forthcoming से पुन:प्राप्त.

मस्टन, वाय. बी., एवं ऐश्क्राफट, ए. एस. (2016). द डार्क साइड ऑफ: ट्रेडिशनल एंड ओपन एक्सेस वर्सेस प्रेडेटरी जर्नल्स. नर्सिंग एडुकेशन पर्सपेक्टिवस , 37(5), 275–277.

https://doi.org/10.1097/01.NEP.0000000000000064 से पुन:प्राप्त.

मानका, ए., मोहर, डी., कगसी, एल., देवीर, जेड., & देरियु, एफ. (2018). हाउ प्रेडेटरी जर्नल्स लीक इन टू पबमेड, सीएमएजे, 190 (35), E1042–E1045. https://doi.org/10.1503/cmaj.180154 से पुन:प्राप्त.

मोहर, डी., एवं श्रीवास्तव, ए. (2015). यू आर इनवाइटेड टू सबमिट... बी एम सी मेडिसिन, 13(1), 1–4. https://doi.org/10.1186/s12916-015-0423-3 से पुन:प्राप्त.

मौसा, एस. (2021). जर्नल हाईजैकिंग चैलेंजेज एंड पोटेंशियल सोलुसंस. लर्नड पब्लिशिंग , 34(4), 688–695. https://doi.org/10.1002/leap.1412 से पुन:प्राप्त.

शमशीर, एल., मोहर, डी., मदुएक्वे, ओ., टर्नर, एल., बार्बर, वी., बर्क, आर., क्लार्क, जी., गलिपिआऊ, जे., रोबर्ट्स, जी., एंड शिया, बी.जे. (2017a). पोटेंशिअल प्रिडेटरी एंड लेजिटिमेट बायोमेडिकल जर्नल्स : कैन यू टेल द डिफरेंस? अ क्रॉस सेक्शनल कम्परिजन. बीएमसी मेडिसिन, 15(1), 1–14. https://doi.org/10.1186/s12916-017-0785-9 से पुन:प्राप्त.

श्याम, ए. (2015). प्रेडेटरी जर्नल्स: व्हाट आर दे? जर्नल ऑफ ऑर्थोपोडिक केस रिपोर्ट्स, 5 (4), 1–2. https://doi.org/10.13107/jocr.2250-0685.330 से पुन:प्राप्त.

सपर, सी.बी. (2014). एकैडमिक पब्लिशिंग, पार्ट-II: वेयर तो पब्लिश योर वर्क. एनल्स ऑफ न्यूरोलॉजी, 76(1), 1–4. https://doi.org/10.1002/ana.24212 से पुन:प्राप्त.

सपर, सी.बी. (2014). एकैडमिक पब्लिशिंग, पार्ट-II: वेयर टू पब्लिश योर वर्क. एनल्स ऑफ न्यूरोलॉजी, 76(1), 1–4. https://doi.org/10.1002/ana.24212 से पुन:प्राप्त.

यू.जी.सी. केयर (2021). यू.जी.सी. केयर की वेबसाइट https://ugccare.unipune.ac.in/apps1/home/index.

यू.जी.सी. केयर (2019). यू.जी.सी. केयर की वेबसाइट

https://ugccare.unipune.ac.in/Apps1/Content/Files/16%20september%202019.pdf से पुन:प्राप्त.

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 121, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

पुस्तक समीक्षा

सोशल मीडिया की अतिवादिता से सावधान करती किताब

प्रो. कृपाशंकर चौबे[1]

इंटरनेट के कारण आज समूचा परिदृश्य बदल गया है। स्मार्टफोन ही आफिस, बैंक, सिनेमा हॉल, म्यूजिक एलबम, बाजार, रेलवे टिकट काउंटर, अखबार, शब्दकोश, संदर्भ लाइब्रेरी, चौपाल, सेमिनार का मंच और संदेश भेजने-पाने का सस्ता, सुलभ और तीव्रतम माध्यम बन गया है। प्रकाश और ध्वनि नहीं, लगभग मन की गति से चलने वाला। तीव्रतम गति के साथ यदि अल्टिमेट थ्रिल (चरम रोमांच) और सुविधाएँ हमें मिलीं, बहुत-सी बाधाओं से मुक्ति मिली, तो इस माध्यम के खतरे भी कई गुना बढ़ गए। अब अगर करोड़ों लोगों के बैंक खाते में पल भर में अरबों रुपये डाले जा सकते हैं, तो इतनी ही तेजी से किसी के खाते से सारे पैसे उड़ाए भी जा सकते हैं। कोई भी आविष्कार निरापद नहीं होता। सूचना क्रांति के वेगवान पंखों पर सवार सोशल मीडिया भी इसका अपवाद नहीं। स्वत्व प्रकाशन से सद्यः प्रकाशित वरिष्ठ पत्रकार राकेश प्रवीर की पुस्तक 'आवारा मीडिया' सोशल मीडिया के खतरों पर विस्तार से प्रकाश डालती है। इस विषय पर दुनियाभर में हुए महत्त्वपूर्ण शोधों, विद्वानों के मत, सर्वेक्षणों के आँकड़े, साइबर अपराध और इसकी राजनीतिक-सामाजिक भूमिका तक, हर विषय पर लेखक ने तथ्य प्रस्तुत किए हैं। पुस्तक में राकेश प्रवीर प्रामाणिकता के साथ इस पर प्रकाश डालते हैं कि सोशल मीडिया ने अमेरिका और भारत के चुनावों में क्या भूमिका निभाई, चुनावों में इसका उपयोग कितना बढ़ा, लोकतंत्र की गुणवत्ता कैसे प्रभावित हुई, सामाजिक जीवन में कितना तनाव बढ़ा, रिश्ते कैसे प्रभावित हुए?

'आवारा मीडिया' पुस्तक आठ अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय 'सोशल मीडिया का आवारापन' में लोकतंत्र के लिए इसे खतरे के रूप में देखा गया है। लेखक ने उदाहरण दिया है कि 2016 में संपन्न अमेरिकी राष्ट्रपति के चुनावों को प्रभावित करने में रूसी एजेंसियों की भूमिका पर से पर्दा उठा तो बोध हुआ कि लोकतंत्र के लिए सोशल मीडिया ने कितना खतरा पैदा किया है। इसी अध्याय में सोशल मीडिया की अतिवादिता, दुरुपयोग, दुष्प्रभाव, फेक न्यूज आदि पर चिंता जाहिर की गई है, किंतु साथ ही समाधान भी बताया गया है। दूसरे अध्याय 'सोशल मीडिया का प्रभाव व प्रमुख प्लेटफॉर्म' में भारत में इसके वितान का वर्णन है। साथ ही इसके अच्छे व बुरे प्रभावों का वृत्तांत भी है और इसके प्रमुख प्लेटफार्म का विवरण भी। इसी अध्याय में लेखक ने सोशल मीडिया को लड़कियों के लिए अधिक नुकसानदेह करार दिया है। तीसरे अध्याय 'सोशल मीडिया : नियमन, कानून और सजा' में राकेश प्रवीर ने बताया है कि किसी की भावना को आहत करनेवाली या नफरत फैलानेवाली एक पोस्ट सलाखों के पीछे भेज सकती है। 2000 में बने आईटी एक्ट का विशद विवरण देते हुए इस अध्याय में सुप्रीम कोर्ट की पहल, हेट स्पीच की सर्वव्यापी समस्या, आपत्तिजनक सामग्री के खिलाफ कार्रवाई और दिल्ली दंगा के समय नकारात्मक भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय में लेखक

पुस्तक : आवारा मीडिया
संपादक : राकेश प्रवीर
प्रकाशक : स्वत्व प्रकाशन, पटना, बिहार
मूल्य : 400 रुपये

ने विस्तार से बताया है कि दुनिया के अन्य देशों में भी सोशल मीडिया की किस तरह खलनायक की भूमिका रही है।

चौथे अध्याय 'कोरोना का कहर और सोशल मीडिया' में लेखक ने बताया है कि लॉकडाउन के समय सोशल मीडिया का इस्तेमाल 87 प्रतिशत बढ़ा और ट्विटर के एक्टिव यूजर की संख्या में 24 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। कोरोना काल में रोजाना औसतन चार घंटे लोग सोशल मीडिया पर बिता रहे थे, किंतु मोबाइल, कंप्यूटर एडिक्शन के मरीज चार गुना तक बढ़ गए। कोरोना काल में कैसी-कैसी अफवाहें सोशल मीडिया में फैलीं, उसका वृत्तांत भी इस अध्याय में है तो फेक न्यूज, जालसाजी और धोखाधड़ी का विवरण भी। लेकिन इसी के साथ बच्चों की ऑनलाइन पढ़ाई और ऑनलाइन पढ़ाई के लिए दर्जन भर चैनलों और 13 करोड़ लोगों द्वारा आरोग्य सेतु डाउनलोड करने का वर्णन भी इस अध्याय में है। पूरे संकट में भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का पूरी दुनिया ने कैसे लोहा माना, इसे विस्तार से राकेश प्रवीर ने दर्ज किया है।

पाँचवें अध्याय 'सोशल मीडिया और भाषा' में सोशल मीडिया प्लेटफार्म द्वारा नए शब्दों और अभिव्यक्ति की नई शैली विकसित किए जाने के समानांतर संक्षिप्त टेक्स्ट मैसेज से हो रही भाषाई क्षति और अभिव्यक्ति की विद्रूपता पर भी प्रकाश डाला गया है।

छठे अध्याय 'सोशल मीडिया : अफवाहें व जासूसी' में कई उदाहरण देकर तथ्यपरक विचार किया गया है। सातवें अध्याय 'सोशल मीडिया और राजनीति' में सोशल मीडिया के चुनाव प्रचार का नया मंच बनने, फेसबुक द्वारा डाटा बेचने के गोरखधंधे, व्हाट्स एप में महाजाल बनाने, फेक न्यूज, प्रोपगेंडा की चुनौतियों पर विचार किया गया है। आठवें अध्याय 'सोशल मीडिया पर नेताओं की लोकप्रियता' में लेखक ने बताया है कि जनप्रियता के मामले में फेसबुक पर मोदी से ट्रंप पीछे थे। कुल मिलाकर 336 पृष्ठों की यह किताब पत्रकारिता के विद्यार्थियों, शोधार्थियों के लिए बहुत उपयोगी है। ■

[1] अध्यक्ष, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र. ईमेल : drkschaubey@gmail.com

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 122-123, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

पुस्तक समीक्षा

वक्त के साथ बदलते मीडिया से साक्षात्कार

डॉ. विनीत उत्पल[1]

पुस्तक : जो कहूंगा सच कहूंगा - प्रो. संजय द्विवेदी से संवाद
संपादक : डॉ. सौरभ मालवीय, लोकेंद्र सिंह
प्रकाशक : यश पब्लिकेशंस, 4754/23, अंसारी रोड़ दरियागंज, नई दिल्ली-2
मूल्य : 500 रुपये

वक्त बदल रहा है, मीडिया बदल रहा है, मीडिया तकनीक बदल रही है, मीडिया के पाठक और दर्शक की रुचि, स्थिति और परिस्थिति भी बदल रही है। ऐसे में मीडिया अध्ययन, अध्यापन और कार्य करने वालों को खुद में बदलाव लाना आवश्यक है। इसके लिए मीडिया के मिजाज को समझना और समझाना आवश्यक है। 'जो कहूंगा, सच कहूंगा' पुस्तक इस दिशा में कार्य करने में सक्षम है। भारतीय जन संचार संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी की बातचीत मीडिया विद्यार्थियों को एक नव दिशा देने का कार्य करती है। मीडिया में आने वाले विद्यार्थी पत्रकार तो बन जाते हैं, लेकिन मीडिया की बारीकियों को समझने में उन्हें समय लगता है, क्योंकि मीडिया वक्त के साथ परिवर्तनकारी होता है। यही कारण है कि डॉ. ऋतेश चौधरी के साथ साक्षात्कार में संजय द्विवेदी कहते हैं, "वक्त का काम है बदलना, वह बदलेगा। समय आगे ही जाएगा, यही उसकी नैसर्गिक वृत्ति है।" लेकिन मीडिया की दशा और दिशा को देखकर वे कहते हैं, "मीडिया की मजबूरी है कि वह समाज निरपेक्ष नहीं हो सकता। उसे प्रथमतः और अंततः जनता के दुख-दर्द के साथ होना होगा।"

संजय द्विवेदी पत्रकारों को सामान्य व्यक्ति नहीं मानते। एस.डी. वीरेंद्र से बातचीत में वे कहते हैं, "सामान्य व्यक्ति पत्रकारिता नहीं कर सकता। जब तक समाज के प्रति संवेदना नहीं होगी, अपने समाज के प्रति प्रेम नहीं होगा, कुछ देने की ललक नहीं होगी, तो मीडिया में आकर आप क्या करेंगे? मीडिया में आते ही ऐसे लोग हैं, जो उत्साही होते हैं, समाज के प्रति संवेदना से भरे होते हैं और बदलाव की जिनके अंदर इच्छा होती है।" समाज में पत्रकार की भूमिका को लेकर जो आमतौर पर चिंता जताई जाती है, या फिर मीडिया की परिधि में समाचार, विचार और मनोरंजन के आ जाने से आलोचना की जाती है, उसे लेकर उनका मंतव्य स्पष्ट है, "सामाजिक सरोकार छोड़कर कोई पत्रकारिता नहीं हो सकती। न्यूज मीडिया अलग है और मनोरंजन का मीडिया अलग है। दोनों को मिलाइए मत। दोनों चलेंगे। एक आपको आनंद देता है, दूसरा खबरें और विचार देता है। दोनों अपना-अपना काम कर रहे हैं।"

संजय द्विवेदी मानते हैं कि मीडिया का काम जिम्मेदारी भरा है। लोगों की आकांक्षा मीडिया से जुड़ी होती है। यही कारण है कि वे कहते हैं, "मीडिया को अपनी जिम्मेदारी स्वीकारनी होगी, अन्यथा लोग आपको नकार देंगे। अगर आप अपेक्षित तटस्थता के साथ, सत्य के साथ खड़े नहीं हुए, तो मीडिया की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता पर प्रश्न खड़े हो जाएँगे। इसलिए मीडिया को अपनी विश्वसनीयता को बचाए रखने की जरूरत है। यह तभी होगा, अगर हम तथ्यों के साथ खिलवाड़ न करें और एजेंडा पत्रकारिता से दूर रहें।" कुमार श्रीकांत से बातचीत में वे कहते भी हैं, "पत्रकारिता से सब मूल्यों का ह्रास हो गया है, यह कहना ठीक नहीं है। 90 प्रतिशत से अधिक पत्रकार ईमानदारी के साथ अपने काम को अंजाम देते हैं। यह कह देना कि सभी पत्रकार इस तरीके के हो गए हैं, यह ठीक नहीं है।"

संजय द्विवेदी मीडिया को सिर्फ और सिर्फ सवाल खड़ा करने वाला नहीं मानते। वे मानते हैं कि सवाल के जवाब को ढूँढ़ने का काम भी मीडिया का है। मीडिया यदि इस काम में आगे आए, तो समाज की कई समस्याओं का समाधान स्वतः हो जाएगा। वे कहते हैं, "सवाल उठाना मीडिया का काम है ही, लेकिन सवालों के जवाब खोजना भी मीडिया का ही काम है। यह उत्तर खोजने का काम आप सरकार के आगे नहीं छोड़ सकते।" अजीत द्विवेदी से बातचीत में वे गहरे तौर पर कहते हैं, "पत्रकार का तथ्यपरक होना बेहद जरूरी है। सत्य का साथ पत्रकार नहीं देगा, तो और कौन देगा?" वे किसी साक्षात्कार में आने वाले मीडिया विद्यार्थियों को सलाह भी देते हैं, "परिश्रम का कोई विकल्प नहीं है। अगर आपके अंदर क्रिएटिविटी नहीं है, आइडियाज नहीं है, भाषा की समझ नहीं है, समाज की समझ नहीं है और सबसे महत्वपूर्ण समाज की समस्याओं की समझ नहीं है, तो आपको पत्रकारिता के क्षेत्र में नहीं आना चाहिए।"

मीडिया में हो रहे बदलाव को लेकर संजय द्विवेदी सोचते हैं, "न्यूज सलेक्शन का अधिकार अब रीडर को दिया जा रहा है। पहले एडिटर तय कर देता था कि आपको क्या पढ़ना है। आज वह समय धीरे-धीरे खत्म हो रहा है। आज आप तय करते हैं कि आपको कौन-सी न्यूज चाहिए। धीरे-धीरे यह समय ऐसा आएगा, जिसमें पाठक तय करेगा कि किस मीडिया में जाना है।" आरजे ज्योति से कहते हैं, "मीडिया बहुत विकसित हो गया है। आज उसके दो हथियार हैं। पहला है भाषा, जिससे आप कम्युनिकेट करते हैं। जिस भाषा में आपको काम करना है, उस भाषा पर आपकी बहुत अच्छी कमांड होनी चाहिए। दूसरी चीज है टेक्नोलॉजी। जिस व्यवस्था में आपको बढ़ना है, उसमे टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल होता है। एक अच्छे जर्नलिस्ट के दो ही आधार होते हैं कि वह अच्छी भाषा सीख जाए और

[1] सहायक आचार्य, भारतीय जन संचार संस्थान, जम्मू. ईमेल : vinitutpal@gmail.com

उसे तकनीक का इस्तेमाल करना आ जाए।''

संजय द्विवेदी सकारात्मक सोच के व्यक्ति हैं और वे टीवी मीडिया को लेकर अलग नजरिया रखते हैं। वे कहते हैं, ''टीवी से आप बहुत ज्यादा उम्मीद रख रहे हैं। टीवी ड्रामे का माध्यम है, वहाँ दृश्य रचने होते हैं। दर्शकों और पाठकों को भी मीडिया साक्षर बनाने का सोचिये। सारा ठीकरा मीडिया पर मत फोड़िए। हमें पाठक और दर्शक की सुरुचि का विकास भी करना होगा।'' हालाँकि एक बातचीत में वे कहते नजर आते हैं, ''1991 के बाद मीडिया का ध्यान धीरे-धीरे डिजिटल की तरफ बढ़ने लगा। मीडिया कन्वर्जेंस का टाइम हमें दिख रहा है। यानी एक साथ आपको अनेक माध्यमों पर सक्रिय होना पड़ता है। अगर आप प्रिंट मीडिया के हाउस हैं, तो आपको प्रिंट के साथ-साथ टीवी, रेडियो और डिजिटल पर भी रहना पड़ेगा और इसके अलावा ऑन ग्राउंड इवेंट्स भी करने होंगे। यानी आप एक साथ पाँच विधाओं को साधते हैं।''

संजय द्विवेदी इस पुस्तक में एक जगह कहते हैं, ''हमारी जो सोचने की क्षमता है, हमारा जो मौलिक चिंतन है, वह सोशल मीडिया से नष्ट हो रहा है। धीरे-धीरे सोशल मीडिया के बारे में जानकारी के साथ-साथ हमें उसके उपयोग की विधि सीखनी होगी। हमें उसका उपयोग सीखना होगा। हमें सोशल मीडिया हैंडलिंग सीखनी पड़ेगी, वरना हमारे सामने दूसरी तरह के संकट पैदा होंगे।'' अनिल निगम के साथ बातचीत में कहते हैं, ''सोशल मीडिया अभी मैच्योर पोजीशन में नहीं है और लोगों के हाथों में इसे दे दिया गया है। इसका इस्तेमाल करने वाले लोग प्रशिक्षित पत्रकार नहीं हैं। वे ट्रेंड नहीं हैं। उनको बहुत भाषा का ज्ञान भी नहीं है। वे कानून पढ़कर भी नहीं आए हैं। वे लिखते हैं और इसके बाद जेल भी जाते हैं।''

मीडिया के बदलते रुतबे और कार्यप्रणाली को लेकर द्विवेदी सजग हैं और कहते हैं, ''मीडिया का आकार-प्रकार बहुत बढ़ गया है। अखबारों के पेज बढ़े हैं, संस्करण बढ़े हैं। जिले-जिले के पेज बनते हैं। आज अखबार लाखों में छपते और बिकते हैं। चीन, जापान और भारत आज भी प्रिंट के बड़े बाजार हैं। यहाँ ग्रोथ निरंतर हैं। ऐसे में अपना प्रसार बढ़ाने के लिए स्पर्धा में स्कीम आदि के कार्य होते हैं।'' वहीं, कॉर्पोरट के द्वारा मीडिया इंडस्ट्री के संचालन में किसी भी तरह का नयापन या आश्चर्य उन्हें नहीं दिखता है, उलटे वे सवाल करते हैं, ''इतने भारी-भरकम और खर्चीले मीडिया को कॉर्पोरेट के अलावा कौन चला सकता है? सरकार चलाएगी तो उस पर कोई भरोसा नहीं करेगा। समाज या पाठक को मुफ्त का अखबार चाहिए। आप अगर सस्ता अखबार और पत्रिकाएँ चाहते हैं, तो उसकी निर्भरता तो विज्ञापनों पर रहेगी। अगर मीडिया को आजाद होना है तो उसकी विज्ञापनों पर निर्भरता कम होनी चाहिए। ऐसे में पाठक और दर्शक उसका खर्च उठाएँ। अगर आप अच्छी, सच्ची, शोधपरक खबरें पढ़ना चाहते हैं तो खर्च कीजिए।''

नीरज कुमार दुबे से बातचीत में संजय द्विवेदी कहते हैं, ''मैं सभी शिक्षकों से यही आग्रह करता हूँ कि वे अपने विद्यार्थियों से वही काम कराएँ, जो वे अपने बच्चों से कराना चाहेंगे। यह ठीक नहीं है कि आपका बच्चा तो अमेरिका के सपने देखे और आप अपने विद्यार्थी को 'पार्टी का कॉडर' बनाएँ। यह धोखा है।'' उनका कहना है कि हमारे पास ''दो शब्द हैं, 'एक्टिविज्म' और दूसरा है 'जर्नलिज्म'। वे कहते हैं कि कहीं-न-कहीं पत्रकारों को एक्टिविज्म छोड़ना होगा और जर्नलिज्म की तरफ आना होगा। जर्नलिज्म के मूल्य हैं खबर देना। हमें अपने मूल्यों की ओर लौटना होगा, अगर हम एजेंडा पत्रकारिता करेंगे, एक्टिविज्म का जर्नलिज्म करेंगे या पत्रकारिता की आड़ में कुछ एजेंडा चलने की कोशिश करेंगे, तो हम अपनी विश्वसनीयता खो बैठेंगे और हमें इससे बचना चाहिए।''

एक साक्षात्कार में संजय द्विवेदी कहते हैं, ''हमें यह देखना होगा कि दुनिया के अंदर मीडिया शिक्षा में किस तरह के प्रयोग हुए हैं। उन प्रयोगों को भारत की भूमि में यहाँ की जड़ों से जोड़कर कैसे दोहराया जा सकता है। पत्रकारिता एक प्रोफेशनल कोर्स है। यह एक सैद्धांतिक दुनिया भर नहीं है...हमें मीडिया में नेतृत्व करने वाले लोग खड़े करने पड़ेंगे और यह जिम्मेदारी मीडिया में जाने के बाद नहीं शुरू होती। हमें मीडिया शिक्षण संस्थाओं से ही लीडर खड़े करने पड़ेंगे। जब लीडर खड़े होंगे, तभी मीडिया का भविष्य ज्यादा बेहतर होगा। मीडिया एजुकेशन देने वाले संस्थानों की यह जिम्मेदारी है कि इन संस्थानों से लीडर खड़े किए जाएँ और वे प्रबंधन की भूमिका में भी जाएँ।''

संजय द्विवेदी का मानना है, ''जैसा हमारा समाज होता है, वैसे ही हमारे समाज के सभी वर्गों के लोग होते हैं। उसी तरह का मीडिया भी है। तो हमें समाज के शुद्धीकरण का प्रयास करना चाहिए। मीडिया बहुत छोटी चीज है और समाज बहुत बड़ी चीज है। मीडिया समाज का एक छोटा-सा हिस्सा है। मीडिया ताकतवर हो सकता है, लेकिन समाज से ताकतवर नहीं हो सकता...याद रखिए कि मीडिया अच्छा हो जाएगा और समाज बुरा रहेगा, ऐसा नहीं हो सकता। समाज अच्छा होगा, तो समाज जीवन के सभी क्षेत्र अच्छे होंगे।''

रिजवान अहमद सिद्दीकी से बातचीत में संजय द्विवेदी एक आदर्श व्यक्तित्व प्रस्तुत करते हैं और वे कहते हैं, ''जो काम मुझे मिला, ईमानदारी से, प्रामाणिकता से और अपना सब कुछ समर्पित कर उसे पूरा किया। कभी भी यह नहीं सोचा कि यह काम अच्छा है, बुरा है, छोटा है या बड़ा है। और कभी भी किसी काम की किसी दूसरे काम से तुलना भी नहीं की। किसी भी काम में हमेशा अपना सर्वश्रेष्ठ देने का प्रयास किया। यही मेरा मंत्र है।'' साथ ही, दूसरों से उम्मीद करते हुए कहते हैं, ''अपने काम में ईमानदारी और प्रामाणिकता रखने के साथ परिश्रम करना चाहिए, क्योंकि इसका कोई विकल्प नहीं है। सामान्य परिवार से आने वाले बच्चों के पास दो ही शक्ति होती है, उनकी क्रिएटिविटी और उनके आइडियाज, अगर परिश्रम के साथ काम करते हैं तो अपार संभावनाएँ हैं।'' इतना ही नहीं, वे कार्य को देशहित से भी जोड़ते हैं। पुस्तक में एक स्थान पर वे कहते हैं, ''हर व्यक्ति जो किसी भी क्षेत्र में अपना काम ईमानदारी से कर रहा है, वह देशहित में ही कर रहा है।''

इस संपादित पुस्तक में 25 साक्षात्कार हैं। कुल 256 पेज की यह पुस्तक कई मायनों में अलग है, जिसे मीडिया में विद्यार्थियों, शिक्षाविदों और मीडियाकर्मियों को पढ़ना और गुनना चाहिए। ■

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 124, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

पुस्तक समीक्षा

सार्थक विमर्शों का महत्वपूर्ण दस्तावेज

गिरीश पंकज[1]

पुस्तक : शुक्रवार संवाद
प्रधान संपादक : प्रो. संजय द्विवेदी
संपादक : प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार
प्रकाशक : भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली 110067

कोविड महामारी विश्व के माथे पर मानव निर्मित आपदा का ऐसा भयावह कलंक है, जो सदियों तक भुलाया न जा सकेगा। न जाने कितने महत्वपूर्ण लोग काल-कवलित हो गए। असंख्य जन मानसिक त्रास भोगते रहे, आज भी भोग रहे हैं। बावजूद इन सभी त्रासदियों के जीने की राह तो मनुष्य तलाश ही लेता है। यही कारण है कि महामारी से जूझते हुए भी लोगों ने संवाद का एक नया रास्ता चुना और तरंग गोष्ठियों का अभिनव सिलसिला शुरू हुआ। इंटरनेट और स्मार्ट फोन के कारण ऑनलाइन वैश्विक संगोष्ठियाँ होने लगीं, तो लगा जड़ता टूटी। सृजन और संवाद की मानवीय इच्छा को मंच मिलने लगा। इसी कड़ी में भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली, ने 'शुक्रवार संवाद' नामक विमर्श का सिलसिला शुरू किया। ऑनलाइन चलने वाला यह कार्यक्रम फेसबुक और यूट्यूब के जरिये लाखों लोगों तक पहुंचा। संस्थान के ऊर्जावान महानिदेशक प्रोफेसर (डॉ.) संजय द्विवेदी की परिकल्पना के कारण मीडिया और साहित्य से जुड़े अनेक चिंतकों से सार्थक संवाद हुआ। जितने भी मनीषी इस विमर्श में शामिल हुए, उन सबके विचार अब पुस्तक के रूप में प्रकाशित होकर सामने आए हैं। यह कार्य एक दस्तावेज के रूप में दर्ज होकर और अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। वैसे ये सारे संवाद यूट्यूब पर भी उपलब्ध हैं, लेकिन प्रिंट का अपना अलग आनंद है। इस दृष्टि से यह पुस्तक नि:संदेह महत्वपूर्ण उपक्रम है। वैसे तमाम प्रतिभागियों के विचारों को लिपिबद्ध करना अत्यधिक श्रम साध्य काम था, लेकिन संस्थान से जुड़े लोगों ने इस कार्य को सहर्ष किया, इसलिए वे सब भी बधाई के पात्र हैं।

समीक्ष्य पुस्तक में मीडिया और संस्कृति, मीडिया और सूचना का अधिकार जैसे विषयों पर विद्वानों के विचार संगृहीत हैं। स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, दीनदयाल उपाध्याय, नेताजी सुभाष चंद्र बोस, मदन मोहन मालवीय, बाबासाहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर, माधव राव सप्रे, युगल किशोर शुक्ल, अटलबिहारी वाजपेयी जैसी विभूतियों को महत्वपूर्ण संचारक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन तमाम लोगों ने पत्रकारिता के जरिये लोक चेतना का जैसा अनुसार किया वह मील का पत्थर है। डॉ. सच्चिदानंद जोशी, उदय माहुरकर, मालिनी अवस्थी, डॉ. निवेदिता रघुनाथ भिड़े, रेणुका मालाकर, बनवारी, संजय कांबले, मेघा परमार, प्रो. कुलदीप अग्निहोत्री, अजय उपाध्याय, आलोक मेहता, स्मृति जुबिन ईरानी, डॉ. एस.वाई. कुरैशी, गजेंद्र सिंह शेखावत, रमेश चंद भारद्वाज, राम बहादुर राय, अशोक टंडन, रमेश पतंगे, शशि शेखर, डॉ. अल्पना मिश्र, जितेंद्र सिंह, समुद्र गुप्त कश्यप, प्रशांत ज्योति बरुआ, वशिष्ठ पांडेय, अमित खरे, बलदेव भाई शर्मा, उमेश उपाध्याय, जयदीप कर्णिक, राजकुमार सिंह, जयंती रंगनाथन, स्नेह आशीष सूर, शिव शंकर बाबू, सोनाली नरगुंदे, विजय दत्त श्रीधर, विष्णु प्रकाश त्रिपाठी, प्रो. संजय द्विवेदी, हृदय नारायण दीक्षित, इंदुशेखर तत्पुरुष, जया जादवानी और तारा दूगड़ के व्याख्यान विमर्श के नए द्वार खोलते हैं। सभी ने संस्थान के विद्यार्थियों के सम्मुख जो विचार रखे, वे लिप्यंतरित हुए हैं।

दिसंबर 2020 से 'शुक्रवार संवाद' शुरू हुआ और 2021 में भी यह सिलसिला चलता रहा। इसके अंतर्गत नई शिक्षा नीति से लेकर पत्रकारिता और मीडिया शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर विमर्श हुआ, जिसका लाभ संस्थान के विद्यार्थियों ने लिया। 'मीडिया और संस्कृति' नामक पहले ही व्याख्यान में डॉ. सच्चिदानंद जोशी ने यह बताने की कोशिश की कि जीवन का महत्वपूर्ण अंग संस्कृति है और संस्कृति का अंग है शिक्षा। दोनों मिलकर एक बेहतर मनुष्य का निर्माण करते हैं। लेकिन इन सबके साथ ही शारीरिक, भौतिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक संतुलन भी जरूरी है। सूचना का अधिकार इन दिनों लोकतंत्र के सर्वाधिक मुखर रूप को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त है। इस विषय पर भारत के प्रमुख सूचना आयुक्त उदय माहुरकर का व्याख्यान दिशा बोधक है। सूचना का अधिकार आने के बाद पत्रकारिता को नया कलेवर मिला। हालाँकि श्री माहुरकर ने इस सत्य को भी रेखांकित किया कि जनहित के लिए की गई आरटीआई याचिकाएँ कम हैं और इनका प्रयोग राजनीतिक लाभ के लिए अधिक होता है।" यानी सूचना के अधिकार का दुरुपयोग तो हो रहा है। बावजूद इसके सिस्टम की अराजकता को खोलने में सूचना के अधिकार की एक महती भूमिका भी है ही।

महात्मा गांधी ने पत्रकारिता को आजादी के आंदोलन का और सामाजिक नवाचार का एक महत्वपूर्ण हथियार बनाया था। इस पर बनवारी जी के विस्तृत विचार नि:संदेह पठनीय एवं सूचनापरक हैं। पुस्तक में नेताजी सुभाष चंद्र बोस, माधव राव सप्रे और बाबासाहेब अंबेडकर तक की पत्रकारिता पर चर्चा हुई है। अपने विचारों को लोगों तक कुशलता के साथ पहुँचाने वाले स्वामी विवेकानंद पर डॉ. निवेदिता रघुनाथ भिड़े का व्याख्यान काफी रोचक है। ऐसे ही अनेक ज्ञानवर्धक लेखों से भरपूर 370 पृष्ठों वाली यह पुस्तक मीडिया के प्रति जिज्ञासु भाव रखने वाले हर विद्यार्थी अथवा पाठक के लिए उपयोगी साबित होगी। ■

[1] वरिष्ठ साहित्यकार, रायपुर, छत्तीसगढ़. . ईमेल : girishpankaj1@gmail.com

INDIAN INSTITUTE OF MASS COMMUNICATION
DEPARTMENT OF PUBLICATIONS

NEW SUBSCRIPTION **RENEWAL FORM**

To
The Head, Department of Publications, Indian Institute of Mass Communication
JNU New Campus, Aruna Asaf Ali Marg, New Delhi-110 067

Dear Sir/Madam,
I/We would like to subscribe to your research journals/magazines:

1. Communicator (English, Quarterly)	**Rs. 200.00 per issue (Rs. 800/- annual price)**
2. Sanchar Madhyam (Hindi, Biannual)	**Rs. 200.00 per issue (Rs. 400/- annual price)**
3. Sanchar Srijan (Bilingual, Quarterly)	**Rs. 100.00 per issue (Rs. 300/- annual price)**
4. Rajbhasha Vimarsh (Hindi, Quarterly)	**Rs. 100.00 per issue (Rs. 300/- annual price)**

for the Calendar year (Jan-Dec).....
The Demand Draft/Cheque No./Online Transaction No. .....
Dated.....drawn on.....for
₹.....is enclosed towards the subscription amount.

The journal(s) may be sent to the following address:

Name.....

Address.....

Phone.....

(Signature with Date)

NOTE:
- Demand draft should be made in favour of **Indian Institute of Mass Communication,** payable at Delhi.
- Cheques from the individuals are not accepted; however, cheques from the institutes/universities established firms may be accepted.
- Online Fund Transfer details:

Name of Account Holder	:	**IIMC REVENUE**
Address	:	Aruna Asaf Ali Marg, New Delhi-110 067
Bank Name and Branch	:	**State Bank of India**, R K Puram, New Delhi - 110022
IFSC Code	:	**SBIN0001076**
Account Account No.	:	**40321700410**
Type of Bank	:	SB

आईआईएमसी गतिविधियाँ जुलाई-दिसंबर 2022

हिंदी पत्रकारिता दिवस के अवसर पर व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए श्री शशि शेखर

हिंदी पत्रकारिता दिवस के उपलक्ष्य में विशेष व्याख्यान

हिंदी पत्रकारिता दिवस के उपलक्ष्य में भारतीय जन संचार संस्थान द्वारा बीती 27 मई, 2022 को विशेष व्याख्यान का आयोजन किया गया। व्याख्यान प्रस्तुत करते हुए 'हिन्दुस्तान' के प्रधान संपादक श्री शशि शेखर ने कहा कि डिजिटलाइजेशन ने पत्रकारों और पत्रकारिता को एक नई ताकत दी है। वर्तमान में कंटेंट सेक्टर की अकेली उम्मीद हिंदी भाषा है, जिसमें रोजगार के नए अवसर उपलब्ध हो रहे हैं। इस अवसर पर आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी, अपर महानिदेशक श्री आशीष गोयल, डीन (अकादमिक) प्रो. गोविंद सिंह एवं हिंदी पत्रकारिता विभाग के अध्यक्ष प्रो. आनंद प्रधान भी उपस्थित थे। श्री शशि शेखर ने कहा कि पत्रकारिता सत्य, तथ्य और कथ्य के साथ चलती है। जितने भी लोग खबरों के व्यवसाय में हैं, उन्हें एक बात नहीं भूलनी चाहिए कि वे 'प्रोफेशनल ट्रुथ टेलर' हैं। हम कहानीकार नहीं, बल्कि कलमकार हैं। उन्होंने कहा कि हिंदी कंटेट की बढ़ती गुणवत्ता ने उसे डिजिटल माध्यमों पर अलग पहचान दिलाई है। इस अवसर पर आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि भारत में हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत पं. युगल किशोर शुक्ल द्वारा 30 मई, 1826 को कोलकाता से प्रकाशित समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' से हुई थी। इसलिए 30 मई को पूरे देश में हिंदी पत्रकारिता दिवस मनाया जाता है। उन्होंने कहा कि 'उदन्त मार्तण्ड' का ध्येय वाक्य था, 'हिंदुस्तानियों के हित के हेत' और इस एक वाक्य में भारत की पत्रकारिता का मूल्यबोध स्पष्ट रूप में दिखाई देता है। प्रो. द्विवेदी ने कहा कि पिछले वर्ष आईआईएमसी ने अपने पुस्तकालय का नाम पं. युगल किशोर शुक्ल के नाम पर रखा। यह हमारे लिए बड़े गर्व का विषय है कि हिंदी पत्रकारिता के प्रवर्तक पं. युगल किशोर शुक्ल के नाम पर यह देश का पहला स्मारक है। उन्होंने कहा कि हिंदी और भारतीय भाषाओं का यह स्वर्णिम युग है। हिंदी सभी को साथ लेकर चलने वाली भाषा है। माताएँ और भाषाएँ अपने बच्चों से ही सम्मान पाती हैं।

आईआईएमसी और महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के बीच एमओयू पर हस्ताक्षर

भारतीय भाषाओं में अनुवाद और शोध को बढ़ावा देने के उद्देश्य से भारतीय जन संचार संस्थान (आईआईएमसी), नई दिल्ली और महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के बीच 10 मई, 2022 को सहमति ज्ञापन (एमओयू) पर हस्ताक्षर किए गए। एमओयू पर आईआईएमसी की ओर से महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी एवं महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की ओर से कुलपति प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल ने हस्ताक्षर किए। इस अवसर पर महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के प्रति कुलपति प्रो. हनुमान प्रसाद शुक्ल, जनसंचार विभाग के अध्यक्ष प्रो. कृपाशंकर चौबे, आईआईएमसी

के डीन (अकादमिक) प्रो. गोविंद सिंह एवं डीन (छात्र कल्याण) प्रो. प्रमोद कुमार भी उपस्थित थे। सहमति ज्ञापन पर हस्ताक्षर के बाद आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि आईआईएमसी भारतीय भाषाओं के विकास को लेकर सजग है। संस्थान जम्मू और अमरावती परिसर में इसी वर्ष हिंदी पत्रकारिता पाठ्यक्रम शुरू करने जा रहा है। साथ ही इस वर्ष तीन परिसरों में डिजिटल पत्रकारिता पाठ्यक्रम की शुरुआत भी की जा रही है। भारतीय भाषाओं में अनुवाद की आवश्यकता पर जोर देते हुए महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. रजनीश कुमार शुक्ल ने कहा कि हिंदी और भारतीय भाषाओं के विद्यार्थियों को उनकी अपनी भाषा में पाठ्य पुस्तकें उपलब्ध कराने के लिए दोनों संस्थान मिलकर प्रयास करेंगे। इस अवसर पर आईआईएमसी के डीन (छात्र कल्याण) प्रो. प्रमोद कुमार ने कहा कि भारतीय जन संचार संस्थान 1965 से लेकर आज तक गुणवत्तापूर्ण मीडिया शिक्षा प्रदान कर रहा है और आईआईएमसी से तैयार पत्रकार देशभर के विभिन्न मीडिया संस्थानों में अग्रणी भूमिकाओं में हैं।

आईआईएमसी और मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय के बीच एमओयू पर हस्ताक्षर

भारतीय जन संचार संस्थान (आईआईएमसी) और हैदराबाद स्थित मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय (एमएएनयूयू) के बीच 5 मई, 2022 को ज्ञान, संसाधन और अनुसंधान गतिविधियों को साझा करने के लिए समझौता पत्र (एमओयू) पर हस्ताक्षर हुए। एमओयू पर आईआईएमसी की ओर से महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी और एमएएनयूयू की ओर से कुलपति प्रो. सैयद ऐनुल हसन ने हस्ताक्षर किए। यह समझौता तीन वर्ष के लिए किया गया है। इस अवसर पर आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि यह समझौता दक्षिण और उत्तर का मिलन है। अब हम मिलकर एक-दूसरे की विशेषताओं को साझा करेंगे और संकल्पों को साथ मिलकर पूरा करेंगे। हिंदुस्तानी जब मिलकर काम करते हैं, तो किसी भी लक्ष्य को हासिल कर लेते हैं। हमें सुनिश्चित करना होगा कि यह समझौता पत्र महज कागजों तक ही सीमित न रहे। इस अवसर पर मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी के कुलपति प्रो. सैयद ऐनुल हसन ने कहा कि आज सरकार भी शिक्षा में 'क्लस्टर सिस्टम' की बात कर रही है। दो शैक्षणिक संस्थान मिलकर शैक्षणिक कार्यक्रम चला सकते हैं तथा विद्यार्थियों को डिग्री प्रदान कर सकते हैं। ऐसे में आईआईएमसी और एमएएनयूयू को मिलकर इस दिशा में प्रयास करने की जरूरत है। समझौता पत्र पर हस्ताक्षर के दौरान आईआईएमसी के डीन अकादमिक प्रो. गोविंद सिंह, उर्दू पत्रकारिता विभाग के अध्यक्ष प्रो. प्रमोद कुमार, एमएएनयूयू की ओर से रजिस्ट्रार प्रो. इश्तियाक अहमद, स्कूल ऑफ जर्नलिज्म एंड मास कम्युनिकेशन के डीन प्रो. एहतेशाम अहमद खान और दिल्ली क्षेत्रीय केंद्र की प्रमुख रुचिका केम भी उपस्थित थे।

सुलेमानिया के गवर्नर डॉ. हवल अबूबकर ने किया आईआईएमसी का दौरा

इराक के कुर्दिस्तान क्षेत्र में स्थित सुलेमानिया प्रांत के गवर्नर डॉ. हवल अबूबकर ने 12 अप्रैल, 2022 को आईआईएमसी का दौरा किया। उन्होंने विद्यार्थियों को संबोधित किया और संकाय सदस्यों से बात की। इस अवसर पर आईआईएमसी के डीन (छात्र कल्याण) प्रो. प्रमोद कुमार, प्रो. अनुभूति यादव, प्रो. सुनेत्रा सेन नारायण, प्रो. शाश्वती गोस्वामी, डॉ. रिंकू पेगू, डॉ. राकेश उपाध्याय, डॉ. मीता उज्जैन एवं डॉ. रचना शर्मा भी उपस्थित रहे। इराक की उन्नति में भारतीयों की भूमिका को महत्वपूर्ण

बताते हुए डॉ. अबूबकर ने कहा कि सुलेमानिया में भी एक हिंदुस्तान बसता है। 25,000 से ज्यादा भारतीय कुर्दिस्तान में रहते हैं, जिनके योगदान से आज हमारा देश तरक्की की नई इबारत लिख रहा है। डॉ. अबूबकर ने आईआईएमसी द्वारा संचालित 'अपना रेडियो 96.9 एफएम' को विशेष साक्षात्कार भी दिया। सुलेमानिया के गवर्नर ने आईआईएमसी स्थित पं. युगल किशोर शुक्ल ग्रंथालय एवं ज्ञान संसाधन केंद्र का भी दौरा किया। इस दौरान पुस्तकालय प्रभारी डॉ. प्रतिभा शर्मा ने भारतीय जन संचार संस्थान द्वारा प्रकाशित पत्रिकाएँ डॉ. अबूबकर को भेंट कीं।

आईआईएस के प्रशिक्षु अधिकारियों से सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के सचिव अपूर्व चंद्रा का संवाद

'फेक न्यूज' पर लगाम लगाने के लिए 'फैक्ट चैक' को महत्वपूर्ण बताते हुए सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के सचिव श्री अपूर्व चंद्रा ने कहा

है कि सही खबरों को सही तरीके से आम जनता तक पहुँचाना बेहद आवश्यक है। उन्होंने कहा कि कोरोना के समय में सरकारी सूचना तंत्र के माध्यम से लोगों तक सही जानकारी पहुँचाई गई, जिससे महामारी से बचाव में जनता को मदद मिली। श्री चंद्रा 25 मार्च, 2022 को भारतीय जन

संचार संस्थान में भारतीय सूचना सेवा, ग्रुप 'ए' के प्रशिक्षु अधिकारियों को संबोधित कर रहे थे। इस अवसर पर भारतीय जन संचार संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी, ऑल इंडिया रेडियो के समाचार सेवा प्रभाग के प्रधान महानिदेशक श्री एन. वेणुधर रेड्डी, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग की महानिदेशक सुश्री मोनी दीपा मुखर्जी, आरएनआई के प्रेस रजिस्ट्रार श्री धीरेंद्र ओझा, पत्र सूचना कार्यालय के महानिदेशक श्री राजेश मल्होत्रा एवं भारत निर्वाचन आयोग की महानिदेशक (मीडिया) सुश्री शेफाली शरण भी उपस्थित थे। कार्यक्रम में स्वागत भाषण आईआईएमसी के अपर महानिदेशक श्री आशीष गोयल ने दिया एवं धन्यवाद ज्ञापन डॉ. रिंकू पेगू ने किया। इस अवसर पर संस्थान के डीन (अकादमिक) प्रो. गोविंद सिंह, डीन छात्र कल्याण प्रो. प्रमोद कुमार, प्रो. सुनेत्रा सेन नारायण, प्रो. आनंद प्रधान, प्रो. वीरेंद्र कुमार भारती एवं प्रो. संगीता प्रणवेंद्र भी उपस्थित रहे।

नारी शक्ति सम्मान समारोह का आयोजन

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस के प्रसंग पर भारतीय जन संचार संस्थान

द्वारा 9 मार्च, 2022 को आयोजित 'नारी शक्ति सम्मान समारोह' को संबोधित करते हुए आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि भारत में स्त्री शक्ति की गौरवशाली परंपरा रही है। महिलाएँ किसी भी संस्थान एवं समाज की सबसे बड़ी शक्ति हैं। कार्यक्रम में पंजाब केसरी समूह की निदेशक श्रीमती किरण चोपड़ा मुख्य अतिथि के तौर पर शामिल हुईं। इस अवसर पर संस्थान के अपर महानिदेशक श्री आशीष गोयल एवं डीन (अकादमिक) प्रो. गोविंद सिंह सहित समस्त प्राध्यापक, अधिकारी एवं कर्मचारी उपस्थित थे। श्रीमती किरण चोपड़ा ने कहा कि आज हम 'मंगल' तक पहुँच गए हैं, लेकिन हमारे जीवन में 'मंगल' तब आएगा जब महिलाओं को सम्मान मिलेगा और वे समाज में स्वयं को सुरक्षित महसूस करेंगी। उन्होंने कहा कि महिला और पुरुष पक्षी के दो पंखों के समान हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना करना असंभव है। इस अवसर पर संस्थान में कार्यरत समस्त महिला पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों को शॉल एवं स्मृति चिह्न देकर सम्मानित किया गया।

गांधीवादी चिंतक धर्मपाल की जन्म शताब्दी

गांधीवादी चिंतक, विचारक, स्वतंत्रता सेनानी एवं भारतबोध के संचारक धर्मपाल जी की जन्म शताब्दी के अवसर पर भारतीय जन संचार संस्थान और समाजनीति समीक्षण केंद्र, चेन्नई के संयुक्त तत्वावधान में 18 फरवरी, 2022 को 'धर्मपाल प्रसंग' का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता पूर्व केंद्रीय मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने की। कार्यक्रम में हार्वर्ड विश्वविद्यालय में डिविनिटी के प्रोफेसर फ्रांसिस एक्स. क्लूनी, भारत सरकार के मुख्य वैज्ञानिक सलाहकार प्रो. के. विजय राघवन, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली के अध्यक्ष श्री राम बहादुर राय, 'तुगलक' के संपादक श्री एस. गुरुमूर्ति एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति की प्रारूप समिति

के सदस्य प्रो. एम. के. श्रीधर ने भी हिस्सा लिया। आईआईटी चेन्नई में प्रोफेसर श्री अशोक झुनझुनवाला, सोसाइटी फॉर इंटीग्रेटेड डेवलपमेंट ऑफ हिमालयाज, मसूरी के संस्थापक निदेशक श्री पवन गुप्ता, विवेकानंद कॉलेज, चेन्नई के सेवानिवृत्त प्राध्यापक प्रो. के. वी. वरदराजन, सुप्रसिद्ध इतिहासकार एवं धर्मपाल जी की पुत्री प्रो. गीता धर्मपाल, प्रख्यात योगाचार्य श्री टी. एम. मुकुंदन, आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी, समाजनीति समीक्षण केंद्र के निदेशक डॉ. जे. के. बजाज एवं अध्यक्ष प्रो. एम. डी. श्रीनिवास ने भी अपने विचार व्यक्त किए। धर्मपाल शताब्दी के अवसर पर धर्मपाल जी के विचारों के अध्ययन एवं चिंतन की आवश्यकता पर सभी ने जोर दिया।

इतिहास की रिक्तताएँ और विकृतियाँ समाप्त करने हेतु गहन शोध की जरूरत

भारतीय जन संचार संस्थान और भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् द्वारा 'भारतीय मीडिया एवं स्वतंत्रता आंदोलन' विषय पर आयोजित दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की कुलपति प्रो. शांतिश्री धुलिपुडी पंडित। मंच पर उपस्थित हैं (बायें से) प्रो. संगीता प्रणवेंद्र, प्रो. प्रमोद कुमार, प्रो. संजय द्विवेदी, प्रो. रघुवेंद्र तंवर एवं श्री आशीष गोयल

भारतीय जन संचार संस्थान (आईआईएमसी) और भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् (आईसीएचआर) के संयुक्त तत्वावधान में 'भारतीय मीडिया एवं स्वतंत्रता आंदोलन' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन 27 से 28 अप्रैल, 2022 तक भारतीय जन संचार संस्थान के नई दिल्ली परिसर में किया गया। संगोष्ठी 'आजादी के अमृत महोत्सव' को समर्पित थी। संगोष्ठी के मुख्य विषय पर कुल आठ सत्रों में चर्चा हुई। चर्चा हेतु मुख्य विषय को सात उपविषयों में बाँटा गया था। वे सात उपविषय थे--'लोक माध्यम और भारत में स्वाधीनता संग्राम', 'औपनिवेशिक भारत में प्रतिबंधित प्रेस', 'ब्रिटिश काल में श्रव्य-दृश्य मीडिया और राष्ट्रीय जागरण', 'महिला, मीडिया और स्वराज के लिए संघर्ष', 'भाषाई मीडिया और स्वतंत्रता आंदोलन', 'स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान औपनिवेशिक विमर्श और मीडिया' और 'प्रेस और भारत विभाजन'। इसके अलावा दो समांतर सत्रों में शोधार्थियों ने 85 शोध पत्र प्रस्तुत किए। संगोष्ठी में 24 से अधिक विद्वानों ने अपने विचार प्रकट किए। आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी संगोष्ठी के संरक्षक और आईआईएमसी में अधिष्ठाता छात्र कल्याण प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार संगोष्ठी के संयोजक थे।

उद्घाटन सत्र

संगोष्ठी का शुभारंभ 27 अप्रैल, 2022 को राष्ट्रगीत के गायन और दीप प्रज्ज्वलन के साथ जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) की कुलपति प्रो. शांतिश्री धुलिपुड़ी पंडित और आईसीएचआर के अध्यक्ष प्रो. रघुवेंद्र तँवर के द्वारा किया गया। स्वागत भाषण आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. द्विवेदी ने दिया। अपने उद्घाटन उद्बोधन में प्रो. शांतिश्री पंडित ने कहा कि अक्सर कहा जाता है कि तथ्य अपरिवर्तनीय होते हैं, लेकिन व्याख्याओं में भिन्नता हो सकती है। परंतु भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास की बात करें तो इसके तथ्यों में भिन्नता है, जबकि व्याख्याएँ अपरिवर्तनीय हैं। यही कारण है कि आज हमें कड़ियों को जोड़ना पड़ रहा है। कड़ियों को जोड़ना किसी तरह की आलोचना नहीं, अपितु तथ्यों को समग्रता में प्रस्तुत करना है। मीडिया के मौजूदा परिदृश्य पर टिप्पणी करते हुए प्रो. पंडित ने कहा कि आज प्रेस को आत्मसंयम बरतने, तथ्यों को सार्वजनिक करने से पूर्व उनकी विधिवत जाँच करने और अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को समझने की जरूरत है। उन्होंने कहा कि भाषाई विविधता के बावजूद भारतीय मीडिया का तत्त्व एक ही रहा है। आज मीडिया भले ही स्वयं को चौथा खंभा कहे, परंतु हकीकत यह है कि मीडिया आज पूरी तरह एक उद्योग का स्वरूप ग्रहण कर चुका है। नवोदित पत्रकारों को अधिक से अधिक भाषाएँ सीखने का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा कि भाषा को संपर्क के एक माध्यम के रूप में देखना चाहिए न कि एक विचारधारा के रूप में। उन्होंने कहा कि मीडिया को आत्मसंयम बरतना चाहिए और जानकारी को सार्वजनिक करने से पूर्व तथ्यों की ठीक से पड़ताल करनी चाहिए। पत्रकारों को अपना सामाजिक दायित्व समझना चाहिए।

भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् के अध्यक्ष प्रो. रघुवेंद्र तँवर ने कहा कि हम आख्यानों को परिवर्तित नहीं कर रहे, बल्कि अधूरी कड़ियों को जोड़ रहे हैं। इतिहासबोध का मामला है। इस देश के लाखों विद्यार्थियों को यह गलत इतिहास पढ़ाया गया है कि आजादी की लड़ाई की शुरुआत 20वीं सदी के प्रारंभ से हुई, जबकि यह कई सौ साल का आंदोलन है। उन्होंने कहा कि जिन रिपोर्टों, दस्तावेजों आदि के आधार पर इतिहास लेखन होता है, उन्हें किसी-न-किसी स्तर पर संपादित किया गया होता है। हम एक प्रकार से इतिहास के संपादित संस्करण को ही इतिहास समझ बैठते हैं।

आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि स्वाधीनता की दास्तान को समग्रता के साथ प्रस्तुत नहीं किया गया है। अनेक स्थानों पर हुए ऐसे जनांदोलन, जिनमें बड़े नाम शामिल नहीं थे,

प्रो. संजय द्विवेदी

प्रो. रघुवेंद्र तंवर

प्रो. रमेश चंद्र भारद्वाज

श्री उमेश उपाध्याय

उन्हें छोड़ दिया गया है। उन्होंने कहा कि इतिहास की चेतना और बोध को जाग्रत करने में तथा आजादी के आंदोलन में पत्रकारों की भूमिका बहुत खास है। उन्होंने कहा कि यह विचारों की घर वापसी का समय है, अपने भारतबोध पर, अपनी भारतीयता पर, अपनी जमीन और अपने पुरखों पर गर्व करने का समय है।

आरंभ में विषय प्रवर्तन करते हुए संगोष्ठी के संयोजक प्रो. प्रमोद कुमार ने बताया कि संगोष्ठी के लिए 300 से अधिक शोधार्थियों ने पंजीकरण कराया और 250 से अधिक लोग शामिल हुए। उन्होंने कहा कि भाषाई मीडिया और लोक माध्यमों के अलावा भारतीय सिनेमा ने देशवासियों में स्वत्व का भाव पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने कहा कि स्वतंत्रता संग्राम में भारतीय संवाद समितियों के योगदान को भी नजरंदाज नहीं किया जा सकता। उस दौरान किस प्रकार स्वामीनाथन सदानंद ने 'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया एजेंसी' की स्थापना की और किस प्रकार उस एजेंसी का गला घोंटा गया, यह सब आजादी के अमृत महोत्सव के दौरान स्मरण करने की जरूरत है। उन्होंने कहा कि उस दौरान का प्रतिबंधित साहित्य, समाज सुधारकों द्वारा आरंभ किए गए प्रकाशन, बलिदानी संपादक और पत्रकार, विज्ञान संचारक, महिला पत्रकार, विदेशों से भारतीय स्वतंत्रता सेनानियों द्वारा शुरू किए गए प्रकाशन, उस दौर के विज्ञापन, आजाद रेडियो आदि की भूमिका को आज मीडिया की नई पीढ़ी और शोधार्थियों के साथ साझा किया जाना चाहिए। प्रो. कुमार ने आशा व्यक्त की कि संगोष्ठी में हुई चर्चाएँ भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के विभिन्न अनछुए पहलुओं को सामने लाने में मददगार साबित होगी और इस विषय में शोध को एक नई दिशा प्रदान करेगी। साथ ही गत एक शताब्दी में जो भ्रामक विमर्श गढ़े गए, उन्हें सही तथ्यों के साथ ठीक करना भी जरूरी है। सत्र का संचालन आईआईएमसी में अँग्रेजी पाठ्यक्रम की निदेशक प्रो. संगीता प्रणवेंद्र ने किया और धन्यवाद ज्ञापन अपर महानिदेशक श्री आशीष गोयल ने किया।

प्रथम तकनीकी सत्र

उद्घाटन सत्र के बाद प्रथम तकनीकी सत्र का विषय 'लोक माध्यम और भारत में स्वाधीनता संग्राम' था। इस सत्र को संबोधित करते हुए महर्षि वाल्मीकि संस्कृत विश्वविद्यालय, कैथल, हरियाणा के कुलपति प्रो. रमेशचंद्र भारद्वाज ने कहा कि आजादी का आंदोलन केवल एक राजनीतिक आंदोलन भर नहीं था, बल्कि भारतीय जनमानस को पुनर्जाग्रत करने का आंदोलन था। आईआईएमसी में सह प्राध्यापक डॉ. राकेश उपाध्याय ने कहा कि लोकगीतों ने जनसाधारण में चेतना जाग्रत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने कहा कि स्वाधीनता संग्राम के दौरान हजारों लोकगीतों, कहावतों, कथाओं, चित्रकारी, प्रस्तर पर उकेरे गए चित्रों ने आम लोगों के मन को उद्वेलित किया। सत्र का संचालन आईआईएमसी में सह प्राध्यापक और संगोष्ठी की सह संयोजक डॉ. रचना शर्मा ने किया और धन्यवाद ज्ञापन सह प्राध्यापक डॉ. रिंकू पेगू ने किया।

द्वितीय तकनीकी सत्र

दूसरे तकनीकी सत्र का विषय था 'औपनिवेशिक भारत में प्रतिबंधित प्रेस'। इसमें नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली में अनुसंधान एवं प्रकाशन विभाग के प्रमुख डॉ. नरेंद्र शुक्ल ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि औपनिवेशिक शासन ने दो प्रकार से भारतीय चित्त को प्रभावित किया। प्रथम, उन्होंने भारतीय संस्कृति और परंपराओं के विस्मरण को बढ़ावा दिया और दूसरा काम किया एक कृतिम स्मृति की स्थापना करने का किया। ये दोनों ही चीजें मीडिया के माध्यम से लोगों के सामने न आएँ, इसलिए प्रेस को प्रतिबंधित करने का काम किया गया। औपनिवेशिक शासन किसी भी प्रकार से भारतीयों में 'स्व' का जागरण नहीं होने देना चाहता था। दिल्ली विश्वविद्यालय के भारती कॉलेज में सहायक प्राध्यापक डॉ. अंशु यादव ने कहा कि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारतीय भाषाई मीडिया और लेखकों को अँग्रेजी मीडिया की अपेक्षा प्रतिबंध का अधिक शिकार होना पड़ा। ये प्रतिबंध विभिन्न कानून बनाकर लगाए गए, परंतु कड़े से कड़े प्रतिबंध के बावजूद भाषाई मीडिया ने और अधिक शक्ति के साथ खड़े होकर देशवासियों को स्वतंत्रता हेतु जाग्रत किया। उन प्रतिबंधों तथा उस दौर के प्रतिबंधित साहित्य से आज की पीढ़ी को अवगत करने की जरूरत है। आईआईएमसी में डीन अकादमिक प्रो. गोविंद सिंह ने कहा कि ज्यादातर अँग्रेजी अखबार अँग्रेज सरकार के पिट्ठू थे, इसलिए अँग्रेज सरकार अँग्रेजी प्रेस को सब प्रकार से सहयोग करती थी। दूसरी तरफ भारतीय भाषाई अखबार स्वतंत्रता के जागरण हेतु काम कर रहे थे, इसलिए सरकार उन्हें पूरी शक्ति के साथ कुचलना चाहती थी। इसीलिए तमाम प्रकार के प्रतिबंध ब्रिटिश सरकार ने उस समय लगाए। सत्र का संचालन डॉ. राकेश उपाध्याय ने किया और धन्यवाद ज्ञापन डॉ. पवन कौंडल ने किया।

तृतीय तकनीकी सत्र

तीसरे सत्र का विषय था 'ब्रिटिश काल के दौरान श्रव्य-दृश्य मीडिया

तृतीय तकनीकी सत्र को संबोधित करते हुए श्री उमेश चतुर्वेदी। साथ में मंच पर उपस्थित हैं डॉ. राजीव श्रीवास्तव एवं प्रो. अनुभूति यादव

डॉ. नरेंद्र शुक्ल

डॉ. अंशु यादव

प्रो. गोविंद सिंह

सुश्री मनीषा कपूर

और राष्ट्रीय जागरण'। इस सत्र में भारतीय विज्ञापन मानक परिषद की मुख्य कार्यकारी अधिकारी सुश्री मनीषा कपूर ने स्वाधीनता संग्राम और विज्ञापन विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि उस दौर में पहले-पहल विज्ञापन अनौपचारिक हुआ करते थे। बाद में औपचारिक विज्ञापनों की शुरुआत ब्रिटेन से हुई। उन्होंने बताया कि जब विदेशी वस्तुओं का विरोध शुरू हुआ तो उनकी जगह भारतीय ब्रांडों ने ले ली। रवींद्रनाथ टैगोर का विज्ञापन जगत् में भी दखल रहा और वह उस समय जिंगल लिखते थे। वरिष्ठ पत्रकार एवं प्रसार भारती में परामर्शदाता श्री उमेश चतुर्वेदी ने स्वाधीनता आंदोलन और रेडियो विषय पर कहा कि 1942 में रेडियो के माध्यम से राम मनोहर लोहिया सहित कई स्वतंत्रता सेनानियों ने देशवासियों को जाग्रत किया। उन्होंने कहा कि उस प्रयोग को 'आजाद रेडियो' नाम दिया गया था। उन्होंने कहा कि उस प्रयोग से जुड़े सभी लोगों के योगदान पर व्यापक चर्चा होनी चाहिए। फिल्मकार एवं लेखक डॉ. राजीव श्रीवास्तव ने स्वाधीनता आंदोलन और भारतीय सिनेमा विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि जन जागरण में भारतीय फिल्मों और और खासतौर से उनके गीतों का बड़ा योगदान है। इस संबंध में उन्होंने बहुत सी फिल्मों और उनके गीतों का हवाला दिया। इस सत्र का संचालन विज्ञापन एव जनसंपर्क विभाग की पाठ्यक्रम निदेशक प्रो. अनुभूति यादव ने किया और धन्यवाद ज्ञापन प्रकाशन विभाग के प्रमुख प्रो. वीरेंद्र कुमार भारती ने किया।

चतुर्थ तकनीकी सत्र

चतुर्थ तकनीकी सत्र में 'स्वाधीनता संग्राम के दौरान विज्ञान संचारक' विषय पर वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान) में पत्रकारिता विभाग के संयोजक डॉ. सुबोध कुमार ने कहा कि विज्ञान पर केंद्रित लेखन की शुरूआत 19वीं सदी में हो चुकी थी। उन्होंने विज्ञान से संबंधित उस दौर के अनेक प्रकाशनों के बारे में जानकारी दी। वरिष्ठ पत्रकार एवं लेखक डॉ. रवींद्र अग्रवाल ने 'स्वाधीनता संग्राम में समाचार एजेंसियों की भूमिका' पर विषय अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि सदानंद स्वामीनाथन ने भारतीय समाचार एजेंसी खड़ी करने के लिए अपनी पूरी

बायें से डॉ. रवींद्र अग्रवाल, डॉ. सुबोध कुमार एवं डॉ. अमृता शिल्पी

ताकत लगाई, परंतु उस एजेंसी का गला घोंटने के लिए अँग्रेज सरकार ने भी अपनी पूरी ताकत लगाई। दिल्ली विश्वविद्यालय के लक्ष्मीबाई महाविद्यालय में सहायक प्राध्यापक डॉ. अमृता शिल्पी ने 'महिला, मीडिया और स्वराज के लिए संघर्ष' विषय पर विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि महिलाओं की भूमिका 1860 के दशक में उभरकर सामने आनी शुरू हुई। महिलाओं की लड़ाई आंतरिक भी थी, उनके समक्ष शिक्षा, विधवा विवाह, गिरमिटिया आदि जैसी कई समस्याएँ थीं और इन पर उनके लेखन से महिलाओं का परिप्रेक्ष्य सामने आया। महिला पत्रकारिता की शुरूआत 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध से हुई। महिलाओं की जागृति में ब्रिटिश सरकार की कोई भूमिका नहीं रही, यह उनके स्व जागरण का परिणाम थी। सत्र का संचालन आईआईएमसी में सह प्राध्यापक और संगोष्ठी की सह संयोजक डॉ. मीता उज्जैन ने किया और धन्यवाद ज्ञापन संगोष्ठी के संयोजक प्रो. प्रमोद कुमार ने प्रस्तुत किया।

पाँचवाँ तकनीकी सत्र

पाँचवें तकनीकी सत्र में 'स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान औपनिवेशिक विमर्श और मीडिया' विषय पर जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के सेंटर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज के अध्यक्ष प्रो. हीरामन तिवारी ने कहा कि औपनिवेशिक शासक भारत की भौतिक संपत्ति ही नहीं, बल्कि बौद्धिक संपत्ति पर भी कब्जा करना चाहते थे। भारत की बौद्धिक संपदा उस समय संस्कृत साहित्य में उपलब्ध थी, इसलिए पहले उन्होंने संस्कृत पर प्रहार किए और धीरे-धीरे अँग्रेजी का प्रसार आरंभ किया। अँग्रेजी के माध्यम से उन्होंने भारत के एक वर्ग के मस्तिष्क को इतना दूषित कर दिया कि वे भारत से ही नफरत करने लगे। भारतीयों के मस्तिष्क को दूषित करने के लिए उन्होंने अनेक तरह के झूठे विमर्श भी गढ़े और उन्हें स्थापित करने के लिए उसी प्रकार के कथित विद्वान भी खड़े किए। उसी का परिणाम था कि उस समय अँग्रेज शासन का समर्थन करने वाले बहुत लोग थे।

हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय के कश्मीर अध्ययन केंद्र में सहायक प्राध्यापक डॉ. जयप्रकाश सिंह ने स्वतंत्रता संग्राम के भ्रामक औपनिवेशिक विमर्शों का उदहारण देते हुए कहा कि यह कहना कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अहिंसक था पूरी तरह गलत है। हम स्वतंत्रता संग्राम को अहिंसक कहकर कम-से-कम दो अवसरों पर इस संग्राम में हुई सैन्य कार्रवाई को नजरअंदाज कर देते हैं। पहली बार 1857 और दूसरी बार आजाद हिंद फौज के योगदान को स्वतंत्रता संग्राम से अलग नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार दूसरा भ्रामक विमर्श खड़ा किया गया कि 'इंडिया इज अ नेशन इन द मेकिंग' यानी भारत कोई राष्ट्र नहीं था और काफिले आते गए हिंदोस्ताँ बनता गया। ऐसा कहकर हम भारत के हजारों साल के गौरवशाली अतीत को झुठला देते हैं। सवाल यह है कि आखिर यदि ये

बायें से प्रो. हीरामन तिवारी, डॉ. शाहिद अली, डॉ. जयप्रकाश, प्रो. सुनेत्रा सेन नारायण एवं डॉ. सौरभ मिश्र

बायें से प्रो. शाश्वती गोस्वामी, प्रो. एहतेशाम अहमद खान, प्रो. रवि टेकचंदानी एवं प्रो. आनंद प्रधान

काफिले आए भी तो तिब्बत की तरफ क्यों नहीं गए? इसका मतलब है कि भारत में उस समय कुछ था, जिसे प्राप्त करने की चाह में वे काफिले यहाँ आए। अँग्रेजों की 'फूट डालो राज करो' की नीति सिर्फ हिंदुओं और मुसलमानों को आपस में लड़ाने तक सीमित नहीं थी, बल्कि उस नीति के माध्यम से अँग्रेज सरकार ने हिंदुओं में भी तमाम तरह के विभेद पैदा किए। कुशाभाऊ ठाकरे पत्रकारिता एवं जनसंचार विश्वविद्यालय, रायपुर में पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के प्रमुख डॉ. शाहिद अली ने कहा भारतीय जन संचार संस्थान और आईसीएचआर ने मिलकर बहुत ही महत्वपूर्ण विषय पर जो संवाद का सिलसिला शुरू किया है उसे आगे बढ़ाया जाना चाहिए और ऐसे विमर्श देशभर में आयोजित होने चाहिए। साथ ही इन विषयों पर गंभीर शोध और प्रबोधन की जरूरत है। इस सत्र का संचालन आईसीएचआर के उपनिदेशक डॉ. सौरभ मिश्र ने किया और धन्यवाद आईआईएमसी में आरटीवी विभाग की प्रो. सुनेत्रा सेन नारायण ने किया।

छठा तकनीकी सत्र

छठा सत्र 'प्रेस और भारत विभाजन' विषय पर केंद्रित था। इस सत्र में मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद के स्कूल ऑफ जर्नलिज्म एंड मास कम्युनिकेशन के डीन प्रो. एहतेशाम अहमद खान ने 'उर्दू मीडिया और स्वाधीनता संग्राम' विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि उर्दू पत्रकारिता की शुरुआत अखबारों के माध्यम से हुई और पहला अखबार 'जामे जहाँ नुमा' था, जो 1822 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। 'इंकलाब जिंदाबाद' का नारा उर्दू अखबारों से ही निकला। उर्दू मीडिया की जड़ों में धर्मनिरपेक्षता की छाप देखने को मिलती है। ज्यादातर उर्दू अखबार गैर-मुस्लिमों ने निकाले। उर्दू अखबारों का फोकस राजनीति और समाज सुधार था। उन दिनों उर्दू अखबारों और पत्रकारों को कारावास, जुर्माने और जब्ती जैसी कार्रवाइयों का सामना करना पड़ा। इसी सत्र में राष्ट्रीय सिंधी भाषा संवर्धन परिषद् के निदेशक प्रो. रवि टेकचंदानी ने 'स्वाधीनता संग्राम में सिंधियों की भूमिका' विषय पर कहा कि 1843 में चार्ल्स नेपियर के सिंध पर कब्जा करने के बाद 1844 में कराची से पहला 'कराची एडवरटाइजर' अखबार निकाला था। 1858 में कराची से 'फवाइदुल' साप्ताहिक अखबार छपना शुरू हुआ, जिसमें फारसी के साथ-साथ सिंधी में भी रचनाएँ और खबरें छपती थीं। प्रो. टेकचंदानी ने कहा कि तब से देश के स्वाधीन होने तक 89 वर्षों में सिंधी पत्रकारिता ने जिस वीरता से अँग्रेजों के दमन चक्र का मुकाबला किया, पत्रकारिता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जाएगा। सत्र का संचालन आईआईएमसी के हिंदी पत्रकारिता विभाग के पाठ्यक्रम निदेशक प्रो. आनंद प्रधान ने किया और धन्यवाद आईआईएमसी में रिसर्च विभाग की अध्यक्ष प्रो. शाश्वती गोस्वामी ने किया।

समापन सत्र

संगोष्ठी का समापन 28 अप्रैल, 2022 को हुआ। समापन सत्र को आईसीएचआर के सदस्य सचिव प्रो. कुमार रत्नम ने मुख्य अतिथि के तौर पर संबोधित करते हुए कहा कि भारत का स्वतंत्रता आंदोलन सौ-दो सौ साल पुराना नहीं है, बल्कि वह उसी दिन प्रारंभ हो गया था जब भारत पर विदेशी आक्रमण शुरू हुए। उन आक्रमणों के प्रतिकार और स्वत्व के जागरण में शहीद हुए ऐसे अनेक चेहरे हैं, जिनका नाम इतिहास में दर्ज नहीं है। ऐसे चेहरों के बारे में जानकारी देश के हर हिस्से में मौजूद है। आजादी के अमृत महोत्सव के दौरान ऐसे गुमनाम चेहरों को सामने लाने के लिए मीडिया को सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। इस प्रयास में मीडिया को उन गुमनाम पत्रकारों के प्रयासों से भी देश को अवगत कराना चाहिए, जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान स्वत्व के जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने कहा कि आज इतिहास की रिक्तताएँ और विकृतियाँ समाप्त करने की जरूरत है। जब हम स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास पर नजर डालते हैं, तो लगता है कि केवल एक ही परिवार या एक ही संस्था ने आजादी की लड़ाई लड़ी, जबकि उस दौरान दो-ढाई सौ से अधिक संस्थाओं को प्रतिबंधित किया गया था। ऐसे विषयों को निकाल कर जब हम अमृत के रूप में आजादी के सौ वर्षों का उत्सव मनाएँगे, तो इतिहास की यह रिक्तता समाप्त होनी चाहिए। भारत में इतिहास लेखन की समृद्ध परंपरा रही है। यह कहना सरासर गलत होगा कि भारत में इतिहास बोध नहीं है।

वरिष्ठ पत्रकार श्री उमेश उपाध्याय ने पश्चिमी देशों की मीडिया के औपनिवेशिक स्वरूप को समझने की जरूरत पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि पश्चिमी मीडिया उतना ही साम्राज्यवादी, उपनिवेशवादी और विस्तारवादी मानसिकता में पला-बढ़ा है, जितना साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद। भले ही सोशल मीडिया के आने के बाद 'कंटेंट' का लोकतंत्रीकरण हुआ है, परंतु कंटेंट के प्रसार और वितरण का बढ़ता केंद्रीयकरण लोकतंत्र के लिए बहुत खतरनाक है।

समापन सत्र में उपस्थित बायें से प्रो. गोविंद सिंह, प्रो. संजय द्विवेदी, श्री उमेश उपाध्याय, प्रो. कुमार रत्नम, श्री आशीष गोयल, प्रो. प्रमोद कुमार व डॉ. मीता उज्जैन

प्रो. संजय द्विवदी ने कहा कि भारतीय जन संचार संस्थान अमृत काल में मीडिया से जुड़े विभिन्न आयामों पर शोध करेगा। उन्होंने कहा कि इतिहास के पुनःपाठ और उसे सत्यपरकता के साथ सामने लाने की आवश्यकता है। साथ ही स्वाधीनता आंदोलन से जुड़े अनाम योद्धाओं पर भी काम होना चाहिए। इस सत्र का संचालन आईआईएमसी में सह प्राध्यापक डॉ. रचना शर्मा ने किया। आईआईएमसी में अधिष्ठाता छात्र कल्याण और संगोष्ठी के संयोजक प्रो. प्रमोद कुमार ने सभी वक्ताओं, प्रतिभागियों, शोधार्थियों सहित संगोष्ठी के आयोजन में सहयोग करने वाले आईआईएमसी और आईसीएचआर के सहयोगिओं का आभार व्यक्त किया। उन्होंने विशेष रूप से आर्थिक सहयोग हेतु और संगोष्ठी के दौरान प्रदर्शनी के आयोजन हेतु आईसीएचआर का विशेष आभार व्यक्त किया।

समापन सत्र को संबोधित करते हुए प्रो. कुमार रत्नम

शोध पत्रों की प्रस्तुति

संगोष्ठी में कुल 85 शोध पत्र प्रस्तुत किए गए। शोध पत्र प्रस्तुतीकरण के लिए संगोष्ठी के दोनों दिन सामानांतर सत्रों का संचालन किया गया। प्रथम दिन 27 अप्रैल को संगोष्ठी में आए शोधार्थियों ने शोध पत्र प्रस्तुत किए। दूसरे दिन 28 अप्रैल को उन शोधार्थियों ने ऑनलाइन माध्यम से अपने शोधपत्र प्रस्तुत किए जो संगोष्ठी में भौतिक रूप से शामिल नहीं हो सके। संगोष्ठी के मूल विषय पर केंद्रित अनेक उपविषयों पर शोधपत्र आमंत्रित किए गए थे। कुछ शोध पत्र बहुत ही सारगर्भित जानकारी से युक्त आए हैं।

प्रदर्शनी का अवलोकन करते हुए प्रो. शातिश्री पंडित एवं प्रो. संजय द्विवेदी

भारत के स्वाधीनता संग्राम पर आईसीएचआर द्वारा निर्मित प्रदर्शनी

संगोष्ठी के दौरान आईसीएचआर के द्वारा 'भारत के स्वाधीनता संग्राम की 1757 से 1927 तक की गाथा' को समग्रता के साथ दर्शाने वाली एक प्रदर्शनी लगाई गई। भारत की आजादी की दास्तान पीड़ा, बलिदान और अँग्रेजों के दमन चक्र की दास्तान है। इस संग्राम में क्रांतिकारियों, आदिवासियों, किसानों, ब्रिटिश सेना में कार्यरत भारतीय सैनिकों, आईएनए आदि सभी का योगदान रहा। इस प्रदर्शनी में प्रख्यात स्वाधीनता सेनानियों और महत्वपूर्ण घटनाओं के अतिरिक्त अनेक गुमनाम शहीदों, स्थानीय विद्रोहों, भूमिगत संगठनों से संबंधित जानकारी और अनेक दुर्लभ चित्र भी प्रदर्शित किए गए।

संगोष्ठी का सार

संगोष्ठी में सभी वक्ताओं ने जोर देकर कहा कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में जो विकृतियाँ पैदा की गई हैं, उन्हें तत्काल सही तथ्यों के साथ दुरुस्त किया जाना चाहिए, ताकि देश की वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों को सही इतिहास का पता चल सके। उन्होंने कहा कि खासतौर से इतिहास के उन गुमनाम चेहरों, घटनाओं और स्थानों के बारे में जानकारी अवश्य एकत्र की जानी चाहिए, जिन्हें इतिहास में सही स्थान नहीं मिल पाया है। इस बात पर भी जोर दिया गया कि आजादी के अमृत महोत्सव के दौरान कुछ गुणवत्तायुक्त शोध पत्र और पुस्तकें तैयार की जानी चाहिए जो भारतीय मीडिया के विभिन्न पहलुओं को उजागर करें। कुछ वक्ताओं ने इस बात का भी आग्रह किया कि स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अँग्रेजी और उर्दू मीडिया की भूमिका पर विशेष शोध किया जाना चाहिए। कुछ वक्ताओं ने इन सभी पहलुओं को समेटे हुए कुछ वीडियो कंटेंट तैयार करने का भी आग्रह किया, ताकि इस संबंध में अधिक से अधिक लोगों को जागरूक किया जा सके।

रीता कपूर, परामर्शदाता राजभाषा, आईआईएमसी

संचार माध्यम | खंड 34(2) : 99-104, जुलाई-दिसम्बर 2022
आईएसएसएन: 2321-2608

आईआईएमसी फिल्म फेस्टिवल 2022

समाज के सपनों के साथ संवाद करने का माध्यम हैं फिल्में: प्रो. द्विवेदी

आजादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर भारतीय जन संचार संस्थान एवं फिल्म समारोह निदेशालय, भारत सरकार, के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक 4 से 6 मई, 2022 तक तीन दिवसीय 'आईआईएमसी फिल्म फेस्टिवल 2022' एवं 'राष्ट्रीय लघु फिल्म निर्माण प्रतियोगिता' का आयोजन किया गया। दिनांक 4 मई को समारोह का शुभारंभ करते हुए आईआईएमसी के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि फिल्में समाज के सपनों के साथ संवाद करने वाला माध्यम हैं। उन्होंने कहा कि फिल्मों में यह ताकत होती है कि लोग उन्हें देखने के लिए अपने घरों से निकलकर थिएटर जाते हैं। इसलिए फिल्मों को सराहा जाना भी बहुत आवश्यक होता है। इस अवसर पर राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय (एनएसडी) के निदेशक प्रो. रमेश चंद्र गौड़, विख्यात रंगकर्मी एवं लेखिका श्रीमती मालविका जोशी, प्रसिद्ध फिल्म समीक्षक एवं दैनिक जागरण के एसोसिएट एडिटर श्री अनंत विजय एवं फिल्म फेस्टिवल की संयोजक प्रो. संगीता प्रणवेन्द्र भी उपस्थित थीं। फेस्टिवल की थीम 'स्पिरिट ऑफ इंडिया' रखी गई है। राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन और जल शक्ति मंत्रालय भी इस आयोजन का हिस्सा थे।

फिल्मों को संरक्षित करना बेहद जरूरी: प्रो. गौड़

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक प्रो. रमेश चंद्र गौड़ ने कहा कि फिल्मों को संरक्षित करने और सहेजे जाने की आवश्यकता है, क्योंकि ठीक से संरक्षित नहीं करने के कारण 1940 के दशक की कई फिल्में आज नष्ट हो चुकी हैं। उन्होंने कहा कि हमने इन्हें संरक्षित करने में प्रौद्योगिकी का उपयोग करना नहीं सीखा। अनेक लोगों ने बहुत परिश्रम से बेहद रचनात्मक और गुणवत्ता के कार्य किए हैं, लेकिन उनके कार्य को संरक्षित करने की कोई नीति या प्रयास दिखाई नहीं देता। प्रो. गौड़ ने कहा कि फिल्में हमारे इतिहास, परंपरा और संस्कृति को संरक्षित करने तथा समकालीन दौर के समाज के प्रत्येक पहलू को प्रस्तुत करने का माध्यम होती हैं। ऐसे में फिल्में केवल मनोरंजन का ही माध्यम नहीं रह जातीं, बल्कि अकादमिक एवं अनुसंधान गतिविधियों का स्रोत भी बन जाती हैं। उन्होंने कहा कि फिल्मों के प्रचार-प्रसार की ही नहीं, बल्कि इस सारी सामग्री को डिजिटली आर्काइव करने की जरुरत है, ताकि इसे अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचाया जा सके।

श्रीमती शर्मिला टैगोर का स्वागत करते हुए प्रो. संगीता प्रणवेंद्र

न्यूनतम संसाधनों के साथ भी बन सकती हैं फिल्में: मालविका

(बायें से) डॉ. रमेश गौड, प्रो. संजय द्विवेदी, श्री अनंत विजय और श्रीमती मालविका जोशी फिल्म फेस्टीवल का उद्घाटन करते हुए

विख्यात रंगकर्मी श्रीमती मालविका जोशी ने कहा कि फिल्में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं। फिल्मों के माध्यम से जनजीवन के पास पहुँचना संभव है। उन्होंने कहा कि आज बहुत ही न्यूनतम संसाधनों के साथ भी फिल्में बनाई जा सकती हैं। इस अवसर पर कोविड काल के दौरान बनाई गई उनकी दो लघु फिल्में 'बिना आवाज की ताली' और 'शिउली' प्रदर्शित की गईं।

फिल्मों को गंभीरता से लेना आवश्यक: अनंत विजय

समारोह को संबोधित करते हुए वरिष्ठ पत्रकार श्री अनंत विजय ने कहा कि अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होने के बावजूद फिल्मों को गंभीरता से नहीं लिया जाता। उन्होंने कहा कि फिल्मों का प्रभाव इस बात से समझा जा सकता है कि 1950 में वी शांताराम की फिल्म 'दहेज' के प्रदर्शन के बाद बिहार में दहेज विरोधी कानून पारित किया गया। फिल्मों में काल विभाजन का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि आजादी से पहले बनी फिल्मों में भक्तिकाल और आजादी के बाद की फिल्मों में समाज सुधार का काल आया। उन्होंने कहा कि फिल्मों में सभी तरह के दृष्टिकोणों को दिखाया जाना चाहिए। किसी एक दृष्टिकोण या सोच को दिखाने से सामाजिक असंतुलन पैदा होता है। उन्होंने भारतीय जन संचार संस्थान में फिल्म सोसायटी बनाने का सुझाव भी दिया।

सिनेमा ने तोड़े महिलाओं से जुड़े मिथक: शर्मिला टैगोर

पद्म भूषण से सम्मानित मशहूर फिल्म अभिनेत्री श्रीमती शर्मिला टैगोर ने कहा कि अब दर्शक सिनेमा के पास नहीं जाता, बल्कि सिनेमा स्वयं दर्शक के पास आता है। अब कई ऐसे प्लेटफॉर्म हैं, जहाँ दर्शक घर बैठे सिनेमा का लुत्फ उठाते हैं। श्रीमती शर्मिला टैगोर ने कहा कि समय के साथ न केवल फिल्मों के प्रचार-प्रसार और वितरण का कार्य ज्यादा व्यवस्थित हुआ है, बल्कि फिल्म निर्माण से जुड़े हर कार्य में बदलाव आ चुका है। यह पूरी तरह व्यावसायिक और 'गुड प्लेस टू वर्क' बन चुका है। उन्होंने कहा

कि सिनेमा में महिलाओं की भागीदारी आज बहुत बढ़ चुकी है। वे कैमरे के सामने अपने अभिनय का कौशल दिखाने के साथ-साथ कैमरे के पीछे निर्देशक, सिनेमेटोग्राफर, कोरियोग्राफर, टेक्नीशियन आदि जैसी भूमिकाएँ भी बखूबी निभा रही हैं। उन्होंने कहा कि महिलाओं से जुड़े मिथक भी टूट रहे हैं। आजकल माँ बेटी को केवल यही नहीं कहती कि 'खूबसूरत दिख रही हो', बल्कि 'स्मार्ट और कॉन्फिडेंट दिख रही हो' भी बोलने लगी हैं।

'सत्य' और 'तथ्य' से बनी 'द कश्मीर फाइल्स': विवेक अग्निहोत्री

श्री विवेक अग्निहोत्री को सम्मानित करते हुए अधिष्ठाता छात्र कल्याण प्रो. प्रमोद कुमार

प्रसिद्ध फिल्म निर्माता एवं निर्देशक तथा आईआईएमसी के पूर्व छात्र श्री विवेक अग्निहोत्री ने कहा कि फिल्मों में 'सत्य' के साथ 'तथ्य' की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। इन दोनों के मिलने से ही 'द कश्मीर फाइल्स' जैसी फिल्म का निर्माण होता है। आईआईएमसी के अपने पुराने दिनों को याद करते हुए श्री अग्निहोत्री ने बताया कि मीडिया के विद्यार्थियों को चाहिए कि वे किसी को प्रभावित करने की कोशिश न करें, बल्कि खुद को अभिव्यक्त करना सीखें। हम केवल अपनी मानसिकता के कारण खुद को सीमित करते हैं, जबकि ईश्वर ने प्रत्येक इंसान को किसी-न-किसी प्रतिभा से नवाजा है। इसलिए हमेशा अपने नजरिये पर यकीन करना चाहिए और अपने दिल की आवाज सुननी चाहिए। यह मूलमंत्र मुझे आईआईएमसी से ही मिला है।

आईआईएमसी हॉल में उपस्थित छात्रों के साथ सेल्फी लेते हुए श्री विवेक अग्निहोत्री

इससे पूर्व समापन समारोह को संबोधित करते हुए सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय की अपर सचिव सुश्री नीरजा शेखर ने कहा कि हमारी प्राचीन सभ्यता, महाकाव्यों और समृद्ध लोक परंपरा के आधार पर हम बहुत गर्व के साथ यह बात कह सकते हैं कि भारत विश्व का 'कंटेंट हब' है। उन्होंने कहा कि भारत में जिस प्रकार की कहानियाँ मिलती हैं उनमें बहुत विविधता है और हमारे पास ढेरों ऐसी कहानियाँ हैं, जिसे दुनिया ने कभी नहीं सुना। सुश्री शेखर ने कहा कि विद्यार्थियों द्वारा बनाई गई फिल्मों का उन्हें इंतजार रहेगा और उम्मीद है कि उनका कहीं-न-कहीं उपयोग संभव हो सकेगा। उन्होंने पुरस्कार विजेता फिल्मों का हौंसला बढ़ाते हुए कहा कि वे अंतरराष्ट्रीय फिल्म महोत्सव एवं अंतरराष्ट्रीय बाल फिल्म महोत्सव से जुड़ने और उपलब्ध अवसरों का लाभ उठाने का प्रयास करें। तीन दिवसीय फेस्टिवल में अभिनेता-निर्माता श्री आशीष शर्मा और श्रीमती अर्चना टी. शर्मा, सुप्रसिद्ध वन्यजीव फिल्म निर्माता श्री एस. नल्लामुथु, कांस फिल्म फेस्टिवल में AngenieuxExcell Lens Promising Cinematographer Award अपने नाम कर चुकी सुप्रसिद्ध सिनेमैटोग्राफर सुश्री मधुरा पालित और श्री राजीव प्रकाश ने भी हिस्सा लिया।

इन फिल्मों की हुई स्क्रीनिंग

सुश्री नीरजा शेखर को प्रतीक चिह्न भेंट करते हुए प्रो. संगीता प्रणवेंद्र

फेस्टिवल के पहले दिन सत्यजीत रे की फिल्म 'द इनर आई', सुश्री मधुरा पालित की फिल्म 'आतोर', श्री राजीव प्रकाश की फिल्म 'वेद' के अलावा 'ड्रामा क्वींस', 'इन्वेस्टिंग लाइफ' और 'चारण अत्वा' जैसी फिल्में प्रदर्शित की गई। समारोह के दूसरे दिन श्री एस. नल्लामुथु की फिल्म 'मछली', श्री अमित गोस्वामी की 'द लास्ट ट्राइब', श्री आशीष शर्मा और श्रीमती अर्चना टी. शर्मा की 'खेजड़ी', श्री नकुल देव की 'बिफोर आई डाई' तथा 'एलिफेंट्स डू रिमेंबर' जैसी फिल्मों की स्क्रीनिंग की गई।

इन्हें मिला पुरस्कार

इस अवसर पर 'राष्ट्रीय लघु फिल्म निर्माण प्रतियोगिता' के विजेताओं को भी सम्मानित किया गया। प्रथम पुरस्कार करम सिटी कॉलेज की 'सेरेंगसिया 1837 लॉस्ट इन द वैली', दूसरा पुरस्कार 'कासाद्रु : हाइलाइट्स द प्लाइट ऑफ मैनुअल स्कैवेंजर्स', लोएला कॉलेज और तीसरा पुरस्कार 'डिकेड ऑफ डस्क', आईआईएमसी दिल्ली ने जीता। क्रिटिक्स च्वाइस पुरस्कार 'द स्कूल ऑफ नेचर', आईआईएमसी अमरावती और 'बुंदेली बिन्नु', आईआईएमसी दिल्ली को प्रदान किया गया।

आईआईएमसी का 54वां दीक्षांत समारोह संपन्न

नई दिल्ली, 6 जून। भारतीय जन संचार संस्थान (आईआईएमसी) के 54वें दीक्षांत समारोह को संबोधित करते हुए राज्यसभा के उपसभापति श्री हरिवंश नारायण सिंह ने कहा कि नॉलेज ऐरा में शिक्षा पर सभी का हक है। शिक्षा के माध्यम से आप न केवल अपने जीवन में परिवर्तन ला सकते हैं, बल्कि समाज को भी नई दिशा दे सकते हैं। इस अवसर पर सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के सचिव एवं आईआईएमसी के चेयरमैन श्री अपूर्व चंद्रा, संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी एवं डीन (अकादमिक) प्रो. गोविंद सिंह भी उपस्थित थे। दीक्षांत समारोह में आईआईएमसी के 6 परिसरों में संचालित होने वाले 8 पाठ्यक्रमों के वर्ष 2020-21 बैच के लगभग 400 विद्यार्थियों को पीजी डिप्लोमा सर्टिफिकेट एवं 32 विद्यार्थियों को अवॉर्ड प्रदान किये गए।

दीक्षांत भाषण प्रस्तुत करते हुए श्री हरिवंश नारायण सिंह

समारोह के मुख्य अतिथि के तौर विचार व्यक्त करते हुए श्री हरिवंश नारायण सिंह ने कहा कि जनसंचार के शिक्षण और प्रशिक्षण के क्षेत्र में आईआईएमसी की पहचान 'सेंटर ऑफ एक्सीलेंस' के तौर पर है। भारतीय पत्रकारिता में यहां के विद्यार्थियों को महत्वपूर्ण योगदान है। देश ही नहीं, बल्कि दुनिया की जरुरतों के हिसाब से आईआईएमसी अपने विद्यार्थियों को तैयार करता है। इसके लिए संस्थान के सभी प्राध्यापक, अधिकारी एवं कर्मचारी बधाई के पात्र हैं।

राज्यसभा के उपसभापति ने कहा कि आज आप सभी विद्यार्थी जीवन में नया कदम रखने जा रहे हैं। आज आपको सोचना चाहिए कि आप में किस काम के लिए 'पैशन' है। अगर आपके अंदर काम के प्रति मोहब्बत, समर्पण और 'पैशन' नहीं है, तो आप अपने प्रोफेशन में नई लकीर नहीं खींच सकते। उन्होंन कहा कि जीवन में विफलताएं आएंगी, लेकिन हर विफलता सफलता के लिए रास्ता खोलती है। आज देश में युवाओं के द्वारा चलाए जा रहे 70 हजार स्टार्टअप हैं। हमारे देश के युवा 'जॉब सीकर' से 'जॉब प्रोवाइडर' बन रहे हैं।

श्री हरिवंश नारायण सिंह के अनुसार मीडिया में भी स्टार्टअप की जरुरत है। भारत में केंद्र सरकार की 315 योजनाओं और राज्य सरकारों की 500 योजनाओं से लगभग 2 लाख करोड़ रुपए की बचत हो रही है। मीडिया स्टार्टअप के जरिए युवा इस तरह की विभिन्न योजनाओं से जुड़े तथ्यों को जनता के सामने ला सकते हैं। सरकारी योजनाओं को सरल और सहज शब्दों में लोगों तक पहुंचाने का काम कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि कोरोना के दौर में भारत ने मेडिकल हब के रूप में अपनी पहचान बनाई है। कोराना ने हमें आपदा में अवसर तलाशने का मौका दिया और टीके से लेकर वेंटिलेटर तक आत्मनिर्भर बनाया।

युवाओं को भविष्य के लिए सीख देते हुए उपसभापति ने कहा कि जिंदगी में जीतना ही नहीं, हारना भी जरूरी है। असफलता का आनंद लेना सीखें। परीक्षा में नकल करके पास होने से बेहतर है, फेल हो जाना। उन्होंने कहा कि आज मीडिया के सामने साख की चुनौती है। नौकरी के बाजार में जो आपको सबसे ज्यादा पैसे दे, उसके लिए काम कीजिए, लेकिन अपनी आत्मा गिरवी मत रखिए। अगर आप ईमानदारी से अपना कार्य करेंगे, तो मीडिया की विश्वसनीयता बनी रहेगी। श्री हरिवंश नारायण सिंह ने कहा कि मुझे उम्मीद है कि आने वाले दिनों में आईआईएमसी के विद्यार्थी समाज और देश में व्याप्त समस्याओं के समाधान में अपना अमूल्य योगदान देंगे।

इस अवसर पर संस्थान के महानिदेशक प्रो. संजय द्विवेदी ने कहा कि आईआईएमसी हिंदी पत्रकारिता, अंग्रेजी पत्रकारिता, विज्ञापन एवं जनसंपर्क, रेडियो एवं टेलीविजन, ओड़िया, मराठी, मलयालम और उर्दू पत्रकारिता में पीजी डिप्लोमा पाठ्यक्रम संचालित करता है। इस वर्ष आईआईएमसी डिजिटल मीडिया में पीजी डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी शुरू करने जा रहा है। उन्होंने कहा कि संस्थान अपने प्रत्येक विद्यार्थी को हर वह अवसर सुलभ कराने के लिए प्रतिबद्ध है, जो उसके सर्वांगीण विकास के लिए जरूरी हैं। दीक्षांत समारोह में संस्थान के क्षेत्रीय केंद्रों के निदेशकों सहित समस्त प्राध्यापकों, अधिकारियों, कर्मचारियों एवं वर्तमान बैच के विद्यार्थियों ने भी हिस्सा लिया।

54वें दीक्षांत समारोह में उपस्थित सभी विभागों के पदक विजेता

श्री अपूर्व चंद्रा का स्वागत करते हुए प्रो. संजय द्विवेदी

INDIA TODAY GROUP
OPEN MAGAZINE THE WEEK
OUTLOOK THE WEEKLY NEWSMAGAZINE

हम लगातार

नंबर 1

मीडिया शिक्षण संस्थान

टीम आईआईएमसी को

बधाई

भारतीय जन संचार संस्थान की अर्धवार्षिक शोध पत्रिका

संचार माध्यम

गुणवत्तायुक्त संचार शोध को समर्पित 42 वर्ष

वर्ष 1980 में प्रकाशित संचार माध्यम का प्रथम अंक

'संचार माध्यम' (IISN: 2321-2608) भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली की यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन सन 1980 में आरंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध-पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। भारतीय जन संचार संस्थान के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है।

अधिक जानकारी के लिए संपर्क सूत्र:

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

संपादक, संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

अरुणा आसफ़ अली मार्ग, जे. एन. यू. नया परिसर, नई दिल्ली-110067

ईमेल: sancharmadhyamiimc@gmail.com, drpk.iimc@gmail.com

वेबसाइट: www.iimc.nic.in

संचार माध्यम

'संचार माध्यम' (ISSN 2321–2608) भारतीय जन संचार संस्थान (नई दिल्ली) की संचार, मीडिया, पत्रकारिता और उससे संबंधित मुद्दों पर केंद्रित हिंदी में प्रकाशित होने वाली अग्रणी 'पीयर रिव्यूड' और यूजीसी–केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में प्रारंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध–पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक शोध के उच्चतर मूल्यों का पालन करते हुए 'संचार माध्यम' में प्रकाशन से पूर्व सभी शोध पत्रों/आलेखों की बहुस्तरीय निष्पक्ष समीक्षा (ब्लाइंड पीयर रिव्यू) कराई जाती है। भारतीय जन संचार संस्थान के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है। पत्रिका का प्रकाशन अभी छमाही हो रहा है, परंतु शीघ्र ही इसका प्रकाशन पुनः तिमाही करने की योजना है।

'संचार माध्यम' में निम्नलिखित श्रेणी के शोध–पत्र प्रकाशित किए जाते हैं :

1. **मौलिक शोध पर आधारित शोध–पत्र :** इस प्रकार के शोध–पत्र की शब्द सीमा 4000 से 5000 शब्द होनी चाहिए। जो डबल स्पेस में टाइप किया गया हो। साथ ही अधिकतम 250 शब्दों में शोध सारांश भी शामिल होना चाहिए। शोध–पत्र सिर्फ़ यूनिकोड फॉण्ट में ही टाइप होना चाहिए और उसमें संबंधित शोध की पूर्ण तसवीर दृष्टिगोचर होनी चाहिए। शोध–पत्र से जुड़े छायाचित्र/ग्राफ़/टेबल, यदि कोई हों, तो वे भी अपनी मूल प्रति के साथ (एक्सेल फाइल इत्यादि) संलग्न किए जाने चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि छायाचित्रों का रिजॉल्यूशन उच्च स्तर का हो, ताकि प्रिंटिंग के समय गुणवत्ता प्रभवित न हो। पीडीएफ़ फ़ाइल में शोध पत्र स्वीकार्य नहीं होंगे।
2. **लघु शोध आधारित शोध–पत्र :** लघु शोध आधारित आलेख लगभग 2000 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए, यानी लगभग 4–5 पृष्ठ, डबल स्पेस में टाइप किया गया हो। यह भी यूनिकोड फॉण्ट में ही टंकित होना चाहिए। ऐसे शोध–पत्र भी पूर्ण हो चुके शोध/अध्ययनों पर ही आधारित होने चाहिए। इसमें ऐसे तथ्यपूर्ण शोध–पत्र भी शामिल हो सकते हैं, जिनका संबंध किसी नवीन तकनीक के विकास से है। ऐसे शोध–पत्रों का शोध सारांश 80 से 100 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए।
3. **शोध समीक्षा :** इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले समीक्षात्मक आलेखों में प्रस्तावना, साहित्य समीक्षा, शोध परिणाम आदि के अलावा संबंधित शोध में मौजूद कमियों और उन कमियों के सुधार हेतु सुझावों का भी समावेश होना चाहिए, ताकि भविष्य में अन्य शोधकर्ता उन कमियों को दूर करने की दिशा में प्रयास कर सकें।
4. **पुस्तक समीक्षा :** 'संचार माध्यम' में पत्रकारिता और जनसंचार पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा (शब्द सीमा : 1500) भी प्रकाशित की जाती है। अन्य विषयों जैसे सामाजिक ज्ञान, सामाजिक कार्य, एंथ्रोपोलोजी, कला आदि पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा भी भेजी जा सकती है बशर्ते उनका शीर्षक मीडिया अध्ययन से जुड़ा हो या उनकी सामग्री में कम–से–कम 40 प्रतिशत अध्याय मीडिया, जनसंचार या पत्रकारिता से जुड़े हों। पुस्तक समीक्षाएँ उनके पूर्ण विवरण जैसे प्रकाशक, वर्ष, संस्करण, पृष्ठ संख्या, मूल्य व पुस्तक के छायाचित्र के साथ भेजी जानी चाहिए।

प्रकाशन नैतिकता और साहित्यिक चोरी

- संचार माध्यम के लिए जो शोध आलेख भेजे जाएँ उन्हें अन्य पत्रिकाओं को नहीं भेजना चाहिए और न ही शोध आलेखों को पूरी तरह से या आंशिक रूप से उसी सामग्री के साथ किसी अन्य पत्रिका में प्रकाशित किया जाना चाहिए। लेखकों को सुनिश्चित करना चाहिए कि 'संचार माध्यम' में प्रकाशन के लिए भेजे जाने वाले आलेख किसी भी रूप में या मिलती–जुलती सामग्री के रूप में पहले प्रकाशित न हुए हों।
- किसी भी तरह की साहित्यिक चोरी किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं है। आलेख के साथ मूल कार्य का घोषणापत्र प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य है, जिसके बिना आलेखों पर कोई विचार नहीं किया जाएगा। लेखकों को आलेखों की प्रामाणिकता सुनिश्चित करनी चाहिए। कोई भी अनैतिक व्यवहार (साहित्यिक चोरी, गलत डेटा आदि) किसी भी स्तर पर (पियर रिव्यू या संपादन स्तर पर भी) आलेख की अस्वीकृति का कारण बन सकता है। किसी भी समय साहित्यिक चोरी और तथ्यों निष्कर्षों के स्वनिर्मित आदि पाए जाने पर प्रकाशित आलेख वापस लिए जा सकते हैं।

बहुस्तरीय समीक्षा (पियर रिव्यू) प्रक्रिया

'संचार माध्यम' में प्रकाशनार्थ प्राप्त सभी आलेख दोहरी या बहुस्तरीय निष्पक्ष समीक्षा (डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यू) प्रक्रिया के अधीन हैं। शोध आलेखों को विशेषज्ञों के पास बिना उनके लेखक/लेखकों का नाम बताए समीक्षा के लिए भेजा जाता है। उनकी टिप्पणी, सुझावों और अनुशंसा के आधार पर ही शोध–पत्रों के प्रकाशन का निर्णय लिया जाता है। संपादन–परिषद् के संतुष्ट होने पर ही शोध–पत्र प्रकाशित किया जाता है। इस प्रक्रिया में आमतौर पर 4–6 सप्ताह लगते हैं। समीक्षा प्रक्रिया पाँच चरणों पर आधारित है:–

क. जस के तस स्वीकार करने लायक,

ख. मामूली सुधार की आवश्यकता,
ग. मध्यम सुधार की आवश्यकता,
घ. अधिक सुधार की आवश्यकता
ङ. अस्वीकृत। 'संचार माध्यम' तीव्र समीक्षा प्रक्रिया का पालन नहीं करता है।

लेखों का संपादन

यदि प्रकाशन के लिए लेख स्वीकार किया जाता है, तो उसे कम–से–कम दो संपादन चरणों से गुजरना पड़ता है। लेखकों को ध्यान रखना चाहिए कि सभी स्वीकृत लेख संपादन के किसी भी स्तर पर संपादकों द्वारा आवश्यक संशोधनों व परिवर्तनों के अधीन हैं।

जुलाई–दिसम्बर 2022, खंड–34, अंक–2
आईएसएसएन : 2321–2608

टाइटल कोड : DELHIN28999
सदस्यता शुल्क ₹200 प्रति अंक
(वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹400)

भारतीय जन संचार संस्थान | भारत का नंबर एक मीडिया संस्थान

स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम

- अंग्रेजी पत्रकारिता • हिंदी पत्रकारिता • रेडियो और टीवी पत्रकारिता
- विज्ञापन एवं जनसंपर्क • उड़िया पत्रकारिता • मलयालम पत्रकारिता
- उर्दू पत्रकारिता • मराठी पत्रकारिता

नवीनतम और सुसज्जित सुविधाएं

- साउंड और टीवी स्टूडियो तथा ऑडियो विजुअल सेटअप
- डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक कैमरों के साथ टीवी और वीडियो प्रोडक्शन
- मल्टी कैमरा स्टूडियो सेटअप • एडिटिंग कंसोल • डिजिटल साउंड रिकार्डिंग
- नॉन-लीनियर वीडियो एडिटिंग • डीएसएलआर कैमरा • 4K वीडियो कैमरा
- प्रोजेक्टर और वातानुकूलित कक्षाएं • कंप्यूटर लैब • मल्टीमीडिया सिस्टम
- वॉयस रिकार्डर, ग्राफिक और लेआउट डिजाइनिंग
- अपना रेडियो 96.9 एफएम

छात्रों को व्यावहारिक शिक्षा

- सीखने के मजबूत और व्यावहारिक तरीके
- नवीनतम तकनीक और सॉफ्टवेयर के साथ ज्ञान को बढ़ाना
- विशेष बीट रिपोर्टिंग सत्र
- मीडिया उद्योग के विशेषज्ञों के व्याख्यान

भारतीय जन संचार संस्थान
(सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार का स्वायत्त संस्थान)

अरूणा आसफ अली मार्ग, जेएनयू न्यू कैंपस, नई दिल्ली-110067
फोनः 011-26742920/296। वेबसाइटः www.iimc.gov.in । ईमेलः iimc1965@gmail.com

मुद्रक और प्रकाशक प्रो. (डॉ.) वीरेन्द्र कुमार भारती, प्रमुख-प्रकाशन विभाग, द्वारा भारतीय जन संचार संस्थान के लिए रॉयल ऑफसेट प्रिन्टर्स, ए-89/1, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028 से मुद्रित तथा भारतीय जन संचार संस्थान, अरूणा आसफ अली मार्ग, जेएनयू नया कैंपस, नई दिल्ली-110067 से प्रकाशित । संपादक : प्रो. (डॉ) प्रमोद कुमार.